मार्कण्डेय-पुराण

(द्वितीय खण्ड)

सरल भाषानुवाद सहित



सम्पादक—
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
चारो वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के,
प्रसिद्ध भाष्यकार।



प्रकाशक—
संस्कृति-संस्थान,
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर) बरेली
(उत्तर-प्रदेश)

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर)
बरेली (उ० प्र०)



सम्पादक :
पं० श्रीरामशर्मा आचार्य





प्रथम संस्करण
१९६७ ई०

मुद्रक :
वृन्दावन शर्मा
जन-जागरण प्रेस,
मथुरा ।



मूल्य—सात रुपया ।

मार्कण्डेय पुराण के द्वितीय खण्ड की विषय-सूची

दो शब्द

भारतीय धार्मिक साहित्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उसमें अध्यात्म, नीति, चरित्र से लेकर इतिहास, भूगोल, उद्योग-धन्धे, कला-कौशल सब विषयों का समावेश किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय मनीषियों ने जीवन की प्रत्येक गति-विधि का सम्बन्ध धर्म से माना है और अपने अनुयाइयों को सदैव यही शिक्षा दी है कि वे कभी धर्मविमुख आचरण न करें। शास्त्रों मे मानव जन्म के जो चार बड़े पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष गिनाये गये हैं, उनमे भी धर्म को प्रथम स्थान इसी उद्देश्य से दिया गया है कि मनुष्य जीवन निर्वाह और सांसारिक सुख प्राप्त करने के लिये अवश्य ही अर्थ का उपार्जन करे और उसके द्वारा भोगों का भी उपभोग करे पर उसकी कर्म-पद्धति सदैव धर्म द्वारा नियन्त्रित होनी आवश्यक है तभी वे जीवन के अन्तिम लक्ष्य—मोक्ष तक पहुँचने में समर्थ हो सकेंगे।

पुराणों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे इन सिद्धांतों को नित्य प्रति की साधारण और असाधारण घटनाओं के रूप मे ऐसे ढङ्ग से हमको सुनाते है जिससे हम जान सकें कि ससार के छोटे बड़े सामान्य असामान्य और आकस्मिक कर्तव्यों का पालन किस प्रकार धार्मिक आदेशों की रक्षा करते हुए किया जा सकता है। इस विवेचन को हर श्रेणी का—बिल्कुल साधारण बुद्धि का और अनपढ व्यक्ति भी सुन और समझ सके, इसके लिये उन्होने उसे मनोरजक कथाओं का रूप दिया है और बहुत ही सरल वर्णन शैली का प्रयोग किया गया है। ऐसी दशा मे जो आलोचक प्रवृत्ति के सज्जन पुराणों की एक एक बात को इतिहास, तर्क और तथ्यों की कसौटी पर कसने का प्रयत्न करते हैं, उनका समय और श्रम प्राय व्यर्थ ही जाता है। वे अपनी समझ से पौराणिक कथाओं का खण्डन करके कोई बड़ा काम करते हैं। पर पुराणों के वास्तविक स्वरूप के ज्ञाता विद्वान् लोग तो इस प्रकार की लम्बी-चौडी आलोचनाओं को निरर्थक समझते हैं, और केवल श्रद्धाभाव से कथा सुनने वाली अनपढ जनता पर भी उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे प्राचीन ऋषि महर्षियों

के नाम पर लिखे धर्म ग्रन्थों के विरुद्ध कोई बात सुनना ही नहीं चाहते और ऐसे लेखकों को 'नास्तिक' या 'अधार्मिक' की पदवी देकर ठुकरा देते हैं।

मार्कण्डेयपुराण के इस खण्ड में जो कथायें आई हैं, उनमें से अधिकांश राज्यवंशों के कुछ विशिष्ट राजाओं की कार्यवाहियों से सम्बन्ध रखती हैं। हो सकता है उनमें से कुछ राजाओं के नाम यथार्थ हों—और किन्हीं युद्धों की घटना भी न्यूनाधिक परिमाण में किसी समय घटी हो, पर उनका वर्तमान रूप एक धार्मिक कहानी के समान ही मानना चाहिए। अनेक ऐतिहासिक, उपन्यासों और कहानियों के पात्रों तथा स्थानों के नाम सच्चे होते हैं और कुछ घटनायें भी मूल रूप में ठीक होती हैं, पर पूरा कथानक लेखक की कल्पना-शक्ति से प्रसूत होता है। कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि वह पात्रों का जो कथोपकथन दे रहा है या उनके मनोभावों का जो चित्रण कर रहा है, वह किसी प्रत्यक्षदर्शी के बयान के आधार पर ज्यों का त्यों लिखा गया है। इसके विपरीत लेखक उस कहानी के माध्यम से पाठकों को जो कुछ लाभकारी शिक्षा देना चाहता है उसी के अनुसार कथानक को ढाल दिया जाता है। पुराणों के विषय में भी यही बात ठीक समझनी चाहिये।

एक बात और भी है। अनेक पौराणिक कथाओं में अनीति, अनुचित कर्म, दुराचरण का भी खुलकर वर्णन किया है जिसकी कुछ लोग निन्दा किया करते हैं। पर उसका उद्देश्य भी यही है कि पाठकों को जीवन के उत्तम और निकृष्ट, प्रशसनीय और निन्दनीय दोनों पहलू दिखा दिये जायें, जिससे भले की अच्छाई और बुरे की बुराई की शिक्षा उनके मन पर अङ्कित हो जाय। फिर अन्त में मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार तो भलाई अथवा बुराई की ओर तो झुकता ही है। यदि पुराणों से भी कोई निन्दनीय कर्मों को ही पसन्द करके उन्हीं को ग्रहण करना चाहता है तो यह उसका अपना ही दोष माना जायगा। पुराण तो जन-समूह को सद्मार्ग और परोपकारमय जीवन का ही उपदेश देते आये हैं और देते रहेंगे।

—सम्पादक

मार्कण्डेय पुराण

(द्वितीय खंड)

५१—भद्राश्वादिवर्ष वर्णन

एवंतुभारतवर्षंयथावत्कथितमुने ।
कृतत्रेताद्वापरचनथातिष्यचतुष्टयम् ।।१
अत्रैवैतद्युगानान्तुचातुर्वर्ण्यंचवैद्विज ।
चत्वारित्रीणिद्वेचैवकयेकैकशरच्छतम् ।।२
जीवन्त्यत्रनरात्रह्मन्कृतत्रेतादिपुक्रमात् ।
देवकूटस्यपूर्वस्यशलेन्द्रस्यमहात्मन ।।३
पूर्वेणायत्स्थितवर्षंभद्राश्व तन्निबोधमे ।
श्वेतपर्णश्चनीलश्चशैवालश्चाचलोत्तम ।।४
कौरश्च पर्णशालाग्र पचैतेहिकुलाचला ।
तेपाप्रसूतिरन्ययेवहव क्षुद्रपवता ।।५
तं विशिष्टाजनपदानानारूपा महस्रश ।
तत कुमुदसकाशा शुद्धसानुसुमङ्गला ।।६
इत्येवमादयोऽन्येऽपिशतशोऽथसहस्रश ।
सीताशङ्खावतीभद्राचक्रावर्त्तादिकास्तथा ।।७
नद्योऽथवह्वचाविस्तीर्णा शीततायौघवाहिका ।
अत्रवर्षेनरा शङ्खशुद्धहेमसमप्रभा ।।८

मार्कण्डेयजी ने कहा—भारतवर्ष का यह वास्तविक वर्णन किया गया, इसी भारतवर्ष में सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग यह चारों युग विद्यमान है ॥१॥ इसी स्थान में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के भेद से चार वर्ण है, यहीं सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के भेद से मनुष्यगण क्रमश चार सौ, तीन सौ, दो सौ और एक सौ की आयु पाते है, पूर्व दिशा देवकूट नामक विशाल पर्वत के ॥२-३॥ पूर्व की ओर जो वर्ष अवस्थित हैं, उसे भद्राश्ववर्ष कहते हैं, अब उसके विषय में कहता हूँ, श्वेतपर्ण, नील शैवाल ॥४ कौरञ्च, पर्णशालाग्र यह पाँच कुलाचल इस वर्ष में स्थित हैं तथा इसी वर्ष में इन सब पर्वतों से उत्पन्न हुए अनेक छोटे पर्वत भी स्थित हैं ॥५॥ कुमुद, सकाश, शुद्धसानु, सुमङ्गल आदि अन्यान्य सहस्रो जनपद विभिन्न प्रकार से इस वर्ष में ही स्थित हैं, सीता, शखावती, भद्रा और चक्रावत आदि ॥६-७॥ बहुत-सी अत्यन्त शीतल जल वाली नदियाँ इस में प्रवहमान हैं, इस वर्ष में उत्पन्न होने वाले सभी मनुष्य शख तथा स्वच्छ स्वर्ण के समान प्रभा सम्पन्न हैं ॥८॥

दिव्यसगमिन पुण्यादशवर्षशतायुष ।
अधमोत्तमनतेष्वस्तिसर्वेतेसमदर्शना ॥६
तितिक्षादिभिरष्टाभि प्रकृत्यात्मगुणैर्युता ।
तथाप्यश्वशिरादेवश्चतुर्बाहुर्जनार्दन ॥१०
शिरोहृदयमेढ्राङ्घ्रिहस्तश्चाक्षित्रयान्वित. ।
तस्याप्यर्थवविपयाविज्ञेयाजगत प्रभो ॥११
केतुमालमतोवर्षंनिबोधममपश्चिमम् ।
विशाल.कम्बल कृष्णोजयन्तोहरिपर्वत ॥१२
विशोकोवर्द्धमानश्चसप्त तेकुलपर्वता ।
अन्येसहस्रश शैलायेपुलोकगणःस्थित ॥१३
मौलयस्तेमहाकाया शाकपोतकरम्भका ।
अङ्गुलप्रमुखाश्चापिवसन्तिशतशोजना ॥१४

वे सत्ता सहित पवित्रता पूर्वक निवास करते हुए सहस्र वर्ष पर्यंत जीवित रहते हैं उनमें कोई श्रेष्ठ अथवा अधम नहीं है ॥६॥ वहाँ के सब

मनुष्य सभी प्रकार के गुणवान् होते हैं, इस वर्ष में चतुर्भुजी भगवान् हयग्रीव स्वरूप में।१०। शिर,हृदय,मेढ्, चरण हाथ और अक्षित्रयान्वित होकर अवस्थित है, उन जगदीश्वर का सम्पूर्ण विषय इसी प्रकार समझो ।।११।। अब सुमेरु के पश्चिम में स्थित केतुमालवर्ष का वर्णन सुनो—इस वर्ष में जो सात कुलाचल है वे विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरि पर्वत ।।१२।। विशोक और वर्द्धमान नामक हैं, इनके अतिरिक्त और भी हजारो विशाल पर्वत हैं, जिनमे अनेक प्राणी निवास करते हैं ।।१३।। उनमे शाक, पोत, करम्भक और अच्चुलाद्यादि अनेक प्रकार के लोगो का निवास है ।।१४।।

येपिवन्तिमहानद्योवक्षुश्यामास्वकम्बलाम् ।
अमोघावामिनीश्यामालथैवान्या सहस्रश ।।१५
अत्राप्यायु.समपूर्वैरत्रापिभगवान्हरिः ।
वराहरूपीपादोस्यहृत्पृष्ठेपार्श्वतस्तथा ।।१६
(मुखेनासादतश्चैवकण्ठत पुच्छतस्तथा) ।
त्रिनक्षत्रयुतेदेशेनक्षत्राणियुतानिच ।
इत्येतत्केतुमालतेकथितमुनिसत्तम ।।१७
अत परकुरून्वक्ष्येनिवोधेहममोत्तरान् ।
तत्रवृक्षामधुफलानित्यपुष्पफलोपगा ।।१८
वस्त्राणिचप्रसूयन्तेफलेष्वाभरणानिच ।
सर्वकामप्रदास्तेहिसर्वकालफलप्रदा: ।।१६
भूमिमणिमयीवायु सुगध सर्व्वदासुख. ।
जायन्तेमानवास्तत्रदेवलोकपरिच्युता: ।।२०
मिथुनानिप्रसूयन्तेसमकालस्थितानिवै ।
अन्योन्यमनुरक्तानिचक्रवाकोपमानिच ।।२१

जिन महानदियो के जल का यह लोग पान करते हैं, वे वक्षु, श्यामा, कम्बला, अमोघा, कामिनी सुमेधा नाम की महानदी हैं, इनके अतिरिक्त अन्य सहस्रो नदियाँ वहाँ प्रवाहित हैं ।।१५।। मनुष्यो की आयु वहाँ भी पूर्वोक्त ही है, उस देश मे भगवान् श्रीहरि का निवास वाराह रूप से है, उनके चरण,

हृदय, मुख, पृष्ठ देश तथा पार्श्व मे मुख, नासिका, कण्ठ, दाँत और पूँछ सहित तीन नक्षत्रों से पूर्ण हो कर सम्पूर्ण देश अवस्थित है, वहाँ भी नक्षत्र शुभाशुभ को सूचित करते रहते है ॥१६॥ हे मुने ! इस प्रकार केतुमाल वर्ष का वर्णन भी कर दिया गया ॥१७॥ अब उत्तर कुरुदेश का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो— इस देश मे सब ऋतुओ के फल, पुष्प आदि से युक्त सर्व कामना एव सर्व फल के देने वाले वृक्ष ॥१८॥ वस्त्र उत्पन्न करते है तथा उनके सब फलो से आभरण उत्पन्न होते हैं ॥१६॥ वहाँ की भूमि मणियुक्त, सुन्दर सुगंधित वायु से सम्पन्न तथा सुख के देने वाली है स्वर्गलोक से भ्रष्ट हुए व्यक्ति ही वहाँ मनुष्य रूप मे जन्म लेते हैं ॥२०॥ उनमे चक्रवाक के समान पारस्परिक प्रेम रहता है तथा समकाल मे बालको को उत्पन्न करते है ॥२१॥

चतुर्दशसहस्राणितेपासार्द्धानिर्वस्थिति. ।
चन्द्रकान्तश्चशैलेन्द्र सूर्य्यकान्तस्तथापर. ॥२२
तस्मिन्कुलाचलेवर्षेतन्मध्येचमहानदी ।
भद्रसोमाप्रयात्युर्व्यापुण्यामलजलौघिनी ॥२३
सहस्रशस्तथं वान्यानद्योवर्षेऽपिचोत्तरे ।
तथान्या.क्षीरवाहिन्योघृतवाहिन्यएवच ॥२४
दध्नोह्रदास्तथातत्रतथान्येचानुपर्व्वता ।
अमृतास्वादकल्पानिफलानिविविधानिच ॥२५
वनेपुतेपुरम्याणिशतशोऽथसहस्रश. ।
तत्रापिभगवान्विष्णु प्राक्छिरामत्स्यरूपवान् ॥२६
विभक्तोनवधाविप्रनक्षत्राणात्रयत्रयम् ।
देशास्तत्रापिनवधाविभक्तामुनिसत्तम ॥२७
चन्द्रद्वीप समुद्रे चभद्रद्वीपतस्थापर: ।
तत्रापिपुण्योविख्यात समुद्रान्तर्महामुने ॥२८
इत्येतत्क थितब्रह्मन्कुरुवर्षंमयोत्तरम् ।
शृणुकिंपुरपादीनिवर्षाणिगदतोमम ॥२९

वह साढ़े चौदह हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं, इस वर्ष में चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नामक दो कुलाचल स्थित हैं ॥२२॥ उस पर्वत में भद्रसोमा नाम की स्वच्छ जल वाली महानदी प्रवाहित है ॥२३॥ इसके अतिरिक्त अन्य सहस्रों छोटी छोटी नदियाँ वहा हैं, अन्य नदियो मे कोई दुग्ध वाहिनी और कोई घृत वाहिनी है ॥२४॥ तथा कोई दही के ताल से युक्त है, सात कुलाचलों के अतिरिक्त अन्य क्षुद्र पर्वत बहुत से हैं, उत्तर कुरु में स्थित इन सहस्र वनों के मध्य स्थित सभी वृक्षो मे विभिन्न प्रकार के सुस्वादु फल लगते हैं, इसी स्थान में पूर्व की ओर मस्तक करके मत्स्यरूप से श्रीनारायण भगवान् का वास है ॥२५-२६॥ इस उत्तर कुरु मे नक्षत्र नौ भागो मे बँट कर तीन-तीन के क्रम से रहते हैं, इसी प्रकार सब देश नौ भागो मे विभाजित हैं ॥२७॥ इस वर्ष मे चन्द्रीप और भद्रद्वीप नामक दो पवित्र द्वीप हैं, जो समुद्र के मध्य मे स्थित हैं ॥२८॥ हे ब्रह्मन् यह उत्तर कुरु वर्ष का वर्णन हुआ, अब किम्पुरुषादि के विषय मे कहता हैं ॥२९॥

५२—किम्पुरुषादि वर्णन

यत्तु किम्पुरुषवर्षंतत्प्रवक्ष्याम्यहद्विज ।
तत्रायुर्दशमाहस्र पुरुषाणामपुष्पताम् ॥१
अनामयाह्यशोकाश्चनारायस्त्रियास्त्रिय ।
प्लक्ष खण्डश्चयत्रोक्त सुमहान्नन्दनोपम ॥२
तस्यतेवं फलरसपिवन्तःपुरुषा सदा ।
स्थिरयौवननिष्पन्नास्त्रियश्चोत्पलगन्धिका ॥३
अतःपरंकिंपुरुषाद्धरिहर्षप्रचक्षते ।
महारजतसंकाशाजायतेतत्रमानवा ॥४
देवलोकच्युता सर्वे देवरूपाश्चसर्वश ।
हरिवर्षेतरा सर्वे पिबन्तीक्षुरसंशुभम् ॥५

नजराबाधतेतत्रनजीर्यन्तेत्त्कर्हिचित् ।
तावन्तमेवतेकालजीवन्त्यथनिरामया ॥६
मेरुवर्षंमयाप्रोक्त मध्यमर्यादलावृतम् ।
नतत्रसूर्यस्तपतिनतेजीयन्तिमानवाः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! अब किम्पुरुष नामक वर्ष का वृत्तान्त कहता हूँ, सुनो—वहाँ देहधारी मनुष्यो की आयु दश हजार वर्ष की हैं ॥१॥ वहा के सभी स्त्री पुरुष नीरोग तथा शोक रहित होते हैं वहाँ नन्दन वन के समान एक महान् प्लक्ष खण्ड स्थित है ॥२॥ उन वृक्षो के रस का पान करके ही मनुष्य स्थिर यौवन वाले एव नारिया पद्मगन्धा होती हैं ॥३॥ इस वर्ष के पृष्ठ भाग मे हरि वर्ष नामक एक अन्य वर्ष है ॥४॥ देव लोक से पतित हुए प्राणी हरि वर्ष मे मनुष्य रूप मे उत्पन्न होते हैं तथा वहा श्रेष्ठ ईख का रस पान करते हैं ॥५॥ वृद्धावस्था उनको पीडित नही करती, इसलिये जीर्णता को कोई भी प्राप्त नही होता, वे जब तक जीवित रहते हैं तब तक यौवनावस्था स्थित रहती है तथा वे सदा नीरोग रहते हैं ॥६॥ मेरुवर्ष नामक मध्यम वर्ष को इलावृत्त भी कहते हैं, वहाँ का सूर्य ताप रहित है और मनुष्य वहाँ भी वृद्धावस्था से जीर्ण नही होते ॥७॥

लभन्तेनात्मनाभचरश्मयश्चन्द्रसूर्ययो ।
नक्षत्राणाग्रहाणाचमेरोस्तत्रपराद्युति ॥८
पद्मप्रभा पद्मगन्धाजम्बूफलरसाशिन ।
पद्मपत्रायताक्षास्तुजायन्तेतत्रमानवा ॥९
वर्षाणान्तुसहस्राणितत्राप्यायुस्त्रयोदश ।
शरावाकारमस्तारोमेरुमध्येइलावृते ॥१०
मेरुस्तत्रमहानैलस्तदाख्यातमिलावृतम् ।
रम्यकवर्षमस्माच्चकथयिष्येनिबोधतम् ॥११
वृक्षस्तत्रापिचोत्तुङ्गोन्यग्रोधोहरितच्छदः ।
तस्यापितेफलान्यत्तिपिबन्तोवर्तयन्निवै ॥१२

वर्षायुतायुषस्तत्रनराम्तत्फलभोगिन ।
रतिप्रधानविमलाजरादौर्गन्ध्यवर्जिना ।।१३
तस्मादयोत्तरवर्षनाम्नाख्यातहिरण्मयम् ।
हिरण्वतीनदीयत्रप्रभूनकमलोज्ज्वला ।।१४
महाबला सतेजस्काजायन्तेतत्रमानवा ।
महाकायामहासत्त्वाधनिन प्रियदर्शना ।।१५

चन्द्रमा, सूर्य,ग्रह और सब नक्षत्रों की किरणें वहाँ उज्ज्वलता को प्राप्त नहीं हो पाती, क्यों कि वहां सुमेरु का तीव्र प्रकाश रहता है ।।८।। जो मनुष्य उस मेरु वर्ष में उत्पन्न होते हैं, वह सभी कमल के समान प्रभात युक्त, पद्मगन्ध और पद्म पत्र के समान विस्तीर्ण नेत्र वाले तथा जामुन के फलों का रस पान करने वाले होते हैं ।।९।। वे मनुष्य तेरह सहस्र वर्ष की आयु वाले होते हैं, उस इलावृत्त के बीच में जो मेरु पर्वत स्थित है उसका आकार सकोरे के समान है ।।१०।। उस वर्ष में वह महापर्वत मेरु ही प्रसिद्ध हैं, अब तुम्हें रम्यक वर्ष के विषय में सुनाता हू, उसे श्रवण करो ।।११।। उस रम्यक वर्ष में एक अत्यन्त ऊँचा न्यग्रोध नामक वृक्ष है, उसके समस्त पत्र हरे रंग के हैं, उन वृक्ष के रस पान द्वारा ही वहाँ के मनुष्य जीवन धारण करते हैं ।।१२।। उसके फलों के रस का पान करने वालों की आयु दस सहस्र वर्ष होती है, वह रति क्रिया में चतुर, सुन्दर तथा दुर्गंधि और जरावस्था से रहित होते हैं ।।१३।। उसके उत्तर में हिरण्मय वर्ष स्थित है इसमें अनेक कमल पुष्पों से सुशोभित हिरण्वती नदी हिरण्ययुक्त जल से परिपूर्ण प्रवाहित है ।।१४।। वहाँ उत्पन्न होने वाले मनुष्य अत्यन्त बली, तेजस्वी, सत्व सम्पन्न, प्रिय दर्शन, विशाल काय तथा धनवान् होते हैं ।।१५।।

५४—स्वारोचिष मन्वन्तरारम्भ (२)

कथितभवतासम्यक्पृष्टोऽसिमहामुने ।
भूसमुद्रादिसस्थानप्रमाणानितथाप्रहा ।।१

तेषाचैवप्रमाणयन्नक्षत्राणाचसस्थिति ।
भूरादयस्तथालोका पातालान्यखिलान्यपि ॥२
स्वायम्भुव तयाख्यातमुनेमन्वन्तरमम ।
तदन्तराण्यहश्रोतुमिच्छेमन्वन्तराणिवं ॥
मन्वन्तराधिपान्देवानृषीस्तत्तनयान्नृपान् ॥३
मन्वन्तरमयाख्याततवस्वायम्भुवचयत् ।
स्वारोचिषाख्यमन्यत्तु श्रणुतस्मादनन्तरम् ॥४
कश्चिद्द्विजातिप्रवरःपुरेऽभूदरुणास्पदे ।
वरुणायास्तटेविप्रोरूपेणात्यश्विनावपि ॥५
मृदुस्वभाव सद्वृत्तोवेदवेदागपारग ।
सदातिथिप्रियोरात्रावागतानासमाश्रय ॥६
तस्यबुद्धिरियत्वासीदहपश्येवसुन्धराम् ।
अतिरम्यवनोद्याननानानगरशोभिताम् ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हेमहामुने ! आपने मेरे समस्त प्रश्न का भले प्रकार समाधान किया पृथिवी और समुद्रादि की स्थिति, विस्तार एव ग्रह का परिमाण ॥१॥ नक्षत्रादि की स्थिति और परिमाण, भूरादि सप्तलोक, सप्त पाताल ॥२॥ तथा स्वायमुव नामक प्रख्यात मन्वन्तर आदि का भी वृत्तान्त कहा है, अब उक्त मन्वन्तर के पश्चात् अन्य सब मन्वन्तर, उनके अधिपति, उनके वशीय राजा गण देवता एव ऋषियो की कथा सुनने की मुझे उत्कट इच्छा है ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—जिस स्वायभुव मनु का विषय तुम्हारे प्रति कहा है, अब उसके पश्चात् स्वारोचिष मन्वन्तर का वृत्तान्त सुनो ॥४॥ दोनो अश्विनिकुमारो से भी अधिक रूपवान् शान्त स्वभाव वाला, चरित्रवान्, वेद वेदाङ्ग का ज्ञाता एक ब्राह्मण वरुणा नदी के तट पर स्थित अरुणास्पद नामक नगर मे रहता था, वह अतिथि के आगम पर अत्यन्त प्रसन्न होता था तथा रात्रि के समय आने वाले व्यक्तियों के लिये वह आश्रय स्वरूप था ॥५-६॥ उसके मन मे एक इच्छा बलवती थी कि मैं अत्यन्त सुरम्य वनो और उपवनो से सम्पन्न और अनेक नगरों से सुशोभित इस पृथिवी को सम्पूर्ण रूप से देखूँ ॥७॥

अथागतोऽतिथिःकश्चित्कदाचित्तस्यवेश्मनि ।
नानौषधिप्रभावज्ञोमन्त्रविद्याविशारदः ॥८
अभ्यर्थितस्तुतेनासौश्रद्धापूतेनचेतसा ।
तस्याचख्यौसदेशांश्चरम्याणिनगराणिच ॥९
नदीवनानिशैलांश्चपुण्यान्यायतनानिच ।
सततोविस्मयाविष्ट प्राहतद्विजसत्तमम् ॥१०
अनेकदेशदर्शित्वेनातिश्रमसमन्वितः ।
त्वंनातिवृद्धोवयसानातिवृत्तश्चयौवनात् ।
कथमल्पेनकालेनपृथिवीमटसिद्विज ॥११
मन्त्रौषधिप्रभावेणविप्राप्रतिहतागतिः ।
योजनानासहस्रं हिदिनार्द्धेनव्रजाम्यहम् ॥१२
तत.सविप्रस्तंभूय.प्रत्युवाचेदमादरात् ।
श्रद्धधानोवचस्तस्यब्राह्मणस्यविपश्चित ॥१३
ममप्रसादंभगन्कुरुमन्त्रप्रभावजम् ।
द्रष्टुमेताममहीमतीवेच्छाप्रवर्तते ॥१४

एक दिन उसके घर मे सब औषधियों के प्रभाव का ज्ञाता तथा मन्त्र विद्या मे विद्वान् एक अतिथि का आगमन हुआ ॥८॥ ब्राह्मण द्वारा श्रद्धायुक्त मन से प्रश्न करने पर उसके अतिथि ने उसे अनेक देश, रमणीक नगर ॥९॥ वन, नदी, पर्वत और सभी पवित्र स्थानो का वर्णन सुनाया तब उससे वह अरुणास्पद नगर निवासी ब्राह्मण आश्चर्य से कहने लगा ॥१०॥ हे द्विज ! आपने अनेक देशो को देखा है, तो भी आप श्रमाक्रान्त प्रतीत नहीं होते, आप न तो वृद्ध हैं और न अधिक तरुण ही हैं, आपकी आयु भी अधिक प्रतीत नहीं होती, तो आपने इस अल्प अवस्था मे ही सब पृथिवी मे कैसे भ्रमण कर लिया ॥११॥ ब्राह्मण ने कहा—हे ब्रह्मन् मन्त्रों और औषधियो के प्रभाव से मुझे अप्रतिहत गति की प्राप्ति हुई है और इस कारण मैं आधे दिन मे सहस्र योजन चल सकता हूँ ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब उस ब्राह्मण विद्वान् अतिथि के वचन मे श्रद्धा युक्त मन हो कर उससे आदर निवेदन किया ॥१३॥ हे

भगवन्! आप मुझे भी औषधि प्रदान करने की कृपा करिये, क्यों कि इस पृथिवी को देखने के लिये मैं अत्यन्त उत्कण्ठित हूँ।।१४।।

प्रादात्सब्राह्मणश्चास्मैपादलेपमुदारधी ।
अभिमन्त्रयामासदिशतेनाख्याताचयत्नतः ।।१५
तेनानुलिप्तपादोऽथसद्विजोद्विसत्तम ।
हिमवन्तमगाद्द्रष्टु नानाप्रस्रवणान्वितम् ।।१६
सहस्र योजनानाहिदिनार्धेनव्रजामियत् ।
आयाम्यामीतिसचिन्त्यतदर्द्धेनापरेणहि ।।१७
सप्राप्तोहिमवत्पृष्ठ नातिश्रान्ततनुर्द्विज ।
विचचारततस्तस्तुहिनाचलभूतले ।।१८
पादाक्रान्तेनतस्याथतुहिनेनविलीयता ।
प्रक्षालित पादलेप परमौषधिसंभव ।।१९
ततोजडगतिःसोऽथइतश्चेतश्चपर्यटन् ।
ददर्शातिमनोज्ञानिसानूनिहिमभूभृत ।।२०
सिद्धगन्धर्वजुष्टानिकिन्नराभिरतानिच ।
क्रीडाविहाररम्याणिदेवादीनामितस्तत ।।२१

यह सुन कर उस उदार चेता अतिथि ने उस ब्राह्मण के पाँव में औषधि का लेप कर दिया और अभिमन्त्रण पूर्वक उसे दिशादि का ज्ञान दिया ।।१५।। जब अतिथि ने ब्राह्मण के पाँव में लेप लगादिया तब वह सोचने लगा कि 'अब मैं दिन के पूर्वार्द्ध में एक हजार योजन गमन करूँगा तथा अपरार्द्ध में वहाँ से लौट आऊँगा, ऐसे विचार कर वह अनेक झरनों वाले हिमालय पर्वत को देखने की इच्छा से चला ।।१६-१७।। वह सहज में ही हिमालय के पृष्ठ देश पर पहुँच कर उस हिमभूमि में भ्रमण करने लगा ।।१८।। वहाँ घूमते-घूमते उसके पाँव में अत्यन्त शीतलता के लगने से औषधियुक्त लेप धुल गया ।।१९।। और उस ब्राह्मण की जड़ गति हो गई, फिर वह इधर-उधर घूमता हुआ वहाँ के मनोहर सानुप्रान्त का भाग देखने लगा ।।२०।। उसने देखा सिद्ध,

गन्धर्व, किन्नर वहाँ विहार कर रहे है तथा पर्वत के किनारे ही देवताओं के क्रीडा और विहार करने के लिये अत्यन्त मनोहर स्थान निर्मित हैं ॥२१॥

दिव्याप्सरोगणशतैराकीर्णान्यवलोकयन् ।
नातृप्यतद्विजश्रेष्ठ प्रोद्भूतपुलकोमुने ॥२२
क्वचित्प्रस्रवणाद्भ्रष्टजलपातमनोरमम् ।
प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्चनिनादितम् ॥२३
दात्यूहकोयष्टिकाद्यैःक्वचिच्चातिमनोहरैः ।
पुंस्कोकिलकलापैश्च श्रुतिहारिभिरन्वितम् ॥२४
प्रफुल्लतरुगन्धेनवासितानिलवीजितम् ।
मुदायुक्त सदद्दर्शेहिमवन्तमहागिरिम् ॥२५
दृष्ट्वाचैतद्विजसुतोहिमवन्तमहाचलम् ।
श्वोद्रक्ष्यामीतिसचिन्त्यमर्तिचक्रे गृहप्रति ॥२६
विभ्रष्टपादलेपोऽयचिरंगोजडितक्रम ।
चिन्तयामासकिमिदमयाज्ञानादनुष्ठितम् ॥२७
यदिप्रलेपोनष्टोमेविलीनोहिमवारिणा ।
शैलोऽतिदुर्गमश्चायदूरञ्चाहमिहागतः ॥२८

उसने उस स्थान को सैकडो अप्सराओं से भरा हुआ देखा जिससे उसका शरीर पुलकित हो गया और वह अपने मन की किसी प्रकार भी तृप्ति नही कर पाया ॥२२॥ उसने देखा कि यह पर्वत कही तो पर्वतो मे गिरती हुई जलराशि से सुशोभित है (कहीं नृत्य करते हुए मयूरो के रव से शब्दायमान है) तथा कही विभिन्न प्रकार के पक्षी मन को लुभाने वाली बोली बोल रहे है ॥२३॥ कही पपीहा कोयष्टि, टिटीहरी आदि से वह पर्वत व्याप्त है और कही कोयल के समान मधुर ध्वनि से प्रतिध्वनित है ॥२४॥ कहीं वृक्षो के प्रफुल्लित पुष्पों की गन्ध से सुगन्धित हुई वायु से सुगन्धित है इस प्रकार वह उस पर्वत की शोभा देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ॥२५॥ फिर वह हिमाचल को देख कर सोचने लगा कि कल प्रात काल आकर पुन: देखूँगा और फिर उसने चलने का विचार किया ॥२६॥ परन्तु पाँवो का लेप छूटने से जडगति हुआ वह

ब्राह्मण सोचने लगा कि मैंने अज्ञान के वशीभूत हो कर यह क्या कार्य कर डाला ॥२७॥ अब मेरा पद लेप धुल चुका है, तब यहाँ से जाना अत्यन्त दुष्कर है, क्यों कि यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मेरा घर भी बहुत दूर है ॥२८॥

प्रयाम्यामिक्रियाहानिमग्निशुश्रूषणादिकम् ।
कथमत्रकरिष्यामिकष्टमहदागतम् ॥२९
इदम्परमिदरम्यमित्यस्मिन्वरपर्वते ।
नतद्दृष्टिरहंतृप्तिनयास्येऽब्दशतैरपि ॥३०
किन्नराणाञ्चालापाःसमन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ।
प्रफुल्लतरगन्धाश्चघ्राणमत्यन्तमृच्छति ।३१
सुखस्पर्शस्तथावायु फलानिस्वादवन्तिच ।
हरन्तिप्रसभञ्चेतोमनोज्ञानिसरांसिच ॥३२
एवंगतेनुपश्येयंयदिकंचित्तपोनिधिम् ।
समेऽद्योपदिशेन्मार्गंगमनायगृहम्प्रति ॥३३
सएवंचिन्तयन्विप्रोबभ्रामचहिमाचले ।
भ्रष्टाद्रौषधिवनोपैवस्यपरमगत ॥३४
सददर्शंभ्रमन्तचपुञ्जिकस्थलींवरूथिनी ।
वराप्सरांसमहाभागामौलेयरूपशालिनी ॥३५

चिंता पूर्वक हिमालय मे घूमने लगा ॥३४॥ उस समय उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को वहा घूमते हुए वरूथिनी नाम की मौलेया रूपवती अप्सरा ने देखा ॥३५॥

तस्मिन्दृष्टे तत.साभूद्द्विजवर्येवरूथिनी ।
मदनाकृष्टहृदयासानुरागाहितत्क्षणात् ॥३६
चिन्तयामासकोन्वेपरमणीयतमाकृतिः ।
सफलमेभवेज्जन्मयदिमांनावमन्यते ॥३७
अहोऽस्यरूपमाधुर्यमहोस्यललितागतिः ।
अहोगम्भीरताहृष्टेःकुतोऽस्यसदृशोभुवि ॥३८
दृष्टादेवास्तथादैत्याःसिद्धगन्धर्वपन्नगाः ।
कथमेकोऽपिनास्त्यस्यतुल्यरूपोमहात्मनः ॥३९
यथाहमस्मिन्मय्येपसानुरागस्तथायदि ।
भवेदत्रमयाकार्यस्तत्कृत.पुण्यसचय ॥४०
यद्येपर्मय्यसुस्निग्धादृष्टिमद्यनिपातयेत् ।
कृतपुण्यानमत्तोऽन्यात्रैलोक्येवनितातत: ॥४१

वह उसे देखते ही काम बाण से जर्जरित हो उठी और उसके प्रति तुरन्त ही अनुरागवती होगई ॥३६॥ उसने सोचा कि यह सुन्दर आकृति वाला पुरुप कौन है ? यदि यह मेरा आदर करे तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ ॥३७॥ इसकी कैसी अपूर्व माधुरी है, कैसी मनोहर चाल, इसकी गम्भीर दृष्टि मे कैसा चमत्कार है, पृथिवी पर इसके तुल्य अन्य पुरुप कौन-सा है ? ॥३८॥ देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग इन सबको मैंने देखा है, परन्तु उनमे इसके समान रूपवान् कोई भी दिखाई न दिया ॥३९॥ मैं इसके प्रति जैसी प्रीतिवती हुई हूँ, वैसी ही प्रीति यह भी मेरे प्रति करे तो मेरे पूर्व जन्म के कर्म का ही फल उदय हुआ समझो ॥४०॥ यदि यह मुझ पर अपनी स्निग्ध दृष्टि डालें, तो तीनो लोक मे मेरे समान और कौन-सी नारी होगी ॥४१॥

एव संचिन्तयन्तीसादिव्ययोपित्स्मरातुरा ।
आत्मानंदर्शयामासकमनीयतराकृतिम् ॥४२

ब्राह्मण सोचने लगा कि मैंने अज्ञान के वशीभूत हो कर यह क्या कार्य कर डाला ॥२७॥ जब मेरा पद लेप धुल चुका है, तब यहाँ से जाना अत्यन्त दुष्कर है, क्यों कि यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मेरा घर भी बहुत दूर है ॥२८॥

प्रयास्यामिकियाहानिमग्निशुश्रूषणादिकम् ।
कथमत्रकरिष्यामिसकटमहदागतम् ॥२९
इदम्परमिदरम्यमित्यस्मिन्वरपर्वते ।
सक्तदृष्टिरहतृप्तिनयास्येऽब्दशतैरपि ॥३०
किन्नराणाकलालापाःसमन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ।
प्रफुल्लतरुगन्धाश्चघ्राणमत्यन्तमृच्छति ।३१
सुखस्पर्शस्तथावायु फलानिरसवन्तिच ।
हरन्तिप्रसभचेतोमनोज्ञानिसरासिच ॥३२
एवगतेतुपश्येययदिकचित्तपोनिधिम् ।
सममोपदिशेन्मार्गगमनायगृहप्रति ॥३३
सएवचिन्तयन्विप्रोवभ्रामचहिमाचले ।
भ्रष्टपादौषधिवलोवैक्लव परमगत ॥३४
तददर्शभ्रमन्तचमुनिश्रेष्ट वरूथिनी ।
वराप्सारामहाभागामौलेयारूपशालिनी ॥३५

अब तो महान् संकट आगया है, यहा अग्नि सेवादि का कार्य कैसे करूँगा ? इस प्रकार तो नित्य कर्म भी नष्ट हो गया ॥२९॥ 'यह भी मनोहर है, यह भी' इत्यादि सोचता हुआ पर्वत के देखने की इच्छा को सौ वर्षों मे भी पूर्ण नहीं कर सकता ॥३०॥ सब ओर से किन्नरों का कर्ण-सुखप्रद मधुरालाप सुनाई पड रहा है और पुष्पित वृक्षो से आती हुई सुगंधि से नासिका भी तृप्त हो गई है ॥३१॥ यहाँ सुख-स्पर्श पवन चल रहा है, सभी प्रकार के फलों में रस है, और सुरम्य सरोवर से मन खिंचा जा रहा है ॥३२॥ अब इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर यहां किसी तपोधन का दर्शन करूँ तो उनसे घर जाने का उपाय पूछूँ ॥३३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पांव लगे लेप के धुल जाने से औषधिशक्ति का नाश हुआ जान कर अत्यन्त दुःखित हुआ ब्राह्मण

चिंता पूर्वक हिमालय मे घूमने लगा ॥३४॥ उस समय उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को वहा घूमते हुए वरुथिनी नाम की मौलिया रूपवती अप्सरा ने देखा ॥३५॥

तस्मिन्दृष्टे तत.साभूद्द्विजवर्येवरुथिनी ।
मदनाकृष्टहृदयासानुरागाहितत्क्षणात् ॥३६
चिन्तयामासकोन्वेपरमणीयतमाकृतिः ।
सफलमेभवेज्जन्मयदिमांनावमन्यते ॥३७
ग्रहोऽस्यरूपमाधुर्यमहोस्यललितागतिः ।
ग्रहोगम्भीरताद्दष्टेःकुतोऽस्यसद्दशोभुवि ॥३८
दृष्टादेवास्तथादैत्याःसिद्धगन्धर्वपन्नगाः ।
कथमेकोऽपिनास्त्यस्यतुल्यरूपोमहात्मनः ॥३९
यथाहमस्मिन्मय्येपसानुरागस्तथायदि ।
भवेदत्रमयाकार्यस्तत्कृत.पुण्यसचयः ॥४०
यद्येपमयिसुस्निग्धाद्दष्टिमद्यनिपातयेत् ।
कृतपुण्यानमत्तोऽन्यात्रैलोक्येवनितातत. ॥४१

वह उसे देखते ही काम बाण से जर्जरित हो उठी और उसके प्रति तुरन्त ही अनुरागवती होगई ॥३६॥ उसने सोचा कि यह सुन्दर आकृति वाला पुरुप कौन है ? यदि यह मेरा आदर करे तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ ॥३७॥ इसकी कैसी अपूर्व माधुरी है, कैसी मनोहर चाल, इसकी गम्भीर दृष्टि मे कैसा चमत्कार है, पृथिवी पर इसके तुल्य अन्य पुरुप कौन-सा है ? ॥३८॥ देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग इन सबको मैंने देखा है, परतु उनमे इसके समान रूपवान् कोई भी दिखाई न दिया ॥३९॥ मैं इसके प्रति जैसी प्रीतिवती हुई हूँ, वैसी ही प्रीति यह भी मेरे प्रति करे तो मेरे पूर्व जन्म के कर्म का ही फल उदय हुआ समझो ॥४०॥ यदि यह मुझ पर अपनी स्निग्ध दृष्टि डालें, तो तीनो लोक मे मेरे समान और कौन-सी नारी होगी ॥४१॥

एवंसंचिन्तयन्तीसादिव्ययोपित्स्मरातुरा ।
ग्रात्मानंदर्शयामासकमनीयतराकृतिम् ॥४२

तानुदृष्ट्वाद्विजसुतश्चारुरूपावरूथिनीम् ।
सोपचारसमागम्यवाक्यमेतदुवाचह ॥४३
कात्वं कमलगर्भाभेकस्यकिंवानुतिष्ठसि ।
ब्राह्मणोऽहमिहायातोनगरादरुणास्पदात् ॥४४
पादलेपोऽत्रमेध्वस्तोविलीनोहिमवारिणा ।
यस्यानुभावादत्राहमागतोमदिरेक्षणे ॥४५
मौलेयाहमहाभागानाम्नाख्यातावरूथिनी ।
विचरामिसदं वात्ररमणायमहाचले ॥४६
साहत्वद्दर्शनाद्विप्रकामवैक्लव्यतागता ।
प्रशाधियन्मयाकार्यंत्वदधीनास्मिसाप्रतम् ॥४७
येनोपायेनगच्छ्येयनिजगेहशुचिस्मिते ।
तन्ममाचक्ष्वकल्याणिहानिर्नोऽखिलकर्मणाम् ॥४८
नित्यनैमित्तिकानातुमहाहानिर्द्विजन्मन ।
भवत्यतस्त्वहेभद्रेमामुद्धरहिमालयात् ॥४९

मार्कण्डेयजी ने कहा—दिव्यबाला वरूथिनी कामातुर हुई इसी प्रकार विचार करती-करती उस ब्राह्मण को अपने अङ्ग प्रत्यङ्ग दिखाने लगी ॥४२॥ उस रूपवती को उस ब्राह्मण ने जैसे ही देखा वैसे ही विधि पूर्वक पाद्यादि उपचार के सहित उसके पास जा कर बोला ॥४३॥ हे सुन्दरे ! तुम्हारा वर्ण पद्म-गर्भ जैसा मनोहर है, तुम कौन, किसकी पत्नी हो ? यहाँ क्या कर रही हो ? मैं ब्राह्मण हूँ और यहाँ अरुणास्पद नगर से आ पहुँचा हूँ ॥४४॥ मैं जिस औषधिमय पद लेप के द्वारा यहाँ आया था, वह शीतलजल से धुल गया है और मैं अब इसमें विलीन हो गया हूँ ॥४५॥ वरूथिनी ने कहा—हे महाभाग मेरा नाम वरूथिनी है, मैं अप्सरा हूँ इस सुरम्य पर्वत पर सदा भ्रमण करती रहती हूँ ॥४६॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हें देख कर मैं काम के वश में हुई हूँ, मैं आपके अधीन हूँ, मुझे आज्ञा दीजिए कि आपका क्या प्रिय करूँ ? ॥४७॥ ब्राह्मण बोला—हे शुचिस्मिते ! मैं जिस प्रकार अपने घर लौट सकूँ, वह उपाय करो, क्योंकि यहाँ रहने से यहाँ मेरे नित्य नैमित्तिक कर्म नष्ट हो रहे हैं ॥४८॥ ब्राह्मण

तुम्हारे समक्ष उपस्थित करूँगी, क्योंकि मैं काम से पराजित हो कर तुम्हारे अधीन हो गई हूँ ॥५६॥

वीणावेणुस्वनगीतकिन्नराणामनोरमम् ।
अङ्गाह्लादकरोवायुरुष्णान्नमुदकशुचि ॥५७
मनोभिलषिताशय्यासुगधमनुलेपनम् ।
इहासतोमहाभागगृहेकितेनिजेऽधिकम् ॥५८
इहासतोनैवजराकदाचित्तेभविष्यति ।
त्रिदशानामियभूमियौवनोपचयप्रदा ॥५६
इत्युक्त्वासानुरागासासहसाकमलेक्षणा ।
आलिलिङ्गप्रसीदेतिवदन्तीकलमुन्मना. ॥६०
मामास्प्राक्षीर्व्रजान्यत्रदुष्टेय सदृशस्तव ।
मयान्यथायाचितास्त्वमन्यथैवाभ्युपैषिमाम् ॥६१
सायप्रातर्हुतहव्यलोकान्यच्छतिशाश्वतान् ।
त्रैलोक्यमेतदखिलमूढेहव्येप्रतिष्ठितम् ॥६२
तमुपायसमाचक्ष्वयेनयामिस्वमालयम् ।
किंतेनाहप्रियाविप्ररमणीयोनकिंगिरिः ।
गन्धर्वान्किन्नरादीश्चत्यक्त्वाभिष्टोहिकस्तव ॥६३

इस स्थान मे रहन से वीणा और वेणु का शब्द, किन्नरो का सुमधुर सगीत, प्रसन्नता देने वाली समीर, उष्ण भोजन और शीतल जल ॥५७॥ मन-चाही शय्या, सुगन्धित अनुलेप तुम्हे उपलब्ध होग, इससे अधिक तुम्हारे गृह म और क्या होगा ? ॥५८॥ यहाँ रहकर तुम कभी वृद्धावस्था को प्राप्त नही होगे, क्योंकि यह देवभूमि यौवन के बढाने वाली है ॥५६॥ इतना कहकर पद्मनयना वरुथिनी व्याकुलता पूर्वक 'प्रसन्न होओ' कहती हुई सहसा ब्राह्मण से आलिंगित हुई ॥६०॥ तब ब्राह्मण बोला—अरी दुष्टे ! मेरा स्पर्श न कर, तू अपने योग्य के ही निकट जा, तू मेरी प्रार्थना के कारण ऐसा विपरीत विचार एव चेष्टा कर रही है ॥६१॥ प्रात साय होम करने से सभी शाश्वत लोको की प्राप्ति होती है यह तीनों लोक होम के प्रभाव से ही प्रतिष्ठित हैं ॥६२॥ इसलिये उसके

है तो मैं जिस प्रकार घर पहुँच सकूँ वही मुझे बता ॥६८॥ वरूथिनी ने कहा—तुम अवश्य ही यहाँ से अपने घर जा सकोगे, परन्तु अभी कुछ समय के लिये मेरे साथ दुर्लभ सुख भोग करो ॥६९॥ ब्राह्मण बोला—हे वरूथिनी ? ब्राह्मण को सुख भोग की आज्ञा शास्त्र नहीं देता क्यों कि स्त्री की चेष्टा से ब्राह्मण इहलोक मे क्लेश और परलोक मे भी विपरीत फल पाता है ॥७०॥

सन्त्राणम्रियमाणायाममक्त्वापरत्रते ।
पुण्यस्यैवफलभाविभोगाश्चान्यत्रजन्मनि ॥७१
एवचद्वयमप्यत्रतवोपचयकारणम् ।
प्रत्याख्यानादहमृत्यु त्वचपापमवाप्स्यसि ॥७२
परस्त्रियनाभिलपेदित्यूचुर्गुरवोमम ।
तेनत्वानाभिवाञ्छामिकामविशुलपष्यवा ॥७३
इत्युक्त्वासमहाभाग स्पृष्ट्वाप प्रयत शुचि ।
प्राहेदप्रणिपत्याग्निगार्हपत्यमुपांशुना ॥७४
भगवन्गार्हपत्याग्नेयोनिस्त्वसर्वकर्मणाम् ।
त्वत्तआह्वनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्चनान्यतः ॥७५
युष्मदाप्यायनाद्देवावृष्टिमस्यादिहेतव. ।
भवन्तिसस्यादखिलजगद्भवतिनान्यत ॥७६
एवत्वत्तोभवत्येतद्येनसत्येनवैजगत् ।
तयाहमद्यस्वगेहपश्येयसतिभास्करे ॥६७
यथावैवैदिककर्मस्वकालेनोज्झितमया ।
तेसत्येनपश्येयगृहस्थोऽद्यदिवाकरम् ॥७८
यथाचनपरद्रव्येपरदारेचमेमतिः ।
कदाचित्साभिपाभूत्तथैतत्सिद्धिमेतुमे ॥७९
एवतुवदतस्तस्यद्विजपुत्रस्यपायव ।

वरूथिनी ने कहा—मैं मृतक के समान हो रही हूँ, मेरी प्राण रक्षा करने के कारण परलोक में तुम्हें उसी के समान पुण्य फल मिलेगा और अगर जन्म में तुम्हें उसी के अनेक भोगों की प्राप्ति होगी ॥७१॥ परलोक में

है तो मैं जिस प्रकार घर पहुँच सकूँ वही मुझे बता ॥६८॥ वरूथिनी ने कहा—तुम अवश्य ही यहाँ से अपने घर जा सकोगे, परन्तु अभी कुछ समय के लिये मेरे साथ दुर्लभ सुख भोग करो ॥६९॥ ब्राह्मण बोला—हे वरूथिनी ? ब्राह्मण को सुख भोग की आज्ञा शास्त्र नहीं देता क्यों कि स्त्री की चेष्टा से ब्राह्मण इहलोक में क्लेश और परलोक में भी विपरीत फल पाता है ॥७०॥

सन्त्राणम्रियमाणायाममकृत्वापरत्रते ।
पुण्यस्यैवफलभाविभोगाश्चान्यत्रजन्मनि ॥७१
एवचद्वयमप्यत्रतवोपचयकारणम् ।
प्रत्याख्यानादहम्मृत्यु त्वचपापमवाप्स्यसि ॥७२
परस्त्रियनाभिलषेदियूचुर्गुरवोमम ।
तेनत्वानाभिवाञ्छामिकामविशुलपष्यवा ॥७३
इत्युक्त्वासमहाभाग स्पृष्ट्वाप प्रयत शुचि ।
प्राहेदप्रणिपत्याग्निगार्हपत्यमुपांशुना ॥७४
भगवन्गार्हपत्याग्नेयोनिस्त्वसर्वकर्मणाम् ।
त्वत्तआहवनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्चनान्यत ॥७५
युष्मदाप्यायनाद्देवावृष्टिसस्यादिहेतव ।
भवन्तिसस्यादखिलजगद्भवतिनान्यत ॥७६
एवत्वत्तोभवत्येतद्येनसत्येनवैजगत् ।
तथाहमद्यस्वगेहपश्येयसतिभास्करे ॥६७
यथावैवैदिकक्मर्स्वकालेनोज्झितमया ।
तेसत्येनपश्येयगृहस्थोऽद्यदिवाकरम् ॥७८
यथाचनपरद्रव्येपरदारेचमेमति. ।
कदाचित्सालिपाभूत्तथैतत्सिद्धिमेतुमे ॥७९
एवतुवदतस्तस्य द्विजपुत्रस्यपावक ।

वरूथिनी ने कहा—मैं मृतक के समान हो रही हूँ, मेरी प्राण रक्षा करने के कारण परलोक में तुम्हें उसी के समान पुण्य फल मिलेगा और अपर जन्म में तुम्हे उसी के अनेक भोगों की प्राप्ति होगी ॥७१॥ परलोक में

ततःक्षणेनैवतदानिजगेहमवाप्यसः ।
यथाप्रोक्तद्विजश्चेष्टश्चकारसकलाःक्रियाः ॥६
अथसाचारुसर्वाङ्गी तत्रासक्तात्ममानसा ।
निश्वासपरमानिन्येदिनशेषतथानिशाम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार निवेदन करते हुए ब्राह्मण पुत्र के गार्हपत्याग्नि अधिष्ठित हुई ॥१॥ उसकी प्रभा के मध्य मे स्थित हो कर वह ब्राह्मण साक्षात् अग्नि समान तेजस्वी हो कर उस स्थान को प्रकाशित करने लगा ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! वरूथिनी ने जब उस ब्राह्मण का ऐसा स्वरूप देखा तब वह अत्यन्त अनुराग से और भी मोह युक्त हुई ॥३॥ जब उस ब्राह्मण मे अग्नि ने अधिष्ठान किया तब वह पहिले के समान शक्ति युक्त हो कर गमन मे प्रवृत्त हुआ ॥४॥ उस समय वरूथिनी खडी हुई देख रही थी कि तभी यह ब्राह्मण द्रुतगति से चल दिया, जब वह अदृश्य हो गया, तब वरूथिनी दीर्घ श्वास लेती हुई कापने लगी ॥५॥ यह श्रेष्ठ ब्राह्मण क्षण भर मे ही अपने घर पहुच गया और वहा अपनी नित्य नैमित्तिक क्रिया के करने मे लगा ॥६॥ इधर उस सर्वाङ्ग सुन्दरी वरूथिनी ने उस ब्राह्मण मे अनुरागवती रह कर दीर्घ श्वास छोडते हुए उस दिन का शेष भाग एव रात्रि काल व्यतीत किया ॥७॥

निश्वसन्त्यनवद्याङ्गीहाहेतिरुदतीमुहुः ।
मन्दभाग्येतिचात्मानंनिनिन्दमदिरेक्षणा ॥८
नविहारेनचाहारेरमणीयेनचावने ।
नकन्दरेपुरम्येषुसावबन्धतदारतिम् ॥९

रमणीयमभूद्यत्तत्पुंस्कोकिलनिनादितम् ।
तेनहीनतदेवलद्दहतीवाद्यमामलम् ॥१३
इत्थमामदनाविष्टाजगाममुनिसत्तमम् ।
ववृधेचतदारागस्तस्यास्तस्मिन्प्रतिक्षणम् ॥१४

वह अप्सरा घोर रुदन करती हुई दीर्घश्वास छोडने लगी और अपने को मन्द भाग समझ कर अपनी निन्दा करने लगी ॥८॥ आहार, विहार, सुरम्य वन, मनोहर गिरि कन्दरा किसी से भी उसकी तृप्ति न हो रही थी ॥९॥ चक्रवाकों का विहार देख कर रति कर्म मे उसे स्पृहा हुई, वह ब्राह्मण द्वारा त्यागी जाने के कारण अपनी युवावस्था को कोसने लगी ॥१०॥ मैं दुष्ट दैव के वश से ही इस पर्वत मे आई थी अन्यथा वह सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष जो मुझे दिखाई दिया था, उसका देखा जाना क्या कभी सभव था ? मैं उसे क्या जानती थी ? ॥११॥ यदि वह महाभाग इस समय मुझे न मिलेगा, तो दु सह कामाग्नि मे दग्ध होकर मुझे अपने जीवन का परित्याग करना पडेगा ॥१२॥ जो कोकिला का शब्द मेरे कानों को मनोरजक प्रतीत होता था, वह आज अग्नि के समान ही मुझे भस्म कर रहा है ॥१३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार कामासक्त हुई वरूथिनी ने उस मुनि श्रेष्ठ को मन से देखा तो उसका अनुराग क्षण क्षण मे उसके प्रति वृद्धि को प्राप्त होता रहा ॥१४॥

कलिर्नाम्नातुगन्धर्व सानुरागोनिराकृत ।
तयापूर्वमभूत्सोऽयतदवस्याददर्शताम् ॥१५
सचिन्तयामासतदाकिन्वेषागजगामिनी ।
निश्वासपवनम्लानागिरावत्रवरूथिनी ॥१६
मुनिशापक्षताकिंनुकेनचित्किंविमानिता ।
बाष्पवारिपरिक्लिन्नमियधत्तेयतोमुखम् ॥१७
तत सदध्यौसुचिरतमर्थंकौतुकात्कलि ।
ज्ञातवाश्चप्रभावेणसमाधे सयथातथम् ॥१८
पुन सचिन्तयामासतद्विज्ञायमुने कलि ।
ममोपपादितसाधुभाग्यैरतैत्पुराकृतैः ॥१९

मयैपासानुरागेणबहुश प्रार्थितासती ।
निराकृतवतीसेयमद्यप्राप्याभविष्यति ॥२०
मानुषेसानुरागेयतवतद्रूपधारिणि ।
रस्यतेमय्यसन्दिग्धकिंकाले नकरोमितत् ॥२१

इस अप्सरा के प्रति पहिले एक कलि नामक गन्धर्व आसक्त था, परन्तु इसने उसका निरादर किया था, उसने इस अप्सरा को ऐसी दशा मे देखा तो ॥१८॥ सोचने लगा कि यह गजगामिनी इस पर्वत मे दीर्घ श्वास छोड़ती हुई प्रतिक्षण म्लान होती जा रही है, क्या यह वरूथिनी ही है ? ॥१६॥ क्या यह किसी मुनि के शाप से ग्रस्त हुई है अथवा किसी ने इसका निरादर किया है, क्यो कि इसके मुख पर अश्रु बिन्दु दिखाई दे रहे है ॥१७॥ फिर उस गन्धर्व ने कुतूहल पूर्वक बहुत समय तक ध्यान किया और उसके द्वारा सब वृत्तान्त उसे ज्ञात होगया ॥१८॥ वृत्तान्त ज्ञात होने पर उसने सोचा कि मेरे पूर्वकृत पुण्य के फल स्वरूप मेरी यह इच्छा पूर्ण हुई है ॥१६॥ जिसने मेरी अनुरागमयी विनय को ठुकरा दिया था, यह वही वरूथिनी अब मुझे सहज से प्राप्त हो जायगी ॥२०॥ अब यह जिस मनुष्य के प्रति प्रीतिमती हुई है, मैं उसी मुनि का रूप धारण करूँ तो यह मुझ से भी प्रीति करेगी, इसलिये अब देर क्यो करूँ ॥२१॥

आत्मप्रभावेणततस्तस्यरूपद्विजन्मनः ।
कृत्वाचचारयत्रास्तेनिषण्णासावरूथिनी ॥२२
सातदृष्ट्वावरारोहाकिंचिदुत्फुल्ललोचना ।
समेत्यप्राहतन्वंगीप्रसीदेतिपुन पुनः ॥२३
त्वयात्यक्तानसन्देह परित्यक्ष्यामिजीवितम् ।
तत्राधर्मं कष्टतरःक्रियालोपोभविष्यति ॥२४
मयासमेत्यरम्येऽस्मिन्महात्मन्वनकन्दरे ।
मत्परित्राणजधर्ममवश्यप्रतिपत्स्यसे ॥२५
आयुषःसावशेषमेनूनमस्तिमहामते ।
निवृत्तस्तेननूनहिहृदयाह्लादकारकः ॥२६

मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् उनने आत्म प्रभाव से उन ब्राह्मण का रूप धारण किया और जहाँ वरुथिनी बैठी थी, वहाँ जाकर घूमने लगा ।।२२।। वरुथिनी ने जैसे ही उस मुनि वेशधारी कलि को देखा तभी आह्लादयुक्त नेत्रों से उसे देख और निकट पहुँचकर उससे बारम्बार प्रसन्न होओ कहने लगी ।।२३।। और बोली कि यदि तुम मेरा त्याग करोगे तो मैं अपना जीवन समाप्त कर लूँगी, जिससे अधर्म होगा और तुम्हारी सम्पूर्ण क्रिया का भी लोप हो जायगा ।।२४।। यदि इस हिमालय की सुरम्य कन्दरा में मेरे साथ विहार करोगे तो उनसे मेरी रक्षा होगी और उसका धर्म फल तुम्हें प्राप्त होगा ।।२५।। हे महात्मन्! मेरी आयु अभी तक शेष नहीं हुई है, इसीलिए तुम निवृत्त होकर मेरे हृदय में आनन्द का संचार कर सकते हो ।।२६।।

किंकरोमिक्रियाहानिर्भवत्यनसतोमम ।
त्वमप्येवविधवाक्यब्रवीपितनुमध्यमे ।।२७
सदहसंकटप्राप्तोयद्ब्रवीमिकरापितत् ।
यदिस्यात्गमोमेघभवत्यामहनान्यथा ।।२८
प्रमोदयद्ब्रवीपित्वनत्करोमिनतेमृषा ।
ब्रवीम्येतदनाशङ्क्य यद्यत्कार्यमयाधुना ।।२९
नाद्यमभागममयेद्रष्टव्योहत्वयावने ।
निमीलिनाक्ष्या ससर्गस्त्वसुभ्रू मयासह ।।३०
एवमत्रतुभद्र तेययेच्छसितयास्तुतत् ।
मयासर्वप्रकारहिवशेस्थेयतवाधुना ।।३१

कलि बोला—हे सुन्दरी! समझ में नहीं आता कि क्या करूँ? यहाँ रहने से मेरे कर्म का लोप हो जायगा, परन्तु तुम भी इस प्रकार से अनुरोध कर रही हो ।।२७।। ऐसे संकट में पड़कर ही मुझे तुम्हारी बातों से अब सहमत होना पड़ा है, परन्तु मैं जो कहता हूँ, वह बात तुम स्वीकार करो तभी तुम्हारे साथ संयोग हो सकता है, अन्यथा नहीं हो सकता ।।२८।। वरुथिनी ने कहा—आप कहो, जो कहोगे वही मैं करूँगी उसमें असत्य

नहीं है जो कहते हो वह सभी करूँगी ॥२९॥ कलि बोला—तुम विहार के समय मुझे न देखना, संसर्ग काल में तुम्हें नेत्र बन्द किये रहना होगा ॥३०॥ वरूथिनी ने कहा—यही होगा, जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही होगा, मैं सब प्रकार से तुम्हारे अधीन हूँ, तुम्हारा मंगल हो ॥३१॥

५५—स्वरोचि का जन्म और विवाह

ततःसहतयारेमेसगिरिप्रस्थसानुषु ।
फुल्लकाननरम्येषुपद्मिनीषुसरःसु च ॥१
कन्दरेषु च रम्येषुनिम्नगापुलिनेषु च ।
मनोज्ञेषुतथान्येषुदेशेषुमुदितोद्विज ॥२
वह्निनाधिष्ठितस्यासीद्रूपंतस्यतेजसा ।
वरूथिन्याश्चक्रीडाकालेनिमीलितविलोचना ॥३
सा च गन्धर्वगर्भमवापमुनिसत्तम ।
गन्धर्वीस्वतेजोरूपात्कल्पनाच्चद्विजन्मनः ॥४
तागर्भधारिणीसोऽप्यसमानस्यविस्थावत्यविनीम् ।
विप्ररूपधरोयातस्वमायोयाविसर्जित. ॥५

तेजोजमय स्वरूप का चिन्तन करने के कारण, उसी ब्राह्मण के समान उसके पुत्र उत्पन्न हुआ ॥४॥ ब्राह्मण रूप धारी वह गधर्व वरूथिनी को समझाकर वहाँ से चला गया ॥५॥ जिस प्रकार सूर्य की किरणो से सभी दिशाएँ प्रकाशित होती है, वैसे ही शरीर के तेज मे चारो दिशाओ को प्रकाशित करते हुए उस बालक ने समय पाकर जन्म लिया ॥६॥ अपने शरीर की प्रभा से भास्कर जैसी दीप्ति प्राप्त करने के कारण उस बालक का नाम स्वरोचि हुआ ॥७॥

वृवृधेचमहाभागोवयसानुदिनतथा ।
गुणौघैश्चयथाबाल कलाभि शशलाञ्छन ॥८
सजग्राहधनुर्वेदवेदाश्चं वयथाक्रमम् ।
विद्याश्चैवमहाभागस्तदायौवनगोचर ॥९
मन्दराद्रौकदाचित्सविचरश्चारुचेष्टित ।
ददर्शैकातदाकन्यागिरिप्रस्थेभयातुराम् ॥१०
त्रायस्वेतिनिरीक्ष्यैनसातदावाक्यमब्रवीत् ।
माभैषीरितिसप्राहभयविप्लुतलोचनाम् ॥११
किमेतदितितेनोक्ते वीरवाक्येमहात्मना ।
तत साकथयामासश्वासाक्षेपप्लुताक्षरम् ॥१२
अहमिन्दीवराख्यस्यसुताविद्याधरस्यवै ।
नाम्नामनोरमाजातासुतायामरुधन्वन ॥१३
मन्दारविद्याधरजासखीममविभावरी ।
कलावतीचाप्यपरासुतापारस्यवैमुने ॥१४

हे महाभाग ! जैसे शुक्ल पक्ष मे चन्द्रमा की कला प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त होती है, वैसे ही उस बालक के गुणो मे प्रतिदिन वृद्धि होने लगी ॥८॥ इस स्वरोचि ने चारो वेद, सभी शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करके युवावस्था मे प्रवेश किया ॥९॥ उस सुन्दर गति वाले स्वरोचि को किसी एक समय मदराचल पर भ्रमण करते हुए एक भयातुरा कन्या दिखाई दी ॥१०॥ उसने इसे देखकर 'रक्षा करो' कहा और इसने भी कन्या

को भयातुरा देखकर 'भय नहीं' यह कर आश्वस्त किया ॥११॥ फिर उसने कोमल शब्दों में 'तुम्हें क्या भय हुआ है?' यह पूछा, इस पर श्वास छोड़ती हुई उस कन्या ने अस्फुट शब्दों में उत्तर दिया ॥१२॥ वह बोली—मैं इन्दीवर नामक विद्याधर की मरुधन्वा-सुता के गर्भ से उत्पन्न पुत्री हूँ, मेरा नाम मनोरमा है ॥१३॥ मेरी दो सखी विभावरी और कलावती नाम की हैं, इनमें प्रथम मन्दार विद्याधर की और द्वितीय पार मुनि की कन्या है ॥१४॥

तान्ताभिः सहमयायातं कैलासतटमुत्तमम् ।
तत्रदृष्टोमुनि कश्चित्तपसातिकृशाकृति ॥१५
क्षुत्क्षामकण्ठोनिस्तेजादूरपाताक्षितारक. ।
मयावहसित क्रुद्ध मनदामाशनापह ॥१६
क्षामक्षामस्वर किंचित्स्फुरिताधरपल्लव. ।
यस्मात्वहसितोयस्मादनार्ये दुष्टतापसि ॥१७
तस्मात्त्वामचिरेणैवराक्षसोभिभविष्यति ।
दत्त शापेमदस्सखीभ्यामनुनिर्भर्त्सितोमुनिः ॥१८
धिक्तेब्राह्मण्यमक्षान्त्याहृतंतेनिखिलंतप ।
असयंमंर्षपिनोऽमितपसातिकर्शित ॥१९
क्षान्त्याक्षरदंब्राह्मण्यमक्रोधनसयमनतप. ।
एतच्छ्रुत्वादरोनापनयोत्यदमितद्युति ॥२०
एतस्या पुत्रमङ्गेषमाभ्यन्तरस्थास्यतिवाथ. ।

थी ॥१८॥ तुम्हारे जैसे क्षमाहीन ब्राह्मण को धिक्कार है और सम्पूर्ण तप निरर्थक है, तुम्हारा शरीर तप के कारण दुबला हुआ प्रतीत नहीं होता, क्रोध से ही हुआ होगा ॥१६॥ ब्राह्मण तो क्षमा के आश्रय रूप और क्रोध पर नियन्त्रण ही उनका तप है, तुम तप में परिपक्व नहीं हो पाये, क्योंकि क्रोध ने तुम्हें क्षीण कर दिया है, उनकी ऐसी बात सुनकर उस मुनि ने उन्हें भी शाप दे दिया ॥२०॥ एक से कहा 'तू सर्वाङ्ग में कुष्ठ से पीड़ित होगी' दूसरी से कहा—'तू क्षय रोग से पीड़ित होगी' मुनि द्वारा शाप देते ही उन दोनों के वे रोग तत्काल उत्पन्न हो गये ॥२१॥

ममाप्येवमहद्रक्ष ममुपैतिपदानुगम् ।
नशृणोपिमहानादतस्याद्दूरेऽपिगर्जतः ॥२२
तृतीयमद्यादिवमयन्मेपृष्ठनमु चति ।
अस्त्रग्रामस्यसर्वस्यहृदयशाहमद्यते ॥२३
तप्रयच्छामिमारक्षरक्षमोऽस्मान्महामते ।
प्रादात्स्वायम्भुवस्वयरुद्र. साक्षात् पिनाकधृक् ॥२४
स्वायम्भुवोवसिष्ठायसिद्धवर्यायदत्तवान् ।
तेनापिदत्तमम्मातुःपित्रेचित्रायुधायवै ॥२५
प्रादादौद्वाहिकसोऽपिमतिपित्रेश्वशुर स्वयम् ।
मयापिशिक्षितवीरसकाशाद्बालयापितु ॥२६
हृदयसकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् ।
तदिदगृह्यताशीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ॥२७
ततोजहिदुरात्मानमेनराक्षससमागतम् ॥२८

तभी एक महाराक्षस प्रकट होकर मेरे पीछे भी दौड़ पड़ा, वह तीन दिन से मेरे पीछे लगा है, देखो समीप में ही गरज रहा है, क्या आप उस शब्द को नहीं सुन रहे हैं? मैं अब सभी अस्त्रों का सार रूप यह प्रस्थान अस्त्र ॥२२-२३॥ आपको दे रही हूँ, इसी से आप मेरी रक्षा करें, पुराकाल में यह अस्त्र स्वायम्भुव मनु को स्वयं रुद्र ने प्रदान किया था ॥२४॥ यह परमोत्तम सिद्ध अस्त्र स्वायम्भुव ने वसिष्ठ को प्रदान किया और वसिष्ठ से इसे मेरे नाना

चित्रायुध ने प्राप्त किया ।।२५।। और उन्होने विवाह के दहेज मे मेरे पिता को दिया, सब अस्त्रो के सारभूत इस अस्त्र की शिक्षा मैंने बाल्यावस्था मे अपने पिता से प्राप्त की थी ।।२६।। यह अस्त्र सभी अस्त्रो का हृदय एवं शत्रु नाशक है, इसे शीघ्र ग्रहण करिये, इसके द्वारा सभी अस्त्रो से होने वाले कार्य सिद्ध हो जाते हैं ।।२७।। इसके ग्रहण पूर्वक इस राक्षस का वध करिये, जो कि विप्र शाप से मेरा पीछा कर रहा है ।।२८।।

तथेत्युक्तेततस्तेनवार्य्युपस्पृश्यतस्यतत् ।
अस्त्राणाहृदयप्रादात्सरहस्यनिवर्तनम् ।।२६
एतस्मिन्नन्तरेरक्षस्ततदाभीषणाकृति ।
नर्दमानमहानादमाजगामत्वरान्वितम् ।।३०
मयाभिभूताक्त्रिाणमुपेतिद्रु तमेहिमे ।
भक्षार्यकिंचिरेणेतिब्रु वाणतद्ददर्शसः ।।३१
स्वरोचिश्चिन्तयामासदृष्ट्वातसमुपागतम् ।
गृह्णात्वैयवच मरयतस्यास्त्वितिमहामुने. ।।३२
जग्राहममुपेत्यंनात्वरयासोऽपिराक्षसः ।
त्राहित्राहीतिकरणविलपन्तीसुमध्यमाम् ।।३२
ततःस्वरोनि संक्रुद्धश्चण्डास्त्रमतिर्भरवम् ।
दृष्ट्वानिवेश्यनद्रक्षोददर्शानिमिषेक्षणः ।।३४
तदाभिभूनःसतदातामुत्सृज्यनिशाचरः ।
प्रसीदशाम्यतामस्त्रश्रूयताचेत्यभापत ।।३५

मुनि का शाप सत्य हो सकता है ॥३२॥ स्वरोचि के ऐसा विचार करते ही राक्षस ने तुरन्त उस विद्याधरी को पकड़ लिया, इस पर वह त्राहि-त्राहि करती हुई रोने लगी ॥३३॥ तब स्वरोचि ने क्रोध मे भर कर उस प्रचण्डास्त्र को धनुष पर चढाया और उस राक्षस की ओर देखा ॥३४॥ उन्हे इस प्रकार उद्यत देखकर राक्षस भय-विह्वल हो गया और कन्या को छोडकर स्वरोचि से बोला—आप अस्त्र का परित्याग करिये, मुझ पर प्रसन्न होकर मेरा वृत्तान्त सुनिये, उसे मैं आपसे कहता हूँ ॥३५॥

मोक्षितोऽहत्वयाशापादतिघोरान्महाद्युते ।
प्रदत्तादतितीव्रेणब्रह्ममित्रेणधीमता ॥३६
उपकारोनमेत्वत्तं महाभागाधिकोपरः ।
येनाहसुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः ॥३७
ब्रह्ममित्रेणमुनिनाकिन्निमित्तंमहात्मना ।
शप्तस्त्वकीदृशश्चैवशापोदत्तोऽभवत्पुरा ॥३८
ब्रह्ममित्रोऽष्टधाभिन्नमायुर्वेदमधीतवान् ।
त्रयोदशाधिकारचप्रगृह्याथर्वणोद्विज ॥३९
अहचेन्दीवराक्षेतिख्यातोऽस्याजनकोऽभवम् ।
विद्याधरपते.पुत्रोनलनाभस्यखाङ्गिन ॥४०
मयाचयाचित पूर्वब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः ।
आयुर्वेदमशेषमेभगवन्दातुमर्हसि ॥४१
यदातुबहुशोवीरप्रश्रयावनतस्यमे ।
नप्रादाद्याचितोविद्यामायुर्वेदात्मिकामम ॥४२

हे तेजस्विन् ! अत्यन्त तेज सम्पन्न ब्रह्ममित्र मुनि ने मुझे एक बार घोर शाप दिया था, आपने मुझे शाप से मुक्त कर दिया है ॥३६॥ हे महाभाग ! मेरा ऐसा उपकार करने वाला कोई उपकारी आपके समान नहीं है, क्योंकि आप ही ने मुझे घोर क्लेशप्रद ब्रह्म शाप से मुक्त किया है ॥३७॥ स्वरोचि बोले—मुनिवर ब्रह्ममित्र ने तुम्हें जो शाप दिया था, वह कैसा तथा किसलिये दिया था ? ॥३८॥ राक्षस बोला—उन मुनिवर ब्रह्ममित्र ने अथर्व के तेरह

अधिकार मे ज्ञान प्राप्त किया था तथा आठ भाग वाले सम्पूर्ण आयुर्वेद को पढा था ॥३९॥ मेरा नाम इन्दीवर है, मैं खड्गनल नाभ नामक विद्याधर का पुत्र तथा इस कन्या का पिता हूँ ॥४०॥ मैंने उन ब्रह्ममित्र से निवेदन किया था कि मुझे सम्पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान दीजिये ॥४१॥ परन्तु बारम्बार विनय पूर्वक निवेदन करने पर भी मुनि ने मुझे आयुर्वेद का ज्ञान नही दिया ॥४२॥

शिष्येभ्योददतस्तस्यमयान्तर्धानगेनहि ।
आयुर्वेदात्मिकाविद्यागृहीताभूत्तदानघ ॥४३
गृहीतायातुविद्यायामासैरष्टाभिरन्तरात् ।
ममातिहर्षादिभवद्धासोऽतीवपुनःपुन ॥४४
प्रत्यभिज्ञायमाहासान्मुनिःकोपसमन्वित ।
विकम्पिकन्धर प्राहमामिदपरुषाक्षरम् ॥४५
राक्षसेनेवयस्मान्मेत्वयाऽदृश्येनदुर्मते ।
हृताविद्यावहासश्चमामवज्ञायवैकृत ॥४६
तस्मात्त्वराक्षस पापमच्छापेननिराकृत ।
भविष्यसिनसन्देह सप्तरात्रेणदारुण ॥४७
इत्युक्तेप्रणिपाताद्यैरुपचारैः प्रसादित. ।
समामाहपुनर्विप्रस्तत्क्षणान्मृदुमानस ॥४८

तब, जब वे अपने शिष्य को आयुर्वेद का ज्ञान दे रहे थे, उस समय छिप कर मैंने उस विद्या को प्राप्त किया ॥४३॥ जब आठ महीने मे मुझे सपूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान होगया, तब मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई और मैं बारम्बार हँसने लगा ॥४४॥ मुनि ने जब मेरा इस प्रकार हँसना जाना तो उन्होने क्रोध से कम्पित कण्ठ होकर यह कठोर वचन कहे ॥४५॥ हे दुर्मते ! तून राक्षस के समान छिप कर विद्या को चुराया है और अवज्ञा पूर्वक मेरी हँसी उडाई है ॥४६॥ इसलिये तू मेरे शाप स अधिकार च्युत होकर सात रात्रि मे ही घोर राक्षस हो जायगा ॥४७॥ इस प्रकार का शाप सुनकर मैंने मुनि को विनम्रता पूर्ण उपचारो से प्रसन्न किया तो वह तुरन्त प्रसन्न होगये और बोले ॥४८॥

यन्मयोक्तमवश्यतद्भाविगन्धर्वनान्यथा ।
किन्तुत्वराक्षसोभूत्वापुनस्त्वप्राप्यसेवपु ॥४९
नष्टस्मृतिर्यदाक्रुद्धःस्वमपत्यचिखादिषु ।
निशाचरत्वेगन्तासितदस्त्रानलतापित. ॥५०
पुनःसज्ञामवाप्यस्वामवाप्स्यसिनिजवपु ।
तथैवस्वदमधिष्ठानलोकेगन्धर्वसञ्ज्ञिते ॥५१
सोऽहत्वयामहाभागमोक्षितोऽस्मान्महाभयात् ।
निशाचरत्वाद्धीरतेनमेप्रार्थनाकुरु ॥५२
इमांतेतनयाभार्याप्रयच्छामिप्रतीच्छताम् ।
आयुर्वेदश्चसकलस्त्वष्टाङ्गोयोमयातत ।
मुनेःसकाशाल्लप्रान्तस्तगृह्णीष्वमहामते ॥५३
इत्युक्त्वाप्रददौविद्यामचदिव्याम्बरोज्ज्वल ।
स्रग्भूषणधरोदिव्यपौराणवपुराम्थित ॥५४
दत्त्वाविद्यानतकन्याम्प्रदातुमुपचक्रमे ।
समाहृसातदाकन्याजनितारम्बरूपिणम् ॥५५

हे गन्धर्व ! मेरा कहा हुआ तो मिथ्या नहीं होगा, परन्तु तू राक्षस होने के पश्चात् पुनः अपने शरीर को प्राप्त होगा ॥४९॥ जब तू राक्षस होकर पुरानी बात भूलता हुआ क्रोधवश अपनी ही पुत्री का भक्षण करने को तत्पर होगा, तभी अस्त्रानल से सन्तप्त होकर ॥५०॥ पुनः स्मृति लाभ करेगा और अपने उसी शरीर, गन्धर्वलोक और अधिकार का पूर्ववत् प्राप्त करेगा ॥५१॥ हे महाभाग ! आपने मुझे इस घोर राक्षसत्व से मुक्त किया है, इसलिये मुझसे वर माँगो ॥५२॥ हे महामते ! इस कन्या को मैं आपको प्रदान करता हूँ, इसे पत्नी रूप में स्वीकार करो तथा मुनि ने मुझे जिस अष्टाङ्ग आयुर्वेद की प्राप्ति हुई है, उसे भी मुझसे ग्रहण करो ॥५३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—दिव्य वसन, दिव्य भूषण एवं माला तथा पूर्ववत् दिव्य देह को धारण किये हुए उस गन्धर्व ने ऐसा कहकर स्वरोचि को ॥५४॥ सम्पूर्ण आयुर्वेद विद्या प्रदान की तथा

उसने अब कन्यादान का उद्यम किया तभी उस कन्या ने अपने स्वरूप को प्राप्त हुए पिता से कहा ॥५५॥

अनुरागोममाऽप्यत्रतातातीवमहात्मनि ।
दर्शनादेवसजातोविशेषेणोपकारिणी ॥५६
किन्त्वेषामेमखीसाचमत्कृतेदुःखपीडिते ।
अनोनाभिलषभोगान्भोक्तुमतेनहीसमम् ॥५७
पुरपैरपिनोशक्यावक्तुं मित्थनृशसता ।
स्वभावश्चिरंमहिदकथयोपित्वरिष्यति ॥५८
माहृयमातेदुःखार्त्तमत्कृतेवन्यवेपित ।
तथाऽन्यास्यामिदुःखार्नातच्छोकानलतापिता ॥५९
आयुर्वेदप्रमादेनतेकरिष्येपुनर्नवं ।
मग्येनवमहा..क्गमुरमृजमुमध्यमे ॥६०
तन.पित्राग्वयदत्तानावन्यामविधानतः ।
ततोऽप्रतिरोधिमरयाविधान्याचनाम ॥६१

सचापिमहितस्तन्यातदुग्रानतदाययौ ।
कन्यकायुगलयनतच्छापात्यगदातुरम् ॥६२
ततस्तयो मतत्त्वज्ञोरोगघ्नैरौपधैरसैः ।
चकारनीरजेदेहेस्वरोचिरपराजित. ॥६४
ततोऽतिशोभनेकन्येविमुक्तेव्याधित शुभे ।
स्वकान्त्योज्ज्योतिदिग्भागचक्रातेनन्महीधरम् ॥६५

कन्यादान करके गन्धर्व उस हर प्रकार से समझा कर दिव्य विमान पर चढ कर अपने लोक को गया ॥६२॥ इधर स्वरोचि अपनी पत्नी के सहित वहाँ गए, जहाँ मनोरमा की दोनो सखियाँ रोगाक्रान्त हुई उद्यान मे रह रहीं थी ॥६३॥ और आयुर्वेद के तत्वज्ञाता स्वरोचि ने रोग नाशक औषधियो के रसों से उन दोनों के शरीर को राग रहित किया ॥६४॥ तब उन अत्यन्त रूपवती कन्याओ की दह कान्ति से पवत की सभी दिशाऐं प्रकाशित होन लगी ।६५।

५६ - स्वरोचि के अन्य विवाह

एवविमुक्तरोगातुकन्यकातमुदान्विता ।
स्वरोचिपमुवाचेदशृणुष्वत्रचनप्रभो ॥१
मन्दारविद्याधराजानाम्नाख्याताविभावरी ।
उपकारिस्वमात्मानप्रयच्छामिप्रतीच्छमाम् ॥२
विद्याचतुभ्यदास्यामिनिर्वभूतस्मानिते ।
ययाभिव्यक्तिमेष्यन्तिप्रमादप्रवणोभव ॥३
एवमस्त्वितितेनोक्तेधर्मज्ञेनस्वरोचिषा ।
द्वितीयातुनदाकन्याइदवचनमब्रवीत् ॥४
कुमारब्रह्मचार्यासीत्पारानामपितामम ।
ब्रह्मर्पि सुमहाभागोवेदवेदाङ्गपारग ॥५

तस्यपु स्कोकिलालापरमणीयेमधौपुरा ।
आजगामाप्सरोभ्याशप्रख्यातापुञ्जिकस्थला ॥६
कामवैक्लव्यतानीत मतदामुनिपुङ्गव ।
तत्सयोगेऽहमुत्पन्नातस्यामत्रमहाचले ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—मनोरमा की दोनो सखियो मे से एक ने रोग-मुक्ति की प्रसन्नता से स्वरोचि के प्रति कहा कि मेरी बात सुनिये ॥१॥ मैं मन्दार नामक विद्याधर की कन्या विभावरी हूँ, आपने मेरा महान् उपकार किया है, उसके बदले मे आपको अपना आत्मा ही अर्पित करती हूँ ॥२॥ तथा जिस विद्या के द्वारा सब प्राणियो के स्वर का ज्ञान होता है, वह भी आपको देती हूँ, उसे आप ग्रहण करिये ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—धर्मज्ञाता स्वरोचि ने विभावरी की बात को स्वीकार कर लिया, इसके पश्चात् दूसरी कन्या ने उनसे कहा ॥४॥ मेरे पिता कुमारावस्था से ही ब्रह्मचर्य का आलम्बन करने वाले, वेद वेदाग के ज्ञाता ब्रह्मर्षि पार हैं ॥५॥ एक समय जब बसत ऋतु प्राप्त हुई तब कामीजनो के मन को हरण करने वाले पुस्कोकिल के मधुर स्वर से तपोवन गूँज रहा था तभी एक पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा ने उनके निकट आगमन किया ॥६॥ इससे वह मुनिवर काम के वश मे होगये और तब उस अप्सरा के गर्भ से मैं इसी महापर्वत मे उत्पन्न हुई ॥७॥

विहायमागतासाचमातास्मिन्निर्जनेवने ।
बालामेकामहीपृष्ठेव्यालश्वापदसकुले ॥८
तत कलाभि सोमस्यवर्द्धन्तीभिरह क्षये ।
आप्यायमानाहरहोवृद्धियातास्मिसत्तम ॥९
तत कलावतीत्येतन्ममनाममहात्मना ।
गृहीताया कृतपित्रागन्धर्वेणाशुभात्मना ॥१०
नदत्ताहतदातेनयाचितेनमहात्मना ।
देवारिणानिशासुम्नतोमेधातित पिता ॥११
ततोऽहमतिनिर्वेदादात्मव्यापादनोद्यता ।
निवारिताशम्भुपत्न्यासत्यासत्यप्रतिश्रवा ॥१२

माशुचःसुभ्रु भर्त्तानिमहाभागोभविष्यति ।
स्वरोचिर्नामपुत्रश्चमनुस्तस्यभविष्यति ॥१३
आज्ञाचनिधय सर्वेकरिष्यन्तितवादृताः ।
यथाभिलषितवित्तप्रदास्यन्तितेशुभे ॥१४

फिर मेरी माता मुझे इस हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण निर्जन वन में एकाकी पडी छोड कर चली गयी ॥८॥ तब एक महात्मा गन्धर्व ने मेरा पालन किया, वहाँ शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त होती हुई शशिकला से परिपुष्ट होती हुई मैं बढने लगी, परन्तु कृष्ण पक्ष में चन्द्रकला के क्षय होने पर भी मेरा क्षय न होता हुआ देखकर उस गन्धर्व ने मेरा नाम कलावती रखा ॥९-१०॥ कुछ काल के पश्चात् अलि नामक एक राक्षस मेरे पिता के पास आकर मुझे माँगने लगा और जब मेरे पिता ने उसकी याचना स्वीकार न की तो उसने रात्रि में *शयन करते हुए मेरे पिता का वध कर दिया ॥११॥ मैं इस दुःख से सन्तप्त* होकर आत्मघात को उद्यत हुई, तब भगवान् शिव की भार्या सती ने मुझे रोका ॥१२॥ उन्होंने कहा—तुम शोक को छोड दो, महान स्वरोचि तुम्हारे पति होंगे और उनका पुत्र मनु होगा ॥१३॥ सभी निधियाँ तुम्हारी आज्ञा का सदैव पालन करेंगी और तुम्हारे लिए इच्छित धन देंगी ॥१४॥

यन्यावलसेप्रभावेणविद्यायास्तागृहाणमे ।
पद्मिनीनामविद्येयमहापद्मनाभिपूजिता ॥१५
इत्याहमादक्षसुतासतीसत्यपरायणा ।
स्वरोचिस्त्वधभ्रुवदेवीनान्यथामावदिष्यति ॥१६
साहप्राणप्रदायाथनाविद्यांस्त्वनयान्विपु ।
प्रयच्छामिप्रतीच्छत्वप्रसादसुमुखोभव ॥१७
एवमस्त्वितितामाहननुकन्यादलावतीम् ।
विभावर्याकलावत्या स्निग्धदृष्टयानुमोदितः ॥१८
जग्राहचनन पाणीतनयोस्मरद्युति ।
नमन्नुदेवतूर्यपुष्पवृष्टीस्त्वप्सरसुच ॥१९

सत्य परायणा दक्ष सुता का वचन मिथ्या नहीं हो सकता, इसलिये आप अवश्य ही वह स्वरोचि हैं ।।१६।। मैं आपको अपना शरीर, प्राण और विद्या समर्पित करती हूँ, आप प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करिये ।।१७।। मार्कण्डेयजी ने कहा—इस पर स्वरोचि ने 'ऐसा ही हो' कहा और विभावरी एवं कलावती दोनों की अनुमति से ।।१८।। स्वरोचि ने उस कन्या का भी पाणिग्रहण कर लिया, उस समय दिव्य वाद्य बजने लगे और अप्सरायें नाचने लगी ।।१९।।

५७—चक्रवाक और मृग का तिरस्कार

तत सताभि.सहितःपत्नीभिरमरद्युति. ।
ररामतस्मिञ्छैलेन्द्रे रम्य काननिर्झरे ।।१
सर्वोपभोगरत्नानिमधूनिमधुराणिच ।
निधय समुपाजग्मु पद्मिन्यावशवर्तिनः ।।२
स्रजोवस्त्राण्यलङ्कारान्गधाढ्यमनुलेपनम् ।
आसनान्यतिशुभ्राणिकाचनानियथेच्छया ।।३
सौवर्णानिमहाभागकरकान्भाजनानिच ।
तथाशय्याश्चविविधादिव्यैरास्तरणैर्युताः ।।४
एवसताभिःसहितोदिव्यगन्धाधिवासिते ।
ररामस्वरचिर्भाभिर्भासितेवरपर्वते ।।५
ताश्चापिसहतेनेतिलेभिरेमुदमुत्तमाम् ।
रममाणायथास्वर्गेतथातत्रशिलोच्चये ।।६
कलहसीजगादैकाचक्रवाकीजलेसतीम् ।
तस्यतासाचललितेसम्बन्धेचसपृहावती ।।७

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर अमर दीप्ति वाले स्वरोचि अपनी तीनों पत्नियों के साथ मलयाचल के उस सुरम्य वन एवं निर्झर स्थानों में विहार करने लगे ।।१।। पद्मिनी विद्या के वश में हुईं निधियाँ उपभोगार्थ नाना प्रकार

पे रत्न एवं मधुर मद्य ॥२॥ माला, वस्त्राभूषण, सुगन्धित लेप, आसन, चाँदी एवं स्वर्ण ॥३॥ तथा स्वर्ण के विभिन्न पात्र, दिव्य बिछौनों से युक्त शय्या एवं अन्य द्रव्य उन्हें प्रदान करने लगी ॥४॥ इस प्रकार वह स्वरोचि दिव्य गंधादि से सुवासित और रत्नादि से सुशोभित पर्वतीय प्रदेश मे तीनों पत्नियों के साथ विहार-रत हुए ॥५॥ उस स्वर्ग तुल्य रमणीक श्रेष्ठ पर्वत मे विहार करती हुई तीनों भार्या भी अत्यन्त सुखी हुई ॥६॥ उस समय उनको इस प्रकार प्रणय युक्त विहार करते देखकर एक कलहंसी ने जल मे स्थित अन्य चक्रवाकी के प्रति कहा ॥७॥

धन्योऽयमतिपुण्योऽयमयोऽयंयौवनगोचर ।
दयिताभि महेताभिभु ङ्क्ते भोगानभीप्सितान् ॥८
सन्तियौवनिन श्लाघ्यास्तत्पत्न्योनातिशोभना ।
जगत्यामल्पका पत्न्य पतयश्चातिशोभनाः ॥९
अभीष्टाकस्यचित्कान्ताकान्तःकस्याश्चिदीप्सितः ।
परस्परानुरागाढ्य दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ॥१०
धन्योऽयदयिताभीष्टोह्येताश्चास्यातिवल्लभाः ।
परस्परानुरागोहिधन्यानामेवजायते ॥११
एतन्निशम्यवचनकलहंसीसमीरितम् ।
उवाचचक्रवाकीतानातिविस्मितमानसा ॥१२
नायधन्योयतोलज्जानान्यस्त्रीसन्निकर्षतः ।
अन्यास्त्रियमयभुङ्क्तेनसर्वास्वस्यमानसम् ॥१३
चित्तानुरागएकस्मिन्नधिष्ठानेयतःसखि ।
ततोतिप्रीतिमानेषभार्यासुभविताकथम् ॥१४

इन स्त्रियों के साथ समस्त इच्छित भोगों को भोगने वाला यह युवक ही धन्य है ॥८॥ ससार मे रूप और यौवन से सम्पन्न ऐसे अनेक पुरुष हैं, जिनकी भार्या असुन्दर हैं, ऐसे दम्पत्ति कोई विरले ही हैं, जो पति-पत्नी दोनों ही सौन्दर्य से शोभायमान हो ॥९॥ कोई पति अपनी पत्नी मे और कोई पत्नी अपने पति मे अनुरक्त हैं, परन्तु समान आसक्ति वाले स्त्री-पुरुष कठिनता से ही

मिलते हैं ॥१०॥ इसलिये अपनी पत्नियों के यह प्रियतम और इनकी प्रियतमा पत्नियाँ भी धन्य है क्योंकि कृतकृत्य प्राणियों म ही परस्पर अनुराग की उत्पत्ति होती है ॥११॥ कलहसी की बात से चक्रवाकी अधिक विस्मित नही हुई, उसने कहा ॥१२॥ यह स्वरोचि धन्य नही हो सकते क्योंकि एक स्त्री के सामने ही दूसरी से विहार करते है, इसलिय इन्हे किंचित् भी लज्जा नही आती, सब पत्निया के प्रति इनकी समान रुचि भी नही है ॥१३॥ जब चित्त का अनुराग एक ही म अवस्थान करता है, तब यह स्वरोचि सब पत्निया मे समान अनुराग कैसे रख सकते हैं ॥१४॥

एतानदयिता पत्युर्नेतासादयित पति ।
विनोदमात्रमेवतायथापरिजनोपर ॥१५
एतासाचयदीष्टोऽयतत्किप्राणान्नमुन्चति ।
आलिङ्गत्यपराकान्ताध्यातोवैकान्तयान्यया । १६
विद्याप्रदानमूल्येनक्रीतोह्येषसुभृत्यवत् ।
प्रवर्त्ततोनहिप्रेममम वल्लोपुतिष्ठति ॥१७
कलहसिपतिर्धन्योममधन्याहमेवच ।
यस्यैकस्याचिरचित्तयस्याश्कैकत्रसस्थितम् ॥१८
बहुपत्नीपतिर्लोक शरणपुण्यपापयोः ।
गृहासनामनाद्यं अभूपर्णश्चसहागमे ॥१६
विपमें म्रियमाणेहियुज्यतेमहदेनसा ।
ज्येष्ठाकनीयभावेनव निष्ठाज्येष्ठतानयेत् ॥२०
गुरवेनुवरदंदत्वाहुत्वान्यामभिधमथा ।
ऊढयासहकर्त्तव्यानित्यनैमित्तिको क्रिया ॥२१

इनका यह सब पत्नियाँ प्रियतमा नही हैं और न उन सबको ही यह समान रूप से प्रिय है, जैसे चित्त को विनोद प्राप्त हो सके उसी विनोद की सामग्री यह पत्नियाँ भी हैं ॥१५॥ यदि यह सब म समान प्रीति वाले होते तो सबको सब समय सन्तुष्ट करने म समर्थ होकर क्या इतने काल पर्यन्त जीवित रह सकते थे, इनम परस्पर का अनुराग और समान प्रेम कहाँ से हो सकता

है ? ॥१६। यह स्वर्गोचित विद्या प्राप्ति के मूल्य में दिव्य वर पत्नियों के समक्ष तृण के समान ही है, सभी पत्नियों में प्रेम का समान भाव से रहना सम्भव नहीं है ॥१७॥ हे सखी ! धन्य तो मैं हूँ और मेरे पति हैं, क्योंकि मैं ही उनकी एकमात्र भार्या हूँ, उनके चित्त का अनुराग मेरे ही प्रति है और मैं भी उन्हीं में अनुरक्त हूँ ॥१८॥ अनेक भार्याओं का पति पुण्य और पाप का कारण है, गृह निवासिनी के अन्दायमान आभूषणों से और विषम शास्त्रों के द्वारा हुए निश्चय से ॥१९॥ युक्त मनुष्य विषमता के कारण महापापी होता है, तथा बड़ी को छोटी और छोटी को बड़ी मानने से ॥२०॥ तथा गुरु को दक्षिणा के रूप में वर देकर समिधाओं के द्वारा हवन करने योग्य है, विवाहिता पत्नी के सहित नित्य नैमित्तिक कर्मों को करे ॥२१॥

जगादायान्यभावेनपापीयाञ्जायतेनरः ।
सर्वसत्वरतज्ञोऽसौम्स्वरोचिरपराजित ॥२२
निशम्यलज्जितोदध्यौसत्यमेवहिनान्यथा ।
ततोवर्षशतेयातेरममाणोमहागिरौ ।
रममाण ममन्ताभिर्ददर्शपुरतोमृगम् ॥२३
सुस्निग्धपीनावयवमृगीयूथविहारिणम् ।
वासिताभिःस्वरूपाभिर्मृगीभिःपरिवारितम् ॥२४
आघ्राणप्राणपुटकाजिघ्रन्तीस्तान्ततोमृगीः ।
उवाचममृगोऽनवोलज्जात्यागेनगम्यताम् ॥२५
नाहम्स्वरोचिस्मन्नन्द्धीलोनचैवाहसुलोचना ।
निर्लज्जावहवःसन्तितादृशास्तत्रगच्छत ॥२६
एकात्वनेकानुगतायथाहासाम्पदजने ।
अनेकाभिस्तथैवैकोभोगदृष्ट्यानिरीक्षित ॥२७
तस्यधर्मक्रियाहानिरहन्यहनिजायते ।
सक्तोऽन्यभार्ययाचान्यस्मामासक्त सदैवम ॥२८
यस्मादृशोऽन्यस्तच्छील परलोकपराङ्मुख. ।
तकामयतभद्रंवानाहतुल्य स्वरोचिषा ॥२९

अन्य प्रकार से करने वाला पापी कहा जाता है, मार्कण्डेयजी ने कहा—सब जीवो की वार्ता को समझने वाले पराजय-रहित स्वरोचि ॥२२॥ उनकी बात सुनकर लज्जित हुए और विचारने लगे कि इसका वचन सत्य है, इसमें अनृत कुछ भी नही है, फिर भी उस महाचल मे पत्नियो के सग विहार करते हुए उन्हे सौ वर्ष व्यतीत होगये, तदनन्तर एक दिन जब पत्नियो के साथ विहार रत थे तभी उन्होने सामने स्थित ॥२३॥ एक स्थूलकाय, सर्वाङ्ग पुष्ट मृगी-यूथ के साथ विहार करने वाले एक मृग को देखा, वह चारो से अपनी समान आयु वाली मृगियो से घिरा हुआ था ॥२४॥ तब नासिका सिकोड कर मृग के शरीर को सूँघती हुई मृगियो को देखकर मृग ने उनसे कहा—अरी मृगियो ! तुमने लज्जा छोड दी है, इसलिये अब और कही जाओ ॥२५॥ हे सुन्दर नयन वालियो ! मैं स्वरोचि नही हूँ और न मेरा स्वभाव ही उनके जैसा है, उनके समान अनेक लज्जाहीन पुरुष मिल सकते हैं, तुम उन्ही के पास जाओ जैसे एक स्त्री अनेक पुरुषो की अनुगामिनी होने पर समाज मे हँसी के योग्य होती है, वैसे ही अनेक स्त्रियो से विहार करने वाला पुरुष भी हास्यास्पद होता है ॥२७॥ उसकी नित्यक्रिया नष्ट हो जाती है, वह पत्नी के साथ रहकर भी अन्य स्त्रियो की सदा इच्छा करता रहता है ॥२८॥ इसलिये परलोक से विमुख स्वभाव वाले स्वरोचि जैसा कोई अन्य पुरुष हो तुम उसी के पास जाओ, मैं वैसा नही हूँ ॥२९॥

५८—स्वारोचिष मनु की उत्पत्ति

एवनिरस्यमानास्ता हरिणेनमृगाङ्गना ।
श्रुत्वास्वरुचिरात्मानमेनेसपतितयथा ॥१
त्यागेचवारचमन सतासामुनिसत्तम ।
चक्रवावीमृगप्रोक्तो मृगचर्याजुगुप्सित ॥२
समेरयताभिर्भूयश्चवर्द्धमानमनोभव ।
आक्षिप्तनिर्वेदकयोरेसेवर्षशतानिषट् ॥३

किन्तुधर्माविरोधेनकुर्वन्धर्माश्रिता क्रियाः ।
भुङ्क्तेस्वरोचिर्विषयान्सहताभिर्दारधी ॥४
ततश्चजज्ञिरेतस्यत्रयःपुत्रा स्वरोचिषः ।
विजयो मेरुनन्दश्चप्रभावश्चमहाबल ॥५
मनोरमाचविजयप्रासूतेन्दीवरात्मजा ।
विभावरीमेरुनन्दप्रभावचकलावती ॥६
पद्मिनीनामयाविद्यासर्वभोगोपपादिका ।
सतेपानत्प्रभावेणपिताचक्रेपुरत्रयम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार उस मृग के द्वारा वे हरिणियाँ निराश हुईं और इस वार्ता को सुनकर स्वरोचि ने स्वय को पतित समझा ।१। हे मुनिवर ! चक्रवाकी और मृग द्वारा ऐसी निन्दा को पाकर तथा मृग के आचरण को देखकर अपने को निन्दित समझा और पत्नियों को त्यागने का विचार किया ॥२॥ परन्तु पत्नियों से मिलते ही पुन. काम की प्रवृत्ति के सबल होने से उनका विरक्त भाव नष्ट होगया और इसके पश्चात् उन्होंने छः सौ वर्ष तक पत्नियों के साथ विहार किया ॥३॥ परन्तु जब वे विषय-रत होने तब वे अपने धर्म-मार्गानुसार सभी क्रिया यथा विधि सम्पन्न करते थे ॥४॥ फिर उनके विजय, मेरुनन्द और प्रभाव नाम तीन अत्यन्त बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए ॥५॥ इन्दीवर की पुत्री मनोरमा से विजय, विभावरी से मेरुनन्द और कलावती से प्रभाव की उत्पत्ति हुई थी ॥६॥ सर्व भोगों का सम्पादन करने वाली पद्मिनी विद्या के प्रभाव से स्वरोचि ने तीन पुरों की रचना की ॥७॥

प्राच्यातुविजयनामकामरूपेनगोत्तमे ।
विजयायसुतायादौमददौपुरमुत्तमम् ॥८
उदीच्यामेरुनदस्यपुरीनन्दवतीमिति ।
ख्याताचकारप्रत्तुङ्गवप्रप्राकारमालिनीम् ॥९
कलावतीसुनस्यापिप्रभावस्यनिवेशितम् ।
पुरतालमितिख्यातदक्षिणापथमाश्रितम् ॥१०

एवंनिवेश्यपुत्रान्सपुरेपुपुरुषर्षभः ।
रेमेताभि.समविप्रमनोज्ञास्त्रद्रिभूमिषु ॥११
एकदातुगतोऽरण्येविहरन्सधनुर्द्धर. ।
चकर्पधनुरालोक्यवराहमतिदूरगम् ॥१२
अथाहकाचिदभ्येत्यसततदाहरिणागना ।
मय्येवपात्यतावाण.प्रसीदेतिपुन पुन. ॥१३॥
किमनेनहतेनाद्यमामाशुविनिपातय ।
त्वयानिपातितोवाणोदु खान्मामोक्षयिष्यति ॥१४

पूर्व दिशा मे कामरूप पर्वत पर विजय नामक पुर बनाकर विजय को ॥८॥ उत्तर दिशा में अत्यन्त ऊँची प्राचीरो वाला नन्दवती नामक पुर मेरु-नन्द को दिया ॥९॥ और दक्षिण मे ताल नामक पुर बनाकर प्रभाव को प्रदान किया ॥१०॥ इस प्रकार पुरुष श्रेष्ठ स्वरोचि ने तीनो पुत्रो उन तीनो पुरो मे बसा कर पत्नियो सहित अत्यन्त सुरम्य प्रदेश मे विहार किया ॥११॥ एक दिन धनुष ग्रहण करके विहार करते हुए बहुत दूर पर उन्होंने एक वाराह को देखकर शर सधान किया ॥१२॥ तभी एक हरिणी वहाँ आई और वह वारवार प्रार्थना करने लगी—'मुझ पर प्रसन्न होकर इस बाण को मुझ पर चलाओ ॥१३॥ इस वाराह का वध किया जाना व्यर्थ होगा, इसलिये आप मुझ पर अपना बाण चला कर, मुझे दु ख से छुडाइये ॥१४॥

नतेशरीरसरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते ।
किन्नुतत्कारणयेनत्वप्राणान्हातुमिच्छसि ॥१५
अन्यास्वासक्तहृदयेयस्मिश्चेत कृतास्पदम् ।
ममतेनविनामृत्युरौषधकिमिहापरम् ॥१६
कस्त्वानाभिलषेद्भीरुसानुरागासिकुत्रवा ।
यदप्राप्तोनिजान्प्राणान्परित्यक्तु व्यवस्यसि ॥१७
त्वामेवेच्छामिभद्र तेत्वयामेऽपहृतमन ।
वृणोम्यहमतोमृत्यु मयिवाणोनिपात्यताम् ॥१८

त्वमृगीचचलापागीनररूपधरावयम् ।
कथत्वयासमयोगोमद्विधस्यभविष्यति ॥१९
यदिसापेक्षितचित्तमयितेमापरिष्वज ।
यदिवासाधुचित्ततेकरिष्यामियथेप्सितम् ॥२०
एतावताहभवताभविष्याम्यनिमानिता ।
आलिलिगततम्तासस्वरोचिर्हरिणागनाम् ॥२१

स्वरोचि बोले—तेरा देह किसी प्रकार भी रोग ग्रस्त प्रतीत नहीं होता फिर तू क्यो अपना देह त्यागना चाहती है ? ॥१५। मृगी ने कहा—मेरा चित्त उसके प्रति आसक्त है, जिसका चित्त किसी अन्य नारी मे अनुरक्त हुआ है, इस लिये उसे प्राप्त न करने रूप रोग की एक मात्र औषधि आपके बाण से प्राण त्याग करना ही है ॥१६॥ स्वरोचि बोले—तुझे कौन नहीं चाहता ? तू किस के प्रति असक्ति वाली हुई है ? जिसके प्राप्त न होने से तू प्राण त्याग करने को दृढ निश्चय है ॥१७॥ मृगी ने कहा—आपने मेरा चित्त चुरा लिया है मैं आपकी ही अभिलाषा करती हू, इसी लिये प्राण त्याग के लिये तत्पर हुई हूँ, आप शीघ्र ही मुझ पर बाण चलाइये ॥१८॥ स्वरोचि बोले—तू चपल अङ्ग वाली मृगी है और मैं मनुष्य शरीर मे हूँ, इस लिये मेरा तुम्हारा सग किस प्रकार सभव है ? ॥१९॥ मृगी ने कहा—यदि मेरे प्रति आपके चित्त मे भी अनुराग है तो मुझे आलिगन प्रदान करिये यदि आप साधु चित्त वाले हैं तो मैं आपके इच्छित कार्य को सम्पादित करूँगी ॥२०॥ इस प्रकार मैं आपके द्वारा अत्यन्त सम्मान को प्राप्त हूँगी, मार्कण्डेयजी ने कहा—यह सुन कर स्वरोचि ने उस मृगी का आलिगन किया ॥२१॥

तेनचालिगितासद्य साभूद्दिव्यवपुर्धरा ।
ततःसविस्मयाविष्ट कात्वमित्यभ्यभाषत ॥२२
साचास्मैकथयामासप्रेमलज्जाजडाक्षरम् ।
अहमभ्यर्थितादेवैः काननस्यास्यदेवता ॥२३
उत्पादनीयोहिमनुस्त्वयामयिमहामते ।
प्रीतिमत्यामयिसुतभूर्लोकपरिपालकम् ॥२४

तमुत्पादयदेगानात्वामहंवचनाद्वदे ।
तत सतस्यातनयसर्वलक्षणलक्षितम् ॥२५
तेजस्विनमिवात्मानजनयामासतत्क्षणात् ।
जातमात्रस्यतस्याथदेववाद्यानिसस्वनु :
जगुर्गन्धर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणा ॥२६
सिषिचु शीकरैर्मेघास्थपयश्चतपोधना ॥२७
देवाश्चपुष्पवर्षंचमुमुचश्चसमन्तत ।
तस्यतेज समालोक्यनामचक्रे पितास्वयम् ॥२८
द्युतिमानितियेनास्यतेजसाभासितादिश ।
सबालोद्युतिमान्नामहाबलपराक्रम ॥२९

उनका आलिंगन प्राप्त करते ही वह मृगी उसी समय दिव्य शरीर धारण करके एक सुन्दर नारी हो गई, इस पर स्वरोचि ने अत्यन्त विस्मय पूर्वक उससे कहा 'तुम कौन हो ? ॥२२॥ तब उस मृगी ने लज्जा और प्रेम से गद्गद हो कर कहा कि मैं इस वन की अधिष्ठात्री देवी हूँ और देवताओं से प्रार्थित हो कर तुम्हारे निकट आई हूँ ॥२३॥ हे महामते ? मैं तुम पर अनुरक्त हुई हूं मुझ से तो मनु को उत्पन्न करना तुम्हारे लिये कर्त्तव्य है, इस लिये उस भूर्लोक परिपालक पुत्र को मुझ म उत्पन्न करिये ॥२४॥ यह बात मैंने देवताओं के वचनों के अनुसार ही कही है, मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर स्वरोचि ने उस वन देवी के गर्भ से अपने ही समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया, उसके उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण वाद्य बजने लगे, गन्धर्वपति गायन करने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगी ॥२५–२६॥ दिशाओं से हाथी जल सींचने लगे और तपोधन ऋषि ॥२७॥ तथा देवता सब ओर पुष्प बरसाने लगे उस बालक के तेज से सभी दिशाएँ प्रकाशित हो उठी, ऐसी अग दीप्ति देख कर स्वरोचि ने अपने पुत्र का ॥२८॥ नाम द्युतिमान् रखा, यह बालक अत्यन्त बली और पराक्रमी हुआ ॥२९॥

स्वरोचिष सुतोयस्मात्तस्मात्स्वारोचिषोऽभवत् ।
सचापिविचरग्रम्येकदाचिद्गिरिनिर्झरे ॥३०

स्वरोचिर्दद्दनेहंसानिजपत्नीसमन्विनम् ।
उवाचमनदाहंसीनाभिलापापुन:पुन ॥३१
उपनह्रियतामात्माचिरतक्रीडितमया ।
स्मिर्वकालभोगैन्तेग्रासन्न चरमवय ॥३२
परित्यागस्यकालोमितवचापिजलेचरि ।
अकाल:कोहिभोगानामर्वभागात्मकजगत् ॥३३
यज्ञा क्रियन्तेभोगार्थब्राह्मणैं सयतात्मभि ।
दृष्टादृष्टान्यथाभोगान्वान्छमानाविवेकिन ॥३४
दानानिचप्रयन्टन्निपूतान्धर्मा अनुर्वते ।
सत्वनेच्छसिकिंभोगान्भोगश्रेष्ठफलनृणाम् ॥३५

स्वरोचि का पुत्र होन के कारण उस स्वारोचिष भी कहा जाने लगा, फिर किसी एक समय सुरम्य पर्वत और निर्झर म भ्रमण करते हुए ॥३०॥ उन स्वरोचि न अपनी भार्या के सहित एक हंस को देखा, वह बारम्बार हंसी स कह रहा था ॥३१॥ ह हंसी ! अपन मन को अब निवृत्त कर, मैंन तेरे साथ बहुत समय तक विहार किया है, अब सदैव ही भोग-रत रहन स क्या लाभ है, क्यो कि वृद्धावस्था आ गई है ॥३२॥ यह हमारे द्वारा विषय भोगों के त्यागे जान का समय उपस्थित है, इस पर हंसी न कहा—भोग का समय-असमय क्या है, देखो यह सम्पूर्ण विश्व भोगमय ही है ॥३३॥ क्या कि सयतात्मा ब्राह्मण भोग की इच्छा स ही यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं तथा ज्ञानीजन भी दृष्ट-अदृष्ट भोगो की अभिलाषा करत हुए ॥३४॥ दान और पूर्त के धर्म मे लगे रहत हैं, जब ऐस व्यक्तियो को भी कर्म फल भोग ही है तो तिर्यक् योनि वालो के विषय म कहा ही क्या जाय ? ॥३५॥

विवेकिनानिरस्त्राचविपुन सयतात्मनाम् ।
भोगेष्वासक्तचित्तानापरमार्थान्वितामति ।
भविष्यतिकदानगमुपेतानाचबन्धुषु ॥३६
पुत्रमित्रकलत्रेषुसक्ता सीदन्तिजन्तव ।
सर पङ्कार्णवेमग्नाजीर्णवनगजाइव ॥३७

किनपश्यसिवाभद्रे जातसङ्गम्स्वरोचिषम् ।
आबाल्यात्काममसक्त मग्नस्नेहाम्बुकर्दमे ॥३८
यौवनेऽनीवभार्यामुसाम्प्रतपुत्रनप्तृषु ।
स्वरोचिषोमनोमग्नमुद्धारप्राप्स्यतेकुत ॥३९
नाहस्वरोचिषतुल्य स्त्रीवस्योवाजलेचरि ।
विवेकवाञ्चभोगाननिवृत्तोऽस्मिचसाम्प्रतम् ॥४०
स्वरोचिरेतदाकर्ण्यजातोद्वेग खगेरितम् ।
आदायभार्यास्तिपसेययावन्यत्तपोवनम् ॥४१
तत्रतप्त्वातपोघोरसहताभिरुदारधी ।
जगामलोकानमलान्निवृत्ताखिलकल्मष ॥४२

इस लिये तुम उस भोग को क्यो नही चाहते ? हस बोला—भोगो मे जिनकी चित्त वृत्ति नही, उनकी मति परमात्मा की अनुगामिनी है, बाँधवो के ममर्ग वाले मनुष्य की बुद्धि क्या कभी इस प्रकार की हो सकती है ? ॥-६॥ पुत्र, मित्र और कलत्र मे आसक्ति वाले जीव सरोवर के पङ्क म फसे हुए जगली हाथी के समान सदा दुखित रहते हैं ॥३७॥ हे भद्रे ! क्या तुमने बाल्यावस्था से कामासक्त एव स्नेह पङ्क म फँसे हुए स्वरोचि को नही देखा है ? ॥३८॥ यौवनवती पत्नियो,पुत्रो और पौत्रो मे डूबे हुए उस स्वरोचि का मन किस प्रकार उद्धार को प्राप्त हो सकेगा ? ॥३९॥ उस स्वरोचि क समान मैं स्त्रियो के अधीन नही हूँ और अब भोगो का परित्याग करता हूँ ॥४०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हम के यह वचन सुन कर स्वरोचि अपनी तीनो पत्नियो को साथ लेकर तप करने के उद्देश्य से तपोवन को प्राप्त हुए ॥४१॥ वहाँ उन्होने पत्नियो के सहित घोर तप किया और सभी पापो से मुक्त हो कर मल-रहित लोक को गये ॥४२॥

५६–स्वारोचिष मन्वन्तर कथन

तत स्वारोचिषनाम्नाद्यु तिमन्तप्रजापतिम् ।
मनु चकारभगवास्तस्यमन्वन्तरश्रृणु ॥१
तत्रान्तरेतुयेदेवामुनयस्तत्सुताश्चये ।
भूपाला क्रौष्टुकेयेतान्गतस्त्वनिशामय ॥२
देवा पारावतास्तत्रतथैवतुषिताद्विज ।
स्वारोचिषेऽन्तरेचेन्द्रोविपश्चिदितिविश्रुत ॥३
ऊर्जस्तम्बस्तथाप्राणोदत्तोलिर्ऋषभस्तथा ।
निश्चरश्चार्ववीराश्चतत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥४
चैत्रकिंपुरुषाद्याश्चसुतास्तस्यमहात्मन ।
सप्तासन्सुमहावीर्या पृथिवीपरिपालका ॥५
तस्यमन्वन्तरयावत्तावत्तद्वशविस्तरे ।
भक्तेयमवनि सर्वाद्वितीयवैतदन्तरम् ॥६
स्वरोचिषम्नुचरितजन्मस्वारोचिषस्यच ।
निशम्यमुच्यतेपापैःश्रद्दधानोहिमानव ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् भगवान् ने स्वारोचिष अर्थात् द्युतिमान् नामक प्रजापति को मनु बनाया अब उनके मन्वन्तर का वर्णन सुनो ॥१॥ हे क्रौष्टुके ! उस स्वारोचिष मन्वन्तर में जो देवता, मुनि, मनु पुत्र राजा आदि हुए, उनके विषय में कहता हूँ, उसे सुनो ॥२॥ हे द्विज ! उन स्वारोचिष मन्वन्तर में देवताओं को पारावत और तुषित तथा इन्द्र को विपश्चित् कहा जाता था ॥३॥ ऊर्ज, स्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर और अर्ववीर नामक यह सप्तर्षि थे ॥४॥ उन स्वारोचिष मनु के चैत्र और किम्पुरुष आदि नाम वाले सात पुत्र पराक्रमी एवं पृथिवी का पालन करने वाले थे ॥५॥ उन का मन्वन्तर जितने दिन का था, तब तक उनके वंशधरों ने पृथिवी का भार भोगा, मन्वन्तरों में स्वारोचिष मन्वन्तर द्वितीय है ॥६॥ स्वरोचि का चरित्र

और स्वारोचिष मनु की उत्पत्ति को जो कोई श्रद्धा पूर्वक श्रवण करता है, वह पापों से मुक्त होता है ॥७॥

६०—निधि-निर्णय

भगवन्कथितसर्वविस्तरेणत्वयामम ।
स्वरोचिषस्तुचरितजन्मस्वारोचिषस्यतु ॥१
यातुसापद्मिनीनामविद्याभोगोपपादिका ।
तत्सश्रयायेनिधयस्तान्मेविस्तरतोवद ॥२
अष्टौयेनिधयस्तेषास्वरूपद्रव्यसस्थिति ।
भवताभिहितसम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यहगुरो ॥३
पद्मिनीनामयाविद्यालक्ष्मीस्तस्याश्चदेवता ।
तदाधाराश्चनिधयस्तन्मेनिगदत शृणु ॥४
तत्रपद्ममहापद्मौतथामकरकच्छपौ ।
मुकुन्दोनन्दकश्चैवनील शङ्खोऽष्टमोनिधि ॥५
सत्यामृद्धौभवन्त्येतेसिद्धिस्तेषाहिजायते ।
एतेह्यष्टौसमाख्यातानिधयस्तवक्रौष्टुके ॥६
देवतानाप्रसादेनसाधुससेवनेनच ।
एभिरालोकितवित्त मानुषस्यसदामुने ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! आपने स्वरोचि का चरित्र और स्वारोचिष मनु की उत्पत्ति का वर्णन विस्तार पूर्वक मुझसे किया है ॥१॥ परन्तु सर्व भोगों का सम्पादन करने वाली पद्मिनी विद्या की आश्रित निधियों का वर्णन भी विस्तार सहित करिये ॥२॥ हे गुरो ! अष्ट निधियों का स्वरूप और द्रव्य में सस्थित को भी सम्यक् प्रकार से आपके मुख से सुनने की इच्छा है ।३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पद्मिनी विद्या की अधिष्ठात्री लक्ष्मीजी हैं, यह विद्या अष्ट निधियों की आश्रय स्वरूपिणी है, इसके विषय में कहता हूँ, तुम श्रवण

हुई सात पीढी तक रहती है ॥३३॥ और जिसमे अधिष्ठित होती है, उसकी दीर्घ आयु करती है, वह मनुष्य बाधवो और आगत मनुष्यो का परिपालक होता है ॥३४॥ परन्तु यह परलोक के लिए कोई यत्न नही करता और न नगर निवासियो से ही प्रीति रखता है ॥३५॥

पूर्वमित्रेषुशैथिल्यप्रीतिमन्यैः करोतिच ।
तथैवसत्वरजसीयोबिभर्तिमहानिधि. ॥३६
सनीलसंज्ञस्तत्सगीनरस्तच्छीलवान्भवेत् ।
वस्त्रकार्पासधान्यादिफलपुष्पपरिग्रहम् ॥३७
मुक्ताविद्रुमशङ्खानांशुक्त्यादीनांतथामुने ।
काष्ठादीनांकरोत्येपयच्चान्यज्जलसम्भवम् ॥३८
क्रयविक्रयमन्येपांनान्यत्ररभिजायते ।
तडागान्पुष्करिण्याश्चतथारामान्करोतिच ॥३९
बन्धंचसरितांवृक्षांस्पथारोपयतेनरः ।
अनुलेपनपुष्पादिभोगभुग्वाभिजायते ॥४०
त्रिपौरुपश्चापिनिधिर्नीलोनामपजायते ।
रजस्तमोमयश्चान्य.शङ्खसज्ञोहियोनिधिः ॥४१
तेनापिनीयतेविप्रतद्गुणित्वनिधीश्वरः ।
एकस्यैवभवत्येपनरंनान्यमुपैतिच ॥४२

पहिले मित्र से मैत्रि भाव मे शिथिलता और नयो से प्रीति स्थापित करता है, इसी प्रकार जो सत्व और रजोगुण से युक्त महानिधि है ॥३६॥ वह नीलनिधि नाम वाली अपने अधिष्ठान रूप पुरुष को सतोगुण और रजोगुण से युक्त करती है, इसकी दृष्टि जिस पर पडती है, वह वस्त्र, कपास, धान्यादि अन्न, फल एव पुष्प ॥३६॥ तथा मोती, मूँगा, शंख, सीपादि तथा जल मे उत्पन्न अन्य वस्तुओ और काष्ठादि का संचय करता है ॥३८॥ और इन पदार्थों का स्वयं उपभोग करता हुआ, क्रय-विक्रय भी करता है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी विषय मे वह प्रीतिमान् नही होता ॥३९॥ वह मनुष्य तडाग, पोखर, उपवन, बनवाता, नदी पर पुल बँधवाता तथा वृक्षारोपण

करता है और अनुलेप और पुष्पादि का अनुलेप करता हुआ प्रसिद्धि को प्राप्त होता है ।।४०।। यह नील निधि तीन पीढ़ी तक स्थिति रखती है तथा शङ्ख नाम की निधि रजोगुण और तमोगुण के मिश्रण से युक्त है ।।४१।। इसके अधिष्ठान से पुरुष उक्त दोनों गुणों से युक्त होता है यह एक ही पुरुष की अनुगामिनी होती है किसी अन्य पुरुष तथा अन्य पीढ़ी में स्थिति नहीं रहती ।।४२।।

यस्यशङ्खोनिधिस्तस्यस्वरूपंक्रोष्टुकेश्रृणु ।
एकवात्मनासृष्टमन्न भुङ्क्तेतथाम्बरम् ।।४३
कदन्नभुक्परिजनोनचशोभनवस्त्रधृक् ।
नददातिसुहृद्भार्य्याभ्रातृपुत्रस्नुषादिषु ।।४४
स्वपोषणपरःशङ्खीनरोभवतिसर्वदा ।
इत्येतेनिधयःख्यातानराणामथदेवता ।।४५
मिश्रावलोकनान्मिश्रा स्वभावफलदायिनः ।
यथाख्यातस्वभावस्तुभवत्येवविलोकनात् ।
सर्वेषामाधिपत्येवश्रीरेषाद्विजपद्मिनी ।।४६

हे क्रौष्टुक ! जो पुरुष शङ्खनिधि को अपने वश में कर लेता है, उसका रूप सुनो, वह स्वयं अकेला ही अन्न का भोजन करता और सर्वोत्कृष्ट वस्त्र पहनता है ।।४३।। परन्तु उसके कुटुम्बियों को निकृष्ट भोजन वस्त्र उपलब्ध होते हैं और जिनका जीवन कष्ट से व्यतीत होता है और शङ्ख निधि युक्त पुरुष अपने सुहृद भ्राता, पत्नी, पुत्र आदि के भरण पोषण को भी कुछ नहीं देता ।।४४।। केवल अपना ही भरण पोषण करने में लगा रहता है मनुष्य के वित्त की देवता कहकर यह निधि विख्यात है ।।४५।। इसके देखने से मनुष्य उपर्युक्त स्वभाव वाला होता है, परन्तु यह निधियाँ मिलकर देखने में संयुक्त फल के देने वाली हैं तथा स्वतन्त्र रूप से देखें तो स्वस्व फलप्रद हैं । यह श्री स्वरूपिणी पद्मिनी विद्या उक्त अष्ट निधियों के आश्रय में अधिष्ठित हैं ।।४६।।

६१—औत्तर मन्वन्तर आरम्भ (३)

विस्तरात्कथितब्रह्मन्ममस्वारोचिषत्वया ।
मन्वन्तरतथैवाष्टीयेपृष्टानिधयोमया ॥१
स्वायम्भुवपूर्वमेवमन्वन्तरमुदाहृतम् ।
मन्वन्तरतृतीयमेकथयौत्तमसज्ञितम् ॥२
उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमोनामनामत. ।
सुरुच्यास्तनयःस्यातोमहावलपराक्रमः ॥३
धर्मात्माचमहात्माचपराक्रमयनोनृप ।
अनीत्यसर्वभूनानिबभौभानुपराक्रम ॥४
सम.शत्रौचमित्रेचपरेपुत्रेचधर्मवित् ।
दुष्टेचयमवत्साधौसोमवच्चमहामुने ॥५
वाभ्रव्यावहूलानामउपयेमेसधर्मवित् ।
उत्तानपादतनय.शचीमिन्द्रइवोत्तम ॥६
तस्यामनीवतस्यासीद्दिजवर्यमन सदा ।
स्नेहवच्चशिनोयद्वद्रोहिण्यानिहिताम्पदम् ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे ब्रह्मन् ! स्वारोचिष मन्वन्तर का विषय आपने विस्तार पूर्वक वर्णन किया है, अब आठ मन्वन्तर और मेरे द्वारा पूछी गई निधि के विषय मे कहिये ॥१॥ आप स्वायभुव मन्वन्तर का पहिले वर्णन कर चुके हैं, अब औतम नामक तृतीय मन्वन्तर का वर्णन करिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा उत्तानपाद के एक अत्यन्त पराक्रमी उत्तम नामक पुत्र रानी सुरुचि के गर्भ से उत्पन्न हुआ ॥३॥ वह धर्मवान् और पराक्रमी उत्तम राज्य को प्राप्त होकर अपने पराक्रम से अत्यन्त तेजस्वी हुए ॥४॥ वह धर्मज्ञ राजा शत्रु, मित्र तथा प्रजा और पुत्र मे समान दृष्टि रखने वाले थे, वह दुष्टों के लिए सदा यम तुल्य और शिष्ट व्यक्तियो के लिए चन्द्रमा के समान शीतल थे ॥५॥ जिस प्रकार इन्द्र ने सभी लोकों मे प्रसिद्ध शची का पाणिग्रहण किया, उसी प्रकार उत्तम ने बभ्रु-सुता बहुला नाम की विख्यात कन्या का

करो ॥४॥ पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शङ्ख यह आठों निधि उस विद्या की आश्रिता हैं ॥५॥ समृद्धि होने से ही इन निधियों की सिद्धि प्राप्त होती है. हे क्रौष्टुके ! तुम्हें यह आठ प्रकार की निधियाँ बताई गई हैं ॥६॥ हे मुने ! देव प्रसाद और साधु सेवा के फल से मनुष्य का वित्त इन निधियों के द्वारा सदैव आलाक्ति होता है ॥७॥

याद्दक्स्वरूपभवतितन्मेनिगदत श्रृणु ।
पद्मानामनिधि पूर्वसयस्यभवतिद्विज ॥८
मतस्यतत्सुतानाचतत्पौत्राणाचनित्यश ।
दाक्षिण्यसार पुरुषस्तेनचाधिष्टितोभवेत् ॥६
सत्वाधारोमहाभागोयतोऽसौसात्त्विकोनिधि ।
सुवर्णरूप्यताम्रादिधातूनाचपरिग्रहम् ॥१०
करात्यतिनरासाऽयतेपाचक्रयविक्रयम् ।
करोतिचतथायज्ञान्दक्षिणाचप्रयच्छति ॥११
(मपादयतिकामाश्रमवनिवयथाक्रमम् ॥)
सभादवनिकेताश्चसकारयतितन्मना ।
सत्वाधारोनिधिश्चान्योमहापद्मइतिश्रुत ॥१२
मत्वप्रवानाभवतितेनचाधिष्ठितोनर ।
करोतिपद्मरागादिरत्नानाचपरिग्रहम् ॥१३
मौक्तिकानाप्रवालानातेपाचक्रयविक्रयान् ।
ददातियोगशीलेभ्यस्तेपामावमथाम्तथा ॥१४
मकारयनितच्छील स्वयमेवचजायते ।
तत्प्रसूतास्तथाशीला.पुत्रपौत्रक्रमेणच ॥१५

इनका जो स्वरूप है, वह बताता हूँ—पद्म नामक निधि सदा ही मय दानव के पास थी ॥८॥ फिर उसके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र के पास रही, इस निधि के अधिष्ठान से पुरुष चातुर्य एव ॥६॥ सत्वगुण से सम्पन्न और अत्यन्त भागवान् होता है क्योंकि यह निधि सतोगुण से युक्त है, इस निधि से सम्पन्न पुरुष सुवर्ण, रजत, ताम्रादि सब धातुओं का परिग्रह ॥१०॥ तथा क्रय विक्रय

करता है तथा बहुत से विपुल दक्षिणा वाले यज्ञों का अनुष्ठान करता है ॥११॥ (क्रम पूर्वक सब अभिलाषाओं को पूर्ण करने में समर्थ होता है) तथा एकाग्र चित्त से सभा भवन और देव मन्दिर निर्मित कराता है, महापद्म नामक निधि सत्त्वाधार के नाम से विख्यात है ॥१२॥ उससे अधिष्ठित मनुष्य भी सतोगुण प्रधान होता है तथा पद्मराग आदि रत्नों को संचित करने वाला होता है ॥१३॥ और मुक्ता आदि का क्रय-विक्रय करता है एवं योगियों को उनका स्थान देता ॥१४॥ तथा साधारण व्यक्तियों को योगाभ्यास के लिए उत्साहित करता है और स्वयं भी योग में तत्पर रहता है, उसके पुत्र, पौत्रादि बरावर भी उसी के समान होते हैं ॥१५॥

पूर्वंद्विमात्र सप्तासौपुरुषाश्चनमुंचति ।
तामसोमकरोनामनिधिस्तेननावलोकित ॥१६
पुरुषोऽयतमःप्राय सुशीलोऽपिहिजायते ।
बाणखड्गर्ष्टिधनुपाचर्मणाचपरिग्रहम् ॥१७
ददानानाचकुरुतेयोतिमैत्रीचराजभिः ।
ददातिशौर्यवृत्तीनाभूभुजायेचतत्प्रिया. ॥१८
क्रयविक्रयेचशस्त्राणानान्यत्रप्रीतिमेतिच ।
एकस्यैवभवत्येपनरस्यनसुतानुग ॥१९
द्रव्यार्थंदस्युतोनाशसग्रामेवापिसव्रजेत् ।
कच्छपश्चनिधिर्योऽसौनरस्तेनाभिवीक्षित. ॥२०
तम प्रधानोभवतियतोऽसौतामसोनिधि ।
व्यवहारानशेषास्तुपुण्यजातं करोतिच ॥२१
कर्मस्यानश्चिलाश्चैवनविश्वसितिकस्यचित् ।
समस्तानियथाङ्गानिसहृरत्येवकच्छप. ॥२२

यह महापद्म नामक निधि पूर्व के अपेक्षा उत्तरोत्तर आधी-आधी शक्ति से घटती हुई सात पीढ़ियों तक रहती है तथा जो मकर नाम की तमोगुणी निधि है, उसमें अधिष्ठित पुरुष ॥१६॥ तमोगुण प्रधान और शीलवन्त होता है, वह धनुष-बाण, खड्ग, ढाल तथा आयुधों के धारण करने वाला होता है

॥१७॥ भोज्य पदार्थ का स्वाद ग्रहण करने मे समर्थ होता है, राजाओं के साथ सख्यभाव स्थापित करता है तथा शौर्य वृत्ति वाले चोरो को दान देकर सतुष्ट होता है ॥१८॥ शस्त्रों का क्रय-विक्रय किये बिना नष्ट नहीं होता परन्तु धनके लोभ से तस्करो द्वारा अथवा रणक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होता है यह निधि एक पीढी तक ही रहती है, फिर नही रहती, इसे तामसी कहा गया है, इसकी दृष्टि जिस पर पडती है ॥१९-२०॥ वह पुरुष तमोगुण प्रधान, पुण्यमय एव आचार व्यवहार तथा कर्म के वश में होकर सब भोगों को भोगता हुआ, किसी पर विश्वास नहीं करता और जैसे कछुआ अपने अङ्गो को समेट कर छिपा लेता है ॥२१-२२॥

तयाविष्टस्यरत्नानितिष्ठत्याकुलमानस ।
नददातिनचाभुङ्क्तेतद्विनाशभयाकुलः ॥२३
निधानमुर्व्याकुरुतेनिधिःसोप्येकपूरुष ।
रजागुणमयश्चान्योमुकुन्दोनामयोनिधि ॥२४
नरोऽवलोकितस्तेनतद्गुणोभवतिद्विज ।
वीणावेणुमृदङ्गानामातोद्यस्यपरिग्रहम् ॥२५
करोतिगायतावित्तनृत्यताचप्रयच्छति ।
वन्दिमागधसूतानाविटानालास्यपाठिनाम् ॥२६
ददात्यहर्निशभोगान्भुङ्क्तेतैश्चसमद्विज ।
कुलटासुरतिश्चास्यभवत्यन्यैश्चतद्विधैं ॥२७
प्रयातिसगनेकचयनिधिर्भजतेनरम् ।
रजस्तमोमयश्चान्योनन्दोनाममहानिधि ॥२८

वैसे ही अपने अभिप्राय को गुप्त रखता और चित्त को सयमित बनाता है तथा नष्ट होने के भय से धन का उपभोग स्वय नहीं करता और न किसी दूसरे को ही प्रदान करता है ॥२३॥ यह निधि पृथिवी में एक पीढी तक रहती है और मुकुन्द नाम की जो अन्य रजोगुणी निधि है ॥२४॥ उसकी दृष्टि जिस मनुष्य पर पड़ती है, वह रजोगुणी होता है तथा उनसे अवलकित मनुष्य वीणा, वेणु मृदङ्ग आदि आतोद्य वाद्यो का सग्रह करता है ॥२५॥ गायकों

करता है तथा बहुत से विपुन दक्षिणा वाले यज्ञो का अनुष्ठान करता है ॥११॥ (क्रम पूर्वक सब अभिलाषाओ को पूर्ण करने मे समर्थ होता है) तथा एकाग्र चित्त से सभा भवन और देव मन्दिर निर्मित कराता है, महापद्म नामक निधि सत्वाधार के नाम से विख्यात है ॥१२॥ उससे अधिष्ठित मनुष्य भी सतोगुण प्रधान होता है तथा पद्मराग आदि रत्नो को सचित करने वाला होता है ॥१३॥ और मुक्ता आदि का क्रय-विक्रय करता है एव योगियो को उनका स्थान देता ॥१४॥ तथा साधारण व्यक्तियो को योगाभ्यास के लिए उत्साहित करता है और स्वय भी योग मे तत्पर रहता है, उसके पुत्र, पौत्रादि वशधर भी इसी के समान होते हैं ॥१५॥

पूर्वंद्विमात्र सप्तासौपुरुपाश्चनमु चति ।
तामसोमकरोनामनिधिस्तेननावलोकित. ॥१६
पुरुपोऽयतमःप्राय सुशीलोऽपिहिजायते ।
वाणखड्गर्ष्टिधनुपाचर्मणाचपरिग्रहम् ॥१७
दशनानाचकुरुतेयोतिमैत्रीचराजभिः ।
ददातिशौर्यवृत्तीनाभूभुजायेचतत्प्रिया: ॥१८
क्रयविक्रयेचशस्त्राणानान्यत्रप्रीतिमेतिच ।
एकस्यैवभवत्येपनरस्यनसुतानुग ॥१९
द्रव्यार्थदस्युतोनाशसग्रामेवापिसव्रजेत् ।
मच्छपश्चनिधिर्योऽस्मौनरस्तेनाभिवीक्षित. ॥२०
तम प्रधानोभवतियतोऽसौतामसोनिधि. ।
व्यवहारानशेपास्तुपुण्यजातं करोतिच ॥२१
कर्मस्थानधिलाद्यचैवनविश्वसितिकस्यचित् ।
समस्तानियथाङ्गानिसहरत्येवकच्छप: ॥२२

यह महापद्म नामक निधि पूर्व के अपेक्षा उत्तरोत्तर आधी-आधी शक्ति से घटती हुई सात पीढ़ियों तक रहती है तथा जो मकर नाम की तमोगुणी निधि है, उससे अधिष्ठित पुरुष ॥१६॥ तमोगुण प्रधान और शीलवन्त होता है, वह धनुष-बाण, खड्ग, ढाल तथा आयुधो के धारण करने वाला होता है

॥१७॥ भोज्य पदार्थ का स्वाद ग्रहण करने मे समर्थ होता है, राजाओ के साथ सख्यभाव स्थापित करता है तथा शौर्य वृत्ति वाले वीरो को दान देकर सतुष्ट होता है ॥१८॥ शस्त्रो का क्रय-विक्रय किये बिना तुष्ट नही होता परन्तु धनके लोभ से तस्करो द्वारा अथवा रणक्षेत्र मे मृत्यु को प्राप्त होता है. यह निधि एक पीढी तक ही रहती है, फिर नही रहती, इसे तामसी कहा गया है, इसकी दृष्टि जिस पर पडती है ॥१९-२०॥ वह पुरुष तमोगुण प्रधान, पुण्यमय एव आचार व्यवहार तथा कर्म के वश मे होकर सब भोगो को भोगता हुआ, किसी पर विश्वास नही करता और जैसे कछुआ अपने अङ्गो को समेट कर छिपा लेता है ॥२१-२२॥

तथाविष्टभ्यरत्नानितिष्ठत्याकुलमानस· ।
नददातिनचाभुङ्क्तेतद्विनाशभयाकुलः ॥२३
निधानमुर्व्याकुरुतेनिधिःसोप्येकपूरुप. ।
रजोगुणमयश्चान्योमुकु दोनामयोनिधि ॥२४
नरोऽवलोकितस्तेनतद्गुणोभवतिद्विज ।
वीणावेणुमृदंगानामातोद्यस्यपरिग्रहम् ॥२५
करोतिगायतावित्तनृत्यताचप्रयच्छति ।
वन्दिमागधमूतानाविटानालास्यपाठिनाम् ॥२६
ददात्यहर्निशभोगान्भुङ्क्तेतैश्चसमद्विज ।
कुलटासुरतिश्चास्यभवत्यन्यैश्चतद्विधै ॥२७
प्रयातिसगनेकंचयनिधिर्भजतेनरम् ।
रजस्तमोमयश्चान्योनन्दोनाममहानिधिः ॥२८

वैसे ही अपने अभिप्राय को गुप्त रखता और चित्त को सयमित बनाता है तथा नष्ट होने के भय से धन का उपभोग स्वयं नही करता और न किसी दूसरे को ही प्रदान करता है ॥२३॥ यह निधि पृथिवी मे एक पीढी तक रहती है और मुकुन्द नाम की जो अन्य रजोगुणी निधि है ॥२४॥ उसकी दृष्टि जिस मनुष्य पर पड़ती है, वह रजोगुणी होता है तथा उससे अवलबित मनुष्य वीणा, वेणु मृदङ्ग आदि आतोद्य वाद्यो का सग्रह करता है ॥२५॥ गायकों

और नर्तकों को बहुत धन देने वाला, वन्दी, सूत, मागध, विट और लास्यपाठी नृत्य-गान की विशेषता वालों को ॥२६॥ दिन रात्रि इच्छित भोग देता है तथा उनके साथ भोजन करता है, इसकी प्रीति अपने समान एवं कुलटा मनुष्यों में रहती है ॥२७॥ यह नित्य जिसे चाहती है, उसी की अनुगामिनी रहती है, उसके वंशधरों के पास नहीं रहती, नन्द नाम की निधि रजोगुण और तमोगुण दोनों से युक्त है ॥२८॥)

उपैतिस्तम्भमधिकंनरस्तेनावलोकित ।
समस्तधातुरत्नानापुण्यधान्यादिकस्यच ॥२६
परिग्रहंकरोत्येपतथैवक्रयविक्रयम् ।
आधारस्वजनानाचआगताभ्यागतस्यच ॥३०
सहतेनापमानोक्तिस्वल्पामपिमहामुने ।
स्तूयमानश्चमहतीप्रीतिंबध्नातियच्छति ॥३१
ययमिच्छतिवैकामंमृदुत्वमुपयातिच ।
वह्वोभाय्याभवन्त्यस्यसूतिमत्योऽतिशोभना ॥३२
भजतेसप्तचनरान्निधिर्नन्दोऽनुवर्तते ।
प्रवर्द्धमानोऽष्टनरमष्टभागेनसत्तम ॥३३
दीर्घायुष्ट्वंचसर्वेपापुरुपाणाप्रयच्छति ।
बन्धूनामेवभरणयेचदूरादुपागता ॥३४
तेपाकरोतिवैनन्द परलोकेनचादृत ।
भवत्यस्यनचस्नेह सहवासिपुजायते ॥३५

इसकी दृष्टि जिस पर पड़ती है, अत्यन्त स्तंभित रहता है, इससे अधिष्ठित मनुष्य सब धातु रत्न, धान्य आदि पुण्य द्रव्यों का ॥२६॥ संग्रह और क्रय विक्रय करता है तथा वह स्वजनों, अतिथियों और अभ्यागतों को आश्रय रूप होता है ॥३०॥ वह निरादर सहन नहीं करता और प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होता है ॥३१॥ याचकों की अभिलाषा के अनुसार वस्तुएँ प्रदान करता है तथा मृदु स्वभाव का होता है, उससे अत्यन्त सुन्दरी पुत्रवती अनेक पत्नियाँ प्रेम करती हैं ॥३२॥ यह निधि क्रमश अष्टमांश होती

क्रिया फल रहित होती है, जो शुभ ग्रग्नि की साक्षी मे ग्रपने गृह पर लायी गयी है ॥४१॥ वह प्रथम ही धर्म के ग्रहण मे प्रशसनीय है तथा उस दुष्टा के त्याग से वर्णसंकर की उत्पत्ति सभव है ॥४२॥

धर्महानिश्चानुदिनमभार्यस्यभवेन्मम ।
नित्यक्रियाणाविभ्र ग्रात्सचापिपतनायमे ॥४३
तस्याचपृथिवीपालभवित्रीममसन्तति ।
तवषड्भागदात्रीसाभवित्रीधर्महेतुकी ॥४४
तदेतत्ते मयाख्यातापत्नीयामेहृताप्रभो ।
तासमानयरक्षायाभवानधिकृतोयत ।४५
सतस्यैववच श्रुत्वाविमृष्यचनरेश्वर. ।
सर्वोपकरणंयुक्तमारुरोहमहारथम् ॥४६
इतश्चेतश्चतेनासौपरिबभ्राममेदिनीम् ।
ददर्शचमहारण्येतापसाश्रममुत्तमम् ॥४७
ग्रवतीर्यचतत्रासौप्रविश्यददृशेमुनिम् ।
कौश्यावृष्यासमासीनज्वलन्तमिवतेजसा ॥४८
सदृष्ट्वानृपतिप्राप्त समुत्थायत्वरान्वित ।
समान्यस्वागतेनैवशिष्यमाहार्घ्यमानय ॥४९

पत्नी के न होने से धर्म की दिन-दिन हानि होती है तथा इस प्रकार नित्य क्रिया के नष्ट होने पर तुझे भी पतित भाव की प्राप्ति होगी ॥४३॥ हे राजन् ! मेरी उस पत्नी के गर्भ से जो सन्तान होगी, वह ग्रापको धर्म पूर्वक ग्रपनी ग्राय का छटवाँ भाग देगी ॥४४॥ इन्ही कारणो से मैं निवेदन कर रहा हू कि ग्राप मेरी उसी पत्नी को लाकर दीजिये, क्यो कि हमारी रक्षा के निमित्त ग्राप ही नियुक्त हैं ॥४५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण के ऐसे वचन सुन कर महाराज उत्तम कुछ समय तक सोच विचार करके सर्व सामग्री सम्पन्न रथ पर चढे ॥४६॥ ग्रौर रथ के द्वारा विचरण करते हुए एक महावन मे श्रेष्ठ तपस्या मय ग्राश्रम देखा ॥४७॥ तब रथ से उतर कर उन्होंने ग्राश्रम मे प्रवेश किया जहाँ कुशा के ग्रासन पर ग्रपने तेज से प्रकाशित एक श्रेष्ठ मुनि

को बैठे हुआ देखा ॥४८॥ राजा का आगमन देख कर शीघ्रता पूर्वक उठते हुए मुनि ने उसका स्वागत-सत्कार किया और अपने शिष्य को अर्घ्य लाने की आज्ञा दी ॥४६॥

तमाहशिष्य शनकैर्दातव्योऽर्घ्योऽस्यर्किमुने ।
तदाज्ञापयसश्चिन्त्य ।याज्ञाहिकरोम्यहम् ॥
ततोऽवगतवृत्तान्तोभूपतेस्तस्यसद्विज ।
सम्भाषासनदानेनचक्रे सम्मानमात्मवान् ॥५०
किंनिमित्तमिहायातोभवान्किंतेचिकीर्षितम् ।
उत्तानपादतनयवेद्मित्वामुत्तमनृप ॥५१
ब्राह्मणस्यगृहाद्भार्याकिनाप्यपहृतामुने ।
अविज्ञातस्वरूपेणतामन्वेष्टुमिहागत ॥५२
पृच्छामियत्तेतन्मेत्वप्रणतस्यानुकम्पया ।
अभ्यागतस्यायगृहभगवन्वक्तुमर्हसि ॥५३
पृच्छमामवनीपालयत्प्रष्टव्यमशङ्कितः ।
वक्तव्यचेत्तवमयाकथयिष्यामितत्त्वत ॥५४
गृहागतायर्योमह्य प्रथमेदर्शनेमुने ।
त्वयासमुद्यतोदातु कथसोऽर्घ्योनिवर्तित ॥५५

इस पर शिष्य ने कहा—कि इन महाराज को अर्घ्यदान उचित होगा या नहीं, इसका विचार करके ही आज्ञा दीजिये, मैं आपकी आज्ञा का तत्काल पालन करूँगा, तब आत्मवान् मुनि ने सब वृत्तान्त जान लिया और आसन दे कर सभाषण द्वारा ही उन्होंने राजा का सम्मान किया ॥५०॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! आप उत्तानपाद-तनय उत्तम हैं, यह मुझे विदित है, परन्तु आप यहाँ क्यों आये हैं ? आपका इच्छित विषय क्या है, यह बताइये ॥५१॥ राजा ने कहा—हे मुने ! एक ब्राह्मण के घर से कोई अज्ञात व्यक्ति उसकी पत्नी को हर ले गया है, मैं उसी ब्राह्मणी की खोज के लिये यहाँ आया हूँ ॥५२॥ हे भगवन् ! मैं आपसे जो विनम्र निवेदन करता हूँ और आप भी अनुग्रह पूर्वक मुझे कृपा के योग्य समझ कर उसे कहने की आज्ञा दीजिये ॥५३॥ ऋषि बोले—

हे राजन् ! आप जो पूछना चाहे, शंका रहित हो कर पूछें, कथन योग्य बात को मैं यथार्थ रूप से ही कहूँगा ॥५४॥ राजा ने कहा—मैं जब यहाँ आया था तब पहिले आप मुझे अर्घ्य देने की इच्छा करते थे, फिर आप उससे निवृत्त क्यों हो गये ? ॥५५॥

त्वद्दर्शनेनरभसादाज्ञप्तोऽयमयानृप ।
यदातदाहमेतेनशिष्येणप्रतिबोधित ॥५६
एषवेत्तिजगत्यत्रमत्प्रसादादनागतम् ।
यथाहसमतीतचवर्त्तमानचसर्वत ॥५७
आलोच्याज्ञापयेन्युक्ते ततोज्ञातमयापितत् ।
ततोनदत्तवानर्घ्यमहतुभ्यत्रिधानत ॥५८
सत्यराजस्त्वमर्घ्यार्हं कुलेस्वायम्भुवस्यच ।
तथापिनार्घ्ययोग्यस्त्वामन्यामोवयमुत्तमम् ॥५९
किकृतहिमयाब्रह्मञ्ज्ञानादज्ञानतोऽपिवा ।
येनत्वत्तोऽर्घ्यमर्हामिनाहमभ्यागतश्चिरात् ॥६०
किविस्मृततेयत्पत्नीत्वयात्यक्ताचकानने ।
परित्यक्तस्तयासार्द्धं त्वयाधर्मोनृपाखिल ॥६१
पक्षेणकर्मणोहान्याप्रयात्यस्पृश्यतानर ।
किमत्रवार्षिकीयस्यहानिस्तेनित्यकर्मण ॥६२
पत्न्यानुकूलयाभाव्ययथाशीलेऽपिभर्त्तरि ।
दु शीलापितथाभार्यापोषणीयानरेश्वर ॥६३

ऋषि बोले—हे राजन् ! आपको देखते ही, जैसे ही मैंने अर्घ्य लाने की आज्ञा दी, वैसे ही इस शिष्य ने शंका व्यक्त की ॥५६॥ जैसे मैं अतीत, वर्त्तमान और भविष्य के सभी गुप्त या प्रकट वृत्तान्त को भले प्रकार जानता हूँ, वैसे ही मेरा यह शिष्य भी मेरे प्रसाद से भूत, भविष्य, वर्त्तमान का ज्ञाता है ॥५७॥ इस शिष्य ने विचार कर आज्ञा देने का अनुरोध किया, तब मैंने सब बात जान कर आपको विधिवत् अर्घ्य नहीं दिया ॥५८॥ हे राजन् ! आप स्वायम्भुव मनु के वंशोत्पन्न हैं, इस लिये अर्घ्य के योग्य हो कर भी मेरे विचार

मे अर्घ्य के योग्य नही हैं ॥५६॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! मैंने जाने अन-जाने मे ऐसा कौन सा कार्य किया है, जिससे प्रथम बार आकर भी मैं अर्घ्य के योग्य नही रहा ? ॥६०॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! आपने अपनी पत्नी को त्याग कर वन मे भेज दिया है, क्या यह स्मरण नही रहा ? उस पत्नी के त्याग के साथ ही आपने धर्म का भी त्याग कर दिया समझो ॥६१॥ धर्म-कर्म की हानि व एक पक्ष तक होने से मनुष्य स्पर्श के योग्य भी नही रहता, तुम्हारी तो वर्षों ही कर्म-हानि हुई है, इसलिये अपनी अर्घ्य विषयक योग्यता पर पर आप स्वय ही विचार कीजिये ॥६२॥ हे राजन् ! जैसे पति के विप-रीत चरित्र वाला होने पर भी पत्नी को पति की अनुगामिनी होना वर्त्तव्य है, वैसे ही पत्नी के शील-रहित होने पर भी उसका भरण-पोषण पति का वर्त्तव्य है ॥६३॥

प्रतिकूलाहिसापत्नीतस्यविप्रस्ययाहृता ।
तथापिधर्मकामोऽसौत्वामुद्द्योतितवान्नृप ॥६४॥
चलत स्थापयस्यन्यान्स्वधर्मेपुमहापते ।
त्वास्वधर्माद्विचलितकोऽपर स्थापयिष्यति ॥६५
(द्वीपेकड गरीयेवाराज्ञिचान्यायवर्तिनि ।
पापक्रत्सुचविद्वत्सुनियताजतुरत्रक ॥
विलक्ष्य समहीपालइत्युक्तस्तेनधीमता ।
तथेत्युक्त्वाचपप्रच्छहृतापत्नीद्विजन्मन ॥६६
भगवन्केननीतासापत्नीविप्रस्यकुत्रवा ।
अतीतानागतवेत्तिजगत्यवितथभवान् ॥६७
ताजहाराद्रितनयोवलाकोनामराक्षस ।
द्रक्ष्यतेचाद्यताभूपउत्पलावतकेवने ॥६८
गच्छमयोजयाशुत्वभार्ययाहिद्विजोत्तमम् ।
मापापास्पदतायातुत्वमिवासौदिनेदिने ॥६९

हे राजन् ! उस ब्राह्मण की हरण की गई पत्नी उसके प्रतिकूल है, ता भी वह उसकी इतनी इतनी खोज कर रहा है ॥६४॥ हे राजन् ! धर्म भ्रष्ट

राजा अपनी प्रिया के प्रति अत्यधिक अनुराग प्रकट करते थे ॥१३॥ एक समय जब श्रेष्ठ वारांगनाएँ मधुर स्वर से राजा के निकट गा रही थी तभी राजा ने सुर पान की इच्छा करके अपने सभासदों के समक्ष ही निकट बैठी बहुला को मद्य से परिपूर्ण पात्र दिया ॥१४-१५॥

सातुनेच्छततितत्पात्रमादातु तत्पराङ्मुखी ।
समक्षमवनीशानातत क्रुद्ध सपार्थिवः ॥१६
उवाचद्वाःस्थमाहूयनि.श्वसन्नुरगोयथा ।
निराकृतस्तयादेव्याप्रिययापतिरप्रिय ॥१७
द्वाःस्थैनादुष्टहृदयामादायविजनेवने ।
परित्यज्याशुनेतत्ते विचार्यवचनमम ॥१८
ततोनृपस्यवचनमविचार्यमवेक्ष्यस ।
द्वा स्थस्तत्याजतासुभ्रूमारोप्यस्यन्दनेवने ॥१९
साचतविपिनेत्यागनीतातेनमहीभृता ।
अपश्यमानातमेनेपरकृतमनुग्रहम् ॥२०
सोऽपितत्रानुरागार्तिदह्यमानात्ममानस ।
औत्तानपादिर्भूपालोनान्याभार्यामविन्दत ॥२१

परन्तु रानी ने उनसे विमुख होकर मद्य पान को ग्रहण नहीं किया, तो राजा को अत्यन्त क्रोध हुआ ॥१६॥ और सर्प के समान नि श्वास को त्यागते हुए उन्होंने द्वारपाल को बुलाया और उससे बोले कि इस मेरी प्रियतमा बहुला ने मुझे अप्रिय मान कर मेरा निरादर किया है ॥१७॥ इस लिये इस दुष्ट हृदय वाली को शीघ्र ही यहाँ से ले जाकर वन मे छोड आओ मेरी इस आज्ञा का तुरन्त पालन करो ॥१८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—द्वारपाल ने राजा की आज्ञा को प्राप्त कर रानी को रथ मे चढाया और उसे वन मे छोड आया ॥१९॥ राजा द्वारा रानी को वन मे छोडे जाने पर, अब राजा को न देखना होगा, ऐसा सोच कर रानी ने राजा का अनुग्रह ही माना ॥२०॥ इधर राजा उत्तम ने रानी के प्रति अत्यन्त अनुराग होने के कारण दुःखित हृदय होते हुए अन्य पत्नी को ग्रहण नही किया ॥२१॥

सस्मार तां सुचार्वङ्गीमहर्निशमनिर्वृत ।
चकार पतिर्जगतः प्रजाधर्मेण पालयन् ॥२२
प्रजा पालयतस्तस्य पितु पुत्रानिवौरसान् ।
आगम्य ब्राह्मण कश्चिदिदमाहार्त्तमानसः ॥२३
महाराज सुदुःखार्त्तः श्रूयतां गदतो मम ।
नृणामार्तिपरित्राणमन्यतो न नराधिपात् ॥२४
मम भार्या प्रसुप्तस्य केनाप्यपहृता निशि ।
गृहद्वारमनुद्घाट्य तां समानेतुमर्हसि ॥२५
न वेत्सि केनापहृता क्व वा नीता नु सा द्विज ।
यतामि विग्रहे कस्य कुतो वाप्यानयामि ताम् ॥२६
तथैव स्थगिते द्वारि प्रसुप्तस्य गृहे मम ।
हृता हि भार्या किं केनेत्येतद्विज्ञायते भयात् ॥२७
त्वं रक्षिता नो नृपते षड्भागादानवेतन ।
धर्मस्य तेऽतो निश्चिन्तास्स्वपन्ति मनुजा निशि ॥२८

वह दुःखित चित्त से उसी शोभनाङ्गी का स्मरण करते रहे और इस अवस्था में भी धर्म-पूर्वक प्रजा पालन करते हुए राज्य-कार्य में लगे रहे ॥२२ वह राजा अपनी प्रजा का पालन औरस पुत्र के समान करते थे, एक दिन एक ब्राह्मण उनके निकट आया और दुःखित हृदय से बोला ॥२३॥ हे राजन् ? मैं अत्यन्त क्लेश में हूँ, मेरी बात सुनो, क्यों कि मनुष्यों के क्लेशों को राजा ही दूर कर सकता है ॥२४॥ मैं रात्रि के समय जब शयन कर रहा था, तभी घर के द्वार खोले बिना ही किसी ने मेरी पत्नी का हरण कर लिया है, अब आप मेरी उस पत्नी को लाकर मुझे दीजिये ॥२५॥ राजा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपकी पत्नी का हरण किसने किया है और कहाँ रखा है ? जब तक मैं यह न जान लूँ, तब तक उसे कहाँ से प्राप्त करूँ ॥२६॥ ब्राह्मण बोला हे राजन् ! मेरे शयन करने में घर का द्वार खोले बिना ही मेरी पत्नी का हरण किस प्रकार हुआ, यह तो आप ही जान सकते हैं ॥२७॥ क्यों कि आप

राजा हैं, धर्म का षष्ठांश वेतन स्वरूप लेकर रक्षा के लिये नियुक्त हैं, इसी लिये मनुष्य रात्रि काल में निश्चित शयन करते हैं ॥२८॥

नतेदृष्टामयाभार्यायादृग्रूपाचदेहतः ।
वयश्चवक्षमास्याहिंकिशीलाब्राह्मणोचते ॥२६
कठोरनेनासात्युच्चाह्रस्वबाहु कृशानना ।
(लवोदरीह्रस्वस्फिजतथाह्रस्वस्तनीनृप) ।
विरूपरूपाभूपालननिन्दामितथैवताम् ॥३०
वाचिभूपातिपरुपानसौम्यासाचशीलतः ।
इत्याख्यातामयाभार्यासकरालनिरीक्षणा ॥३१
मनागतीतभूपालतस्याश्चप्रथमवयः ।
तादृग्रूपाहिमेभार्यामत्यमेतन्मयोदितम् ॥३२
अलतेब्राह्मणतयाभार्यामन्याददामिते ।
सुखायभार्याकल्याणीदुःखहेतुर्हितादृशी ॥३३
अल्पाकुरूपताविप्रकारणंशीलमुत्तमम् ।
रूपशीलविहीनायास्त्याज्यातेन्येनसाहृता ॥३४

राजा बोले—आपकी पत्नी को मैंने कभी भी नहीं देखा, इस लिये आप उसकी आकृति, आयु और स्वभाव का भले प्रकार वर्णन करिये ॥२६॥ ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! मेरी पत्नी कठोर नयन, दीर्घ आकार, छोटी भुजा, कृश मुख (लम्बा उदर और सूक्ष्म हाथ) वाली अत्यन्त कुरूप है, फिर भी मैं उसे निन्दनीय नहीं मानता ॥३०॥ वह वाणी और स्वभाव से अत्यन्त कर्कश है उसकी प्रथमावस्था कुछ-कुछ ढल चुकी है, इस प्रकार उसका सभी वर्णन सत्य-सत्य आपसे किया है ॥३१-३२॥ राजा ने कहा—हे विप्र ! ऐसी कुलक्षणा पत्नी का आप क्या करेंगे ? मैं आपको एक अन्य पत्नी प्रदान कर सकता हूँ, क्यों कि सुलक्षणा पत्नी से सुख और कुलक्षणा से दुःख ही प्राप्त होता है ॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! सौन्दर्य और शील स्वभाव से ही मंगल होता है, इस लिये कुरूप तथा शील रहित पत्नी का तो परित्याग ही ठीक है ॥३४॥

रक्ष्याभार्यामहीपालइतिचश्रुतिरुत्तमा ।
भार्यायांरक्ष्यमाणायांप्रजाभवतिरक्षिता ॥३५
आत्माहिजायतेतस्यसारक्ष्यातोतरेश्वर ।
प्रजायांरक्ष्यमाणायामात्माभवतिरक्षित ॥३६
तस्यामरक्ष्यमाणायांभवितावर्णसङ्कर ।
सपातयेन्महीपालपूर्वान्स्वर्गादध पितृन् ॥३७
(अनुज्ञायगुरु राजन्दत्त्वान्याजातवेदसे ॥३८
समिध तुमयाभार्याश्रुतेयकर्कशायत ।
कथमेताविहायान्यभार्ययासहमचरे ॥३९
गृह्यधर्मोयतोब्रह्मप्राप्यतेशाश्वतनरं ।
पूर्वोढयातुधर्मेणगृहीकुर्वन्नसीदति ॥४०
त्यक्त्वाताचक्रियाकुर्वन्नैवकर्मफललभेत् ।
अग्निनासहयानूनसा जगामगृहशुभा ॥४१
धर्मस्यग्रहणेसातुपूर्वोढेवप्रशस्यते ।
शठायाचारणात्तस्याजायतेवर्णसङ्कर ॥४२

ब्राह्मण बोला—हे राजन्! पत्नी सदैव रक्षा के योग्य होती है, मुझे यह श्रुति विदित है कि पत्नी की सम्यक् रक्षा से ही सन्तान की रक्षा हो सकती है ॥३५॥ हे राजन्! पत्नी के गर्भ से अपने आत्मा की ही उत्पत्ति होती है, इसी लिये सन्तान की रक्षा करने से अपने आत्मा की ही रक्षा होना माना गया है ॥३६॥ इसलिये पत्नी की भले प्रकार रक्षा करे, उसकी रक्षा न करने से वर्णसंकर की उत्पत्ति होती है, जिसके कारण पूर्व पितरों का स्वर्ग से पतन होता है ॥३७॥ (हे राजन्! गुरुजनो की अनुमति से अग्नि को साक्षी करके) ॥३८॥ इस कर्कश पत्नी का मेरे साथ वरण हुआ है इस लिये इसका त्याग करके अन्य नारी के साथ किस प्रकार सह आचरण करूँ ॥३९॥ जब ऐसे आचरण से गृहस्थ धर्म के साथ ही मनुष्य को शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है, और जिस स्त्री के साथ धर्म कार्य करता हुआ गृही दुःख को प्राप्त नहीं होता ॥४०॥ उस स्त्री को त्याग कर जो क्रिया वह करता है वह

को धर्म में स्थापित करने वाले आप ही हैं, परन्तु जब आप स्वयं ही धर्म को छोड़ेंगे तब आपको उसमें कौन प्रवृत्त करेगा ? ॥६५॥ (वन का गेंडा खेत के धान्य का भक्षण करके अपना निर्वाह करे, राजा अन्यायी हो या विद्वान् पुरुष पाप कर्म करे तो फिर शिक्षा देने वाला कौन होगा ?) मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋषि के ऐसे वचन सुन कर राजा लज्जित हो गये और सब दोष स्वीकार कर, विप्र पत्नी का वृत्तान्त उन्होंने पूछा ॥६६॥ हे भगवन् ! आप विश्व के सभी भूत, भविष्य, वर्त्तमान के ज्ञाता हैं, अब उस विप्र पत्नी को किसने हरण किया और कहाँ रखा है, यह बताने की कृपा करिये ॥६७॥ ऋषि बोले—हे राजन् उस ब्राह्मणी का हरण अद्रि के पुत्र बलाक नामक राक्षस ने किया है, उसे आप इस समय उत्पलावन नाम के वन में देखेंगे ॥६८॥ अब आप जाइये और ब्राह्मण को उसकी पत्नी को मिलाइये, जिससे उस ब्राह्मण को आपके समान पाप भागी न होना पड़े ॥६९॥

६२—द्विजभार्या को पति के घर भेजना

अथारुरोहस्वरथप्रणिपत्यमहामुनिम् ।
तेनाख्यातवनतत्नप्रययावुत्पलावतम् ॥१
यथाख्यातस्वरूपाचभार्य्याभर्त्रोद्विजस्यताम् ।
भक्षयन्तीददर्शाथश्रीफलानिनरेश्वर ॥२
पप्रच्छचकथभद्रे त्वमेतद्वनमागता ।
स्फुटब्रवीहिवैशालेरपिभार्य्यासुशर्मणः ३॥
सुताहमतिरात्रस्यद्विजस्यवनवासिन ।
पत्नीविशालपुत्रस्ययस्यनामत्वयोदितम् ॥४
साहहृताबलाकेनराक्षसेनदुरात्मना ।
प्रसुप्ताभवनस्यान्तर्भ्रातृमातृवियोजिता ॥५
भस्मीभवतुनद्रक्षोयेनास्म्येववियोजिता ।
माताभ्रातृभिरन्यैश्चतिष्ठाम्यत्रसुदुःखिता ॥६

अस्मिन्वनेऽतिगहनेयेनानीयाहमुज्झिता ।
नवेद्मिकारणंवितन्नोपभुङ्क्तेनसादति ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा उन महर्षि को प्रणाम करके रथमें चढ़े और महर्षि द्वारा बताये हुए उत्पलावत वन मे पहुंचे ॥१॥ वहाँ देखा कि पति के बताये हुए रूप वाली वह ब्राह्मणी श्रीफल खा रही है ॥२॥ उन देखकर उन्होंने पूछा—हे भद्रे ! तुम वन मे किस प्रकार आगयी ? तुम विशाल पुत्र सुशर्मा नामक ब्राह्मण की ही पत्नी हो न ? यह स्पष्ट बताओ ॥३॥ ब्राह्मणी बोली—मैं अतिरात्र नामक बनवासी ब्राह्मण की पुत्री और जिन विशाल पुत्र का आपने नाम लिया है, उनकी ही भार्या हू ॥४॥ मैं घर मे शयन करती थी, तभी पापी राक्षस मुझे भाई और माता से वियोग करके यहाँ ले आया है ॥५॥ अब मैं सब आत्मीयजनो से पृथक् होकर अत्यन्त दु ख पूर्वक यहाँ रह रही हूँ, जिस राक्षस ने मेरी यह दशा की है, वह भस्म होजाय ॥६॥ उस राक्षस ने इस निर्जन वन मे मुझे ला रखा है, मुझे ज्ञात नही कि वह मेरा भक्षण या उपभोग क्यो नही करता है ? ॥७॥

अपितज्ज्ञायतेरक्षस्त्वामुत्सृज्यक्ववैगतम् ।
अहभर्त्रातवैवात्रप्रेपितोद्विजनन्दिनि ॥८
अस्यैवकाननस्यान्त सतिष्ठतिनिशाचर ।
प्रविश्यपश्यतुभवान्नबिभेतितततोयदि ॥९
प्रविवेशतत सोथतयावर्त्मनिदर्शिते ।
ददृशेपरिवारेणसमवेतचराक्षसम ॥१०
दृष्टमात्रेततस्तस्मिंस्त्वरमाण सराक्षसः ।
दूरादेवमहीमूर्ध्नास्पृशन्पादान्तिकययौ ॥११
ममात्रागमच्छतागेहप्रसादस्तेमहान्कृतः ।
प्रशाधिकिंकरोम्येपवसामिविपयेतव ॥१२
अर्घ्यंचेमप्रतीच्छत्वस्थीयताचेदमासनम् ।
वयभृत्याभवान्स्वामीदृढमाज्ञापयस्वमाम् ॥१३

कृतमेवत्वयानवंसर्वमिपचिनि कृता ।
किमर्थंब्राह्मणवधून्त्वयानीतानिशाचर ॥१४

राजा ने कहा—तुम्हारे पति ने ही मुझे यहाँ भेजा है, क्या तुम्हें विदित है कि वह राक्षस इस समय कहाँ गया होगा ? ॥८॥ ब्राह्मणी बोली—इसी वन-प्रान्त मे कहीं होगा, यदि उससे डर न हो तो, वन मे प्रवेश करो तो वह दिखाई पड जायगा ॥६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मणी द्वारा मार्ग प्रदर्शित करने पर राजा ने वन मे घुस कर अपने परिवारी जनों से घिरे हुए उस राक्षस को देखा ॥१०॥ वह राजा को देखते ही तुरन्त उठा और मस्तक से पृथिवी को स्पर्श करता हुआ राजा के चरणों के समीप आकर बोला ॥११॥ राक्षस ने कहा—महाराज की मुझे क्या आज्ञा है, जिस लिए मेरे घर पर पधारे हैं, मैं आपके राज्य मे निवास करता हूँ, आप मुझे आज्ञा करिये ॥१२॥ यह अर्घ्य ग्रहण करिये, इस आसन पर विराजमान होइये, आप स्वामी हैं और मैं सेवक हूँ, आप मुझे नि.सङ्कोच आज्ञा दीजिये ॥१३॥ राजा ने कहा—तुमने अपने कर्त्तव्य का पालन और अतिथि सत्कार भी उचित रीति से किया है, परन्तु यह बताओ कि तुम उस विप्रपत्नी को किसलिये हरण कर लाए हो ? ॥१४॥

नेयमुन्यामन्यन्याभार्यार्थचेद्धृतात्वया ।
भक्ष्यार्थचेत्स्यनात्तात्वयैतत्कथ्यतामम ॥१५
नवयमानुपाहाराश्रन्येनेनृपराक्षसा ।
भुक्तस्यफलयत्तुतदश्नीमोवयनृप ॥१६
(भुक्तस्यफलयत्तुतत्तवक्ष्याम्यहनृप ।
राक्षसीयोनिमापन्न क्रूरालोकभयकरीम् ।)
स्वभावचमनुष्याणायोषिताचनिमानिना ।
नामिपचनमश्नीमोनवयजन्तुखादका ॥१७
यदस्मानिर्नृणाक्षान्निर्भुक्ताकुर्वन्तितेतदा ।
भुक्तेदुष्टेस्वभावेचगुणवन्तोभवन्तिच ॥१८
सन्तिन प्रमदाभूरन्त्रेणाप्सरसामम. ।
राक्षस्यस्तासुतिष्ठत्सुमानुषीपुरति वयम् ॥१६

यद्यपानोपभोगायनाहारायनिशाचर ।
गृहप्रविश्यविप्रस्यतत्किमेपाहृतात्वया ॥२०

पत्नी बनाने को लाये हैं, यह भी नहीं कह सकता, क्योंकि वह कुरूप है, यदि भक्षणार्थ लाये हैं तो भक्षण क्यों नहीं करते ? यह सब मुझे यथार्थ रूप से बताओ ॥१५॥ राक्षस बोला—हे राजन् ! मनुष्य का भक्षण करने वाला नहीं हूँ, मनुष्य भक्षी राक्षस अन्य होते हैं, मैं तो पुण्यफल का ही भोजन करता हूँ ॥१६॥ (हे नृप ! अब मैं पुण्य का फल बताता हूँ, क्रूर और भयदायक राक्षस योनि को प्राप्त हुआ मैं) सम्मान युक्त अथवा असम्मानित स्त्री-पुरुषों के स्वभाव का ही सदा भोजन करता हूँ, मैं जतुभोजी राक्षस नहीं हूँ ॥१७॥ इस प्रकार क्षमागुण वाले स्वभाव का भोजन करने से क्रोध उत्पन्न होता है और दुष्ट स्वभाव का भोजन करने पर वह गुण युक्त होते हैं ॥१८॥ हे राजन् ! मेरे पास अप्सराओं के समान रूपवती अनेक राक्षसी पत्नियाँ हैं, उनके होते हुए मैं मनुष्य स्त्री की कामना क्या करता ? ॥१९॥ राजा ने कहा—यदि यह ब्राह्मणी तुम्हारे लिये भोग्य अथवा भक्ष्य नहीं थी तो तुमने इसका ब्राह्मण के घर से हरण क्यों किया ? ॥२०॥

मन्त्रविरसद्विजश्रेष्ठोयज्ञेयज्ञेगतस्यमे ।
रक्षोघ्नमन्त्रपठनात्करोत्युच्चाटननृप ॥२१
वयबुभुक्षितास्तस्यमन्त्रोच्चाटनकर्मणा ।
क्वयाम सर्वयज्ञेपुमऋत्विग्भवतिद्विज ॥२२
ततोऽस्माभिरिदतस्यवैकल्यमुपपादितम् ।
पत्न्याविनापुमानिज्याकर्मयोग्योनजायते ॥२३
वैकल्योच्चारणात्तस्यब्राह्मणस्यमहामते ।
तत सराजातिभृशविपण्ण.समजायत ॥२४
वैकल्यमेपविप्रस्यवदन्मामेवनिन्दति ।
अनर्हमर्घस्यचगासाऽप्याहमुनिसत्तम. ॥२५
वैकरयतम्यविप्रस्यराक्षसोऽप्याहमेयथा ।
अपत्नीकतयासोऽहसङ्कटमहदास्थित ॥२६

एवंचिन्तयतस्तस्यपुनरप्याहराक्षसः ।
प्रणामनम्रोराजानवद्धाञ्जलिपुटोमुने ॥२७
नरेन्द्राज्ञाप्रदानेनप्रसादः क्रियतामम ।
भृत्यस्यप्रणतस्येत्यपुष्मद्विषयवासिनः ॥२८

राक्षस बोला—हे राजन् ! वह ब्राह्मण मन्त्रवेत्ता है और सभी यज्ञों में जाकर रक्षोघ्न मन्त्र का पाठ करके मेरा उच्चाटन करते हैं ॥२१॥ जब वह मन्त्र पाठ द्वारा मेरा उच्चाटन करते हैं, तब मैं क्षुधा से पीड़ित होकर कहाँ जाऊँ ? क्योंकि वह सभी यज्ञों में ऋत्विक् बनते हैं ॥२२॥ इसीलिये मैंने उनके चित्त को उद्विग्न किया है, क्योंकि भार्या के बिना पति कभी किसी यज्ञ-कर्म में समर्थ नहीं होता ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राक्षस द्वारा ब्राह्मण के चित्त का उद्विग्न किया जाना सुनकर राजा अत्यन्त दुःखित हुए ॥२४॥ और उन्होंने सोचा कि ब्राह्मण को उद्विग्न किया कह कर यह राक्षस मेरी ही निन्दा करता है, इसी कारण उन ऋषिवर ने मुझे अर्घ्य के अयोग्य बताया था ॥२५॥ और अब यह राक्षस भी मुझ पत्नी-विहीन के समान ही ब्राह्मण की पत्नी का हरण करके उनको उद्विग्न किया कहता है, इसलिये मैं भी पत्नी-हीन होने से सङ्कट ग्रस्त हो रहा हूँ ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार राजा विचार कर ही रहे थे, तभी उस राक्षस ने पुनः विनम्रता पूर्वक प्रणाम करके, करबद्ध निवेदन किया ॥२७॥ हे राजन् ! मैं भी आपके राज्य का ही एक प्रजाजन हूँ, इस कारण इस सेवक को आज्ञा देकर कृतार्थ करिये ॥२८॥

स्वभाववयमस्तीमस्त्वयोक्तं यन्निशाचर ।
तदर्थिनोवयंयेनकार्येणशृणुतान्मम ॥२९
अस्यास्त्वयाद्यब्राह्मण्यादौःशील्यमुपभुज्यताम् ।
येनत्वयातद्दौःशील्यात्तद्विनीतामवेदियम् ॥३०
नीयतामस्यभार्येयतस्यवेश्मनिशाचर ।
अस्मिन्कृतेकृतंसर्वंगृहमभ्यागतस्यमे ॥३१
ततःसराक्षसस्तस्याःप्रविश्यान्तःस्वमायया ।
भक्षयामासदौःशील्यंनिजशक्त्यानृपाज्ञया ॥३२

दौःशील्येनातिरौद्रेण परनीतस्य द्विजन्मनः ।
तेन सा सम्परित्यक्ता ल माह जगतीपतिम् ॥३३
स्वकर्मफलपाकेन भर्तुस्तस्य महात्मनः ।
वियोजिता हतश्चैतु रयमासीन्निशाचर ॥३४
नास्य दोषो न वा तस्य मम भर्तुर्महात्मनः ।
ममैव दोषो नान्यस्य स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥३५

राजा बोले—हे निशाचर ! तुमने स्वभाव भक्षण करने की बात कही है, अब मैं जिस कार्य के लिये आया हूँ, उसे सुनो ॥२९॥ तुम इस ब्राह्मणी के खोटे स्वभाव का भक्षण करो, क्योंकि ऐसा होने से इसके स्वभाव में विनम्रता आ जायगी ॥३०॥ ऐसा करने के पश्चात् तुम इसे उसी के घर में पहुंचा दो, जिसकी यह पत्नी है, ऐसा करने से तुम्हारे द्वारा मेरे आतिथ्य सत्कार की भी पूर्ति होगी ॥३१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब अपनी माता के प्रभाव से उस राक्षस ने ब्राह्मणी के हृदय में प्रवेश किया और उसके दुष्ट स्वभाव का भक्षण कर लिया ॥३२॥ तदनन्तर अपने अत्यन्त दुष्ट स्वभाव से मुक्त हुई वह ब्राह्मणी राजा से बोली ॥३३॥ मैं अपने कर्म से ही अपने महात्मा स्वामी के वियोग को प्राप्त हुई हूँ, यह राक्षस उसका एकमात्र कारण है ॥३४॥ परन्तु इस राक्षस या मेरे उन महात्मा पति का इसमें कुछ भी दोष नहीं है, दोष तो मेरा ही है, क्योंकि स्वकृत कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है ॥३५॥

अन्यजन्मनि कस्यापि विप्रयोगः कृतो मया ।
सोऽयं मयाप्युपगतः को दोषोऽस्य महात्मनः ॥३६
प्रापयामि तवादेशादिमां भर्तुर्गृहं प्रभो ।
यदन्यत्करणीयं ते तदाज्ञापय पार्थिव ॥३७
अस्मिन्कृते कृतं सर्वं त्वया मे रजनीचर ।
आगन्तव्यं च ते वीर कार्यकाले स्मृतेन मे ॥३८
तथेत्युक्त्वा तु तद्रक्षस्तामादाय द्विजाङ्गनाम् ।
निन्ये भर्तृगृहं शुद्धा दौःशील्यापगमात्तदा ॥३९

प्रतीत होता है कि पूर्व किसी जन्म मे मैंने किसी का वियोग कराया था, इसी से मेरा भी अपने पति से वियोग हुआ, इसमे इस राक्षस का क्या दोष है ? ॥२६॥ राक्षस ने कहा—हे महाराज ! आपकी आज्ञा से मैं इसे अभी इसके पति-गृह मे पहुँचाता हू, मुझे आज्ञा दीजिये कि आपका और क्या कार्य मैं करू ? ॥२७॥ राजा बाले—हे राक्षस ! इस कार्य को करके तुमने मेरे सभी कार्य कर दिये हैं, फिर भी हे वीर ! मेरे द्वारा स्मरण करने पर तुम मेरे पास उपस्थित होओ, यह स्वीकार करो ॥२८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—राक्षस ने राजा की बात स्वीकार करके दुष्ट स्वभाव से मुक्त हुई उस ब्राह्मणी को उसके पति-गृह मे आ पहुचाया ॥२९॥

६३—ऋषि से उत्तम का कथोपकथन

सम्प्रेषयित्वा राजापि स्वभर्तृ गृहमङ्गनाम् ।
चिन्तयामास निःश्वसन् किमत्र सुकृतं भवेत् ॥१
अनर्घं योग्यतां कष्टम् भामाह महामना: ।
चैकन्यविप्रमुद्दिश्य नयाह्याय निशाचरः ॥२
सोऽहं कथं करिष्यामि त्यक्ता पत्नी मया हिसा ।
अथवा ज्ञानदृष्टिं पृच्छामि मुनिसत्तमम् ॥३
स चिन्तयेत्य स भूपाल समारुह्य च तं रथम् ।
यत्रोयत्र स धर्मात्मा त्रिकालज्ञो महामुनिः ॥४
अवरुह्य रथात्सोऽथ तत्समेत्य प्रणम्य च ।
यथावृत्तमथाचख्यौ राक्षसेन समागमम् ॥५
ब्राह्मण्या दर्शनं चैव दौःशील्यापगमं तथा ।
प्रेषणं भर्तृगेहे च कार्यमागमने च यत् ॥६
ज्ञानमेतन्मया पूर्वं यत्त्वं तत्तेन राधिप ।
कार्यमागमने चैवमत्समीपे न वाग्विलम् ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—उस ब्राह्मणी को उसके पति के घर भेजकर राजा दीर्घ श्वास लेते हुए सोचने लगे कि अब किस कर्म के द्वारा मेरी भलाई हो ॥१॥ उन महर्षि ने मुझे पत्नी त्याग के कारण अर्घ्य के अयोग्य बताया और इस राक्षस ने भी ब्राह्मण के प्रति पत्नी-वियोग से उत्पन्न धर्म-हानि का विषय कहा ॥२॥ मैंने अपनी पत्नी का परित्याग किया है, अब मुझे क्या करना चाहिये, इस विषय मे उन्ही ज्ञान दृष्टि वाले महर्षि से प्रश्न करूँ ॥३॥ ऐसा विचार करके राजा रथारूढ हुए और उन त्रिकालज्ञ मुनि के आश्रम मे पहुँचे ॥४॥ रथ से उतर कर उनके निकट उपस्थित हुए और प्रणाम करके ब्राह्मणी से मिलना, राक्षस से समागम होना, ब्राह्मणी के दुष्ट स्वभाव का नष्ट होना और उसे उसके पति-गृह भेजकर पुन उनके पास आने का उद्देश्य भी आदि से अन्त तक कहा ॥५-६॥ ऋषि से कहा—हे राजन् ! आपके द्वारा किया गया कार्य और आपके पुनरागमन का उद्देश्य यह सब मैं पहिले ही जान चुका हूँ ॥७॥

प्रष्टु मामिह्किकार्यमयेत्युद्विग्नमानस ।
त्वमागतोमहीपालशृणुकार्यंचयत्त्वया ॥८
पत्नीधर्मार्थकामानाकारणप्रबलनृणाम् ।
विशेषतश्चधर्मस्यसक्तस्त्यजताहिताम् ॥९
अपत्नीकनरोभूपनयोग्योनिजकर्मणाम् ।
ब्राह्मण क्षत्रियोवापिवैश्य शूद्रोऽपिवानृप ॥१०
त्यजताभवतापत्नीनशोभनमनुष्ठितम् ।
अत्याज्योहियथाभर्त्तास्त्रीणाभार्यातथानृणाम् ॥११
भगवन्किकरोम्येष विपाकोममकर्मणाम् ।
नानुकूलानुकूलस्ययस्मात्त्यक्तातततोमता ॥१२
यद्यत्करोतितत्क्षान्तदह्यमानेनचेतसा ।
भगवस्तद्वियोगार्तिविभीतेनान्तरात्मना ॥१३
साम्प्रततुवनेत्यक्तानवेद्मिक्वनुसागता ।
भक्षितावापियिपिनेसिहव्याघ्रनिशाचरै ॥१४

फिर भी आप स्वयं ही मुझसे प्रश्न करें, इसी की प्रतीक्षा मे था. हे राजन् ! अब आप अपने कर्त्तव्य के विषय मे सुनिये ॥८॥ मनुष्यो के धर्म, अर्थ और काम के साधन का प्रबल कारण भार्या ही है, जो भार्या का त्याग कर देते हैं, वह धर्म का भी त्याग करते हैं ॥९॥ हे राजन् ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ही क्यो न हो, पत्नी को त्याग करके अपने कर्म के अनुष्ठान मे समर्थ नहीं होते ॥१०॥ हे राजन् ! आपने पत्नी का त्याग करके उचित कार्य नहीं किया है, जैसे स्त्री के लिये पति का त्याग अनुचित है, वैसे ही पति के लिये पत्नी का त्याग भी उचित नही है ॥११॥ राजा बोले—हे भगवन् ! मैं तो पत्नी का त्याग कर ही बैठा, अब मुझे क्या करना चाहिये ? ॥१२॥ उसके वियोग के कारण मेरा अन्तरात्मा क्षोभ से भरा हुआ है और चित्त दग्ध हो रहा है, इसीलिये उस पत्नी द्वारा किये सब अप्रिय आचरण भूल गया हूँ ॥१३॥ परन्तु, वन मे त्यागी हुई मेरी पत्नी न जाने कहाँ चली गई होगी ? अथवा उसे सिंह, व्याघ्र या राक्षसो ने भक्षण कर लिया होगा, यह मुझे ज्ञात नही है ।१४।

नभक्षितासाभूपालसिंहव्याघ्रनिशाचरैः ।
मात्वविप्लुतचरित्रासाम्प्रतसुरसातले ॥१५
सानीताकेनपातालमास्तेसाऽदूषिताकथम् ।
अत्युद्भुतमिदब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१६
पातालेनागराजोऽस्तिप्रख्यातश्चकपोतकः ।
तेनदृष्टात्वयात्यक्ताभ्रममाणामहावने ॥१७
सारूपशालिनीतेनसानुरागेणपार्थिव ।
वेदितार्थेनपातालनीतासायुवतीतदा ॥१८
ततस्तस्यसुतासुभ्रूर्नन्दानाममहीपते ।
भार्यामनोरमाचास्यनागराजस्यधीमतः ॥१९
तयामातु.सपत्नीयसाभवित्रीनिशोभना ।
दृष्टास्वगेहंमानीतागुप्ताचान्त पुरेशुभा ॥२०
यदातुयाचितानन्दानददातिनृपोत्तरम् ।
मूकाभविष्यसीत्याहनदातातनयापिता ॥२१

ऋषि ने कहा—हे राजन् ! सिंह, व्याघ्र अथवा राक्षस किसी ने भी उसका भक्षण नहीं किया है, वह इस समय विशुद्ध चरित्र युक्त होकर रसातल में रह रही है ॥१५॥ राजा बोले—हे ब्रह्मन् ! मेरी पत्नी रसातल में किसके द्वारा गई और किस प्रकार विशुद्ध होकर रहती है, यह अद्भुत बात मुझे यथावत् बताने की कृपा करिये ॥१६॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! कपोतक नाम के एक नागराज रसातल में रहते हैं, उन्होंने आपके द्वारा परित्यक्त उस रूपवती नारी को महावन में भ्रमण करते हुए देखा तो वह उस पर अनुरक्त होगये और अपना प्रयोजन बता कर वह उसे रसातल में ले गये ॥१७-१८॥ उन नागराज की पत्नी का नाम मनोरमा तथा कन्या का नाम नन्दा है ॥१९॥ उस कन्या ने इस सुन्दरी को अपनी माता की होने वाली सपत्नी जानकर उसे अन्तःपुर में छिपा लिया ॥२०॥ जब नागराज इस सुन्दरी के विषय में अपनी पुत्री से कहते तब वह उन्हे कुछ उत्तर न देती थी, इस पर नागराज ने अपनी पुत्री नन्दा को गूँगी होने का शाप दे दिया ॥२१॥

एवशप्तासुतातेनसाचास्येतत्रभूपते ।
नीतातेनोरगेन्द्रेणधृतातत्सुतयासती ॥२२
ततोराजापरंहर्षमवाप्यतमपृच्छत ।
द्विजवर्यंस्वदौर्भाग्यकारणंदयिताप्रति ॥२३
भगवन्सर्वलोकस्यमयिप्रीतिरनुत्तमा ।
किन्तुतत्कारणंयेनस्वपत्नीनातिवत्सला ॥२४
ममचासायतीवेष्टाप्राणेभ्योऽपिमहामुने ।
साचमाप्रतिदुःशीलाब्रूहितत्कारणंद्विज ॥२५
पाणिग्रहणकालेत्वसूर्यभौमशनैश्चरैः ।
शुक्रवाचस्पतिभ्याचतवभार्याविलोकिता ॥२६
तन्मुहूर्तेऽभवच्चन्द्रस्तस्याः सोमसुतस्तथा ।
परस्परविपक्षौतौततःपार्थिवतेभृशम् ॥२७
तद्गच्छत्वंस्वधर्मेणपरिपालयमेदिनीम् ।
पत्नीसहायःसर्वाश्चकुरुधर्मवती क्रियाः ॥२८

इत्युक्तेप्रणिपत्यैनमारुह्यस्यन्दनतत ।
उत्तम पृथिवीपालश्राजगामनिजपुरम् ॥२६

हे राजन् ! वह नागकन्या इस प्रकार अपने पिता के द्वारा शापित हुई है, फिर भी उसने इस सुन्दरी को पकड रखा है ॥२२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस पर राजा अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होने अपनी पत्नी के अपने प्रति अप्रिय भाव का कारण ऋषि स पूछा ॥२३॥ राजा बोले—हे भगवन् ! सभी मनुष्य मुझसे अत्यन्त प्रेम करते हैं, परन्तु मेरी अपनी ही पत्नी मुझ मे अनुरागिणी नही है, इसका कारण क्या है ? ॥२४॥ हे महामुने ! मेरे प्राणो से अधिक प्रिय होने पर भी वह पत्नी मेरे प्रति कुव्यवहार करती है, उसका कारण मुझे बताइये ॥२५॥ ऋषि ने कहा—जिस समय आपका विवाह हुआ था, उस समय आप पर सूर्य, मगल और शनिश्चर की तथा आपकी पत्नी पर शुक्र और बृहस्पति की दृष्टि थी ॥२६॥ उसी मुहूर्त्त मे आपके बुध और आपकी पत्नी के चन्द्रमा परस्पर मे घोर विपक्षी थे ॥२७॥ अब जाकर अपनी पत्नी से मिलो और सब प्रकार धर्म कार्यो का अनुष्ठान और पृथिवी का पालन करो ॥२८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—महर्षि के ऐसा कहने पर महाराज उत्तम ने उन्हें प्रणाम किया और रथारूढ होकर अपने नगर मे आये ॥२९॥

६४—गौतम मनु की उत्पत्ति

ततःस्वनगरप्राप्यतददर्शद्विजनृप ।
समेतभार्ययाचैवशीलवत्यामुदान्वितम् ॥१
राजवर्यकृतार्थोऽस्मियतोधर्म्मोहिरक्षित ।
धर्मज्ञेनेहभवताभार्यामानयतामम ॥२
कृतार्थस्त्वद्विजश्रेष्ठनिजधर्मानुपालनात् ।
वयसङ्कटिनोविप्रयेपापत्नीनवेश्मनि ॥३
नरेन्द्रसाहिविपिनेभक्षिताश्वापदैर्यदि ।
क्रोधस्यवशमागम्यधर्मोनावेक्षितस्त्वया ।

अलनयाकिमन्यस्यानपाणिगृ ह्यतेत्वया ।
सतिराज्ञागृहेकन्या शोभनानृपनन्दन ॥४
नभक्षितामेदयिताश्वापदैःसाहिजीवति ।
अविदूषितचारित्राकथमेतत्करोम्यहम् ॥५
यदिजीवतितेभार्यानचैवव्यभिचारिणी ।
अपत्नीकत्वतोजन्मकिंपापक्रियतेत्वया ॥६
आनीतापिहिसाविप्रप्रतिकूलासदैवमे ।
दुखायनसुखायालतस्यामैत्रीनवैमयि ।
यथातेब्राह्मणीविप्रवशगातवसुंदरी ।
तथात्वकुरुयत्नमेयथासावशगामिनी ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—महाराज उत्तम ने अपने नगर मे पहुचकर उस ब्राह्मण को अपनी शीलवती पत्नी के साथ हर्ष सहित स्थित देखा ॥१॥ ब्राह्मण ने राजा से कहा—हे नृपश्रेष्ठ ! आपने धर्म के ज्ञाता होने के कारण मेरी पत्नी को लाकर धर्म की रक्षा की है, इससे मैं धन्य हुआ हूँ ॥२॥ राजा ने कहा—हे द्विजवर ! आप अपने धर्म पालन के कारण कृतकृत्य हुए हैं, परन्तु मेरे घर मे भार्या नही है, इसलिए मैं घोर विपत्ति मे पडा हूँ ॥३॥ ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! आपने क्रोधवश उस समय धर्म को नहीं देखा, अब उसे कही हिंसक जीवों ने भक्षण कर लिया हो या किसी और प्रकार से नष्ट हो गई हो तो उसके मिलने की आशा न करके किसी अन्य कन्या से विवाह क्यो नहीं कर लेते, हे राजन् ! राजाओं के घर अनेक कन्याएँ होगी ॥४॥ राजा ने कहा—मेरी पत्नी का किसी ने भक्षण नही किया, वह अभी भी विशुद्ध चरित्र से जीवितावस्था मे है, फिर कैसे अन्य स्त्री का ग्रहण करूँ ? ॥५॥ ब्राह्मण बोला—यदि आपकी पत्नी अभी तक श्रेष्ठ चरित्र वाली होकर जीवित है तो उसे छोड़कर पाप क्यो करते हैं ? राजा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं उसे ले भी आऊँगा तो वह मेरे अनुकूल नही होगी, क्योंकि उसकी प्रीति मुझमें नही है, इससे मुझे दुःख ही होगा, अब आप वह उपाय करिये जिससे वह मेरे वश मे हो सके ॥७॥

त्वयिसप्रीतयेनम्यावरेष्टिरुपकारिणी ।
क्रियतेमित्रकामैर्यामित्रविन्दाक्रामिताम् ॥८
अप्रीतयो प्रीनिकरीक्षःहिमजननीपरम् ।
भार्यापत्योमनुष्येन्द्रतानर्वाष्टिक्राम्यहम् ॥६
यत्रतिष्ठतिसासुभ्रू स्तवभार्यामहीपत ।
तस्मादानीयतासातपराप्रीतिमुर्पप्यति ॥१०
(तस्यास्तवहितायायचर्म्यैयत्रनमीदति)
इत्युक्त मतुनिखिलमम्भारानवनीपति ।
आनिनायचकारेष्टिमचताद्विजमत्तम ॥११
सप्तकृत्व मतुतदा चकारर्ष्पुन पुन ।
तस्यराज्ञाद्विजश्रेष्ठोभार्यासम्पादनायवै ॥१२
यदारापितमंत्रानाममन्यतमहामुनि. ।
स्वभर्त्तरितदाविप्रस्तमुवाचनराधिपम् ॥१३
आनीयतानरश्रेष्ठयातवेष्टात्मनोऽन्तिकम् ।
भुंक्ष्वभागास्तयासार्द्धं यजयज्ञान्स्तयाहत ॥१४

ब्राह्मण बोला—मित्रता की कामना वाले उपकारी पुरुष जिस यज्ञ को करते हैं, उसी मित्रविन्दा नामक यज्ञ को मैं तुम्हारी पत्नी के लिए करूंगा ॥८॥ हे राजन्! वह यज्ञ असन्तुष्ट स्त्री पुरुष में प्रीति कराने वाला और शक्ति का देने वाला है, मैं उसी का आपके निमित्त अनुष्ठान करूँगा ॥६॥ आपकी वह पत्नी जहां रहती है वहां से उसे ले आइए, वह अवश्य ही आप के प्रति परम कर्तव्य करने वाली हो जायगी ॥१०॥ (तुम्हारे हित के लिए ऐसे अवसर में धर्म की हानि नहीं होती) मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण का वचन सुनकर महाराज उत्तम ने सम्पूर्ण यज्ञ सामग्री उपस्थित की और उस ब्राह्मण ने भी यज्ञ का अनुष्ठान किया ॥१२॥ जब उसने उस राजमहिषी को अपने स्वामी के प्रति अनुरक्त मनका तब वह राजा से बोला ॥१३॥ हे राजन्! अब अपनी उस पत्नी को लाकर सांसारिक सुखों का भोग कीजिए, और यत्न पूर्वक यज्ञ कार्यों का सम्पन्न करिये ॥१४॥

इत्युक्तम्तेनविप्रेणभूपालोविस्मितस्तदा ।
सस्मारतमहावीर्यसत्यसन्धनिशाचरम् ॥१५
स्मृतस्तेनतदासद्य समुपेत्यनराधिपम् ।
किंकरोमीतिसोऽप्याहप्रणिपत्यमहामुने ॥१६
ततस्तेननरेन्द्रे णविस्तरेणनिवेदिते ।
गत्वापातालमादायराजपत्नीमुपाययौ ॥१७
आनीताचातिहार्देनसाददर्शतदापतिम् ।
उवाचचप्रसीदेतिभूयोभूयोमुदान्विता ॥१८
तत सराजारभसापरिष्वज्याहमानिनीम् ।
प्रियेप्रसन्नएवाहभूयोऽप्येवब्रवीषिकिम् ॥१९
यदिप्रसादप्रवणनरेन्द्रमयितेमन. ।
तदेतदभियाचेत्वातत्कुरुष्वममाहृणम् ॥२०
नि.शक्रेत्र हिमत्तोयद्भवत्याकिंचिदीप्सितम् ।
तदलभ्यनतेभीरुत्वायत्तोऽस्मिनान्यथा ॥२१

मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्राह्मण की यह बात सुनकर राजा अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुए और उन्होंने उसी समय उस महान् पराक्रमी राक्षस का स्मरण किया ॥१५॥ स्मरण करते ही वह राक्षस उसी समय उपस्थित हुआ और उनको प्रणाम करता हुआ बोला—मुझे क्या आज्ञा है ? ॥१६॥ तब राजा ने सब बात उसे विस्तारपूर्वक बतायी और तब वह पाताल में जाकर रानी को शीघ्र ही लेकर आ गया ॥१७॥ रानी ने वहाँ आकर हार्दिक प्रीति सहित अपने पति को देखा और 'प्रसन्न होओ' इस प्रकार बारम्बार विनय

मदर्थंतेनगागेनसुताशप्तासखीमम ।
मूकाभविष्यसीत्याहसाचमूकत्वमागता ॥२२
तस्या प्रतिक्रियाप्रीत्याममशक्नोतिचेद्भवात् ।
वाग्विघातप्रशान्त्यर्थतत किनकृतमम ॥२३
तत सराजातविप्रमःहास्मिन्कीदृशीक्रिया ।
तन्मूकतापनोदायसचतप्राहपार्थिवम् ॥२४
भूपसारस्वतीमिष्टिकरोमिवचनात्तव ।
पत्नीतवेयमानृण्ययातुतद्वावप्रवर्तनात् ॥२५
इष्टिमारस्वतीचक्रे तदर्थसद्विजोत्तम ।
सारस्वतानिसूक्तानिजजापचसमाहित ॥२६
तत प्रवृत्तवाक्यातागर्ग प्राहरसातल ।
उपकारःसखीभर्त्राकृतोऽयमतिदुष्कर ॥२७
इत्यज्ञानसमासाद्यनन्दाशीघ्रगति पुरम् ।
ततोराज्ञीनरिष्वज्यस्वसखीमुरगात्मजा ॥२८
तचसस्तूयभूपालकल्याणोक्त्यापुन पुन ।
उवाचमधुरनागीकृतासनपरिग्रहा ॥२९

रानी ने कहा—नागराज की कन्या मेरी सखी है और वह नागराज के शापवश गूँगी हो गई है ॥२२॥ यदि आप मुझ पर प्रीति करते हैं और उसके गूँगेपन को दूर करने में समर्थ हैं तो आपने अवश्य ही मेरा सब कुछ कार्य किया समझो ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब राजा ने उस ब्राह्मण से नागकन्या के गूँगेपन को दूर करने का उपाय पू ा ॥२४॥ ब्राह्मण ने कहा—हे राजन् ! आपके वचन मानकर मैं सरस्वती की इष्टि करूँगा, क्योंकि आपकी यह पत्नी उसकी मूकता दूर होने पर ही ऋण से छूटेगी ॥२५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब उस ब्राह्मण ने सरस्वती की इष्टि का प्रारम्भ किया और यत्न पूर्वक सारस्वत सूक्त को जपने लगा ॥२६॥ तदनन्तर गर्ग ऋषि ने पाताल में वाक्शक्ति को प्राप्त हुई उस नागकन्या से कहा कि तुम्हारी सखी ने तुम्हारा

यह अत्यन्त कठिन उपकार किया है ॥२७॥ तब वह नागकन्या नन्दा अपनी सखी के लिए उस नगर में आई और उसने रानी को आलिंगन किया ॥२८॥ और वह राजा के भी गुण गाती हुई आसन पर बैठकर मंगलमय वचनों द्वारा कहने लगी ॥२९॥

उपकारः कृतोवीरभवतायोममाधुना ।
तेनास्म्याकृष्टहृदयायद्ब्रवीमिश्रृणुष्वतत् ॥३०
तवपुत्रोमहावीर्योभविष्यतिनराधिप ।
तस्याप्रतिहतचक्रमस्याभुविभविष्यति ॥३१
सर्व्वार्थशास्त्रतत्वज्ञोधर्मानुष्ठानतत्पर ।
मन्वन्तरेशत्ररोधीमान्भविष्यतिसर्वमनुः ॥३२
इतिदत्वावरतस्मैनागराजसुताततः ।
सखीतासपरिष्वज्यपातालमगमन्मुने ॥३३
तत्रतस्यतयासार्द्धंरमत पृथिवीपते ।
जगामकाल सुमहान्प्रजा पालयतस्तथा ॥३४
तत सटस्यातनयाज्ज्ञे राज्ञोमहात्मन ।
पौर्णमास्यायथाकान्तश्चन्द्र सपूर्णमण्डल ॥३५

हे वीर ! आपने जो मेरा जो उपकार किया है, उससे मेरा हृदय अत्यन्त आकर्षित हुआ है । अब मैं जो कुछ कहती हूँ, उसे श्रवण करो ॥३०॥ हे राजन् ! आपको अत्यन्त पराक्रमी पुत्र की प्राप्ति होगी और इस भूमण्डल पर उसका अखण्ड राज्य होगा ॥३१॥ आपका स्वार्थ साधक, शास्त्र में तत्वज्ञानी, धर्मानुष्ठान में सदैव तत्पर वह मेधावी पुत्र मन्वन्तर का स्वामी मनु होगा ॥३२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार राजा को बारम्बार वर देती हुई नागकन्या अपनी सखी का प्रगाढ़ आलिंगन करके अपने लोक को गई ॥३३॥ इधर पत्नी के साथ विहार करते हुए और प्रजा का पालन करते हुए राजा को बहुत समय व्यतीत हो गया ॥३४॥ फिर रानी के गर्भ से पूर्णिमा व चन्द्रमण्डल के समान श्रेष्ठ कान्ति वाले पुत्र की उनके उत्पत्ति हुई ॥३५॥

तस्मिञ्जातेमुदप्रापु.प्रजा सर्वा:महामना ।
देवदुन्दुभयोनेदु पुष्पवृष्टि पपातच ॥३६॥
तस्यदृष्ट्वावपु कान्तमविष्यशीलमेवच ।
औत्तमश्चेतिमुनयोनामचक्रु समागता: ॥३७॥
जातोऽयमुत्तमेवशेवाल कालेतयोत्तमे ।
उत्तमावयवस्तेनऔत्तमोऽयभविष्यति ॥३८॥
उत्तमस्यसुत सोऽयनाम्नाख्यातस्तयोत्तम ।
मानुरामी तत्प्रभावोभागुरेथ यतामम ॥३९॥
उत्तमाख्यानमखिलजन्मचैवौत्तमस्यय ।
नित्यशृणोतिविद्वे पसक्दाचिन्नगच्छति ॥४०॥
इष्टंदारैस्तथापुत्रैर्वन्धुभिर्वाकदाचन ।
वियोगोनास्यभविता शृण्वत पठतोऽपिवा ॥४१॥
तस्यमन्वन्तरब्रह्मन्वदतोममविस्तरात् ।
श्रू यतातनयश्चेन्द्रोयेचदेवास्तयर्षय ॥४२॥

उनके जन्म लेने पर समस्त प्रजा आनन्द में मग्न होगई, देवताओं द्वारा वाद्य वादन और पुष्प वृष्टि की गई ॥३६॥ आगत मुनियों ने उसके स्वभावादि को देखकर उसका 'औत्तम' नाम रखा ॥३७॥ मुनिगण बोले कि इसने उत्तम कुल, उत्तम काल और उत्तम अङ्ग सहित जन्म ग्रहण किया है, इसलिये यह 'औत्तम' नाम से प्रसिद्ध होगा ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! उत्तम के पुत्र होने से यह 'औत्तम' नाम से प्रसिद्ध होकर मनु होगा, अब उसका प्रभाव कहता हूँ उसे सुनो ॥३९॥ जो मनुष्य राजा उत्तम के आख्यान और औत्तम मनु के जन्म का वृत्तान्त श्रवण करते हैं, वे कभी विद्वेष को प्राप्त नहीं होते ॥४०॥ तथा इसके सुनने या पढ़ने वालों को कभी इष्ट, मित्र, पुत्र, स्त्री और बन्धुओं का वियोग सहन नहीं करना पड़ता ॥४१॥ अब उनके मन्वन्तर के वृत्तान्त का विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ, उसे श्रवण करो, हे ब्रह्मन् ! उस समय के देवताओं और ऋषियों के विषय में भी कहता हूँ ॥४२॥

६५—औत्तम मन्वन्तर कथन

मन्वन्तरेतृतीयेऽस्मिन्नौत्तमस्यप्रजापते ।
देवानिन्द्रमृषीन्भूपान्निबोधगदतोमम ॥१॥
स्वधामानस्तथादेवायथानामानुकारिण ।
सत्याख्यश्चद्वितीयोऽन्यस्त्रिदशानातथागण ॥२॥
तृतीयेतुगणादेवा शिवाख्यामुनिसत्तम ।
शिवास्वरूपतस्तेतुश्रुता पापप्रणाशना ॥३॥
प्रतर्दनाख्यश्चगणोदेवानामुनिसत्तम ।
चतुर्थ स्तत्रकथितऔत्तमस्यान्तरेमनो ॥४॥
वशवर्तिन पचमेऽपिदेवास्तत्रगणाद्विज ।
यथाख्यातस्वरूपास्तुसर्वएवमहामुने ॥५॥
एतेदेवगणा.पञ्चस्मृतायज्ञभुजस्तथा ।
मन्वन्तरेमनुश्रेष्ठे सर्वेद्वादशकागणा ॥६
तेपामिन्द्रोमहाभागस्त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् ।
शतक्रतूनामाहृत्यसुशान्तिर्नामनामत ॥७
यस्योपसर्गनाशायनामाक्षरविभूपिता ।
अद्यापिमानवैर्गाथागीयतेतुमहीतले ॥८

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! अब औत्तम प्रजापति के तृतीय मन्वन्तर के देवता, इन्द्र और ऋषियो के विषय मे कहता हूं, श्रवण करो ॥१॥ पहला 'स्वधामा' नामक गण देवताओ के नाम के अनुरूप ही स्वज्योति से प्रकाशित है और द्वितीय गण का नाम 'सत्य' है ॥२॥ तृतीय गण 'शिव' नाम से प्रसिद्ध है तथा इसके नाम का स्मरण करते ही वह पाप को नष्ट करके शिव' नाम को सार्थक करता है ॥३॥ हे मुने ! औत्तम मन्वन्तर के देवताओ का चतुर्थगण 'प्रतर्दन' नाम वाला है ॥४॥ पचम गण मे 'वशवर्ती' नामक देवता स्थित हैं, वे सब नाम के ही अनुरूप कार्य करने वाले हैं, हे द्विजवर ! इस मन्वन्तर मे यज्ञ भोगी देवताओ मैं पाँच प्रकार के गण तथा प्रत्येक गण मे द्वादश देवता

है ॥५-६॥ उन देवताओं के इन्द्र सुशान्ति नामक हैं जो सौ अश्वमेध यज्ञ करके तीनों लोक के गुरु हाल है ॥७॥ उन देवेन्द्र सुशान्ति का यह नाम और अक्षर से विभूषित वृत्तान्त भूतल में अब भी कहा जाता है ॥८॥

सुशान्तिर्देवराटकान्त सुशान्तिमप्रयच्छति ।
सहित शिवसत्याद्यैस्तथैववशवर्तिभि ॥६
अज परशुचिर्दिव्योमहाबलपराक्रम ।
पुत्रास्तस्यमनोरासन्विख्यातास्त्रिदशोपमा ॥१०
तत्सूतिसम्भवैर्भूति पालिताभूनरेश्वरै ।
यावन्मन्वन्तरतस्यमनोरुत्तमतेजस ॥११
चतुर्युगानासस्यातासाधिकाह्येकसप्तति ।
कृतत्रेतादिसज्ञानिया युक्तानिपुरामया ॥१२
स्वतेजसाहितपसोवरिष्ठस्यमहात्मन ।
तनयाश्चान्तरतस्मिन्सप्तसप्तर्षयाभवन् ॥१३
तृतीयमतत्कथितवमन्वन्तरमया ।
तामसस्यचतुर्थंतुमनोरन्तरमुच्यते ॥१४
वियानिजन्मनायस्ययशसाद्यातितजगत् ।
जन्मतस्यमनोर्ब्रह्मन्छ्रूयतागदतामम ॥१५
अतीन्द्रियमशेपाणामनूनाचरिततथा ।
तथाजन्मापिविज्ञ यप्रभावश्चमहात्मनाम् ॥१६

वह तेजस्वी देवेन्द्र सुशान्ति शिवादि देवताओं के सहित सुख शान्ति के देने वाले हैं तथा उनके वश में रहने वाले देवता भी इसी प्रकार के स्वभाव वाले हैं ॥६॥ इन ग्रौत्तम मनु के सात पुत्र देवताओं के समान अत्यन्त पराक्रमी हुए थे, जिनके नाम अज, परशुचि और दिव्य थे ॥१०॥ उनका मन्वन्तर जितने दिनों तक रहा, उतने काल तक उनके वंशधर इस पृथिवी पर राज्य करते रहे ॥११॥ इस मन्वन्तर में सतयुग त्रेता, द्वापर और कलि यह चारों युग हुए हैं उक्त प्रकार की वृद्धि अधिक चतुर्युगिया का मन्वन्तर कहा गया है ॥१२॥ इस मन्वन्तर में महातपा नामक महात्मा के सात पुत्र ही सप्तर्षि हुए थे ॥१३॥

यह तृतीय मन्वन्तर का वृत्तान्त हुआ, अब चतुर्थ मन्वन्तर के विषय मे कहता हूँ ॥१४॥ विभिन्न योनि जन्मा जिन मनु के सुयश से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशमान हुआ उन मनु की उत्पत्ति कहता हूँ, उसे तुम श्रवण करो ॥१५॥ इन सर्व महात्मा मनुओं का चरित्र और उनके जन्म के प्रभाव को अवश्य जानना चाहिए ॥१६॥

६६—तामस मन्वन्तर

राजाभूद्भुविविख्यात स्वराष्ट्रोनामवीर्यवान् ।
अनेकयज्ञकृत्प्राज्ञ सग्रामेष्वपराजित ॥१
तस्यायु सुमहद्दत्तसूर्येणसुमहाद्यु ते· ।
(पुराभगवताविप्रमश्रिणाराधितेनवै ।)
पत्नीनाचशततस्यधन्यानामभवद्द्विज ॥२
तस्यदीर्घायुषःपत्न्योनातिदीर्घायुषोमुने ।
कालेनजग्मुर्निधनभृत्यमन्त्रिजनास्तथा ॥३
सभार्याभिस्तथामुक्तोभृत्यैश्चसहजन्मभि ।
उद्विग्नचेता सप्रापवीर्यहानिमहर्निशम् ॥४
तवीर्यहीननिभृतैर्भृ त्यैस्त्यक्त सुदु खितम् ।
अनन्तरोविमर्दाख्योराज्याच्च्यावितवास्तदा ॥५
राज्याच्च्युत सोऽपिवनगत्वानिर्विण्णमानस. ।
तपस्तेपेमहाभागोवितस्तापुलिनेस्थित ॥६
ग्रीष्मेपचतपाभूत्वावर्षास्वभ्रावकाशक ।
जलशायीचशिशिरेनिराहारोयसव्रतः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—स्वराष्ट्र नामक एक राजा अनेक यज्ञों का करने वाले, युद्ध मे सदा जीतने वाले, अत्यन्त पराक्रमी और ज्ञानी थे ॥१॥ हे द्विज! उनके मन्त्रियों की आराधना से प्रसन्न हुए भगवान् भास्कर ने उनको दीर्घ-

पुष्प बनाया था, उन राजा की 'धन्या' नाम की एक अत्यन्त सुन्दर भार्या थी ॥२॥ परन्तु, उन राजा की भार्याएँ दीघायु वाली नहीं थीं, इसलिये वे शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुईं और मन्त्रिगण तथा भृत्यगण भी काल के वशीभूत होगये ॥३॥ राजा अपने सुहृदो, भृत्यों और भार्याओं के वियोग मे उद्विग्न रहते हुए दिनोदिन पराक्रम-हीन होने लगे ॥४॥ अवसर प्राप्त कर एक निकटस्थ विमर्द नाम के राजा ने इस वीर्यहीन और विश्वासी भृत्यों से रहित दुःखित हृदय राजा को राज्य से भ्रष्ट कर डाला ॥५॥ वह राजा अपने राज्य से हटने के कारण दुःख पूर्ण हृदय मे वितस्तानदी के तट पर वन मे रहते हुए तप करने लगे ॥६॥ वह ग्रीष्म काल मे पञ्चाग्नि से तपन, वर्षा के समय खुले में बैठ कर भीगते और शीतकाल मे जल मे शयन करते आहार त्याग कर संयम पूर्वक तप करते थे ॥७॥

ततस्तापस्यतस्तस्यप्रावृट्कालेमहाप्लव ।
बभूवानुदिनमेघैर्वर्षद्भिरनुसन्ततम् ॥८
नदिग्विज्ञायतेपूर्वादक्षिणावानपश्चिमा ।
नोत्तरातमसासर्वमनुलिप्तमिवाभवत् ॥९
ततोऽतिपूरेणनृप मनद्याप्रेरितस्तटम् ।
प्रार्थयन्नपिनावापह्रियमाणोऽतिवेगिना ॥१०
अथदूरेजलौघेनह्रियमाणोमहीपति ।
आससादजलेरौहीसपुच्छेजगृहेचताम् ॥११
तेनप्लवेनसययावूह्यमानोमहीतले ।
इतश्चेतश्चान्धकारेआससादततटतत ॥१२
विस्तारिपङ्कमत्यर्थंदुस्तरसनृपस्तरम् ।
तथोमकृष्यमाणोऽन्यद्रम्यवनमवापस ॥१३
तत्रान्धकारेमारोहीचकर्षवसुधाधिपम् ।
पुच्छेनग्नमहाभागकृशधमनिसन्ततम् ॥१४

फिर एक दिन, जब राजा तपस्या मे रत थे, तब घोर वृष्टि होने से पृथिवी सर्वत्र जलमयी होगई थी ॥८॥ दिशाएँ अन्धकार से ढक गई थीं, इस-

लिए दक्षिणादि किसी भी दिशा का ज्ञान नहीं हो रहा था ।।९।। तब वह राजा जल के वेग से नदी तट से प्रवाहित होते हुए उस नदी के तट को नहीं पा सके ।।१०।। फिर वह जल प्रवाह मे बहने लगे, तभी उन्हे एक रौही दिखाई दी, तो उन्होंने उसकी पूँछ पकड़ ली ।।११।। फिर उस विशाल जल समूह से खिचे हुए पृथिवी के तल में पहुँचे और अँधेरे मे इधर-उधर टटोल कर किनारे को प्राप्त हुए ।।१२।। मृगी के द्वारा खिचते हुए राजा उस विस्तृत और कठिनता से पार की जाने वाली कीचड से पार होकर एक सुरम्य वन में पहुच गये ।।१३।। वह मृगी पूँछ को पकडे हुए उन महाभाग राजा को अन्धकार मे खींचने लगी ।।१४।।

तस्याश्चस्पर्शसंभूतामवापमुदमुत्तमाम् ।
सोऽन्धकारेभ्रमन्भूपोमदनाकृष्टमानस ।।१५
विज्ञायसानुरागतपृष्ठस्पर्शनतत्परम् ।
नरेन्द्र तंनृपस्यतसामृगीतमुवाचह ।।१६
किंपृष्ठं वेपथुमताकरेणस्पृशसेमम ।
अन्यथैवास्यकार्यस्यसञ्जातानृपतेगति ।।१७
नास्थानेवामनोयातनागम्याहतवेश्वर ।
किंतुत्वत्सङ्गमेविघ्नमेपलाले करोतिमे ।।१८
इतित्थं त्वावचस्तस्यामृग्याश्रजगतीपति ।
जातकौतूहलोरौहीमिदंवचनमब्रवीत् ।।१९
कात्वब्रूहिमृगीवाक्यकथमानुषवद्वदेत् ।
कश्चवलोलोयाविघ्नत्वत्सङ्गं कुरुतेमम ।।२०
अहन्तेदयिताभूपप्रागामंमुरपलावती ।
भार्य्याशताग्रमहिषीदुहितादृढधन्वन ।।२१

वह महाराज स्वराट् अँधेरे मे विचरण करते हुए मृगी के स्पर्श में कामासक्त चित्त वाले होकर अत्यन्त आनन्दित हुए ।।१५।। जब उन्होने उस मृगी के पृष्ठ भाग का उस वन प्रदेश में आकर स्पर्श किया, तब उन्हें अनुरक्त जानकर वह मृगी बोली ।।१६।। हे राजन् ! अपने कम्पित हाथो से मेरी पीठ

का इस प्रकार स्पर्श क्यों कर रहे हो ? इस स्पर्श का अन्य भाव प्रतीत हो रहा है ॥१७॥ हे राजन् ! आपकी इच्छा अयोग्य के प्रति नहीं, गमन योग्य के प्रति ही हुई है परन्तु यह लोल आपके समर्ग मे बाधक हैं ॥१८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—मृगी की यह बात सुनकर राजा ने विस्मय पूर्वक उससे कहा ॥१९॥ तुम कौन हो ? मृगी होकर भी मानवी के समान किस प्रकार बोल रही हो तथा तुम्हारे समर्ग मे बाधा देने वाले कौन हैं, यह सब मुझे बताओ ॥२०॥ मृगी बोली—हे राजन् ! मैं आपकी प्रियतमा राजमहिषी तथा सभी रानियो मे श्रेष्ठ एव दृढधन्वा की पुत्री उत्पलावती हूँ ॥२१॥

किन्नुयावरकृतकर्मयेनेमायोनिमागता ।
पतिव्रताधमपरामाचेत्थकथमीदृशी ॥२२
अहपितृगृहेबालामखीभि सहितावनम् ।
रन्तु गतादददर्शैकमृगमृग्यासमागतम् ॥२३
तत समीपवर्तिन्यामयासाताडितामृगी ।
मयात्रन्तागतान्यत्रक्रुद्ध प्राहततोमृग: ॥२४
मूढेकिमेवमत्तासिधिक्तेदौःशील्यमीदृशम् ।
आधानकालोयेनायत्वयामेविफलीकृत ॥२५
वाचश्र त्वातत्तस्त्म्यमानुषम्येवभाषत. ।
भीतातमत्र वकोऽसीत्येनायोनिमुपागत· ॥२६
तत सप्राहपुत्रोऽहमृषेर्निवृ तिचक्षुप: ।
सुतपानाममृग्यान्नुनाभिलाषोमृगोऽभवम् ॥२७
इमाचानुगत प्रेम्णावाछितश्चानयावने ।
त्वयावियोजितादुष्टे तस्माच्छापददामिते ॥२८

राजा ने कहा—तुमने ऐसा कौन-सा कर्म किया है, जिसके कारण तुम्हें इस योनि को प्राप्त होना पड़ा है ? मेरी वह भार्या तो पतिव्रता और धर्म-परायण थी फिर उसकी ऐसी दशा क्यों हुई ? ॥२२॥ मृगी ने कहा—मैं अपने पितृगृह मे, बाल्यकाल म अपनी सखियो के साथ क्रीडा के लिये वन मे गई थी. वहाँ एक मृग से युक्त मृगी को मैंने देखा ॥२३॥ फिर उनके पास

जाकर मैंने उस पर प्रहार किया तो वह मृगी भय के कारण वहाँ से चली गई, तब क्रोधित होकर वह मृग मुझसे बोला ॥२४॥ हे मूर्ख ! तेरी इस दुःशीलता को धिक्कार है, तू ऐसी मत्त क्यों हो रही है ? तूने मेरे गर्भाधान काल को विफल कर दिया है ॥२५॥ उस मृग को मनुष्य के समान बोलते देखकर मुझे अत्यन्त भय हुआ और मैंने उससे पूछा—आपको इस मृगयोनि की प्राप्ति क्यों हुई है ? ॥२६॥ मृग ने कहा—मैं निर्वृत्तिचक्षु मुनि का पुत्र सुतपा हूँ, मैंने मृगी की इच्छा से मृग रूप धारण किया है ॥२७॥ इस मृगी की अभिलाषा से, इसकी प्रीतिवश ही मैं इसका अनुगामी हुआ हू, परन्तु तूने उससे मेरा वियोग करा दिया, इसलिये तुझे शाप दूँगा ॥२८॥

मयाचोक्त तवाज्ञानादपराध कृतोमुने ।
प्रसादकुरुशापमेनभवान्दातुमर्हति ॥२९
इत्युक्त प्राहमासोऽपिमुनिरित्थमहीपते ।
नप्रयच्छामिशापतेयद्यात्मानददासिते ॥३०
मयाचोक्त मृगीनाहमृगरूपधरावने ।
लप्स्यसेऽन्यामृगीत्वन्मयिभावोनिवर्त्यताम् ॥३१
इत्युक्त कोपरक्ताक्ष सप्राहस्फुरिताधर ।
नाहमृगीत्वयेत्युक्त मृगीमूढेभविष्यसि ॥३२
ततोभृशप्रव्यथिताप्रणम्यमुनिमब्रवम् ।
स्वरूपस्थमतिक्रुद्ध प्रसीदेतिपुन पुन ॥३३
वालानभिज्ञावाक्यानातत प्रोक्तमिदमया ।
पितर्यसतिनारीभिर्व्रियतेहिपति स्वयम् ॥३४
सपितातेकथचाहवृणोमिमुनिसत्तम ।
सापराधाथवापादौप्रसीदेयानमाम्यहम् ॥३५

मैंने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! मुझसे यह अपराध अज्ञान के कारण ही हुआ है, आप मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे शापित न करें ॥२९॥ हे महाराज ! मेरी बात सुनकर वे मुझसे बोले—यदि मैं तुझसे आत्मदान कर सकूँ तो तुझे शापित नहीं करूँगा ॥३०॥ मैं मृगी नहीं हू वन में आपको दूसरी मृगी प्राप्त

हो जायगी, इसलिये मेरे प्रति अपनी इस इच्छा को शान्त कीजिये ॥३१॥ ऐसा सुनते ही उनके नेत्र क्रोध से लाल होगये और उन्होंने कम्पित होठों से कहा—तूने 'मैं मृगी नहीं हूं' यह कहा है, इसलिये तू मृगी होगी ॥३२॥ तब मैंने व्यथित चित्त से मृग रूप धारी उन मुनि को प्रणाम पूर्वक कहा—मैं बाला हूं, बात कहना भी नहीं जानती, इसीसे ऐसा कह बैठी, आप मेरे प्रति प्रसन्न हों, यदि पिता न हो तो कन्या अपने पति का वरण स्वयं करती है ॥३३-३४॥ परन्तु, मैं अपने पिता के होते हुए आपका वरण कैसे कर सकती हूं ? हे प्रभो ! मेरे अपराध को क्षमा करिये, मैं आपके चरणों में वन्दन करती हूं, आप प्रसन्न हों ॥३५॥

प्रसीदेतिप्रसीदेतिप्रणतायामहामने ।
इत्यलालप्यमानाया सप्राहमुनिपुङ्गव ॥३६
नभवत्यन्यथाप्रोक्तं ममवाक्यकदाचन ।
मृगीभविष्यसिमृतावनेऽस्मिन्नेवजन्मनि ॥३७
मृगत्वेचमहाबाहुस्तवगर्भमुपैष्यति ।
लोलोनाममुने.पुत्र सिद्धवीर्यस्यभाविनि ॥३८
जातिस्मराभवित्रीत्वतस्मिन्गर्भमुपागते ।
स्मृतिप्राप्यतथावाचमानुषोमीरयिष्यसि ॥३९
तस्मिञ्जातेमृगत्वात्त्वविमुक्तापतिनार्चिता ।
लोकानवाप्स्यसिप्राप्यायैनदुष्कृतकर्मभि ॥४०
सोऽपिलोलोमहावीर्यं पितृशत्रून्निपात्यवै ।
जित्वावसुन्धरांकृत्स्नाभविष्यतिततोमनु ॥४१
एवंशापमहंलब्ध्वात्वामृतानिर्य्यक्त्वमागता ।
त्वत्सम्पर्काच्चगर्भोऽसौममभूतोजठरेमम ॥४२

मुझे बारम्बार प्रसन्न हो, प्रसन्न हो' कहत देखकर उन मुनिश्रेष्ठ ने कहा ॥३६॥ मेरा वचन कभी मिथ्या नहीं होता तो मरने के बाद पर जन्म में इसी वन में मृगी बनोगी ॥३७॥ जब तुम मृगी होजाओगी तब किसी सिद्ध वीर्य मुनि का पुत्र लोल तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होगा ॥३८॥ जब वह लोल

तुम्हारे गर्भ में स्थित होगा, तब तुम पूर्व जन्म का स्मरण करने वाली और मनुष्यों जैसी वाणी बोलने वाली होगी ॥३९॥ उस महाबाहु लोल के उत्पन्न होने पर तुम शाप मुक्त होकर पति के द्वारा सम्मानित होगी और जिस लोक को पापी मनुष्य प्राप्त नहीं कर पाते, उसी लोक को तुम प्राप्त होगी ॥४०॥ फिर वह अत्यन्त पराक्रमी लोल ही पिता के शत्रुओं का संहार करेगा तथा समस्त पृथिवी का विजेता मनु होगा ॥४१॥ हे राजन्! इस प्रकार शापित होकर मैं तिर्यक् योनि को प्राप्त हूँ, तुम्हारे स्पर्श से मेरे जठर में वह गर्भ उत्पन्न हुआ है ॥४२॥

अतोऽब्रवीमिनास्थानेतवयातमनोमयि ।
नचाप्यगम्यागर्भस्थोलोलोविघ्नकरोऽयसौ ॥४३
एवमुक्तस्तत सोऽपिराजाप्राप्यपरामुदम् ।
पुत्रोममारीञ्जित्वेतिपृथिव्याभवितामनु ॥४४
ततस्तसुपुवेपुत्रसामृगीलक्षणान्वितम् ।
तस्मिञ्जातेचभूतानिसर्व्वाणिप्रययुर्मुदम् ॥४५
विशेपतश्चराजासौपुत्रेजाते महाबले ।
साविमुक्तामृगीशापात्प्रपलोकाननुत्तमान् ॥४६
ततस्तस्यर्षय सर्वेसमेत्यमुनिसत्तम ।
अवेक्ष्यभाविनीमृद्धिनामचक्रुर्महात्मन. ॥४७
तामसीभजमानायायोनिमातर्यजायत ।
तमसाचावृतेलोकेतामसोऽयभविष्यति ॥४८
ततःसतामसस्तेनपित्रासवर्द्धितोवने ।
जातबुद्धिरवाचेदपितरमुनिसत्तम ॥४९

इसीलिए मैंने कहा था कि आपकी मेरे प्रति अभिलाषा गम्य के प्रति है, किन्तु यह गर्भ में स्थित लोल इस कार्य में बाधक है ॥४३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यह पुत्र शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके मनु होगा, यह बात सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुए ॥४४॥ फिर उस मृगी के श्रेष्ठ लक्षण वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई उस समय सभी जीव आनन्द में मग्न हो गये ॥४५॥ इस महा-

पराक्रमी पुत्र के उत्पन्न होने से राजा को परम हर्ष हुआ और मृगी भी शाप से मुक्त होकर अत्युत्कृष्ट लोक में गई ॥४६॥ हे मुनिवर ! फिर मुनियों ने वहाँ आकर उसका भविष्य देखते हुए नामकरण किया ॥४७॥ वे बोले—विश्व के मन्वन्तर द्वारा तम जान पर तामसी योनि को प्राप्त हुई माता के गर्भ से इस बालक ने जन्म लिया, इसलिए इसका नाम 'तामस' हुआ ॥४८॥ हे मुने ! वह 'तामस' पिता के द्वारा उसी वन में वृद्धि को प्राप्त हुआ और समय पाकर बुद्धि के उदित होने पर वह पिता से बोला ॥४९॥

कस्त्वंतातकथंचाहंपुत्रोमाताचकामम ।
किमर्थमागतश्चत्वमेतन्मत्यब्रवीहिमे ॥५०
ततःपितायथावृत्तमस्वराज्यच्यावनादिकम् ।
तस्याचष्टेमहाबाहुःपुत्रस्यजगतीपतिः ॥५१
श्रुत्वातत्सकलंसोऽपिसमाराध्यचभास्करम् ।
अवापदिव्यान्यस्त्राणिसमहारागणशेषेन ॥५२
कृतास्त्रस्तानरीञ्जित्वापितुरानीयचान्तिकम् ।
अनुज्ञातान्मुमोचाथसचस्वधर्ममास्थितः ॥५३
पितापितस्यस्वाँल्लोकान्तपोयज्ञसमार्जितान् ।
विसृष्टदेहःसंप्राप्तःसम्राट्पुत्रमुदयम् ॥५४
जित्वासमस्तांपृथिवींतामसमाख्य सम्राथिव ।
तामसाख्योमनुर्भूतस्यमन्वन्तरंश्रृणु ॥५५

हे तात ! आप कौन हैं ? मैं आपका पुत्र कैसे हुआ ? मेरी माता कौन है ? आप यहाँ किस लिये आये हैं यह सब मेरे प्रति यथार्थ रूप से कहिये ।५०। तब उस महाबाहु राजा ने अपने पुत्र को अपने राज्य से च्युत होने आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ॥५१। उस तामस ने यह बात सुनकर भगवान् भास्कर की उपासना की और निवारण मन्त्र के सहित विविध प्रकार के सब दिव्यास्त्र मन्त्र पूर्वक प्राप्त किये ॥५२॥ वे अस्त्र प्रयोग में निपुण होकर अनुज्ञा हुए और शत्रुओं को अपने पिता के पास लाकर उनकी आज्ञा से मुक्त कर दिया इस प्रकार वे अपने धर्म की रक्षा में तत्पर हुए ॥५३॥ फिर उनके पिता ने

तुम्हारे गर्भ में स्थित होगा, तब तुम पूर्व जन्म का स्मरण करने मनुष्यों जैसी वाली बोलने वाली होगी ॥३६॥ उस महाबाहु को होने पर तुम शाप मुक्त होकर पति के द्वारा सम्मानित होगी और को पापी मनुष्य प्राप्त नहीं कर पाते, उसी लोक को तुम प्राप्त हो‹ फिर वह अत्यन्त पराक्रमी लोल ही पिता के शत्रुओं का संहार क समस्त पृथिवी का विजेता मनु होगा ॥४१॥ हे राजन् ! इस प्रक होकर मैं तिर्यक् योनि को प्राप्त हू, तुम्हारे स्पर्श से मेरे जठर मे उत्पन्न हुआ है ॥४२॥

अतोब्रवोमिनास्थानेतवयातमनोमयि ।
नचाप्यगम्यागर्भस्थोलोलोविघ्नकरोत्यसौ ॥४३
एवमुक्तस्ततः सोऽपिराजाप्राप्यपरामुदम् ।
पुत्रोममारीञ्जित्वेतिपृथिव्याभवितामनु. ॥४४
ततस्तसुषुवेपुत्रसामृगीलक्षणान्वितम् ।
तस्मिञ्जातेचभूतानिसर्व्वाणिप्रययुर्मुदम् ॥४५
विशेषतश्चराजासौपुत्रेजाते महावने ।
साविमुक्तामृगीशापात्प्रपलोकाननुत्तमान् ॥४६
ततस्तस्यर्षय सर्वेसमेत्यमुनिसत्तम ।
अवेक्ष्यभाविनीमृद्धिनामचक्रुर्महात्मन ॥४७
तामसीभजमानायायोनिमातर्यजायत ।
तमसाचावृतेलोकेतामसोऽयभविष्यति ॥४८
ततःसतामसस्तेनपित्रासवर्द्धितोवने ।
जातवुद्धिरुवाचेदपितरमुनिसत्तम ॥४९

इसीलिए मैंने कहा था कि आपकी मेरे प्रति अभिलाषा गम्य के प्रति है, किन्तु यह गर्भ में स्थित लोल इस कार्य में बाधक है ॥४३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यह पुत्र शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके मनु होगा, यह बात सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुए ॥४४॥ फिर उस मृगी के श्रेष्ठ लक्षण वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई उस समय सभी जीव आनन्द में मग्न हो गये ॥४५॥ इस महा-

६७–रैवत मन्वन्तर

पचमोपिमनुर्ब्रह्मन्रैवतोनामविश्रुत ।
तस्योत्पत्तिविस्तरश श्रृणुष्वकथयामिते
रासीन्महाभागऋतवागितिविश्रुत ।
तस्यापुत्रस्यपुत्रोऽभूद्रेवत्यन्तेमहात्मन ॥२
सतस्यविधिवच्चक्रेजातकर्मादिका क्रिया
तथोपनयनादीश्चसचाशीलोऽभवन्मुने ॥३
यत प्रभृतिजातोऽसौततःप्रभृतिसोप्यृपि ।
दीर्घरोगपरामर्शमवापमुनिपुङ्गव ॥४
मातातस्यपरामार्तिकुष्ठरोगादिपीडिना ॥३
जगामसपिताचास्यचिन्तयामासदु खित ॥५
किमेतदितिसोऽप्यस्यपुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मति ।
जग्राहभार्यामन्यस्यमुनिपुत्रस्यसमुखीम् ॥६
ततोविपण्णमनसाऋतवागिदमुक्तवान् ।
अपुत्रतामनुष्याणाश्रेयसेनकुपुत्रता ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब रैवत नाम के प्रसिद्ध पांचवें मनु का जन्म तुमसे कहता हू, उसे श्रवण करो ॥१॥ ऋतवाक् नामक एक प्रसिद्ध ऋषि थे, वह प्रथम तो पुत्रहीन थे, फिर रेवती नक्षत्र के शेष मे उनको एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥२॥ उन ऋषि ने अपने उस पुत्र का विधिवत् जातकर्म, उपनयन आदि सस्कार किया, परतु वह पुत्र शीलवान् नहीं था ॥३॥ हे मुने ! उस बालक का जन्म होने के समय स ही वह ऋषि दीर्घ काल व्यापी रहने वाले रोग से ग्रसित होगये ॥४॥ उसकी माता भी कष्ट के कारण अत्यन्त कष्ट भोगने लगी, तब उसके पिता ने दु खित चित्त से विचार किया ॥५॥ 'ऐसा किस कारण हुआ ?' इसके पश्चात् उनके उस विपरीत मत वाले पुत्र ने एक मुनि के सामने ही, उनकी पत्नी का हरण कर लिया ॥६॥ इससे ऋतवाक्

भी अपने पुत्र को सुख देकर सुखपूर्वक देह-त्याग किया और यज्ञादि द्वारा संचित पुण्य के प्रभाव से उच्च लोकों को प्राप्त हुए ।।५४।। सम्पूर्ण पृथिवी के विजेता होकर तामस अपने नामानुसार मनु हुए, अब उनके मन्वन्तर के विषय में श्रवण करो ।।५५।।

येदेवास्तत्पतिर्यश्चदेवेन्द्रोयेतथर्षयः ।
येपुत्राश्चमनोस्तस्यपृथिवीपरिपालकाः ।।५६
सत्यास्तथान्येसुधियःसुरूपाहरयस्तथा ।
एतेदेवगणास्तत्रसप्तविंशतिकामुने ।।५७
महाबलोमहावीर्य्यं शतयज्ञोपलक्षित ।
शिखिरिन्द्रस्तथातेषादेवानामभवद्विभु ।।५८
ज्योतिर्धर्मापृथु काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वलकस्तथा ।
पीवरश्चतथाब्रह्मन्सप्तसप्तर्षयोऽभवन् ।।५९
नर क्षान्ति शान्तदान्तजानुजङ्घादयस्तथा ।
पुत्रास्तुतामसस्यासन्राजान सुमहाबला ।।६०
इत्येतत्तामसस्विप्रमन्वन्तरमुदाहृतम् ।
य पठेच्छृणुयाद्वापितमसानबाध्यते ।।६१

उस मन्वन्तर के देवता, इन्द्र, ऋषि और मनु के जिन पुत्रों ने पृथिवी की रक्षा की उनका वृत्तान्त सुनो ।।५६।। हे मुने ! इस मन्वन्तर में सत्य, सुधी, सुरूप और हरि यह चार प्रकार के देवता गण हुए और प्रत्येक गण में सत्ताईस देवता हुए ।।५७।। महाबली और पराक्रमी 'शिखी' नामक इन्द्र हुए, जो सौ यज्ञ करके उन देवताओं के स्वामी बने ।।५८।। उस मन्वन्तर में जो सप्तर्षि हुए उनके नाम ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वलक और पीवर हुए ।।५९।। उन मनु के नर, क्षान्ति, शान्त, दान, जानु, जंघा इत्यादि महाबली एवं पराक्रमी पुत्र हुए ।।६०।। इस प्रकार तामस मन्वन्तर का वृत्तान्त यथार्थ रूप में आपके प्रति कहा है, इसको पढ़ने या सुनने वालों को अज्ञानान्धकार बाधा नहीं देता ।।६१।।

६७–रैवत मन्वन्तर

पचमोपिमनुर्ब्रह्मन्रैवतोनामविश्रुत ।
तस्योत्पत्तिंविस्तरत्त श्रृणुष्वकथयामिते ॥१
गसीन्महाभागऋतवागितिविश्रुत ।
तस्यापुत्रस्यपुत्राऽभूद्रेवत्यन्तेमहात्मन ॥२
मतस्यविधिवच्चक्रे जातकर्मादिका क्रिया ।
तथोपनयनादीश्चसचाशीलोऽभवन्मुने ॥३
यत प्रभृतिजातोऽसीतत प्रभृतिसोप्यृपि ।
दीर्घरोगपरामर्शमवापमुनिपुङ्गव ॥४
मातातस्यपरामार्तिकुष्ठरोगादिपीडिता ॥२
जगामसपिताचास्यचिन्तयामासदु खित ॥५
किमेतदितिमोऽप्यस्यपुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मति ।
जग्राहभार्यामन्यस्यमुनिपुत्रस्यसमुग्वीम् ॥६
ततोविपण्णमनसाऋतवागिदमुक्तवान् ।
अपुत्रतामनुष्याणाश्रे यसेनकुपुत्रता ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अब रैवत नाम के प्रसिद्ध पाँचवें मनु का जन्म तुमसे कहता हूँ, उसे श्रवण करो ॥१॥ ऋतवाक् नामक एक प्रसिद्ध ऋषि थे, वह प्रथम तो पुत्रहीन थे, फिर रेवती नक्षत्र के अंत में उनको एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥२॥ उन ऋषि ने अपने उस पुत्र का विधिवत् जातकर्म, उपनयन आदि संस्कार किया, परन्तु वह पुत्र शीलवान् नहीं था ॥३॥ हे मुने ! उस बालक का जन्म होने के समय से ही वह ऋषि दीर्घ काल व्यापी रहने वाले रोग से ग्रसित होगये ॥४॥ उसकी माता भी कष्ट के कारण अत्यन्त कष्ट भोगने लगी, तब उसके पिता ने दुःखित चित्त से विचार किया ॥५॥ 'ऐसा किस कारण हुआ ?' इसके पश्चात् उनके उस विपरीत मत वाले पुत्र ने एक मुनि के सामने ही, उनकी पत्नी का हरण कर लिया ॥६॥ इससे ऋतवाक्

अति वा अत्यन्त दुःख हुआ और वे कुपुत्र से तो पुत्रहीन रहना ही ठीक है, ऐसा सोचने लगे ॥७॥

कुपुत्राहृदयायासःसर्वदाकुरुतेपितुः ।
मातुश्चस्वर्गसंस्थाश्चस्वपितॄन्पातयत्यधः ॥८
सुहृदानोपकारायपितॄणांचनतृप्तये ।
पित्रोर्दुःखायधिग्जन्मतस्यदुष्कृतकर्मणः ॥९
धन्यास्तेतनयायेषांसर्वलोकाभिसम्मता ।
परोपकारिणः शान्ता साधुकर्मण्यनुव्रता ॥१०
अनिर्वृततयामन्दपरलोकपराङमुखम् ।
नरकायनसद्गत्यैकुपुत्रालम्बिजन्मन ॥११
करोतिसुहृदादैन्यमहितानांतथामुदम् ।
अकालेचजरापित्रो कुसुत कुरुतेध्रुवम् ॥१२
एवंसत्यन्तदुष्टस्यपुत्रस्यचरितैर्मुनि ।
दह्यमानमनोवृत्तिर्वृत्तगर्गमपृच्छत ॥१३
सुव्रतेनपुरावेदागृहीताविधिवन्मया ।
समाप्यवेदान्विधिवत्कृतादारपरिग्रह ॥१४
सदारेणक्रियाःकार्या श्रौताःस्मार्त्तावषट्क्रिया ।
नमेन्यूना कृता काश्चिद्यावदद्यमहामुने ॥१५

क्योंकि कुपुत्र सदा ही माता पिता के हृदय को पीड़ित करता रहता है और स्वर्गवासी पितरों को भी वहाँ से पतित करता है ॥८॥ उसके द्वारा सुहृदों को भी कोई उपकार नहीं हो पाता और न पितरों की ही तृप्ति होती है, माता-पिता के लिये दुःख के कारण रूप ऐसे पुत्र को धिक्कार है ॥९॥ जिसकी संतति सब के द्वारा सत्कारित, परोपकार रत, सत्यकर्म वाली और शान्त प्रकृति की है, वही कृतकृत्य हैं ॥१०॥ हमारा जन्म परलोक से विमुख, कुपुत्र का आश्रयी और नरक के निमित्त ही हुआ है, श्रेष्ठ गति के लिये नहीं हुआ ॥११॥ कुपुत्र सदा सुहृदों को दीन, अपकार करने वालों को प्रसन्न और माता पिता को वृद्धावस्था प्राप्त कराने वाला है ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—

इस प्रकार दुश्चरित्र पुत्र के विपरीत आचरण से मन में दग्ध होते हुए उन ऋषि ने गर्ग ऋषि से सम्पूर्ण वृत्तान्त कह कर उनसे पूछा ॥१३॥ ऋतवाक् बोले—मैंने श्रेष्ठ व्रतों का अनुष्ठान करते हुए विधि सहित वेदों का अध्ययन किया है और इसके पश्चात् विधि पूर्वक स्त्री का पाणिग्रहण किया है ॥१४॥ श्रौत, स्मार्त और वषट्कार रूप जो कर्म पत्नी के सहित करने का निर्देश है, वह सब मैंने किये है और उन व्रतों के अनुष्ठान में त्रुटि नहीं होने दी है ॥१५॥

गर्भाधानविधानेननकामननुरध्यता ।
पुत्रार्थजनितश्चायंपुन्नाम्नोबिभ्यतामुने ॥१६
सोयंकिमात्मदोषेणममदोषेणवामुने ।
अस्मद्दु:खावहोजातोदौःशील्याद्बन्धुशोकद ॥१७
रेवत्यन्तेमुनिश्रेष्ठजातोऽयंतनयस्तव ।
तेनदु:खायतेदुष्टेकालेयस्मादजायत ॥१८॥
नतेऽपचारोनैवास्यमातुर्नापिकुलस्यते ।
तस्यदौःशील्यहेतुत्वरेवत्यन्तमुपागतम् ॥१९
यस्मात्ममैवपुत्रस्यरेवत्यन्तसमुद्भवम् ।
दौःशील्यमेतस्मातस्मात्पततामाशुरेवती ॥२०
तेनैवंव्याहृतेशापेरेवत्यृक्षं पपातह ।
पश्यत:सर्वलोकस्यविस्मयाविष्टचेतस: ॥२१

पुन्नाम नरक से डर कर और उससे मुक्त होने के निमित्त मैंने विधिवत् गर्भाधान द्वारा इस पुत्र को जन्म दिया है, कामासक्त होकर इस पुत्र की उत्पत्ति नहीं की है ॥१६॥ हे मुने ! फिर भी यह बालक हमारे लिये दुःखदायी, बन्धुओं को शोक प्रदान करने वाला तथा बुरे स्वभाव का उत्पन्न हुआ है, ऐसा आत्मदोष से या मेरे दोष से हुआ है ? ॥१७॥ गर्गजी ने कहा—हे मुनिवर ! तुम्हारा पुत्र रेवती के अन्त में उत्पन्न हुआ है, उस दुष्ट काल में जन्म लेने के कारण ही, यह तुम्हारे लिये दुःखदायी हुआ है ॥१८॥ यह तुम्हारे, तुम्हारी पत्नी के या तुम्हारे वंश के धर्म के व्यतिक्रम से इस प्रकार का नहीं हुआ, इसके दुष्ट स्वभाव का कारण रेवती का अन्तिम काल ही है ॥१९॥ ऋतवाक्

बोले—जिस रेवती के अन्त मे उत्पन्न होन के कारण मेरा एकमात्र पुत्र ऐसे बुरे स्वभाव का हुआ है, उस रेवती का शीघ्र ही पतन हो ॥२०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋतवाक् ऋषि ने जब ऐसा शाप दिया, तब सबके सामने उस रेवती नक्षत्र को गिरता हुआ देखकर सभी आश्चर्यचकित होगये ॥२१॥

रेवत्यक्षं चपतितकुमुदाद्रौसमन्ततः ।
भासयामाससहसावनकन्दरनिर्झरान् ॥२२॥
कुमुनाद्रिश्चतत्पातात्ख्यातोरैवतकोऽभवत् ।
अनीवरम्य सर्वस्यापृथिव्यापृथिवीधरः ॥२३
तस्यर्क्षस्यतुयाकान्तिर्जातापङ्कजिनीसरः ।
ततोजज्ञेतदाकन्याक्रूपेणातीवशोभना ॥२४
रेवतीकान्तिसम्भूतातादृष्ट्वाप्रमुचोमुनि ।
तस्यानामचकारेत्थरेवतीनामभार्गुरे ॥२५
पोपयामामचैवेतास्वाश्रमाभ्यासम्भवाम् ।
प्रमुच समहाभागस्तस्मिन्नेवमहाचले ॥२६
तातुयौवनिनीदृष्ट्वाकन्यकारूपशालिनीम् ।
समुनिश्चिन्तयामामकोऽस्याभर्ताभवेदिति ॥२७
एवंचिन्तयतस्तस्ययय़ौकालोमहान्मुने ।
नचाससादसदृशवरतस्यामहामुनिः ॥२८

कुमुद पर्वत मे सहसा गिरकर उस रेवती नक्षत्र ने उसकी सभी दिशाएँ वन, कन्दरा आदि को प्रकाशित कर दिया ॥२२॥ पृथिवी भर मे अत्यन्त रमणीय वह कुमुद पर्वत भी रेवती के गिरने से रैवतक के नाम से हुआ ॥२३॥ उसकी कांति से कमल युक्त सरोवर हुआ और उस सरोवर से एक अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई ॥२४॥ उस कन्या का रेवती से उत्पन्न हुई देखकर प्रमुचमुनि ने उसका नाम रेवती रखा ॥२५॥ वह महाभाग ऋषि रैवतक पर्वत मे अपने आश्रम के निकट उत्पन्न हुई कन्या का पालन करने लगे ॥२६॥ वह रूपवती कन्या को युवावस्था मे सम्पन्न देखकर मुनि सोचने लगे कि इसका

पति कौन होगा ॥२७॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए उन्हें बहुत दिन व्यतीत होगये, परन्तु उसके योग्य कोई भी वर दिखाई न दिया ॥२८॥

ततस्तस्यावरंद्रष्टुमग्निमप्रष्टुमुद्योमुनि. ।
विवेशवह्निशालावंपृष्टस्तप्राहहव्यभुग् ॥२९
महाबलोमहावीर्यं प्रियवाग्धर्मवत्सल ।
दुर्गमोनामभवितामर्त्ताह्यस्यामहीपतिः ॥३०
अनन्तरञ्चमृगयाप्रसङ्गेनागतोमुने ।
तस्याश्रमपदं धीमान्दुर्गम मनराधिप ॥३१
प्रियव्रतान्वयभवोमहाबलपराक्रमः ।
पुत्रोविक्रमशीलस्यकालिन्दीजठरोद्भवः ॥३२
सप्रविश्याश्रमपदं तातन्वीजगतीपति· ।
अपश्यमानस्तमृषिंप्रियेत्यामन्त्र्यपृष्टवान् ॥३३
क्वगतोभगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गव ।
तप्रणेतुमिहेच्छामितत्त्वप्रब्रूहिशोभने ॥३४
अग्निशालागतोविप्रस्तच्छुत्वातन्यभाषितम् ।
प्रियेत्यामन्त्रणंचैवनिश्चक्रामत्वरान्वितः ॥३५
सददर्शमहात्मानंराजानंदुर्गममुनि ।
नरेन्द्रचिह्नसहितप्रश्रयावनतपुरः ॥३६॥

तब अग्नि से पूछने के लिये अग्निशाला में गये, इस पर अग्नि ने उनसे कहा ॥२९॥ इस कन्या के पति महाबली, पराक्रमी, प्रियवक्ता, धर्मवत्सल दुर्गम नामक महीपाल होंगे ॥३०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुने ! इसके पश्चात् स्वायम्भुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत के वंश में उत्पन्न हुए विक्रमशील नरेश की कालिन्दी नाम की रानी से उत्पन्न हुए अत्यन्त पराक्रमी वह राजेन्द्र दुर्गम मृगया के पीछे मुनि के उस आश्रम में पहुँचे ॥३१-३२॥ उन्होंने आश्रम में ऋषि को न देखकर उस कृशाङ्गी कन्या से ही उनके विषय में 'प्रिये' कहकर पूछा ॥३३॥ हे सुन्दरी ! वह मुनिवर कहाँ गये हैं मुझे यह बताओ, क्योंकि उन्हें प्रणाम करने की इच्छा से उपस्थित हुआ हूँ ॥३४॥ श्री मार्कण्डेयजी ने

कहा—वह विप्रश्रेष्ठ अग्निशाला में गये हुए थे, वह राजा का वचन और 'प्रिये' सम्बोधन सुनकर अग्निशाला से बाहर निकले ॥३५॥ और उन्होंने राज-लक्षण से विभूषित और विनयनत महाराज दुर्गम को देखा ॥३६॥

तस्मिन्दृष्टे तत शिष्यमुवाचमतुगौतमम् ।
गौनमानीयताशीघ्रमर्घोऽस्यजगतीपते ॥३७
एकस्तावदयभूपश्चिरकालादुपागत ।
जामाताचविशेषेणयोग्योऽघस्यमतोमम ॥३८
तत सचिन्तयामासराजाजामातृकारणम् ।
विवेदचनतन्मौनोजगृहेऽर्घंचतन्नृप. ॥३९
तमासनगतविप्रोगृहीतार्घमहामुनि ।
स्वागतप्राहराजेन्द्रमपितेकुशलगृहे ॥४०
कोशेवलेऽथमित्रेपुभृत्यामात्येनरेश्वर ।
तथात्मनिमहाबाहोयत्रसर्वप्रतिष्ठितम् ॥४१
पत्नीचतेकुशलिनीयतएवानुतिष्ठति ।
पृच्छाम्यस्यास्ततोनाहकुशलिन्योऽपरास्तव ॥४२

उन्हे देखकर ऋषि ने अपने गौतम नामक शिष्य को अर्घ्य लाने की आज्ञा दी ॥३७॥ उन्होने कहा कि एक तो बहुत समय के पश्चात् यहाँ इनका आगमन हुआ है, दूसरे यह जामाता भी हैं, इसलिये यह अर्घ्यदान के उचित पात्र हैं ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋषि द्वारा जामाता कहे जाने पर राजा सोचने लगे कि क्यो यह शब्द कहा, परन्तु वह कुछ समझ न पाये और मौन रह कर अर्घ्य ग्रहण किया ॥३९॥ अर्घ्य ग्रहण के पश्चात् वे श्रेष्ठ आसन पर बैठे तब उनसे महामुनि ने कहा—हे राजन् ! आप यहाँ सुख पूर्वक तो आ सके ? आपका कोशागार तो ठीक है ? आपकी सेना, मित्र, सेवक और मन्त्रिगण तो कुशल पूर्वक हैं ? आप सबके आश्रय स्थान भी सकुशल तो हैं ? ॥४०-४१॥ आपकी पत्नी यहाँ कुशल पूर्वक रह रही है, इसीलिये मैंने उस विषयक कुशल प्रश्न नहीं किया, इसके अतिरिक्त आपकेपुर की अन्य ललनाएँ तो कुशल से है ? ॥४२॥

त्वत्प्रसादादकुशलंनक्वचिन्ममसुव्रत ।
जातकौतूहलश्चास्मिममभार्य्याऽत्रकामुने ॥४३
रेवतीसुमहाभागात्रैलोक्यस्यापिसुन्दरी ।
तवभार्य्यावरारोहातात्वंराजन्नवेत्सिकिम् ॥४४
सुभद्राशान्ततनयाकावेरीतनयाविभाम् ।
सुराष्ट्रजासुजातांचकदम्बांचवरूथजाम् ॥४५
विपाठानन्दिनीचैववेद्मिभार्यागृहेद्विज ।
तिष्ठन्तमेनभगवन्रेवतीवेद्मिकान्वियम् ॥४६
प्रियेतिसाम्प्रतंयेयत्त्वयोक्तावरवर्णिनी ।
किंविस्मृततेभूपालश्लाघ्येयंगृहिणीतव ॥४७
सत्यमुक्तंमयाकिन्तुभावोदुष्टोनमेमुने ।
नात्रकोपंभवान्कर्तुंमर्हत्यस्मानुयाचितः ॥४८
यत्त्वत्रदोषोपिभूपालनभावस्तवदूषितः ।
व्याजहारभवानेनतद्वह्निनानृपचोदितः ॥४९

राजा ने कहा—हे सुव्रत ! महामुने ! आपकी कृपा से मेरी सब प्रकार से कुशल है, परन्तु, यह मेरी पत्नी कौन-सी है, इसे जानने के लिये मुझे कुतूहल हुआ है ॥४३॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! रेवती नाम की तीनों लोकों में अद्वितीय सुन्दरी आपकी पत्नी है, क्या आप उसे नहीं जानते ? ॥४४॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा ॥४५॥ विपाठा और नन्दिनी यह मेरी पत्नियाँ हैं, इन्हें मैं अच्छे प्रकार जानता हूँ, क्योंकि वह मेरे ही घर में रहती हैं, परन्तु मैं अपनी रेवती नाम की पत्नी को नहीं जानता कि वह कौन-सी है ? ॥४६॥ ऋषि ने कहा—वर को वरण करने के लिये तत्पर जिस कन्या को आपने 'प्रिये' कहा, वही आपकी श्लाघनीय पत्नी है, हे राजन् ! क्या तुम उसे भूल गये हो ? ॥४७॥ राजा ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! आपका कथन सत्य है, परन्तु मेरे द्वारा किये गए 'प्रिये' सम्बोधन में मेरा कोई दुष्ट भाव नहीं था, इसलिये आप मुझ पर क्रोध न करें ॥४८॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! आपका दुष्ट भाव नहीं था,

यह सत्य ही है, परन्तु, आपके द्वारा यह सम्बोधन अग्नि की ही प्रेरणा से हुआ है ।।४९।।

मयापृष्टोहुतवह कोऽस्याभर्त्तेतिपार्थिव ।
भवितातेनचाप्युक्तोभवानेवाद्यवैवर ।। ५०
तद्गृह्यतामयादत्तातुभ्यकन्यानराधिप ।
प्रियेत्यामन्त्रिताचेयविचारकुरुपेकथम् ।।५१
ततोऽसावभवन्मौनीतेनोक्त पृथिवीपतिः ।
ऋषिस्तथोद्यत कर्तु तस्यावैवाहिकविधिम् ।।५२
तमुद्यतसापितरविवाहायमहामुने ।
उवाचकन्यायत्किंचित्प्रश्रयावनतानना ।।५३
यदिमेप्रीतिमास्तातप्रसादकर्तु मर्हसि ।
रेवत्यृक्षेविवाहमेतत्करोतुप्रसादित- ।।५४
रेवत्यृक्षनवैभद्र चन्द्रयोगिव्यवस्थितम् ।
अन्यानिसन्तिऋक्षाणिसुभ्रु वैवाहिकानिते ।।५५
ताततेनविनाकालोविफल प्रतिभातिमे ।
विवाहोविफलेकालेमद्विधाया कथभवेत् ।।५६

हे भूपते ! मैंने अग्नि से इसके पति के विषय मे पूछा था तब अग्नि ने आपके ही इसके पति होने की बात कही थी ।।५०।। इसलिये, हे राजन् आपने जिसके प्रति 'प्रिय' कहा है, वह कन्या मैं आपको प्रदान करता हूँ आप इससे विचार क्यों करते हैं, इसे ग्रहण करिये ।।५१।। मार्कण्डेयजी ने कहा—ऋषि के वचन सुनकर राजा मौन हो गये और ऋषि भी विवाह संस्कार के कार्य सम्पादन मे तत्पर हुए ।।५२।। जब कन्या ने मुनि को विवाह करने मे तत्पर देखा, तब उसने विनय पूर्वक निवेदन किया ।।५३।। हे तात आपकी मुझ मे प्रीति है और यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरा विवाह संस्कार रेवती नक्षत्र मे सम्पन्न करें ।।५४।। ऋषि ने कहा—रेवती नक्षत्र चन्द्र योग मे अवस्थित नहीं है, परन्तु, विवाह-कार्य मे श्रेष्ठ अन्य सभी नक्षत्र विद्यमान हैं ।।५५।। कन्या ने कहा—हे तात ! रेवती नक्षत्र से वर्जित समय मे

विषय मे विकल जान पड़ता है, मेरे जैसी कन्या का विवाह किस समय मे कैसे होगा ? ॥५६॥

ऋतवागिति विख्यातस्तपस्वी रेवतीऽभनि ।
चकार कोपकं द्धे नतेन्दर्श विनिपातितम् ॥५७
मयाचास्मैप्रनिजाताभार्येतिमदिरेक्षणा ।
नचेच्छसिविवाहत्वमस्टन समागतम् ॥५८
ऋतवाक्समुनिस्तातकिमेवनतवास्तप ।
नत्वयाममतातेनब्रह्मबन्धो.मुनास्मिकिम् ॥५६
ब्रह्मबन्धो मुनानत्ववान्नैनैवनपस्विन ।
मुनात्वममयोदेवान्वक्तुं मन्यान्समुत्महे ॥६०
तपस्वीयदिमेतानस्नत्विमृक्षमिददिवि ।
समारोप्यविवाहोमेनहृक्षेक्रियनेनतु ॥६१
एवमवनुभद्रन्नेभद्र प्रीनिमनोभव ।
आरोपयामीन्दुमार्गे रेवत्यृक्षकृतेनव ॥६२
ननस्तप प्रभावेणरेवत्यक्षमहामनि: ।

नक्षत्र को मैं चन्द्रमार्ग मे स्थित किये देता हूँ ॥६२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! तदन्तर उन महर्षि ने अपने तप के बल से रेवती नक्षत्र को पहिले के ही समान चन्द्रमा मे स्थित कर दिया ॥६३॥

यथापूर्वन्तथाचक्रेसोमयोगिद्विजोत्तम ॥६३
विवाहचैवदुहितुर्विधिवन्मन्त्रयोगिनम् ।
निष्पाद्यप्रीतिमान्भूयोजामातरमथाब्रवीत् ॥६४
औद्वाहिकतेभूपालकथ्यताङ्किददाम्यहम् ।
दुर्लभ्यमपिदास्यामिममाप्रतिहततप ॥६५
मनो स्वायम्भुवस्याहमुत्पन्न मन्ततोमुने ।
मन्वन्तराधिपतुत्र त्वत्प्रसादादवृणोम्यहम् ॥६६
भविष्यत्येषतेकामोमनुस्त्वत्तनयोमहीम् ।
सकलाभोक्ष्यतेभूपधर्मविच्चभविष्यति ॥६७
तामादायततोभूप स्वमेवनगर ययौ ।
तस्मादजायतसुतारेवत्यारैवतोमनु ॥६८
समेत सकलैर्धर्मैर्मानवैरपराजित ।
विज्ञाताखिलशास्त्रार्थोवेदविद्यार्थशास्त्रवित् ॥६९
तस्यमन्वन्तरेदेवान्मुनिदेवेन्द्रपार्थिवान् ।
कथ्यमानान्मयाब्रह्मन्निबोधसुसमाहित ॥७०

और वैवाहिक मन्त्रो से अपनी पुत्री का विवाह सस्कार सम्पन्न करके अत्यन्त प्रसन्न मन से अपने जामाता के प्रति कहा ॥६४॥ ऋषि बोले—हे राजन् ! विवाह मे दान स्वरूप तुम्हे क्या प्रदान करूँ, यह मुझे बताओ, तुम यदि कोई दुर्लभ वस्तु भी मांगोगे तो मै अपनी तपस्या के प्रभाव से उसे दूँगा ॥६५॥ राजा ने कहा—हे मुने ! मैं स्वायभुवमनु के वश मे उत्पन्न हुआ हूँ, मैं आपकी कृपा से मन्वन्तराधिपति पुत्र का प्राप्त करूँ, यही चाहता हूँ ॥६६॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी, तुम्हारा पुत्र धर्मज्ञ तथा मनु होकर सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करने वाला होगा ॥६७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तदनन्तर वह राजा अपनी पत्नी को साथ लेकर अपने नगर को गये

और समय पाकर उस रेवती के गर्भ से रैवत मनु उत्पन्न हुए ॥६८॥ यह धर्मवाता, अजेय, शास्त्रों में पारगामी तथा वेद विद्या और अर्थ शास्त्र में भी पारगत हुए ॥६९॥ हे ब्रह्मन् ! अब उनके मन्वन्तर के देवता, ऋषि, इन्द्र और राजाओं का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ॥७०॥

सुमेधसस्तत्रदेवास्तथाभूतनयाद्विज ।
वैकुण्ठश्चामितानाश्चचतुर्दशचतुर्दश ॥७१
तेषांदेवगणानानुचतुर्णामपिचेश्वर ।
नाम्नाविभुरभूदिन्द्र शतयज्ञोपलक्षव ॥७२
हिरण्यलोमावेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापर ।
वेदबाहु सुधामाचपर्जन्यश्चमहामुनि ॥७३
वसिष्ठश्चमहाभागोवेदवेदागपारग ।
एतेसप्तर्षयश्चासन्रैवतस्यान्तरेमनो ॥७४
बलबन्धुर्महावीर्यं सुयष्टव्यस्तथापर ।
सत्यकाद्यास्तथैवासन्रैवतस्यमनो सुता ॥७५
रैवतान्तास्तुमनव कथितायेमयातव ।
स्वायम्भुवाश्रयाह्येतेस्वारोचिषमृतेमनुम् ॥७६
(यएपाञ्शृणुयान्नित्यपठेद्वान्वानमूनमम् ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्योलोकप्राप्नोत्यभीप्सितम ॥७७

६८—चाक्षुप मन्वन्तर

इत्येतत्कथिततुभ्यपञ्चममन्वन्तरमया ।
चाक्षुपस्यमनोःषष्ठ श्रूयतामिदमन्तरम् ।।१
अन्यजन्मनिजातोऽसौचक्षुप परमेष्ठिन ।
चाक्षुपत्वमतस्तस्य जन्मन्यस्मिन्नपिद्विज ।।२
(अनमित्रस्य राजर्षेर्भद्राभार्यामहात्मन ।
जज्ञे सुतसुविद्वासशुचिजातिस्मर विभुम् ।।३)
जातमातानिजोत्सङ्गे स्थितमुल्लाप्यतपुन ।
परिष्वजतिहार्देनपुनरुल्लापयत्यथ ।।४
जातिस्मर सजातोवैमातुरुत्सङ्गमास्थित ।
जहासततदामातासक्रुद्धावाक्यमब्रवीत् ।।५
भीतास्मिकिमिद वत्सहासोयद्वदनेतव ।
अकालबोध सञ्जात कच्चित्पश्यसिशोभनम् ।।६
(तन्मातुर्वचनश्रुत्वाप्रहस्येदमथाब्रवीत्) ।
मामत्तमिच्छतिपुरोमार्जारीकिनपश्यसि ।
अन्तर्द्धानगताचेयद्वितीयाजातहारिणी ।।७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! मैंने तुम्हारे प्रति इन पाँच मन्वन्तरो का वर्णन किया, अब छटवें चाक्षुप मनु के मन्वन्तर के विषय में कहता हूँ, श्रवण करो ।।१।। अन्य जन्म में परमेष्ठी ब्रह्माजी के चक्षु से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम इस जन्म से भी चाक्षुप हुआ था ।।२।। महात्मा अनमित्र की भद्रा नामक पत्नी के गर्भ से विद्वान्, पवित्र, जातिस्मर और विभु गुण से सम्पन्न एक पुत्र की उत्पत्ति हुई) ।।३।। माता ने आनन्द मे भर कर उस उत्पन्न हुए पुत्र का लाड पूवक आलिंगन किया और फिर वह उसका आदर करने लगी ।।४।। इस पर माता की गोदी म स्थित हुए वह जातिस्मर पुत्र हँस पडा तो माता ने उससे क्रोध पूर्वक कहा ।।५।। हे वत्स ! तुम्हारे मुख की इस हँसी को देखकर मैं डर गई ह तुम्ह इस शिशुकाल मे ज्ञान को प्राप्त होकर

क्या कुछ तुम्हें दिखाई देता है ? ॥६॥ (माता की बात सुन कर पुत्र हँस कर बोला) पुत्र ने कहा—यह जो मार्जारी मुझे भक्षण करने की इच्छा से सामने खड़ी है, इसे क्या तुम नहीं देख सकती ? गुप्त रूप से यह जातहारिणी यहाँ स्थित है, इसे क्या तुम नहीं जान सकती ? ॥७॥

पुत्रप्रीत्या च भवती महार्द्रा मामवेक्षती ॥
उत्थाप्योत्थाप्य बहुशः परिष्वज्य निमायत ॥८
उद्भूतपुलका स्नेहसम्भवास्राविलेक्षणा ।
ततो ममागतो हासः शृणु चाप्यत्र कारणम् ॥९
स्वार्थे प्रसक्ता मार्जारी प्रसक्ता मामवेक्षते ।
तथान्तर्द्धानगा चैव द्वितीया जातहारिणी ॥१०
स्वार्थाय स्निग्धहृदये यथैवैते ममोपरि ।
प्रवृत्ते स्वार्थमास्थाय तथैव प्रतिभासि मे ॥११
किन्तु मदुपभोगाय मार्जारी जातहारिणी ।
त्वन्तु क्रमेणोपभोग्यमत्तः फलमभीप्ससि ॥१२
न मां जानासि कोऽप्येष न चैवोपकृतं मया ।
सङ्गतं नातिरात्रीणं पञ्चसप्तदिनात्मकम् ॥१३
तथापि स्निग्धनेत्रासि परिष्वजसि रोदिषि ।
तातेति वत्स भद्रेति निर्व्यलीकं वदस्यपि ॥१४

पाँच या सात दिन माता-पुत्र रूप में ही मिलन हुआ है ॥१३॥ फिर भी तुम अश्रुपूर्ण नेत्रों से मेरे प्रति स्नेह प्रकट करती हो, आलिंगन करती हो और कपट-रहित हृदय से तात, वत्स, भद्र आदि कह कर पुचकारती हो ॥१४॥

नत्वाहमुपकारार्थीवत्सप्रीत्यापरिष्वजे ।
नचेदेतद्भवत्प्रीत्यैपरित्यक्तास्म्यहत्वया ॥१५
स्वार्थोमयापरित्यक्तोयस्त्वत्तोमेभविष्यति ।
इत्युक्त्वामातमुत्सृज्यनिष्क्रान्तासूतिकागृहात् ॥१६॥
जडाङ्गबाह्यकरणशुद्धान्तःकरणात्मकम् ।
जहारतपरित्यक्तं सातदाजातहारिणी ॥१७
माहित्वाततदाबालविक्रान्तस्यमहीभृत. ।
प्रसूतपत्नीशयनेन्यस्यतस्याददेसुतम् ॥१८
तमप्यन्यगृहेनीत्वागृहीत्वातस्यचात्मजम् ।
तृतीयभक्षयामाससाक्रमाज्जातहारिणी ॥१९
हृत्वाहृत्वातृतीयंतुभक्षयत्यतिनिर्घृणा ।
करोत्यनुदिनसातुपरिवर्तंतथान्ययो ॥२०
विक्रान्तोऽपिततस्तस्यसुतस्यैवमहीपति ।
कारयामाससंस्काराराजन्यस्यभवन्तिये ॥२१

माता ने कहा—हे वत्स ! किसी उपकार की आशा से मैं तुम्हारा आलिङ्गन नहीं करती यदि तुम मेरे आलिङ्गन करने आदि से प्रसन्नता को प्राप्त नहीं होते तो मुझे छोड़ दो ॥१५॥ तुमसे जिस स्वार्थ सिद्धि की आशा है, मैंने उसे छोड़ा, ऐसा कहकर प्रसूति गृह में माता उस जडवत् पुत्र का परित्याग कर बाहर निकली, तब माता द्वारा परित्यक्त उस पुत्र का जातहारिणी ने हरण कर लिया ॥१६-१७॥ इसका हरण करके उसने विक्रान्त नामक राजा की प्रसूता पत्नी की शय्या में रख कर उसके नवोत्पन्न शिशु का हरण किया ॥१८॥ और उसे भी किसी दूसरे के घर में रख कर उसके पुत्र को चुरा कर अन्त में उस तृतीय शिशु का भक्षण कर लिया ॥१९॥ वह अत्यन्त निर्दय जातहारिणी नव प्रसूति शिशुओं का नित्य प्रति इसी प्रकार हरण करती और पहिले दो का

जातोऽहमनमित्रस्यक्षत्रियस्यगृहेद्विज ।
तत्पत्न्यागिरिभद्रायामादादेजातहारिणी ॥२८
तयात्रमुक्तोहैमिन्यागृहीत्वाचसुतवसा ।
बोधस्यद्विजमुख्यस्यगृहेनीतवतीपुन ॥२९
भक्षयामासचसुतत्स्यबोधद्विजन्मन ।
सतत्रद्विजसंस्कारै संस्कृतोहैमिनीसुत ॥३०
वयमत्रमहाभागसंस्कृतागुरुणात्वया ।
मयातववच कार्य्यमुपैमिक्तमागुरो ॥३१
अनीवगहनवत्ससकटमहदागतम् ।
नवेधिकिंचिन्मोहेनभ्रमन्तीवहिबुद्धय ॥३२
माहस्यावसर कोऽत्रजगत्येवव्यवस्थिते ।
क कस्यपुनोविप्रर्षेकोवाकस्यनबान्धव ॥३३
आरभ्यजन्मनोनृणासम्बन्धित्वमुपैतियः ।
अन्यमवधिमोविप्रमृत्युनासन्निवर्तिता ॥३४
अत्रापिजातस्यसुत सम्बधोयोऽस्यवान्धवै ।
सोप्यस्तमन्तेदेहम्यप्रयात्येपोऽखिलक्रम ॥३५

आनन्द बोला—राजा अनमित्र की पत्नी गिरिभद्रा के गर्भ से मैं उत्पन्न हूं और जातारिणी मेरा हरण करके यहाँ रख गई ॥२८॥ और हैमिनी के पुत्र का हरण करके उसे ब्राह्मण वर बोध के यहाँ ले जाकर ॥२९॥ उस बोध के पुत्र को खा गई, हैमिनी के उस पुत्र का विशाल ग्राम में द्विज संस्कार किया गया है ॥३०॥ और मेरा सस्कार यहाँ आपके द्वारा हुआ है, हे महा-भाग ! आप मेरे गुरु हैं, मुझे आपकी आज्ञा पूर्ण रूपेण स्वीकार है, अत आज्ञा कीजिये कि मैं किस माता को प्रणाम करूँ ॥३१॥ गुरुजी ने कहा—हे वत्स ! यह तो अत्यन्त घोर सङ्कट आ गया है, मैं कुछ भी नहीं समझ पाता जैसे मेरी बुद्धि मोह में भ्रमित होगई है ॥३२॥ आनन्द बोला—हे ब्रह्मर्षे ! इस प्रकार से अव्यवस्थित इस संसार में मोह का विराम क्या है ? इसलिये कौन किसका पुत्र है ? जन्म लेने के पश्चात् जीव विभिन्न जीवों से सम्बन्ध युक्त होता है, तब

तपस्यन्तततस्तचप्राहदेव प्रजापति- ।
किमर्थतप्यसेवत्सतपस्तीव्र वदस्वतत् ।।४२
आत्मन शुद्धि कामोऽहकरोमिभगवस्तप ।
बन्धायममकर्माणियानितत्क्षपणोन्मुखः ।।४३
क्षीणाधिकारोभवतिमुक्तियाग्योनकर्मवान् ।
सत्वाधिकारवान्मुक्तिमवाप्स्यतिततोभवान् ।।४४
भवतामनुनाभाव्यषष्ठ नत्रजतत्कुरु ।
अलतेतपसानस्मिन्कृतेमुक्तिमवाप्स्यसि ।।४५
इत्युक्तोब्रह्मणासाऽपितथेत्युक्त्वामहामति- ।
तत्कर्माभिमुखोयस्तुतपसोविरराम ह ।।४६
चाक्षुषेत्याहूनब्रह्मातपसोविनिवर्तयन् ।
पूर्वनाम्नावभूवाथप्रख्यातश्चाक्षुषोमनु ।।४७
उपयेमेविदर्भाससुतामुग्रस्यभूभृत ।
तस्याचोत्पादयामासपुत्रान्प्रख्यातविक्रमान् ।।४८
तस्यमन्वन्तरेशस्ययेऽन्तरेत्रिदशाद्विज ।
येचपर्यस्तथैवेन्द्रोयेसुताश्चास्यतान्छृणु ।।४६

जब वह इस प्रकार तप मे प्रवृत्त हुआ, तब प्रजापति ब्रह्माजी ने उससे कहा—हे वत्स ! ऐसा घोर तप किसलिये कर रहे हो ? ।।४२।। आनन्द बोला—हे भगवन् ! ससार के बन्धन रूप कर्मों को नष्ट करने की अभिलाषा से ही मैं यह तप कर रहा हू ।।४३।। ब्रह्माजी ने कहा—क्षीणाधिकार वाले मनुष्य ही मोक्ष के अधिकारी होते है, क्योंकि वे कर्मवान् नही होते, तुम जीवों पर आधिपत्य करने वाले होकर मोक्ष को कैसे प्राप्त हो सकोगे ? ।।४४।। जाओ तुम छटवें मनु होगे, उसी प्रकार के कार्य से मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे, अब तुम्हें तप करना आवश्यक नही है ।।४५।। मार्कण्डेयजी ने कहा—ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर 'ऐसा ही हो' कहते हुए आनन्द ने तपस्या का परित्याग किय ।।४६।। और ब्रह्माजी ने उन्हें तप से निवृत्त करके पूर्ववत् 'चाक्षुष' नाम दिया फिर वही चाक्षुष मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए ।।४७।। फिर उन्होंने राजा उ

मधु, अति और सहिष्णु यह सप्तर्षि हुए तथा ऊरु, पुरु, शतद्युम्न इत्यादि राजा उन चाक्षुष मनु के अत्यन्त बलवान् पुत्र हुए ॥५५-५६॥

ऐतत्तेकथितषष्ठ मयामन्वन्तर द्विज ।
चाक्षुषस्यतथाजन्मचरित्तचमहात्मनः ॥५७
साम्प्रतवर्त्ततेयोऽयनाम्नावैवस्वतोमनुः ।
सप्तमोयेन्तरेतस्यदेवाद्यास्तान्छृणुष्वमे ॥५८
(यइद कीर्तयेद्धीमाश्चाक्षुषस्यातरभुवि ।
शृणुतेचलभेत्पुत्रानारोग्यसुखसपदम्) ॥५६

यह इस षष्ठ मन्वन्तर और महात्मा चाक्षुष मनु का जीवन चरित्र मैंने तुमसे कह दिया ॥५७॥ अब जो वैवस्वत नामक सातवें मनु वर्तमान है, उनके मन्वन्तर के देवतादि का वर्णन श्रवण करो ॥५८॥ जो मनुष्य इस चाक्षुष मन्वन्तर को कहेंगे या श्रवण करेंगे उन्हे पुत्र, आरोग्यता, सुख, सम्पत्ति की प्राप्ति होगी ॥५६॥

६९--वैवस्वत मन्वन्तर आरम्भ

मार्त्तण्डस्यरवेर्भार्यातनयाविश्वकर्मण ।
सज्ञानाममहाभागतस्याभानुरजीजनत् ॥१
मनु प्रख्यातयशसमनेकज्ञानपारगम् ।
विवस्वत सुतोयस्मात्तस्माद्वैवस्वतस्तुस ॥२
मज्ञाचरविणादृष्टानिमीलयतिलोचने ।
यतस्तत सरोषोऽर्क सज्ञानिष्ठुरमब्रवीत् ॥३
मयिदृष्टेसदायस्मात्कुरुषेनेत्रसयमम् ।
तस्माज्जनिष्यसेमूढेप्रजासयमनयमम् ॥४
तत साचपनादृष्टिदेवीचक्रेभयाकुला ।
विलोलितदृशदृष्ट्वापुनराहचतारविः ॥५

यस्माद्विलोलिताद्दृष्टिर्मयिदृष्टे त्वयाधुना ।
तस्माद्विलोलातनयानदीत्वप्रसविष्यसि ॥६
त सज्ञातुसजज्ञभर्तृ शापेननेनवं ।
यमश्चयमुनाचेयप्रख्यातासुमहानदी ॥७

माकण्डेयजी न कहा—ह महाभाग ! विश्वकर्मा की पुत्री सज्ञा मार्त्तण्डदेव की भार्या थी, उसके गर्भ से ॥१॥ यश म यिरयात एव अत्यन्त ज्ञानवान् मनु उत्पन्न हुए, वह विवस्वान् के पुत्र होने से 'वैवस्वत' नाम से प्रसिद्ध हुए ॥२॥ रूप को देखते ही वह सज्ञा अपने नेत्र वन्द कर लेती थी, इसलिए एक दिन सूर्य ने उसक प्रति यह कठोर वचन कहा ॥३॥ तू मुझे देख कर सदैव नेत्रा का सयम कर लेती है इसलिये तेरे प्रजा का सयम करन वाले यम की उत्पत्ति होगी ॥४॥ माकण्डेयजी न कहा—तभी स सज्ञा से भय स व्याकुल होकर सूर्य को चञ्चल दृष्टि से दखन लगी, तब उसे चञ्चल नेत्र वाली देख कर सूर्य न उससे कहा ॥५॥ तू मुझे देखकर चञ्चल दृष्टि कर लेनी है, इसलिये अब तू चञ्चल नदी रूप वाली कन्या को उत्पन्न करेगी ॥६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पति के द्वारा इस प्रकार शापित हुई सज्ञा के गर्भ से यम उत्पन्न हुआ और फिर यमुना नाम की विख्यात नदी भी उत्पन्न हुई ॥७॥

सापिसज्ञारवेस्तेज सेहेतु सेनभाविनी ।
असहन्तीचसातेजश्चिन्तयामासवैतदा ॥८
किंकरोमिक्वगच्छामिक्वगतायाश्चनिर्वृ ति ।
भवेन्ममकथमर्ताकोपमर्कश्चनैष्यति ॥९
इतिसंचिन्त्यवहुधाप्रजापतिसुतातदा ।
वहुमेनेमहाभागापितृसश्रयमेवसा ॥१०
तत पितृगृहेगन्तु कृतवुद्धिर्यशस्विनी ।
छायामयीमात्मतनु निर्ममेदयितारव ॥ ११
ताचावाचत्वयावेश्मन्यत्रभानोर्यथामया ।
तथासम्यगपत्येपुवर्तितव्ययथारवौ ॥१२

पृष्टयापिनवाच्यतेतद्भर्त्रागिगमनमम ।
सैवास्मिनामसञ्ज्ञेतिवाच्यमेतत्सदावचः ॥१३
ग्राकेशग्रहणाद् विप्राशापाद्यवचस्तव ।
वरिष्येकथयिष्यामिवृत्तनुशापयर्षणात् ॥१४

उस संज्ञा ने उतने समय तक अत्यन्त कष्ट पूर्वक सूर्य के तेज को सहन किया था, परन्तु अब अधिक सहन न करने के कारण यह विचार करने लगी ॥८॥ क्या करूँ ? किधर जाऊँ ? किस प्रकार भय से बचूँ ? किस उपाय अपने पति को क्रोध से निवृत्त करूँ ? ॥९॥ तब उस प्रजापति-सुता संज्ञा ने पितृ गृह के आश्रय मे जाने का ही विचार स्थिर किया ॥१०॥ ऐसा निश्चय करके उसने अपनी छाया स्वरूप एक देह बनाकर ॥११॥ उस छाया से कहा—जिस प्रकार मैं इन सूर्य देव के गृह मे निवास करती हूँ, उसी भाव से यहाँ रहती हुई मेरे पुत्र और पति के प्रति मेरे ही समान आचरण करना ॥१२॥ सूर्य पूछे तो भी मेरे चले जाने की वार्ता उन्हे मत बताना, 'मैं ही संज्ञा हूँ' उन्हे ऐसे ही समझाये रहना ॥१३॥ छाया ने कहा—हे देवि ! जब तक वे मेरे केश नही पकड़ेगे और शाप नही देंगे, तब तक मैं तुम्हारे वचनों के अनुसार कार्य करूँगी और केश पकडने या शाप देने पर सब वृतान्त बता दूँगी ॥१४॥

इत्युक्तासातदादेवीजगामभवनपितुः ।
ददर्शतत्रत्वष्टारतपसाधूतकल्मषम् ॥१५
बहुमानाच्चतेनापिपूजिताविश्वकर्मणा ।
तस्थौपितृगृहेसातुकचित्कालमनिन्दिता ॥१६
ततस्ताप्राहचार्वङ्गीपितानातिचिरोषिताम् ।
स्तुत्वाचतनयाप्रेमबहुमानपुरःसरम् ॥१७
त्वातुमेपश्यतोवत्सेदिनानिसुबहून्यपि ।
मुहूर्त्तार्द्धसमानिस्यु क्िन्तुधर्मोविलुप्यते ॥१८
बान्धवेषुचिरवासोनारीणानयशस्कर ।
मनोरथोवान्धवानानार्याभर्तृगृहेस्थिति ॥१९

सात्वंत्रैलोक्यनाथेनभर्त्रासूर्य्यणसङ्गता ।
पितृगेहेचिर कालवस्तु नार्हसिपुत्रिके ।।२०
सात्वंभर्तृ गृहगन्छतुष्टोऽहपूजितासिमे ।
पुनरागमनकार्यदर्शनायशुभेमम ।।२१

यह बात सुनकर सज्ञा अपने पिता के घर चली गई और वहाँ उसने तप के द्वारा पाप रहित हुए विश्वकर्मा के दर्शन किये ।।१५।। विश्वकर्मा ने सज्ञा का स्वागत सत्कार किया और फिर आनन्द युक्त हुई सज्ञा ने कुछ काल तक अपने पिता के गृह मे निवास किया ।।१६।। फिर कुछ कालोपरान्त उसके पिता ने अत्यन्त मान के सहित उससे कहा ।।१७।। ह वत्से ! तुमको देखते हुए बहुत समय व्यतीत हाने पर भी वह मुझे आधे मुहूर्त्त के समान ही समय व्यतीत हुआ प्रतीत होता है, परन्तु इससे धर्म का लोप हो जाता है ।।१८।। स्त्रियो के लिये बाधवों के साथ सदा निवास करना यश देने वाला कार्य नहीं है, उनका निवास तो पतिगृह मे ही उचित है ।।१९।। तीनो लोको के स्वामी सूर्य तुम्हारे पति हैं, तुम उनके साथ विवाह सूत्र मे बँधी हो, तुम्हारा पितृगृह मे रहना उचित नही हो सकता ।।२०।। इसलिए अब तुम अपने पति के घर चली जाओ, तुम्हारे आगमन से मैं सन्तुष्ट हुआ और तुम भी मेरे द्वारा सत्कारित हुई , अब फिर देखने के लिये यहाँ आजाना ।।२१।।

इत्युक्तासातदापित्रातथेत्युक्त्वाचसामुने ।
सपूजयित्वापितर जगामाथोत्तरान्कुरून् ।।२२
सूयतापमनिच्छन्तीतेजसस्तस्यविभ्यती ।
तपश्चचारतत्रापिवडवारूपधारिणी ।।२३
सज्ञेयमितिमन्वानोद्वितीयायामहस्पति ।
जनयामासतनयौकन्याचैकामनोरमाम् ।।२४
छायासज्ञात्वपत्येप्ययास्वेष्वतिवत्सला ।
तथानसज्ञाकन्यायापुत्रयोश्चान्ववर्तत ।।२५
लालनाद्युपभोगेपुविक्षेपमनुवासरम् ।
मनुस्तत्क्षान्तवानस्यायमस्तस्यानचक्षमे ।।२६

ताडनायचवैवयोपात्पापस्तेनसमुत्त त ।
तस्या पुन क्षातिमतानतुदेहेनिपातित ॥२७
तत शशापतवकोपाच्छायासज्ञायमद्विज ।
किंचित्प्रस्फुरमाणौष्ठोविचलत्पाणिपल्लवा ॥२८
पितु पत्नीममय्याद्यन्मातज्जंयसेपदा ।
भुवितस्मादयपादस्तवाद्य वपतिष्यति ॥२६

मार्कण्डेयजी ने कहा—अपने पिता विश्वकर्मा के ऐसा कहने पर सज्ञा उनकी आज्ञा मान कर और उनका पूजन कर उत्तरकुरुदेश मे गई ॥२२॥ सूर्य के तेज से भयभीत सज्ञा सूर्य के तेज को न चाहने की इच्छा से वहाँ घोड़ी का रूप रख कर तप करने लगी ॥२३॥ उधर सूर्य न उस छाया को ही सज्ञा मानते हुए उसके गभ से दो पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया ॥२४॥ परन्तु वह छाया जितनी प्रीतिवती अपनी सन्तान के प्रति थी, उतनी सज्ञा की सन्तान के प्रति स्नेहवती नही थी ॥२५॥ वह लालन पालन के समय सन्तानों मे भेद भाव दिखाती थी, इसके लिये मनु ने तो उससे कुछ नहीं कहा, परन्तु यम ने उसे क्षमा नही किया ॥२६॥ उन्होने क्रोधवश प्रहार करने को अपना चरण उठाया, परन्तु क्रोध को रोक कर चरण प्रहार नही किया ॥२७॥ परन्तु उस छाया सज्ञा ने क्रोध के वशीभूत होकर होठ कम्पित करते हुए हाथ उठा कर शाप दिया ॥२८॥ मैं तेरे पिता की पत्नी हू, फिर भी तू मरी मर्यादा न रख कर चरण दिखाकर डराता है, इसलिये तेरा यह चरण तत्काल पृथिवी म गिर जाय ॥२६॥

इत्याकर्ण्यंयम शापमात्रादत्त भयातुर ।
अभ्येत्यपितर प्राहप्रणिपातपुर सरम् ॥३०
तातैतन्महदाश्चर्य्यंनदृष्टमितिकेनचित् ।
मातावात्सल्यमुत्सृज्यशापपुत्रेप्रयच्छति ॥३१
यथामनुर्ममाचष्टेनेयमातातथामम ।
विर्गुणेष्वपिपुत्रेपुनमाताविगुणाभवेत् ॥३२

यमस्यैतद्वच श्रुत्वाभगवांस्तिमिरापहः ।
छायासंज्ञासमाहूयपप्रच्छक्वगतेतिसा ।।३३
साचाहतनयात्वष्टुरहंसंज्ञाविभावसो ।
पत्नीतवत्वयापत्यान्येतानिजनितानिमे ।।३४
इत्थंविवस्वत.सातुबहुश पृच्छतोयदा ।
नाचचक्षेततःक्रुद्धोभास्वास्ताशप्तुमुद्यतः ।।३५

मार्कण्डेयजी ने कहा—माता द्वारा ऐसा शाप सुनकर भय से आतुर हुए यम ने अपने पिता सूर्य के पास जाकर उन्हे प्रणाम किया और बोले ।।३०।। यम ने कहा—माता अपने ही पुत्र को शाप दे, यह अत्यन्त विस्मयजनक है, ऐसी बात तो कभी कही नही देखी गई ।।३१।। मनु ने मुझसे जैसा कहा था, वैसी यह माता नही है, पुत्र के असद्गुणी होने पर भी माता उसके अमंगल की बात नही कहती ।।३२।। मार्कण्डेयजी ने कहा—यम का वचन सुनकर भगवान् सूर्य ने छाया को अपने पास आदर सहित बुला कर पूछा—संज्ञा कहाँ गई ? ।।३३।। छाया ने कहा—हे भगवन् ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा मैं ही हू, मैं ही तुम्हारी भार्या हू, मेरे ही गर्भ से इस सन्तान की उत्पत्ति हुई है ।।३४।। सूर्य के बारम्बार प्रश्न करने पर भी उसने वही उत्तर दिया तब सूर्य क्रोधित होगये और शाप देने के लिये तत्पर हुए ।।३५।।

ततःसाकथयामासयथावृत्तविवस्वतः ।
विदितार्थश्चभगवाञ्जगामत्वष्टुरालयम् ।।३६
ततःसपूजयामासतदात्रैलोक्यपूजितम् ।
भास्वन्तंपरयाभक्तयानिजगेहमुपागतम् ।।३७
संज्ञापृष्टस्तदातस्मैकथयामासविश्वकृत् ।
आगतवेहमेवेश्मभवत.प्रेषितेतिवै ।।३८
दिवाकरःममाधिस्थोवडवारूपधारिणीम् ।
तपश्चरन्तीददृशेउत्तरेषुकुरुष्वथ ।।३९
सौम्यमूर्ति शुभाकारोममभर्त्ताभवेदिति ।
अभिसन्धिश्चतपसोबुबुधेऽस्यादिवाकर. ।।४०

शातनतेजसोमेऽद्य क्रियतामितिभास्करः ।
मचाहविश्वकर्माणसज्ञायाःपितरद्विज ॥४१
मवत्सरभ्रमेस्तस्यविश्वकर्मारवेस्तत. ।
तेजस शातनचक्रे स्तूयमानश्चदैवतं ॥४२

तब जो वृत्तान्त था वह सभी उसने सूर्य से वह दिया, जिसे जानकर वह विश्वकर्मा के घर पहुचे ॥३६॥ अपने घर पर आगत भगवान् सूर्य का विश्वकर्मा ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन किया ॥३७॥ इसके पश्चात् जब सूर्य ने सज्ञा का वृत्तान्त पूछा, तो उन्होने बताया कि सज्ञा यहाँ आई थी और फिर मैंने उसे आपके ही यहाँ भेज दिया था ॥३८॥ तब सूर्य ने ध्यान मे अवस्थित होकर सज्ञा को घोडी का रूप धारण किये उत्तर कुरु वष मे तप करते हुए देखा ॥३९॥ उन्होने जान लिया कि उसके तप का उद्देश्य मेरी सुन्दराकृति और सौम्य मूर्ति होने की कामना ही है ॥४०॥ तब भगवान् सूर्य ने सज्ञा के पिता विश्वकर्मा से कहा कि मेरे तेज को क्षीण कर दीजिए ॥४१॥ देवताओ के द्वारा प्रार्थना करने पर उन विश्वकर्मा ने सूर्य के तेज को क्षीण कर दिया ॥४२॥

७०—सूर्य-स्तव एवं अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति

ततस्ततुष्टुवुर्देवास्तथादेवर्षयोरविम् ।
वाग्भिरीड्यमशेषस्यत्रैलोकचस्यमागता ॥१॥
नमस्तेऋक्स्वरूपायसामरूपायतेनमः ।
यजु स्वरूपरूपायसाम्नामधामवतेनम ॥२॥
ज्ञानैकधामभूतायनिर्धूतमसेनम ।
शुद्धज्योति स्वरूपायविशुद्धायामलात्मने ॥३॥
(चक्रिणेशखिनेधाम्नेशार्ङ्गिणेपद्मिनेनमः)
वरिष्ठायवरेण्यायपरस्मैपरमात्मने ।
नमोऽखिलजगव्द्यापिस्वरूपायात्ममूर्त्तये ॥४॥

सर्वकारणभूतायनिष्ठायैज्ञानचेतसाम् ॥५॥
नम सूर्यस्वरूपायप्रकाशात्मस्वरूपिणे ।
भास्करायनमस्तुभ्यतथादिनकृतेनम ॥६॥
शर्वरीहेतवेचैवसन्ध्याज्योत्स्नाकृतेनम ।
त्वसवमेतद्भगवञ्जगदुद्भ्रमतात्वया ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—तब देवता और ऋषि वहाँ आकर त्रैलोक्य पूज्य भगवान् भास्कर की स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ देवताओ ने कहा—हे देव ! आप ऋक् स्वरूप है, आपको नमस्कार है, आप साम स्वरूप को नमस्कार हैं, आप ही यजुःस्वरूप एव साम के द्युतिमान् है, आपको नमस्कार है ॥ २ ॥ आप ही ज्ञान के एकमात्र आश्रय स्वरूप, अन्धकार के नाशक, ज्योति स्वरूप विशुद्ध एव विमलात्मा है, आपको नमस्कार हैं, ॥ ३ ॥ आप शङ्ख, चक्र, पद्म और शार्ङ्ग धारण करने वाले को नमस्कार, आप वरिष्ठ, वरेण्य, पर, परमात्मा, आत्म स्वरूप एव जगद्व्यापी स्वरूप को नमस्कार है ॥ ४ ॥ आप ही ज्ञान चित्त वाले पुरुषो के लिये निष्ठा स्वरूप तथा सर्वभूतो के कारण रूप है ॥ ५ ॥ आप ही सूर्यरूपी प्रकाश और आत्मरूपी भास्कर हैं, आप दिनकर को नमस्कार है ॥६॥ रात्रि के कारण, सध्या एव ज्योत्स्ना को प्रकट करने वाले आप भगवान् के लिये नमस्कार है, आपके ही द्वारा यह विश्व जाग्रति और सुषुप्ति मे पडता है ॥७॥

भ्रमत्याविद्धमखिलब्रह्माण्डसचराचरम् ।
त्वदशुभिरिदस्पृष्ट सर्वसजायतेशुचि ॥८
क्रियतेत्वत्कर स्पर्शाज्जलादीनापवित्रता ।
होमदानादिकोधर्मोनोपकारायजायते ॥९
तावद्यावन्नसयोगिजगदेवत्वद शुभि ।
ऋचस्तेसकलाह्येतायजू ष्येतानिचान्यत ॥१०
सकलानिचसामानिनिपतन्तित्वदङ्गतः ।
ऋड मयस्त्वजगन्नाथत्वमेवचयजुर्मय ॥११

यत.साममयश्चैवततोनाथत्रयीमयः ।
त्वमेवब्रह्मणोरूपपरचापरमेवच ॥११
मूर्त्तामूर्त्त स्तथासूक्ष्म स्थूलरूपस्तथास्थितः ।
निमेपकाष्ठादिमयःकालरूप क्षयात्मक ।
प्रसीदस्वेच्छयारूपस्वतेज शमनकुरु ॥१३
इद स्तोत्रवर रम्यश्रोतव्यश्रद्धयानरे ।
शिष्योभूत्वासमाधिस्थोदत्त्वादेयगुरोरपि ॥१४

आपके द्वारा ही यह सचराचर ब्रह्माण्ड गति करता है और सभी स्पर्शनीय द्रव्य आपकी रश्मियो का स्पर्श प्राप्त करके ही पवित्र होते हैं ॥८॥ आपकी रश्मियो से ही जलादि पवित्र होते हैं तथा जब उपकारार्थ होम, दान आदि कर्म नही होते ॥ ६ ॥ तब तक यह विश्व आपकी रश्मियो के सयोग को प्राप्त नही होता, आपके अंग से उद्भूत रश्मियाँ ऋक्, यजु, और साम ही हैं, इसलिये आप ही ऋक्‌मय, यजुर्मय ॥ १०–११ ॥ और साममय हैं, आप ही त्रयीमय ब्रह्मस्वरूप तथा प्रधान और अप्रधान भी हो ॥ १२ ॥ आप मूर्तिधारी हो, तथा आप ही आकृति हीन हो, स्थूल एव सूक्ष्मरूप से आप ही निमेष काष्ठा आदि एव क्षयात्मक काल हो, आप प्रसन्न हो और स्वेच्छा-पूर्वक ही रूप और तेज को क्षीण करें ॥१३॥ (इस सुरम्य स्तोत्र को श्रद्धा-पूर्वक सुनें और गुरु भी अपने शिष्य को समाधि मे स्थित होकर प्रदान करें ॥१४

एवसस्तूयमानस्तुदेवैर्देवर्षिभिस्तथा ।
मुमोचस्वतदातेजस्तेजमाराशिरव्ययः ॥१५॥
यत्तस्यऋड्मयतेजोभवितातेनमेदिनी ।
यजुर्मयेनापिदिवस्वर्गःसाममयरवेः ॥१६॥
शातितास्तेजसोभागायेत्वष्ट्रादशपचच ।
त्वष्ट्रैवतेनसर्वस्यशूलमूलमहात्मना ॥१७॥
चक्र विष्णोर्वसूनाचशकरस्योपसुदारुणाः ।
पावकस्यतथाशक्तिःशिविकाधनदस्यच ॥१८॥

अन्येषामसुरारीणामस्त्राण्युग्राणियानिवै ।
यक्षविद्याधराणाञ्चतानिचक्रे सविश्वकृत् ॥१९॥
ततश्चषोडशभागविभर्तिभगवान्विभुः ।
तत्तेजःपञ्चदशधाशातितविश्वकर्मणा ॥२०॥
ततोऽश्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरून् ।
ददर्शेतत्रसञ्ज्ञाचवडवारूपधारिणीम् ॥२१॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—देवताओं और ऋषियों द्वारा इस प्रकार स्तुत होकर तेजोराशि भगवान् सूर्य ने अपने तेज को क्षीण किया ॥१५॥ उनके ऋकमय तेज से पृथिवी हुई, यजुर्मय तेज से आकाश और साममय तेज से स्वर्ग हुआ ॥१६॥ त्वष्टा ने सूर्य तेज के जिस पंचदश भाग को छोड दिया था, उसी भाग से शिवजी का शूल ॥१७॥ विष्णु चक्र तथा वसुगण, शंकर और अग्नि की दारुण शक्ति का निर्माण किया तथा उसी मे कुबेर की पालकी ॥१८॥ तथा अन्यान्य देवता, यक्ष, विद्याधर आदि के जो तीक्ष्ण अस्त्र हैं वह सब बनाये ॥१९॥ फिर भगवान् सूर्य ने अपने तेज का षोडशांश मात्र धारण किया, उसे भी विश्वकर्मा ने पन्द्रह बार छीला ॥२०॥ तदनन्तर सूर्य ने अश्व का रूप धारण किया और उत्तर कुरुवर्ष मे पहुँच कर अश्वी रूप मे अवस्थित सञ्ज्ञा को देखा ॥२१॥

साचदृष्ट्वातमायान्तपरपुंसोविशङ्कया ॥
जगामसम्मुखतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥२२॥
ततश्चनासिकायोगतयोस्तत्रसमेतयो ।
नासत्यदस्त्रौतनयावश्वीवक्त्रविनिर्गतौ ॥२३॥
रेतसोऽन्तेचरेवन्तःखड्गीखीचर्म्मीतनुत्रधृक् ।
अश्वारूढ समुद्भूतोबाणतूणसमन्वित ॥२४॥
तत स्वरूपमतुलदर्शयामासभानुमान् ।
तस्यैषाचसमालोक्यस्वरूपमुदमावहे ॥२५॥
स्वरूपधारिणीचेमामानिनायनिजाश्रमम् ।
सञ्ज्ञाभार्याप्रीतिमतीभास्करोवारितस्करः ॥२६॥

तत्र पूर्वसुतोयोऽस्या.सोऽभूद्वैवस्वतोमनुः ।
द्वितीयश्चयम.शापाद्धर्मदृष्टिरभूत्सुत' ॥२७॥
कृमयोमासमादायपादतोऽस्यमहीतले ।
पतिष्यन्तीतिशापान्ततस्यचक्रे पितास्वयम् ॥२८॥
धर्मदृष्टियंतश्चासौसमोमित्रेतथाऽहिते ।
ततोनियोगतयाम्येचकारतिमिरापह ॥२९॥

उन्हें आता देख कर पर-पुरुष की आशका से संज्ञा अपनी पीठ की रक्षा करती हुई उनके सामने पहुँची ॥२२॥ फिर उन दोनो की नासिका मिलने के कारण अश्वी के मुख से नासत्य और दस्र नामक दो पुत्र तत्काल बाहर निकले ॥२३॥ तथा वीर्य के शेष भाग से ढाल, कवच, खड्ग, बाण तूण धारी अश्वारूढ के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रेवत हुआ ॥२४॥ फिर सूर्य ने उस घोडी को अपना अतुलित स्वरूप दिखाया, उस स्वरूप को देख कर बडवा रूपिणी संज्ञा ने प्रसन्न हो कर अपना यथार्थ रूप धारण कर लिया ॥२५॥ तब जल का शोषण करने वाले भगवान् सूर्य उस संज्ञा नाम की अपनी पत्नी को घर ले गये ॥२६॥ इसी का ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु हुआ और दूसरा पुत्र यम शाप के कारण धर्मदृष्टि हुआ ॥२७॥ उनको दिये गये शाप का निवारण उनके पिता सूर्य ने स्वयं कर दिया ॥२८॥ तथा धर्म दृष्टि और शत्रु-मित्र मे सम दृष्टि देख कर सूर्य ने उनको यमत्व के कार्य मे नियुक्त किया ॥२९॥

यमुनाचनदीजज्ञे कलिन्दान्तरवाहिनी ।
अश्विनौदेवभिषजौकृतौपित्रामहात्मना ॥३०॥
गुह्यकाधिपतित्वेचरेवन्तोऽपिनियोजित ।
छायासंज्ञासुतानांचनियोग श्रूयतामम ॥३१॥
पूर्वजस्यमनोस्तुल्यश्छायासंज्ञासुतोऽग्रज ।
तत सावर्णिकींसंज्ञामवापतनयोरवेः ॥३२॥
भविष्यतिमनु.सोपिबलिरिन्द्रोयदातदा ।
शनैश्चरोग्रहाणांचमध्येपित्रानियोजितः ॥३३॥

तयोस्तृतीयाकन्यातुतपतीनामसाकुरुम् ।
नृपात्सवरणात्पुत्रमवापमनुजेश्वरम् ॥३४॥
तस्यवैवस्वतस्याहमनो सप्तममन्तरम् ।
कथयामिसुतान्भूपानृषीन्देवान्सुराधिपम् ॥३५॥

उनकी कन्या यमुना नदी रूप से कलिंद देश के मध्य मे बहने लगी और घोडी के दोनो पुत्र (अश्विनीकुमार) पिता के द्वारा स्वर्ग के वैद्य नियुक्त हुये ॥३०॥ तथा रेवत गुह्यकाधिपति हुए, अब छाया के पुत्रो की नियुक्ति कहता हूँ ॥३१॥ वैवस्वत मनु के समान छाया के गर्भ से उत्पन्न हुए ज्येष्ठ पुत्र का नाम सावर्णिक हुआ ॥३२॥ जब बलि इन्द्र हो जायेंगे तब यह मनु होंगे *तथा पिता के द्वारा शनैश्चर को ग्रह मे अवस्थित किया गया।* सब से छोटी कन्या का नाम तपती हुआ, उसे सवरण नामक नरेश से एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥३४॥ अब उन सप्तम मनु वैवस्वत के अनन्तर सब ऋषि, देवता, इन्द्र और उनके जो पुत्र राजा हुए उनके विषय में वर्णन करता हू ॥३५॥

७१ वैवस्वत मन्वन्तर कथन

आदित्यावसवारुद्रा साध्याविश्वेमरुद्गणा ।
भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौयत्रदेवगणा स्मृता ॥१
आदित्यावसवोरुद्राविज्ञेया कश्यपात्मजा ।
साध्याश्चवसवोविश्वेधर्मपुत्रगणास्त्रय ॥२
भृगोस्तुभृगवोदेवा पुत्राह्यङ्गिरस सुता ।
एषसर्गश्चमारीचोविज्ञेय साम्प्रताधिप ॥३
ऊर्ज्जस्वीनामचैवेन्द्रोमहात्मायज्ञभागभुक् ।
अतीतानागतायेचवर्तन्तेसाम्प्रतचये ॥४
सर्वेतेत्रिदशेन्द्रास्तुविज्ञेयास्तुल्यलक्षणा ।
सहस्राक्षा कुलिशिन सर्वएवपुरन्दरा ॥५

क्रोष्टुकि बोले—आपने स्वायम्भुवादि सात मनु उनके मन्वन्तर, देवता, ऋषि और राजाओं का वर्णन मेरे प्रति किया ॥१॥ अब, इस कल्प में जो सात मनु होंगे उनका और उस समय में होने वाले देवादि का वर्णन मेरे प्रति कीजिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—संज्ञा की छाया के गर्भ से उत्पन्न जिन ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि के विषय में तुम से कहा गया, वही सावर्णि आठवें मनु

अस्मिन्छ्रुतेनरःसद्यःपठितेचैवसत्तम ।
मुच्यतेपातकैःसर्वै पुण्यंचमहदश्नुते ।।१३

इस पृथिवी को भूर्लोक, अन्तरिक्ष को दिव और स्वर्ग को दिव्य कहते हैं, यही त्रैलोक्य कहे जाते हैं ।।८।। अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम भरद्वाज, विश्वामित्र ।।९।। और भगवान् ऋचीक के पुत्र जमदग्नि यह इस मन्वन्तर मे सप्तर्षि हैं ।।१०।। इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ।।११।। करूष और पृषध्र यह नौ उन वैवस्वत मनु के प्रसिद्ध पुत्र हुए ।।१२।। हे विप्र ! वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन तुम्हारे प्रति किया गया, इसके सुनने और पाठ करने से शीघ्र ही सब पापो से मुक्त होकर मनुष्य पुण्य फल को प्राप्त होते हैं ।।१३।।

७२–सावर्णिक मन्वन्तर

स्वायम्भुवाद्याःकथिता.सप्तैतेमनवोमम ।
तदन्तरेषुयेदेवाराजानोमुनयस्तथा ।।१
अस्मिन्कल्पेसप्तयेऽन्येभविष्यन्तिमहामुने ।
मनवस्तान्समाचक्ष्वतथादेवादयश्चये ।।२
कथितस्तवसावर्णिश्छायासञ्ज्ञासुतश्चय. ।
पूर्वजस्यमनोस्तुल्यःसमनुर्भविताष्टमः ।।३
रामोव्यासोगालवश्चदीप्तिमान्कृपएवच ।
ऋष्यश्रृङ्गस्तथाद्रोणस्तत्रसप्तर्षयोऽभवन् ।।४
सुतापाश्चामिताभाश्चमुख्याश्चं वत्रिधासुराः ।
विंशक एवथिताश्चं पात्रयाणात्रिगुणोगणः ।।५
तपस्तपश्चशक्रश्चद्यु तिर्ज्योति प्रभाकरः ।
प्रभासोदयितोधर्मस्तेजोरश्मिश्चवक्रतुः ।।६
इत्यादिकस्तुसुतपादेवानांविंशकोगण. ।
प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तयान्योविंशकोगण ।।७

मघवन्तोवृषा सर्वेशृ गिणोगजगामिनः ।
तेशतक्रतव सर्वेभूताभिभवतेजस. ॥६
धमार्द्य कारणंःशुद्धं राधिपत्यगुणान्विताः ।
भूतभव्यभवन्नाथा शृणुचैतत्त्रयद्विज ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—इस मन्वन्तर मे आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्व, मरुद्गण, भृगु और अगिरा यह आठ देवता है ॥१॥ उनमे आदित्य, वसु और रुद्र कश्यपजी से उत्पन्न हुए हैं तथा साध्य, वसु और विश्वेदेवा धर्म की सन्तान हैं ॥२॥ भृगुगण भृगु के पुत्र तथा अङ्गिरागण अङ्गिरा के पुत्र हैं, इस सर्ग को मारीच सर्ग कहा गया है ॥३॥ इस मन्वन्तर मे महात्मा ऊर्जस्वी यज्ञ भाग के भोगने वाले इन्द्र हुए हैं, पहिले जो इन्द्र हुए, अब जो इन्द्र हैं या जो भविष्य मे इन्द्र होगे ॥४॥ वह सब देवेन्द्र कह कर ही प्रसिद्ध हैं, सभी सहस्राक्ष, वज्रधर और पुरदर हैं ॥५॥ सभी मघवा, वृष, शृङ्गधारी और गज पर गमन करने वाले हैं, सभी सौ यज्ञ करने वाले, भूतो को जीतने वाले तथा तेजोमय हैं ॥६॥ वह सब इन्द्र पवित्र, धर्मादि के कारण, आधिपत्य गुण वाले और भूत, भविष्यत्, वर्तमान के अधीश्वर हैं, अब तीनो लोक का विभाग श्रवण करो ॥७॥

भूर्लोकोऽयस्मृताभूमिरन्तरिक्षदिविस्मृतम् ।
दिव्याख्यश्चतयास्वर्गस्त्रैलोक्यमितिगद्यते ॥८
अत्रिश्चं वसिष्ठश्चकश्यपश्चमहानृषि ।
गौतमश्चभरद्वाजाविश्वामित्रोऽयकौशिक ॥९
तथं वपुत्राभगवानृचीकस्यमहात्मन ।
जमदग्निस्तुसप्त तेमुनयोऽत्रतथान्तरे ॥१०
इक्ष्वाकुर्नाभगश्चं वधृष्ट शर्यातिरेवच ।
नरिष्यन्तश्चविख्यातोनाभागोदिष्टएवच ॥११
करूपश्चपृषध्रश्चवसुमान्लोकविश्रुत ।
मनोर्वैवस्वतस्यैतेनवपुत्रा प्रकीर्तिता ॥१२
वैवस्वतमिदप्रान्तं धितंमयान्तरम् ।

अस्मिञ्छ्रुतेनरःसद्यःपठितेचैवसत्तम ।
मुच्यतेपातकैःसर्वैःपुण्यंचमहदश्नुते ॥१३

इस पृथिवी को भूर्लोक, अन्तरिक्ष को दिव और स्वर्ग को दिव्य कहते हैं, यही त्रैलोक्य कहे जाते हैं ॥८॥ अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र ॥९॥ और भगवान् ऋचीक के पुत्र जमदग्नि यह इस मन्वन्तर में सप्तर्षि हैं ॥१०॥ इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट ॥११॥ करुष और पृषध्र यह नौ उन वैवस्वत मनु के प्रसिद्ध पुत्र हुए ॥१२॥ हे विप्र ! वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन तुम्हारे प्रति किया गया, इसके सुनने और पाठ करने से शीघ्र ही सब पापों से मुक्त होकर मनुष्य पुण्य फल को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

७२–सावर्णिक मन्वन्तर

स्वायम्भुवाद्याःकथिता सप्तैतेमनवोमम ।
तदन्तरेषुयेदेवाराजानोमुनयस्तथा ॥१
अस्मिन्कल्पेसप्तयेऽन्येभविष्यन्तिमहामुने ।
मनवस्तान्समाचक्ष्वतथादेवादयश्चये ॥२
कथितस्तवसावर्णिश्छायासञ्ज्ञासुतश्चयः ।
पूर्वजस्यमनोस्तुल्यःसमनुर्भविताष्टमः ॥३
रामोव्यासोगालवश्चदीप्तिमान्कृपएवच ।
ऋष्यशृङ्गस्वथाद्रोणस्तत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥४
सुतापाश्चामिताभाश्चमुख्याश्च वत्रिधासुराः ।
विशकः कथिताश्च पात्रयाणात्रिगुणोगणः ॥५
तपस्तपश्चशक्रश्चद्युतिर्ज्योति प्रभाकरः ।
प्रभासोदयितोधर्मस्तेजोरश्मिश्चवक्रतुः ॥६
इत्यादिकस्तुसुतपादेवानांविंशकोगणः ।
प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्योविंशकोगणः ॥७

क्रौष्टुकि बोले—आपने स्वायम्भुवादि सात मनु, उनके मन्वन्तर, देवता, ऋषि और राजाओं का वर्णन मेरे प्रति किया ॥१॥ अब, इस कल्प में जो सात मनु होंगे उनका और उस समय में होने वाले देवादि का वर्णन मेरे प्रति कीजिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—सज्ञा की छाया के गर्भ से उत्पन्न जिन ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि के विषय में तुम से कहा गया, वही सावर्णि आठवें मनु होंगे ॥३॥ इस मन्वन्तर में राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, कृप, ऋष्य शृङ्ग और द्रौणि यह सात सप्तर्षि होंगे ॥४॥ सुतपा, अमिताभ और मुख्य यह तीन गण और प्रत्येक गण में बीस देवता हैं, इस प्रकार यह साठ हैं ॥५॥ उनमें तपस्तप, शक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेज, रश्मि और वक्रतु ॥६॥ आदि सभी देवता उन बीस गणों के अन्तर्गत हैं, प्रभु, विभु और विभासादि देवता अमिताभ देवताओं के बीस गण हैं ॥७॥

सुराणाममितानाँतृतीयमपिमेश्रृणु ।
दमोदान्तऋतः सोमोवित्ताद्याश्चविंशति ॥८
मुख्याह्यतेसमाख्यातादेवामन्वन्तराधिपा ।
मारीचस्यैवतेपुत्रा काश्यपस्यप्रजापते ॥९
भविष्याश्चभविष्यन्तिसावर्णस्यान्तरेमनो ।
तेषामिन्द्रोभविष्यस्तुबलिर्वैरोचनिर्मुने ॥१०
पातालग्रास्तेयोऽद्यापिदैत्य समयवन्धन ।
विरजाश्चार्ववीरश्चनिर्मोह सत्यवाक्कृत ।
विष्णवाद्याश्चतनया सावर्णस्यमनोर्नृपाः ॥११

अब तृतीय गण का विवरण कहता हूँ—दम, दान्त, ऋत, सोम और वित्त आदि देवतागण मुख्य नाम से तृतीय विभाग के अन्तर्गत हैं ॥८॥ यह सभी मन्वन्तराधिपति और सभी मरीचि पुत्र प्रजापति कश्यपजी के ही पुत्र हैं ॥९॥ सावर्णि मन्वन्तर में यह देवता और विरोचन पुत्र बलि इन्द्र होंगे ॥१०॥ जो दैत्य राज प्रतिज्ञा पाश में बँधे होने से अब भी पाताल में रहते हैं, वह विरजा, अर्ववीर, निर्मोह, सत्यवाक्, कृति, विष्णु नामक यह सावर्णि पुत्र उस काल में राजा होंगे ॥११॥

७३-देवी माहात्म्य-मधुकैटभ वध

सावर्णि सूर्यतनयोयोमनु कथ्यनेष्टम ।
निशामयतदुत्पत्तिविस्नराद्गदतोमम ॥१
महामायानुभावेनयथामन्वन्तराधिप ।
सबभूवमहाभाग सावर्णिस्तनयोरवे ॥२
स्वारोचिषेंतरेपूर्वंचैत्रवशसमुद्भव ।
सुरथोनामराजाभूत्समस्तेक्षितिमडले ॥३
तस्यपालयत सम्यक्प्रजा पुत्रानिवौरसान् ।
बभूवु शत्रवोभूपा कोलाविध्वसिनस्तदा ॥४
तस्यतैरभवद्युद्धमतिप्रबलद डिन ।
न्यूनैरपिसतैर्युद्धे कोलाविध्वसिभिर्जित ॥५
तत स्वपुरमायातोनिजदेशाधिपोभवत् ।
आक्रान्त समहाभागस्तैस्तदाप्रबलारिभि ॥६
अमात्यैर्वलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्यदुरात्मभि ।
कोशोवलचापहृततत्रापिस्वपुरेतत ॥७

मार्कण्डेयजी बोले—जिस सूर्य पुत्र सावर्णि को आठवाँ मनु कहा गया है, उसका विस्तार पूर्वक जन्म कहता हू, तुम श्रवण करो ॥१॥ जिस प्रकार वह महामाया भगवती की कृपा से सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर मन्वन्तराधिपति हुआ, उसे सुनो ॥२॥ स्वारोचिष मनु के राज्याधिकार से पूर्व चैत्र-वशोत्पन्न सुरथ नामक समस्त पृथिवी का राजा हुआ ॥३॥ जब वह सुरथ अपनी प्रजा का पालन पुत्रवत् करने लगा उसी अवसर पर कोला विध्वस नामक राजा उससे शत्रुता करने लगे ॥४॥ और प्रबल दण्ड देने म समर्थ राजा सुरथ के साथ उनका युद्ध हुआ, यद्यपि शत्रु अल्प थे, फिर भी उन्होने सुरथ को परास्त कर दिया ॥५॥ तब अपने प्रबल शत्रुओ से वशीभूत हुआ राजा सुरथ अपने नगर मे आकर राज्य करने लगा ॥६॥ उस नगर मे भी

प्रबल और दुष्ट अमात्यों ने उस राजा का कोषागार तथा सेना नष्ट कर डाली ॥७॥

ततोमृगयाव्याजेनहृतस्वाम्य सभूपति ।
एकाकीहयमारुह्यजगामगहनवनम् ॥८
सतत्राश्रममद्राक्षीद्द्विजवर्यःसुमेधस ।
प्रशांतश्वापदाकीर्णंमुनिशिष्योपशोभितम् ॥९
तस्थौकचित्सकालचमुनिनातेनसत्कृत ।
इतश्चेतश्चविचरस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥१०
सोचितयत्सदातत्रममत्वाकृष्टमानस ।
मत्पूर्वै पालितपूर्वंमयाहीनपुरहितत् ।
मद्भृत्यैस्तै रसदवृत्तैर्धर्मत पाल्यतेनवा ॥११
नजानेसुप्रधानोमेशूरोहस्तीसदामद ।
ममवैरिवशयात कान्भोगानुपलप्स्यते ॥१२
येममानुगतानित्यप्रसादधनभोजनै ।
अनुवृत्तिध्रु वनेद्यकुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ॥१३
असम्यग्व्ययशीलैस्तै कुर्वद्भि सततव्ययम् ।
सचित सोतिदु खेनक्षयकोशोगमिष्यति ॥१४

इस प्रकार राज्य के छिन जाने पर राजा सुरथ अश्वारूढ होकर मृगया के मिस से एकाकी ही निर्जन वन में चले गये ॥८॥ वहाँ उनको परहिंसा से निवृत्त हुए पशुओं से परिपूर्ण एक आश्रम देखा जो कि मेधा नामक महर्षि का था, वह अपने शिष्यों के सहित वहाँ निवास करते थे ॥९॥ उन महर्षि ने राजा का अत्यन्त सत्कार किया और तब वह राजा कुछ काल तक महर्षि के आश्रम में ठहर कर इधर-उधर विचरण करते रहे ॥१०॥ फिर उनका मन ममता पूर्वक उन्हें चिन्तन कराने लगा कि मेरे पूर्व पुरुषों द्वारा पालित राज्य अब मुझसे विहीन होगया है, मेरे दुराचारी भृत्य उसका धर्म पूर्वक पालन करते होंगे या नहीं ? ॥११॥ सदा मद में रहने वाला वह मेरा प्रधान हाथी अब शत्रुओं के वशीभूत होकर कैसे रह रहा होगा ॥१२॥ जो नित्य-प्रति प्रसाद,

धन, भोजनादि देने के कारण मेरे अनुगामी रहते थे, अब वह अवश्य ही अन्य राजाओं की सेवा में लगे होंगे ॥१३॥ तथा अन्यान्य प्रकार से धन व्यय करते हुए भी अत्यन्त कष्ट पूर्वक संचित कोष उन सेवकों के द्वारा नष्ट कर दिया जायगा ॥१४॥

एतच्चान्यच्चसततंचिंतयामासपार्थिव ।
तत्रविप्राश्रमाभ्याशेवैश्यमेकददर्शस ॥१५
सपृष्टस्तेनकस्त्वंभोहेतुश्चागमनेत्रक ।
सशोकइवकस्मात्त्वंदुर्मनाइवलक्ष्यसे ॥१६
इत्याकर्ण्यवचस्तस्यभूपते प्रणयोदितम् ।
प्रत्युवाचसतंवैश्य प्रश्रयावनतोनृपम् ॥१७
समाधिर्नामवैश्योहमुत्पन्नोधनिनाकुले ।
पुत्रदारैर्निरस्तश्चधनलोभादसाधुभि ॥१८
विहीन स्वजनैर्दारैपुत्रैरादायमेधनम् ।
वनमभ्यागतोदु खीनिरस्तश्चाप्तबधुभि ॥१९
सोहनवेद्मिपुत्राणाकुशलाकुशलात्मिकाम् ।
प्रवृत्तिस्वजनानाचदाराणाचात्रसस्थित ॥२०
किंनुतेषागृहेक्षेममक्षेमंकिंनुसाप्रतम् ।
कथतेकिंनुसद्वृत्तादुर्वृत्ता किंनुमेसुता ॥२१

राजा सुरथ इस प्रकार की अनेक चिन्ताएँ करने लगे, तभी उन्होंने आश्रम के समीप एक वैश्य को देखा ॥१५॥ तो उन्होंने उससे पूछा कि तुम कौन हो ? यहाँ किसलिये आये हो ? तुम शोक सन्तप्त से क्यों दिखाई दे रहे हो ? ॥१६॥ राजा के ऐसे विनम्र वचन सुनकर वैश्य ने भी उन्हें अत्यन्त नम्रता पूर्वक उत्तर दिया ॥१७॥ वैश्य ने कहा—मैं धनिक कुल में उत्पन्न हुआ समाधि नामक एक वैश्य हूँ, धन के लालच में मेरी स्त्री और पुत्रों ने ॥१८॥ मेरा सम्पूर्ण धन छीन कर मुझे घर से बाहर कर दिया है और इस अवस्था में मुझे मेरे बांधवों और मित्रों ने भी त्याग दिया है, इसीलिये दु खित हृदय मैं इस वन में आया हू ॥१९॥ तथा इस वन में आकर मैं अपने स्त्री-

पुत्रादि के कुशल या अमङ्गल की बात से अनभिज्ञ हूँ ॥२०॥घर में कुशल है या नहीं तथा उन पुत्रादि का आचरण सुधरा है अथवा नहीं, यही चिन्ता है ॥२१॥

यैर्निरस्तोभवाल्लुब्धैःपुत्रदारादिभिर्धनैः ।
तेषुकिंभवतःस्नेहमनुबध्नातिमानसम् ॥२२
एवमेतद्यथाप्राहभवानस्मद्गतवच ।
किंकरोमिनबध्नातिममनिष्ठुरतामनः ॥२३
यैः सत्यज्यपितृस्नेहधनलुब्धैर्निराकृतः ।
पतिस्वजनहार्दंचहार्द्दितेष्वेवमेमनः ॥२४
किमेतन्नाभिजानामिजानन्नापिमहामते ।
यत्प्रेमप्रवणचित्त विगुणेष्वपिबंधुषु ॥२५
तेषाकृतेमेनि श्वासोदौर्मनस्यचजायते ।
करोमिकिंयन्नमनस्तेष्वप्रीतिषुनिष्ठुरम् ॥२६
ततस्तौसहितौविप्रतमुनिंसमुपस्थितौ ।
समाधिर्नामवैश्योसौसचपार्थिवसत्तम ॥२७
कृत्वातुतौयथान्यायंयथार्हंतेनसंविदम् ।
उपविष्टौकथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥२८

राजा बोले— जिन धन के लालची स्त्री पुत्रादि ने तुम्हे घर से निकाल बाहर किया, उनके प्रति भी तुम्हारा चित्त स्नेहवान् क्यो है ? ॥२२॥ वैश्य बोला—आपका कथन यथार्थ है, परन्तु मैं क्या करूँ, मेरा मन किसी प्रकार भी उतना कठोर नहीं हो पा रहा है ॥२३॥ जिन पुत्रो ने पितृ स्नेह को त्याग कर, जिन पत्नियों ने पति-प्रेम को छोड़कर और जिन बन्धुओ ने बांधवत्व का परित्याग कर धन के लालच से मुझे घर से बाहर कर दिया, उन्ही दुष्ट स्त्री, पुत्र और बन्धुओ मे मेरा मन फँसा हुआ है, हे महामते ! उनमें मेरा चित्त इतना आकर्षित क्यो है, यह मेरी समझ मे नही आता ॥२४-२५॥ उन्हीं के प्रति खिन्न हुआ मेरा चित्त दीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ इतना प्रीतिमान् है और कठोरता को प्राप्त नही हो पाता ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे मुनिवर ! इसके पश्चात् राजा सुरथ और वैश्य दोनों ही मिलकर महर्षि मेधा के पास

पहुचे ॥२७॥ और दोनों ने मुनि का यथोचित सम्मान करके उनके साथ वार्तालाप प्रारम्भ किया ॥२८॥

भगवंस्त्वामहप्रष्टु मिच्छाम्येकवदस्वतत् ।
दुःखाययन्मेमनसः स्वचित्तायत्तताविना ॥२६॥
ममत्वंगतराज्यस्यराज्यागेष्वखिलेष्वपि ।
जानतोपियथाज्ञस्यकिमेतन्मुनिसत्तम ॥३॥
अयचनिकृत पुत्रं दारैर्भृ त्यैस्तथोज्झितः ।
स्वजनेनचसत्यक्तस्तेयुहार्दीतथाप्यति ॥३१॥
एवमेपतथाहचद्वावप्यत्यतदुःखितौ ।
दृष्टदोषेपिविपयेममत्वाकृष्टमानसौ ॥३२॥
त किमेतन्महाभागयन्मोहोज्ञानिनोरपि ।
ममास्यचभवत्येपाविवेकाधस्यमूढता ॥३३॥
ज्ञानमस्तिसमस्तम्यजंतोर्विपयगोचरे ।
विपयाश्चमहाभागयातिचैवपृथक्पृथक् ॥३४॥
दिवाधाःप्रणिन केचिद्रात्रावघास्तथापरे ।
केचिद्दिवातथारात्रौप्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥३५॥

राजा बोले—हे भगवन् ! जिस विषय को न समझने के कारण मेरा मन दुःखित है, उस विषय को आप से पूछा चाहता हूँ, उसे मुझे समझाने की कृपा करें ॥२६॥ हे प्रभो ! यद्यपि यह भ्रम है, फिर भी राज्यादि के प्रति मेरी इतनी ममता है, ऐसा क्यों है ? ॥३०॥ इस वैश्य को भी इसके पुत्र, स्त्री भृत्य, बाधवादि ने अपमानित करके त्याग दिया है, फिर भी यह उन्हीं के प्रति अनुराग युक्त है ॥३१॥ इस प्रकार मैं और यह वैश्य दोनो ही इस दिखाई पडते हुए दूषित विषय मे ममतावान् होकर अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं ॥३२॥ हम ज्ञानी होकर भी विवेकाध के समान विमूढ हो रहे हैं ऐसा क्यो है ? ॥३३॥ ऋषि ने कहा—सभी जीवो को विषय के दिखाई पडने पर ज्ञान है, परन्तु विषयो के प्रति पृथक्-पृथक् ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥३४॥ देखो कोई

जीव दिन मे नही देख सकता, कोई रात्रि मे नही देख पाता और किसी को दिन और रात्रि मे समान रूप से दिखाई देता है ॥३५॥

ज्ञानिनोमनुजा सत्यंकिंनुतेनहिकेवलम् ।
यतोहिज्ञानिन सर्वपशुपक्षिमृगादय ॥३६॥
ज्ञ ननतन्मनुष्याणायत्तेपामृगपक्षिणाम् ।
मनुष्यणाचयत्तेपातुल्यमन्यत्तयोभयो: ॥३७॥
ज्ञानेपिसतिपश्यैतान्पतगाञ्छावचचुपु ।
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीडयमानानपिक्षुधा ॥३८॥
मानुषामनुजव्याघ्रसाभिलाषा सुतान्प्रति ।
लोभात्प्रत्युपकारायनन्वेतन्किनपश्यसि ॥३९॥
तथापिममतावर्त्तेमोहगर्त्तेनिपातिताः ।
महामायाप्रभावेणससारस्थितिकारिणा ॥४०॥
तन्नात्रविस्मय कार्योयोगनिद्राजगत्पते ।
महामायाहरेश्चैतत्तयासमोह्यतेजगत् ॥४१॥
ज्ञानिनामपिचेतासिदेवीभगवतीहिसा ।
बलादाकृष्यमोहायमहामायाप्रयच्छति ॥४२॥

आप जिस प्रकार ज्ञानवार्ता करते हैं, ऐसा ज्ञान मनुष्यो को है, इसमे सन्देह नही, परन्तु केवल मनुष्य ही ऐसे ज्ञान के अधिकारी नही हैं पशु, पक्षी तथा मृगादि को भी ऐसा ज्ञान प्राप्त है ॥३६॥ दिखाई पडने वाले विषय का ज्ञान पशु, पक्षी और मनुष्यो का समान ही है, उसमें कुछ भेद नही है ॥३७॥ परन्तु ऐसा ज्ञान होने पर भी पारस्परिक विषय मे कितनी विभिन्नता है, देखो यह पक्षी स्वय क्षुधातुर होकर भी अपने बालको की चोच मे मोह के वशीभूत होकर ही धान्यादि के डालते हैं ॥३८॥ और मनुष्य भी अपनी सन्तान के प्रति प्रीतिमान् होकर उनका भरण-पोषण करते हैं, परन्तु मनुष्य का यह कार्य प्रत्युपकार के लोभ से ही है, क्या तुम्हे यह दिखाई नही देता ? ॥३९॥ इस प्रकार उपकार आदि की आशा से रहित होकर भी सभी जीव महामाया के प्रभाव से वासना रूप भ्रमर से युक्त मोह रूप गर्त्त मे पतित होते हैं ॥४०॥ इस

योगनिद्रांयदाविष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ।
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पांतेभगवान्प्रभु ॥४६॥
तदाद्वावसुरौघोरौविख्यातौमधुकैटभौ ।
विष्णुकर्णमलोद्भूतौहन्तु ब्रह्माणमुद्यतौ ॥५०॥
सनाभिकमलेविष्णो स्थितोब्रह्माप्रजापति ।
दृष्ट्वातावसुरौचोग्रौप्रसुप्तचजनार्दनम् ॥५१॥
तुष्टावयोगनिद्रांतामेकाग्रहृदयस्थित ।
प्रबोधनार्थायहरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ॥५२॥
विश्वेश्वरीजगद्धात्रीस्थितिसंहारकारिणीम् ।
स्तौमिनिद्रांभगवतीविष्णोरतुलतेजस ॥५३॥
त्वस्वाहात्वस्वधात्वंहिवषट्कार स्वरात्मिका ।
सुध.त्वमक्षरेनित्येत्रिधामात्रात्मिकास्थिता ॥५४॥
अर्धमात्रास्थितानित्यायानुच्चार्याविशेषतः ।
त्वमेवसध्यासाविनित्वदेविजननीपरा॥५५॥
त्वयैतद्धार्यतेविश्व त्वयंतत्सृज्यतेजगत् ।
त्वमेवसत्पाल्यतेदवित्वमत्स्यतेचसर्वदा ॥५६॥

तथा जब कल्पान्त में यह विश्व जल मग्न हो गया था, तब भगवान विष्णु शय्या पर शयन करके योग निद्रा मे निमग्न हो गये ॥४६॥ तभी मधु कैटभ नामक दो अत्यन्त भयकर एव प्रसिद्ध असुर भगवान् विष्णु के कान के मैल से उत्पन्न हुए और ब्रह्मा जी का वध करने मे तत्पर हुए ॥ विष्णु के नाभि कमल में अवस्थित अत्यन्त तेजवान् प्रजापति ब्रह्माजी ने उन दोनों भयकर असुरों को देखा और भगवान् विष्णु को निद्रा में निमग्न देख कर ॥५१॥ उन्हें जगाने के लिये एकाग्र चित्त से विष्णु के नेत्रों मे स्थित निद्रा स्वरूपिणी विश्वेश्वरी, विश्व की स्थिति और लय करने वाली एव भगवान् की तेजमूर्ति उन भगवती निद्रा की स्तुति करने लगे ॥५२-५३॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्म स्वरूपे ! हे नित्ये ! तुम हवि दान के मंत्र स्वाहा स्वरूप वाली हो, पितरों के श्राद्ध में तुम ही स्वधारूपिणी हो, वषट्कार इन्द्र के हविर्दान मन्त्र की स्वर

स्वरूपा भी तुम ही हो तुम ही सुधा तथा तुम ही स्वरों में, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत स्वरूपा त्रिमात्रा हो ।।५४।। जिस गायत्री में अर्द्ध मात्रा का उच्चारण विशेष रूप से स्थित हो, वह तुम ही हो और तुम ही सर्वश्रेष्ठ जगज्जननी एवं प्रकृति स्वरूपा हो ।।५५।। हे देवि ! इस विश्व को उत्पन्न करने वाली तुम ही हो तुम ही इसका धारण, पालन एवं प्रलयकाल में ग्रास करने वाली हो ।।५६।।

विसृष्टौसृष्टिरूपात्वं स्थितिरूपाचपालने ।
तथासंहृतिरूपांतेजगतोस्यजगन्मये ।।५७।।
महाविद्यामहामायामहामेधामहास्मृति ।
महामोहा भगवतीमहादेवी महेश्वरी ।।५८।।
प्रकृतिस्त्वंचसर्वस्यगुणत्रयविभाविनी ।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्चदारुणा ।।५९।।
त्वंश्रीस्त्वमीश्वरीत्वंह्रीस्त्वंबुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जापुष्टिस्तथातुष्टिस्त्वंशान्ति क्षांतिरेवच ।।६०।।
खड्गिनीशूलिनीघोरागदिनीचक्रिणीतथा ।
शंखिनीचापिनीबाणाभुशुंडीपरिघायुधा ।।६१।।
सौम्यासौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
परापराणांपरमा त्वमेवपरमेश्वरी ।।६२।।
यच्चकिंचित्क्वचिद्वस्तुसदसद्वाऽखिलात्मिके ।
तस्यसर्वस्ययाशक्तिःसात्वंकिंस्तूयसेमया ।।६३।।

सभी काल में सृष्टि और स्थितिरूप हो और विश्व के विनाश के समय तुम ही संहार स्वरूपा हो ।।५७।। तुम ही महाविद्या, महामेधा, महामाया, महास्मृति, महामोहा, महादेवी और महेश्वरी हो ।।५८।। तुम ही सत, रज, तम स्वरूप से सब जीवों की प्रकृति हो, तुम ही कालरात्रि, महारात्रि एवं प्रलय स्वरूपा हो, तुम ही भयंकर मोहरात्रि हो ।।५९।। तुम ही श्री, तुम ही ईश्वरी, बुद्धि तथा दिव्यज्ञान की एकमात्र लक्षणा हो, तुम ही लज्जा, पुष्टि,

तुष्टि, शान्ति तथा क्षान्ति हो ।।६०।। तुम ही खड्गिनी, शूलिनी, भयकर स्वरूपा, गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी और चापिनी हो, बाण, भुशुण्डी और परिघ इन अस्त्रों के भी धारण करने वाली हो ।।६१।। तुम ही सौम्या, सौम्यतरा तथा विश्व के सब सुन्दर पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य वाली हो, श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर तथा श्रेष्ठतरों की भी ईश्वरी हो ।।६२।। सत्, असत् वस्तु और उनकी जो शक्ति है वह तुम ही हो, इसलिये तुम्हारी स्तुति मैं किस प्रकार करूँ ? ।।६३।।

ययात्वयाजगत्स्रष्टाजगत्पात्यत्तियोजगत् ।
सोपिनिद्रावशनीत कस्त्वांस्तोतुमिहेश्वर ।।६४।।
विष्णु शरीरग्रहणमहमीशानएवच ।
कारितास्तेयतोऽस्तस्त्वांकस्तोतु शक्तिमान्भवेत ।।६५।।
सात्वमित्थप्रभावै स्वैरुदारैर्दे विसस्तुता ।
मोहमयेतौदुराधर्षावसुरौमधुकैटभौ ।।६६।।
प्रबोधचजगत्स्वामीनीयतामच्युतोलघु ।
बोधश्चक्रियतामस्यहतुमेतौमहासुरौ ।।६७।।
एवस्तुतातदादेवीतामसीतत्रवेधसा ।
विष्णो प्रबोधनार्थायनिहतु मधुकैटभौ ।।६८।।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्यथोरसः ।
निर्गम्यदर्शनेतस्थौब्रह्मणोव्यक्तजन्मन ।।६९।।
उत्तस्थौचजगन्नाथस्तयामुक्तोजनार्दन ।
एकार्णवेहिशयनात्तत सददृशेचतौ ।।७०।।

हे देवि ! जब तुमने विश्व के सृष्टा, पालक और प्रलयकर्त्ता भगवान को ही निद्राभिभूत किया हुआ है तब तुम्हारी स्तुति करने की सामर्थ्य और किस में होगी ? ।।६४।। हे देवि ! जब तुमने विष्णु ईशान और मुझे देह प्राप्त करायी है तब अन्य कौन पुरुष तुम्हारे स्तोत्र में समर्थ है ? ।।६५।। हे देवि ! तुम अपने उदार स्वभाव के इस वर्णन से प्रसन्न होकर इन मधु कैटभ नामक दोनों दुर्धर्ष असुरों को मोहित कर दो ।।६६।। तथा विश्वेश्वर विष्णु को

शीघ्र जगाकर इन असुरों के संहार के लिये प्रेरित करो ॥६७॥ ऋषि ने कहा—ब्रह्माजी ने उन दोनो का संहार करने के लिये जब इस प्रकार उन तमोगुणी निद्रादेवी की स्तुति की ॥६८॥ तब उसके देखते-देखते भगवान् विष्णु के नेत्र, नासिका, बाहु और हृदय से निकल कर भगवती अवस्थित हुई ॥६९॥ फिर निद्रा स्वरूपिणी देवी से मुक्त होकर भगवान् विष्णु ने एकार्णव में स्थित हुई शय्या से उठ कर देखा ॥७०॥

मधुकैटभौदुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ।
क्रोधरक्तेक्षणौहतुं ब्रह्माणजनितोद्यमौ ॥७१॥
समुत्थायततस्ताभ्यांयुयुधेभगवान्हरिः ।
पचवर्षसहस्राणिबाहुप्रहरणोविभु ॥७२॥
तावप्यतिबलोन्मत्तौमहामायाविमोहितौ ।
उक्तवतौवरोऽस्मत्तोव्रियतामितिकेशवम् ॥७३॥
भवेतामद्यमेतुष्टौममवध्यावुभावपि ।
किमन्येनवरेणात्रएतावद्धिवृतंमया ॥७४॥
वचिताभ्यामितितदासर्वमापोमयञ्जगत् ।
विलोक्यताभ्यांगदितोभगवान्कमलेक्षणः ॥७५॥
प्रीतौस्वस्तवयुद्धेनश्लाघ्यस्त्वमृत्युरावयोः ।
आवाजहिनयत्रोर्वीसलिलेनपरिप्लुता ॥७६॥
तथेत्युक्त्वाभगवताशखचक्रगदाभृता ।
कृत्वाचक्रेणवैच्छिन्नेजघनेशिरसीतयोः ॥७७॥
एवमेषासमुत्पन्नाब्रह्मणासस्तुतास्वयम् ।
प्रभावमस्यादेव्यास्तुभूयःशृणुवदामिते ॥७८॥

क्रोध से लाल नेत्र किये हुए वे मधु कैटभ नामक दोनों दुरात्मा असुर ब्रह्माजी का वध करना चाहते हैं ॥७१॥ भगवान् विष्णु ने उठ कर उन दोनो असुरों के साथ पाँच सहस्र वर्ष तक बाहुओं से ही युद्ध किया ॥७२॥ फिर बल से उन्मत्त हुए उन दोनों असुरों ने महामाया के द्वारा मोहित होकर भगवान् से कहा—हम से वर मांगो ॥७३॥ भगवान् ने कहा—यदि तुम मुझ पर

प्रसन्न हुए हो तो मेरे द्वारा मारे जाओ, यही वर चाहता हूँ, अन्य वर से क्या प्रयोजन है ।।७४।। ऋषि ने कहा—भगवान् द्वारा ऐसा छल करने पर उन असुरों ने सम्पूर्ण विश्व को जलमय देख कर उनसे कहा ।।७५।। हम तुम्हारे साथ युद्ध करके प्रसन्न हुए हैं इसलिये तुम्हारे हाथ से मरना हमें श्लाघनीय है, परन्तु जो स्थान जलमग्न न हो, हमारा वध वहीं करना ।।७६।। ऋषि ने कहा—'ऐसा ही हो' कहकर भगवान् विष्णु ने शङ्ख चक्र और गदा को धारण करके उन असुरों के मस्तकों को अपनी जंघा पर रख कर चक्र से काट डाला ।।७७।। स्वयं ब्रह्माजी द्वारा स्तुति करने पर यह मायादेवी इस प्रकार से अवतीर्ण हुई, अब इन देवी का प्रभाव तुम्हारे प्रति कहता हूं, उसे श्रवण करो ।।७८।।

७४- महिषासुर सैन्य वध

देवासुरमभूद्युद्ध पूर्णमब्दशतपुरा ।
महिषेसुराणामधिपेदेवानाञ्चपुरन्दरे ।।१
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यपराजितम् ।
जित्वाचसकलान्देवानिन्द्रोभून्महिषासुरः ।।२
तत पराजितादेवा पद्मयोनिप्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्यगतास्तत्रयत्रेशगरुडध्वजौ ।।३
यथावृत्त तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
त्रिदशा कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ।।४
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनायमस्यवरुणस्यच ।
अन्येषाचाधिकारान्सस्वयमेवाधितिष्ठति ।।५
स्वर्गान्निराकृता सर्वेतेनदेवगणाभुवि ।
विचरन्तियथामर्त्यामहिषेणदुरात्मना ।।६
एतद्व कथितमवंममरारिविचेष्टितम् ।
शरणञ्च प्रपन्ना स्मोवधस्तस्यविचिन्त्यताम् ।।७

मुनि ने कहा—प्रादिकाल मे जब देवाधिपति इन्द्र थे और महिष दानवों का अधिपति था, उस काल मे एक सौ वर्ष तक निरन्तर देवता और दानवों का युद्ध हुआ ॥१॥ उस युद्ध मे महापराक्रमी दानवों ने देव सेनाओ पर विजय प्राप्त की एवं सभी देवगण को जीतकर असुराधिपति महिष स्वयं इन्द्र बन गया ॥२॥ तदुपरान्त पराजित देवगण प्रजापति ब्रह्माजी के पास आये और शिवजी व विष्णु के निकट भी पहुँचे ॥३॥ देवगण ने शिवजी व भगवान् विष्णु को सम्पूर्ण युद्ध वृत्तान्त कह सुनाया और महिषासुर की विजय व उसके इन्द्रासन पर अधिकार की बात विस्तार से कही ॥४॥ देवताओ ने कहा कि, महिषासुर ने सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, यम, वरुण व अन्य दूसरे देवताओं के कार्यों पर अधिकार कर लिया है ॥५॥ महिष द्वारा स्वर्ग से निष्कासित देवता मर्त्यलोक के मनुष्यों के तुल्य पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं ॥६॥ हमने आपसे उन दानवो के अत्याचार का वर्णन किया । हम आपकी शरणागत हैं आप महिषासुर के विनाश के लिए विचार करिये ॥७॥

इत्यनिशम्यदेवानावचासिमधुसूदनः ।
चकारकोपशभुश्चभ्रु कुटीकुटिलाननौ ॥८
ततोतिकोपपूर्णस्यचक्रिणोवदनात्तत ।
निश्चक्राममहत्तेजोब्रह्मण शकरस्यच ॥९
अन्येषाचैवदेवानाशक्रादीनाशरीरत ।
निर्गतसुमहत्तेजस्तच्चैक्यसमगच्छत ॥१०
अतीवतेजस कूटज्वलतमिवपर्वतम् ।
ददृशुस्तेसुरास्तत्रज्वालाव्याप्तदिगतरम् ॥११
अतुलतत्रतत्तेज सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थतदभून्नारीव्याप्तलोकत्रयत्विषा ॥१२
यदभूच्छाभवतेजस्तेनाजायततन्मुखम् ।
याम्येनचाभवन्केशावाहवोविष्णुतेजसा ॥१३
सौम्येनस्तनयोर्युग्ममध्यमैंद्रेणचाभवत् ।
वारुणेनचजघोरूनितबस्तेजसाभुवः ॥१४

ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से चरणों की अंगुलियां, वसुगणों के तेज से हाथों की अंगुलियाँ कुबेर के तेज से नासिका ॥१५॥ प्रजापति के तेज से दन्तावलि, अग्नि के तेज से त्रिनेत्र ॥१६॥ दोनों सन्ध्याओं के तेज से भ्रकुटि, पवन के तेज से दो कान बन गये एवं अन्य दूसरे देवताओं विश्वकर्मा आदि के तेज से भी उसके अङ्ग सम्पूर्ण होकर उस मङ्गलकारी देवी ने जन्म लिया ॥१७॥ उसके पश्चात् सम्पूर्ण देवताओं के तेज पुञ्ज से उत्पन्न उन देवी को देखकर महिषासुर से त्रसित वह देवगण अत्यन्त हर्षित हुए ॥१७॥ फिर सभी देवताओं ने उन्हें अपने-अपने युद्धास्त्र प्रदान किये और विजय के आकांक्षी वह देवता जयन्ती देवी की जय-जयकार करने लगे ॥१६॥ इसके पश्चात् शिवजी ने अपने शूल से शूल उत्पन्न करके उन्हें प्रदान किया। विष्णु भगवान् ने अपने चक्र से चक्र उत्पन्न करके दिया ॥२०॥ वरुण ने उन्हें शङ्ख, हुताशन ने शक्ति एवं पवन ने उन्हें धनुष व बाण प्रदान किये ॥२१॥

वज्रमिन्द्र समुत्पाद्यकुलिशादमराधिपः ।
ददौतस्यैसहस्राक्षोघटामैरावताद्गजात् ॥२२
कालाद डाद्यमोद ड पाशचाबुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालाददौब्रह्माकमडलुम् ॥२३
समस्तरोमकूपेपुनिजरश्मीन्दिवाकर ।
कालश्चदत्तवान्खङ्ग तस्यैचर्मचनिर्मलम् ॥२४
क्षीरोदश्चामलहारमजरेचतथाम्बरे ।
चूडामणितयादिव्यकु डलेकटकानिच ॥२५
अर्द्ध चद्र तयाशुभ्र केयूरान्सर्वबाहुपु ।
नूपुरौविमलौतद्वद्ग्रं वेयकमनुत्तमम् ।
अ गुलीयकरत्नानिसमस्तास्वगुलीपुच ॥२६
विश्वकर्माददौतस्यैपरशु चातिनिर्मलम् ।
अस्त्राण्यनेकरूपाणितथाभेद्य चद शनम् ॥२७
अम्लानपकजामालांशिरस्युरसिचापराम् ।
अददाज्जलधिस्तस्यैपकजचातिशोभनम् ॥२८

मुनि ने कहा—देवगण के ऐसे वचन सुनते ही शिवजी और विष्णु भगवान् अत्यन्त कुपित हुए, और क्रोध से उन दोनों के मुख तथा भृकुटी कुटिल होगई ॥८॥ तदुपरान्त क्रोध से युक्त विष्णु भगवान्, शिवजी एवं ब्रह्माजी के मुखों से एक *विस्तृत तेज प्रकट हुआ ॥९॥* इसी प्रकार इन्द्र एवं अन्य दूसरे देवताओं के मुखों से भी तेज निकला। अनन्तर निकला हुआ समस्त तेज मिलकर एक होगया ॥१०॥ इसके पश्चात् मिलकर एक हुए उस अत्यन्त तेज पुञ्ज को, जिसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओं में फैल गईं, पर्वत के तुल्य उन्होंने देखा ॥११॥ फिर वह एकत्रित त्रिभुवन को अपनी आभा से प्रकाशित करने वाला तेज पुञ्ज स्त्री रूप में परिवर्तित होने लगा ॥१२॥ शिवजी के मुख से प्रकट हुए तेज से उसका मुख, यम के तेज से केश तथा विष्णु के तेज से उसकी दो भुजाएं बन गईं ॥१३॥ चन्द्र के तेज से दोनों स्तन, इन्द्र के तेज से मध्य प्रदेश, वरुण के तेज से जंघा और ऊरु, पृथ्वी के तेज से नितम्ब ॥१४॥

ब्रह्मणस्तेजसापादौतदङ्गुल्योर्कतेजसा ।
वसूनाचकरांगुल्यःकौबेरेणचनासिका ॥१५
तस्यास्तुद ता सभूताःप्राजापत्येनतेजसा ।
नयनत्रितयजज्ञे तथापावकतेजसा ॥१६
भ्रु वौचसध्ययोस्तेज श्रवणावनिलस्यच ।
अन्येपाचैवदेवानासम्भवस्तेजसाशिवा ॥१७
ततःसमस्तदेवानातेजोराशिसमुद्भवाम् ।
ताविलोक्यमुद प्रापुरमरामहिषार्दिता ॥१८
ततोदेवाददुस्तस्यैस्वानिस्वान्यायुधानिच ।
ऊचुर्जयजयेत्युच्चैर्जयतीतेजयैपिण ॥१९
शूलशूलाद्विनिष्कृष्यददौतस्यैपिनाकभृत् ।
चक्रचदत्तवान्कृष्ण समुत्पाट्यस्वचक्रत ॥२०
शखचवरुण शक्तिददौतस्यैहुताशन ।
मारुतोदत्तवाश्चापवाणपूर्णेतथेपुधी ॥२१

ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से चरणो की अगुलियाँ, वसुगणो के तेज से हाथों की अगुलियाँ कुबेर के तेज मे नासिका ।।१५।। प्रजापति के तेज से दतावलि, अग्नि के तेज से त्रिनेत्र ।।१६।। दोनों स ध्याओ के तेज से भ्रकुटि, पवन के तेज से दो कान बन गये एव अन्य दूसरे देवताओ विश्वकर्मा आदि के तेज से भी उसके अङ्ग सम्पूर्ण होकर उस मङ्गलकारी देवी ने जन्म लिया ।।१७।। उसके पश्चात् सम्पूर्ण देवताओ के तेज पुञ्ज से उत्पन्न उन देवी को देखकर महिषासुर से त्रसित वह देवगण अत्यन्त हर्षित हुए ।।१७।। फिर सभी देवताओ ने उन्हे अपने-अपने युद्धास्त्र प्रदान किये और विजय के आकाक्षी वह देवता जयन्ती देवी की जय-जयकार करने लगे ।।१६।। इसके पश्चात् शिवजी ने अपने शूल से शूल उत्पन्न करके उन्हे प्रदान किया। विष्णु भगवान् ने अपने चक्र से चक्र उत्पन्न करके दिया ।।२०।। वरुण ने उन्हे शख, हुताशन ने शक्ति एव पवन ने उन्हे धनुष व बाण प्रदान किये ।।२१।।

वज्रमिन्द्र समुत्पाट्यकुलिशादमराधिपः ।
ददौतस्यैसहस्राक्षोघटामैरावताद्गजात् ।।२२
कालाद डाद्यमोद ड पाशचाबुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालाददौब्रह्माकमडलुम् ।।२३
समस्तरोमकूपेपुनिजरश्मीन्दिवाकर ।
कालश्चदत्तवान्खङ्ग तस्यैचर्मचनिर्मलम् ।।२४
क्षीरोदश्चामलंहारमजरेचतथाबरे ।
चूडामणितथादिव्यकु डलेकटकानिच ।।२५
अर्द्ध चद्र तयाशुभ्र केयूरान्सर्वबाहुषु ।
नूपुरौविमलौतद्वद्ग्रै वेयकमनुत्तमम् ।
अ गुलीयकरत्नानिसमस्तास्वगुलीषुच ।।२६
विश्वकर्माददौतस्यैपरशु चातिनिर्मलम् ।
अस्त्राण्यनेकरूपाणितथाभेद्य चद शनम् ।।२७
अम्लानपकजामालांशिरस्युरसिचापराम् ।
अददाज्जलधिस्तस्यैपकजचातिशोभनम् ।।२८

सहस्राक्ष अमरेश्वर इन्द्र ने अपने वज्र से वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथी का घण्टा खोलकर दिया ॥२२॥ यमराज ने कालदण्ड से एक दण्ड उत्पन्न कर उन्हें प्रदान किया । वरुण ने पाश, दक्ष प्रजापति ने अक्षमाला एवं ब्रह्माजी ने उन्हे कमण्डलु प्रदान किया ॥२३॥ दिवकर ने उन कल्याणी देवी के समस्त रोम-रोम को अपनी किरणें प्रदान की, काल ने उन्हे स्वच्छ तलवार और ढाल दी ॥२४॥ क्षीरोद समुद्र ने भी पूर्ण उज्ज्वल मोतियों का हार, दो स्वस्थ वस्त्र, सुन्दर चूडामणि, दिव्य कुण्डल और कंगन प्रदान किये ॥२५॥ अर्द्ध चन्द्र ने भी सुन्दर पायल, दोनो बाहुओ मे बाजूबन्द, कंठ के लिए सुन्दर आभूषण एवं समस्त अगुलियो मे अनुपम अगूठियाँ दी ॥२६॥ विश्वकर्माजी ने अनुपम परशु और अकाट्य कवच उन्हे प्रदान किया ॥२७॥ समुद्र ने खिले हुए कमल पुष्पो की शोभायमान मालाऐं कंठ एव सिर पर धारण करने के लिय दी ॥२८॥

हिमवान्वाहनंसिंहरत्नानिविविधानिच ।
ददावशून्यसुरयापानपात्रंधनाधिप ॥२९
शेषश्चसर्वनागेशोमहामणिविभूषितम् ।
नागहारंददौतस्यैधत्ते य पृथिवीमिमाम् ॥३०
अन्यैरपिसुरैर्देवीभूषणैरायुधैस्तथा ।
सम्मानिताननादोच्चै साट्टहासमुहुर्मुहु ॥३१
तस्यानादेनघोरेणकृत्स्नमापूरितंनभ ।
अमायतातिमहताप्रतिशब्दोमहानभूत् ॥३२
चुक्षुभु सकलालोका समुद्राश्चचकम्पिरे ।
चचालवसुधाचेलु सकलाश्चमहीधरा ॥३३
जयेतिदेवाश्चमुदातामूचु सिंहवाहिनीम् ।
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनांभक्तिनम्रात्ममूर्त्तय. ॥३४
दृष्ट्वासमस्तंसंक्षुब्धंत्रैलोक्यममरारय ।
सन्नद्धाखिलसैन्यास्तेसमुत्तस्थुरुदायुधा ॥३५

हिमालय ने देवी को सवारी के लिए सिंह और विभिन्न रत्न प्रदान

किये। धनपति कुबेर ने उन्हें सुरा युक्त सुरा-पान पात्र दिया ॥२९॥ पृथ्वी के आधार अनन्त नागेश ने देवीजी को महामणि युक्त नागहार प्रदान किया ॥३०॥ अन्य दूसरे देवताओं ने भी उन्हे विभिन्न प्रकार के अस्त्र एव आभूषण प्रदान किये। इस प्रकार देवताओं द्वारा सम्मानित वह देवी अट्टहास के साथ भीषण गर्जना करने लगी ॥३१॥ उस भयङ्कर गर्जना से समस्त आकाश पूर्ण होगया फिर आकाश से एक अचानक घोर प्रति शब्द भी हुआ ॥३२॥ जिससे तीनों लोक हिल गये समुद्र काप गये, पृथ्वी डगमगाने लगी और सभी पर्वत कम्पायमान होने लगे ॥३३॥ तब सुरगण सिंह पर सवार उन भगवती को प्रसन्नता से जय-जय करने लगे। ऋषिगण भी नम्रता पूर्वक उनका गुण गान करने लगे ॥३४॥ तीनो लोको को इस प्रकार क्रियाशील देखकर दानवगण सम्पूर्ण सेना को सज्जित कर शस्त्रास्त्र धारण कर तैयार होगए ॥३५॥

आ. किमेतदितिक्रोधादाभाष्यमहिषासुरः ।
अभ्यधावततशब्दमशेषैरसुरैर्वृ त. ॥३६
सददर्शततोदेवींव्याप्तलोकत्रयांत्विषा ।
पादाक्रांत्यानतभुवकिरीटोल्लिखितांबराम् ॥३७
क्षोभिताशेषपातालांधनुर्ज्यानि स्वेनेनताम् ।
दिशोभुजसहस्रे णसमताव्याप्यसस्थिताम् ॥३८
तत प्रववृतेयुद्ध तयादेव्यासुरद्विषाम् ।
शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितदिगंतरम् ॥३९
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्योमहासुरः ।
युयुधेचामरश्चान्यश्चतुरगबलान्वितः ॥४०
रथानामयुतै पड्भिरुदग्राख्योमहासुरः ।
अयुध्यतायुतानांचसहस्रे णमहाहनु ॥४१
पंचाद्भिश्चनियुतैरसिलोमामहासुरः ।
अयुतानांशतैःपड्भिर्बाष्कलोयुयुधेरणे ॥४२

"अहा ! यह क्या होता है" कुपित महिषासुर ऐसा कहकर समस्त असु॰ सेना सहित उस ओर दौड पडा ॥३६॥ तो महिषासुर ने देखाकि वह

देवी अपनी आभा बिखेरती हुई त्रैलोक्य मे व्याप्त विद्यमान हैं। एव जिनके चरण पृथ्वी पर हैं और उनका मुकुट आकाश को चूम रहा है ॥३७॥ जिनके धनुष की प्रत्यचा के शब्द से समस्त भू-गर्भ भी कम्पित हो रहा था और वह कल्याणी देवी अपनी सहस्त्र भुजाओ से सम्पूर्ण दिशाओ के आच्छादित करते हुए शोभायमान थी ॥३८॥ तत्पश्चात् देवी के साथ दानवो का युद्ध प्रारम्भ होगया, जिसमे प्रयोग हुए विभिन्न प्रकार के युद्धास्त्रो से आकाश भी प्रकाशित होगया ॥३६॥ महिषासुर का सेनाध्यक्ष चिक्षुर घोर दानवी युद्ध करने लगा। चतुरगिनी सेना से सज्जित चामर नाम का असुर अन्य सेना के साथ मिलकर युद्ध करने लगा ॥४०॥ विकराल असुर उदग्र साठ हजार रथो सहित युद्ध करने लगा एव महाहनु नाम का असुर भी एक करोड रथो को लेकर रण-क्षेत्र मे उतर आया ॥४१॥ असुलोभ नाम का महाअसुर पाँच करोड रथ लेकर और महादानव वाष्कल साठ हजार रथो को लेकर युद्ध करने लगा ॥४२॥

गजवाजिसहस्रौघैरनेकैरुग्रदर्शनः ।
वृतोरथानाकोट्याचयुद्धे तस्मिन्नयुध्यत ॥४३
विडालाख्योमहादैत्य पचाशद्भिरयायुतै ।
युयुधेसयुगेतत्ररथानापरिवारित ॥४४
वृत कालोरथानाचरणेपचाशतायुतै ।
युयुधेसयुगेतत्रतावद्भि.परिवारित ॥४५
अन्येचतत्रायुतशोरथानागहयैर्वृ ता ।
युयुधु सयुगेदेव्यासहतत्रमहासुरा ॥४६
कोटिकोटिसहस्रै स्तुरथानादतिनातथा ।
हयानाचवृतोयुद्धे तत्राभून्महिषासुर ॥४७
तोमरैर्भिदिपालैश्चशक्तिभिर्मुसलैस्तथा ।
युयुधु सयुगेदेव्याखड्गै परशुपट्टिशै ॥४८
केचिच्चचिक्षिपु शक्ती केचित्पाशांस्तथापरे ।
देवीगड्गप्रहारैस्तुतेताहतु प्रचक्रमुः ॥४९
महादैत्य परिवारित अनेक सहस्र हाथी व घोड़ा युक्त एव करोड़ रथों

सहित उनमे मिलकर युद्ध करने लगा ॥४३॥ महाग्रसुर बिडाल पाँच लाख रथो को लेकर युद्ध क्षेत्र मे युद्ध-रत होगया ॥४४॥ एव इतने ही रथो सहित काल नाम का महादैत्य विशाल सेना सहित युद्ध मे रत होगया ॥४५॥ साथ ही अन्य दूसरे अनेक घोर असुर करोडो रथ हाथी और घोडो से युक्त उस देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४६॥ करोडो हजारो रथ हाथी और घोडो से सज्जित होकर वह महिषासुर उस युद्ध मे आया ॥४७॥ इस प्रकार असुरगण तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, तलवार, फरसा व पट्टिश द्वारा देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥४८॥ किसी ने शक्ति किसी ने पाश और किसी ने खड्ग चलाकर देवी पर वार करने के प्रयास किये ॥४९॥

सापिदेवीततस्तानिशस्त्राण्यस्त्राणिचडिका ।
लीलयैवप्रचिच्छेदनिजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥५०
अनायस्तानानादेवीस्तूयमानासुरर्षिभि. ।
मुमोचासुरदेहेपुशस्त्राण्यस्त्राणिचेश्वरी ॥५१'
सोपिक्रुद्धोधुतसटोदेव्यावाहनकेसरी ।
चचारासुरसैन्येषुवनेध्विवहुताशन ॥५२
निश्वासान्मुमुचेयाश्चयुध्यमानारणेम्बिका ।
तएवसद्य सभूतागणा शतसहस्रश ॥५३
युयुधुस्तेपरशुभिर्भिदिपालासिपट्टिशे ।
नाशयतोसुरगणान्देवीशक्त्युपवृ हिता ॥५४
अवादयतपटहान्गणा शखास्तथापरे ।
मृदगाश्चतथैवान्येतस्मिन्युद्धमहोत्सवे ॥५५
ततोदेवीत्रिशूलेनगदयाशरवृष्टिभि. ।
खड्गदिभिश्चशतशोनिजघानमहासुरान् ॥५६

फिर उन देवी ने भी अपने शस्त्रास्त्रो की वर्षा करके लीलापूर्वक उन दानवो के सभी अस्त्र-शस्त्र नष्ट कर डाले ॥५०॥ उस समय प्रसन्नतापूर्ण उन देवी का समस्त देवता और मुनिगण गुण-गान करने लगे। इसके पश्चात् देवी असुरो पर शस्त्रास्त्रो की वर्षा करने लगी ॥५१॥ देवी-वाहन सिंह भी केसर

देवी अपनी आभा बिखेरती हुई त्रैलोक्य मे व्याप्त विद्यमान हैं। एव जिनके चरण पृथ्वी पर हैं और उनका मुकुट आकाश को चूम रहा है ।।३७।। जिनके धनुष की प्रत्यचा के शब्द से समस्त भू-गर्भ भी कम्पित हो रहा था और वह कल्याणी देवी अपनी सहस्त्र भुजाओ से सम्पूर्ण दिशाओ के आच्छादित करते हुए शोभायमान थी ।।३८।। तत्पश्चात् देवी के साथ दानवो का युद्ध प्रारम्भ होगया, जिसमे प्रयोग हुए विभिन्न प्रकार के युद्धास्त्रो से आकाश भी प्रकाशित होगया ।।३६।। महिपासुर का सेनाध्यक्ष चिक्षुर घोर दानवी युद्ध करने लगा। चतुरगिनी सेना से सज्जित चामर नाम का असुर अन्य सेना के साथ मिलकर युद्ध करने लगा ।।४०।। विकराल असुर उदग्र साठ हजार रथो सहित युद्ध करने लगा एव महाहनु नाम का असुर भी एक करोड रथो को लेकर रण-क्षेत्र मे उतर आया ।।४१।। असुलोभ नाम का महाअसुर पाँच करोड रथ लेकर और महादानव बाष्कल साठ हजार रथो को लेकर युद्ध करने लगा ।।४२।।

गजवाजिसहस्त्रौघैरनेकैरुग्रदर्शनः ।
वृतोरथानाकोट्याचयुद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।।४३
बिडालाख्योमहादैत्य पञ्चाशद्भिरथायुतं ।
युयुधेसयुगेतत्ररथानापरिवारित ।।४४
वृत कालोरथानाचरणेपचाशतायुते ।
युयुधेसयुगेतत्रतावद्भि:परिवारित ।।४५
अन्येचतत्रायुतशोरथानागहयैर्वृता ।
युयुधु सयुगेदेव्यासहतत्रमहासुरा ।।४६
कोटिकोटिसहस्त्रैस्तुरथानादतिनातथा ।
हयानांचवृतायुद्धे तत्राभून्महिषासुर ।।४७
तोमरैर्भिदिपालैश्चशक्तिभिर्मुसलैस्तथा ।
युयुधु सयुगेदेव्याखड्गै परशुपट्टिशै ।।४८
केचिच्चचिक्षिपु शक्ती केचित्पाशांस्तथापरे ।
देवीखड्गप्रहारैस्तुतेताहन्तु प्रचक्रमु: ।।४६

महादैत्य परिवारित अनेक सहस्र हाथी व घोड़ा युक्त तथ करोड़ रथों

सहित उनमे मिलकर युद्ध करने लगा ।।४३।। महाअसुर बिडाल पाँच लाख रथो को लेकर युद्ध क्षेत्र मे युद्ध-रत होगया ।।४४।। एव इतने ही रथो सहित काल नाम का महादैत्य विशाल सेना सहित युद्ध मे रत होगया ।।४५।। साथ ही अन्य दूसरे अनेक घोर असुर करोडो रथ हाथी और घोडो से युक्त उस देवी के साथ युद्ध करने लगे ।।४६।। करोडो हजारो रथ हाथी और घोडों से सज्जित होकर वह महिपासुर उस युद्ध मे आया ।।४७।। इस प्रकार असुरगण तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, तलवार, फरसा व पट्टिश द्वारा देवी के साथ युद्ध करने लगे ।।४८।। किसी ने शक्ति किसी ने पाश और किसी ने खड्ग चलाकर देवी पर वार करने के प्रयास किये ।।४६।।

सापिदेवीततस्तानिशस्त्राण्यस्त्राणिचडिका ।
लीलयैवप्रचिच्छेदनिजशस्त्रास्त्रवर्पिणी ।।५०
अनायस्ताननादेवीस्तूयमानासुर्रपिभि. ।
मुमोचासुरदेहेपुशस्त्राण्यस्त्राणिचेश्वरी ।।५१
सोपिक्रुद्धोधुतसटोदेव्यावाहनकेसरी ।
चचारासुरसैन्येपुवनेष्विवहुताशन ।।५२
निश्वासान्मुमुचेयाश्चयुध्यमानारणेम्बिका ।
तएवसद्य सभूतागणा शतसहस्रश ।।५३
युयुधुस्तेपरशुभिर्भिदिपालासिपट्टिशै ।
नाशयतोसुरगणान्देवीशक्त्युपबृ हिता ।।५४
अवादयतपटहान्गणा शखास्तथापरे ।
मृदगाश्चतथैवान्येतस्मिन्युद्धमहोत्सवे ।।५५
ततोदेवीत्रिशूलेनगदयाशरवृष्टिभि. ।
खड्गदिभिश्चशतशोनिजघानमहासुरान् ।।५६

फिर उन देवी ने भी अपने शस्त्रास्त्रो की वर्षा करके लीलापूर्वक उन दानवो के सभी अस्त्र शस्त्र नष्ट कर डाले ।।५०।। उस समय प्रसन्नतापूर्ण उन देवी का समस्त देवता और मुनिगण गुण-गान करने लगे । इसके पश्चात् देवी असुरो पर शस्त्रास्त्रो की वर्षा करने लगी ।।५१।। देवी-वाहन सिंह भी केसर

कम्पित कर अग्नि के समान दैत्य सेनाओं में विचरण करने लगा ।।५२।। युद्ध में रत देवी के नि श्वासों से ही शत सहस्र गण तुरन्त उत्पन्न होगये और असुर सेनाओं से युद्ध करने लगे ।।५३।। देवी के प्रभाव से बलशाली वह गण फरसा, भिन्दिपाल, असि और पट्टिश से दानवों को नष्ट करने लगे ।।५४।। गण युद्ध क्षेत्र में शङ्खनाद भी करते थे और मृदङ्ग भी बजाते थे ।।५५।। इसके पश्चात् देवी ने भी त्रिशूल, गदा, शक्ति, ऋष्टि, खड्ग वगैरह से शत शत घोर दानवों का शमन किया ।।५६।।

पातयामासचैवान्यान्घटास्वनविमोहितान् ।
असुरान्भुविपाशेनबद्धाचान्यानकर्षयत् ।।५७
केचिद्द्विधाकृतास्तीक्ष्णै खड्गपातैस्तथापरे ।
विपोथिलानिपातेनगदयाभुविशेरते ।।५८
वेमुश्चकेचिद्रुधिरमुसलेनभृशहता ।
केचिन्निपतिताभूमौभिन्ना.शूलेनवक्षसि ।।५९
निरन्तरशरौघेणकृत्ता केचिद्रणाजिरे ।
शैलानुकारिण प्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्द ना. ।।६०
केषाचिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ।
शिरासिपेतुरन्येमषामन्येमध्येविदारिता. ।।६१
विच्छिन्नजघास्त्वपरेपेतुरुर्व्यांमहासुरा: ।
एकबाह्वक्षिरणा केचिद्देव्याद्विधाकृता' ।।६२
छिन्नेपिचान्येशिरसिपतिता पुनरुत्थिता. ।
कवधायुयुधुर्देव्यागृहीतपरमायुधाः ।।६३

कई को घंटे शब्द से मोहित कर मारा और दूसरे बहुत से राक्षसों को पाश में बाँधकर धरातल पर खींचा ।।५७।। कई को अपनी तलवार की तीव्र धार से दो टुकड़े कर डाला और कई को गदा के प्रहारों से चूर्ण कर डाला ।।५८।। कोई-कोई मूसल के प्रहार से निरन्तर रक्त-वमन करने लगा और कई असुर हृदय में त्रिशूल भेदन से पीड़ित होकर पृथ्वी पर लुढ़क गये ।।५९।। युद्ध भूमि में देवी के बाणों के प्रहारों से निरन्तर असुरों की सेनाओं की सहायता

करने वाले देवताओ के शत्रु इस प्रकार मरते जाते थे ॥६०॥ किसी असुर की भुजाऐ कटी, किसी की गदन, अन्य दूसरो के मस्तक धड से अलग होगये और किसी के मध्य से दो टुक्डे होगये ॥६१॥ किसी भयमर असुर की जाघ कटकर धरती पर गिरी और देवी ने किसी-किसी के एक बाहु, एक आँख और एक चरण नष्ट कर दिया व किसी के बीच से दो खड कर दिये ॥६२॥ कोई-कोई असुर मस्तक कट जाने से भी पृथ्वी से गिरकर पुन: उठकर कई कबन्ध या धड पुन अस्त्र लेकर देवी से युद्ध करने लगे ॥६३॥

ननृतुश्चापरेतत्रयुद्धे तूर्यलयाश्रिता: ।
कवधाश्छिन्नशिरस खड्गशक्त्यृष्टिपाणय: ॥६४
तिष्ठतिष्ठेतिभापतोदेवीमन्येमहासुरा ।
रुधिरौघविलुप्तागा सग्रामोलोमहर्पणे ॥६५
पातितैरथनागाश्वै रसुरैश्चवसु धरा ।
अगम्यासाऽभवत्तत्रयत्राभूत्समहारण. ॥३६
शोणितौघामहानद्य सद्यस्तत्रविसुस्रुवु: ।
मध्येचासुरसैन्यस्यवारणासुरवाजिनाम् ॥६७
क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणातथाविका ।
निन्येक्षययथावह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६८
सचसिंहोमहानादमुत्सृजन्धुतकेसर ।
शरीरेभ्योमरारीणामसूनिवविचिन्वति ॥६९
देव्यागणैश्चतैस्तत्रकृतयुद्ध महासुरै ।
यथैनातुष्टुवुर्देवा पुष्पवृष्टिमुचोदिवि ॥७०

अनेक कवन्ध या धड नृत्य करने लगे और उस महायुद्ध मे अनेक भयङ्कर महादैत्य मस्तक कट जाने पर केवल कबन्ध ही रह गये थे। जो कि हाथो मे तलवार, शक्ति और दोनो ओर धार वाली तलवार पुन लेकर ॥६४॥ 'ठहरो, ठहरो !' देवी से कहते थे। जिस क्षेत्र में यह विदारक महा युद्ध हुआ गिरे हुए हाथी, घोडो, दानवो और उनके रथो से वह पट सा गया था और ऐसा होगया कि पैर रखने को भी स्थान नहीं था ॥६५-६६॥ तत्काल ही उस

स्थान पर युद्ध मे असुर सेनाम्रो के हाथियो, घोडो व सैनिको के रक्त-समूह से रक्त की नदियाँ बहने लगी ।।६७।। सूखे हुए काष्ठ को अग्नि जिस प्रकार पल-भर मे राख कर देती है, उसी प्रकार उन अम्बिका देवी ने राक्षसो की महा सेनाम्रो को पल मात्र मे नष्ट किया ।।६८।। देवी-वाहन सिंह ने भी महानाद करते हुए, अपने बालो को कम्पित करता हुआ अत्यन्त क्रोध पूर्वक सभी दानवो के प्राणो को हरने लगा ।।६९।। एवं घूम-घूमकर असुरो के शरीरो से ही जैसे वह प्राणो को ही खोजने लगा । देवी के सम्पूर्ण गणो ने उन भयङ्कर असुरो से पराक्रम पूर्वक युद्ध किया, जिससे देवता प्रसन्न होकर स्वर्ग से उन पर पुष्प-वर्षा करने लगे ।।७०।।

७५—महिषासुर वध

निहन्यमानतत्सैन्यमवलोक्यामहासुर. ।
सेनानीश्चिक्षुर कोपाद्ययौयोद्धुमथाम्बिकाम् ।।१
सदेवीशरवर्षेणववर्षसमरेऽसुरः ।
यथामेरुगिरे.शृ गतोयवर्षेणतोयद ।।२
तस्यच्छित्त्वातदेवीलीलयैवशरोत्करान् ।
जघानतुरगान्बाणैर्यंतारञ्चैववाजिनाम् ।।३
चिच्छेदचधनु सद्योध्वजचातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याधचैनगात्रेषु च्छिन्नधन्वानमाशुगः ।।४
सच्छिन्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ।
अभ्यधावततांदेवीखङ्गचर्मधरोसुर. ।।५
सिंहमाहत्यखङ्गेनतीक्ष्णधारेणमूर्धनि ।
आजघानभुजेसव्येदेवीमप्यतिवेगवान् ।।६

उस सब असुर सेनाम्रो को नष्ट हुआ देखकर महिषासुर का सेनाध्यक्ष चिक्षुर युद्ध निमित्त अम्बिका देवी के समीप आया ।।१।। सुमेरु पर्वत के शिखर

पर बादलों की वर्षा के समान वह महा असुर देवी पर शर-वर्षा करने लगा ॥२॥ देवी ने उसके सभी बाणों को काटकर लीला पूर्वक उसके रथ के घोड़ों और सारथी को अपने बाणों से नष्ट कर डाला ॥३॥ देवी ने तत्काल उस चिक्षुर का धनुष और अत्यन्त उच्च ध्वजा को काट कर उसका शरीर बाण वर्षा से बेध डाला ॥४॥ उसका जब धनुष नष्ट होगया, रथ नष्ट होगया तथा घोड़े व सारथी सभी समाप्त होगये, तो वह दैत्य सेनापति तीव्र तलवार व ढाल लेकर देवी की ओर दौड़ा ॥५॥ और घोर गति से अपनी तीक्ष्ण धार की तलवार से सिंह के माथे पर प्रहार करके देवी के भी बाँये हाथ पर प्रहार किया ॥६॥

तस्याःखड्गोभुजंप्राप्यपफालनृपनंदन ।
ततोजग्राहशूलंसकोपादारुणलोचन ॥७
चिक्षेपचततस्तत्तुभद्रकाल्यांमहासुरः ।
जाज्वल्यमानतेजोभीरविबिंबमिवांबरात् ॥८
दृष्ट्वातदापतच्छूलंदेवीशूलममुंचत ।
तेनतच्छतधानीतंशूलंसचमहासुरः ॥९
हतेतस्मिन्महावीर्येमहिषस्यचमूपतौ ।
आजगामगजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥१०
सोपिशक्तिमुमोचाथदेव्यास्तामम्बिकाद्रुतम् ।
हुंकाराभिहतांभूमौपातयामासनिष्प्रभाम् ॥११
भग्नांशक्तिंनिपतितांदृष्ट्वाक्रोधसमन्वितः ।
चिक्षेपचामरःशूलंबाणैस्तदपिसाच्छिनत् ॥१२
ततःसिंहःसमुत्पत्यगजकुंभांतरेस्थितः ।
बाहुयुद्धेनयुयुधेतेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१३
युध्यमानौततस्तौतुतस्मान्नागान्महींगतौ ।
युयुधातेतिसंरब्धौप्रहारैरतिदारुणैः ॥१४

हे नृप ! उस दैत्यराज का खड्ग देवी के हाथ के स्पर्श मात्र से ही टूट गया। फिर क्रोधपूर्ण रक्तिम नेत्रों वाले उस महादानव ने त्रिशूल लेकर ॥

भद्रकाली पर वार किया तो देवी ने तेज से प्रकाशमान एवं आकाश से गिरते हुए सूर्य मण्डल के तुल्य ॥८॥ उस त्रिशूल को देखकर अपना शूल ग्रहण किया देवी द्वारा वार किये गये त्रिशूल से उस असुर के त्रिशूल के सौ टुकड़े होगये एवं दैत्य सेनाधिपति चिक्षुर के भी सौ टुकड़े होगये ॥९॥ महिषासुर का सेनापति महापराक्रमी चिक्षुर के समाप्त होने पर सुरगणों का शत्रु महादानव चामर हाथी पर सवार होकर युद्ध करने के लिऐ देवी के सामने आया ॥१०॥ उस महादानव ने देवी पर लक्ष्य करके शक्ति छोड दी, परन्तु वह शक्ति देवी की हुंकार के घोर शब्द से अभिहत व प्रभाहीन होकर धरातल पर गिर पडी। शक्ति को इस प्रकार नष्ट हुआ देख असुर चामर ने क्रोधित होकर त्रिशूल चलाया परन्तु देवी ने अपने शरों से उस त्रिशूल को भी भेद दिया ॥१२॥ इसके पश्चात् देवी-वाहन सिंह छलाग लगाकर हाथी के मस्तक पर चढ गया एव हाथी की पीठ पर बैठे उस महा असुर से बाहु युद्ध करने लगा ॥१३॥ सिंह एव असुर चामर दोनो ही युद्ध करते हुए उस गज से नीचे गिरे व अत्यत क्रोधपूर्वक आपस मे भीषण प्रहार करने लगे ॥१४॥

ततोवेगात्खमुत्पत्यनिपत्यचमृगारिणा ।
करप्रहारेणशिरश्चामरस्यपृथक्कृतम् ॥१५
उग्रश्चरणेदेव्याशिलावृक्षादिभिर्हत ।
द तमुष्टितलैश्चैवकरालश्चनिपातित ॥१६
देवीक्रुद्धागदापातैश्चूर्णयामासचोद्धतम् ।
वाष्कल भिन्दिपालेनवाणैस्ताम्र तथांधकम् ॥१७
उग्रास्यमुग्रवीर्यंचतथैवचमहाहनुम् ।
त्रिनेत्राचत्रिशूलेनजघानपरमेश्वरी ॥१८
विडालस्यासिनाकायात्पातयामासवैशिर ।
दुर्धरदुर्मु खचोभौशरैर्निन्येयमक्षयम् ।
कालचकालदडेनकालरात्रिरपातयत् ॥१९
"उग्रदर्शनमत्युग्रं खड्गपातैरताडयत् ।

असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सारणोत्सवे ।
गणैः सिंहेनदेव्याचजयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः" ॥२०
एवंसंक्षीयमाणेतुस्वसैन्येमहिषासुरः ।
माहिषेणस्वरूपेणत्रासयामासतान्गणान् ॥२१

इसके बाद क्रुद्ध समय मे ही सिंह ने एकदम आकाश मे छलांग लगाई और फिर पृथ्वी पर गिर कर भयानक पंजों से आघात करते हुए असुर चामर का मस्तक उसकी देह से अलग कर दिया ॥१५॥ उदग्र नाम असुर को देवी ने पत्थर और वृक्षों की वर्षा करके और असुर कराल को दाँत व मुष्टिका प्रहारों से समाप्त कर डाला ॥१६॥ अत्यन्त कुपित उस देवी ने गदा के आघात से उद्धत नाम के दानव को पीस डाला। फिर भिंदिपाल से असुर वाष्कल एव ताम्र व अन्धक नामक दो असुरों को शरों से समाप्त कर दिया ॥१७॥ त्रिनेत्रा परमेश्वरी देवी ने त्रिशूल द्वारा उग्रास्य, उग्रवीर्य व महाहनु नामक दानवों को नष्ट कर दिया ॥१८॥ तलवार द्वारा असुर बिडाल के मस्तक काटकर गिरा दिया। बाणों के प्रहार से दुर्द्धर व दुर्मुख नाम के दो दानवों का यमलोक भेज दिया। कालरात्रि ने काल असुर को काल दण्ड से मार दिया ॥१९॥ उग्र खड्ग के आघात से उग्रदर्शन, असि मे असिलोमा को समाप्त कर दिया तो सिंह व देवी के गणों ने जय-नाद किया ॥२०॥ इस प्रकार अपनी समस्त सेना को नष्ट होता हुआ विलोक राक्षसराज महिषासुर अपना महिषरूप धारण करके देवी के गणों को भयभीत करने लगा ॥२१॥

कांश्चित्तुंडप्रहारेणखुरक्षेपैस्तथापरान् ।
लांगूलताडिताश्चान्यान्छृंगाभ्याचविदारितान् ॥२२
वेगेनकांश्चिदपरान्नादेनभ्रमणेनच ।
निश्वासपवनेनान्यान्पातयामासभूतले ॥२३
निपात्यप्रमथानीकमभ्यधावतसोसुर ।
सिंहहंतुंमहादेव्याःकोपचक्रेततोम्बिका ॥२४
सोपिकोपान्महावीर्यःखुरक्षुण्णमहीतलः ।
शृंगाभ्यापर्वतानुच्चांश्चिक्षेपचननादच ॥२५

वेगभ्रमणविक्षुण्णमहीतस्यव्यशीर्यत ।
लांगूलेनाहतश्चाब्धि प्लावयामाससर्वतं ॥२६
धुतशृगविभिन्नाश्चखड खड ययुर्घना ।
श्वासानिलास्ता शतशोनिपेतुर्नभसोऽचला ॥२७
इतिक्रोधसमाध्मातमापततमहासुरम् ।
दृष्ट्वासाचडिकाक्रोपत्तद्वधायतदाकरोत् ॥२८

किसी गण को मुख प्रहार से, किसी पर खुर से आघात करके, किसी को पूँछ के आघात से ग्रसित करने लगा ।।२२।। किसी को तीव्र गति द्वारा, किसी को घोर गर्जन द्वारा, किसी को भ्रमण द्वारा और किसी को श्वास की वायु से विदारण कर डाला ।।२३।। इस प्रकार दैत्य-गणों को गिराकर वह दैत्यराज महा देवी के वाहन सिंह को समाप्त करने की आकांक्षा से दौड़ा, तो देवी एकदम क्रोधित हुई ।।२४।। महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोधपूर्ण होकर खुरो से धरती को कुरेदता हुआ और दोनो तीक्ष्ण सीगा द्वारा उच्चतर पर्वत मालाओं को उखाड़ता हुए गर्जने लगा ।।२५।। उसके वेग से इस प्रकार घूमने पर पृथ्वी कोमल होगई और गड्ढे होगये तथा पूंछसे ताडित समुद्र भी सभी ओर फैलने लगा ।।२६।। कँपा देने वाले सीगो से घिरे हुए बादल खण्ड खण्ड होगये और उसके श्वास की तीव्र वायु से अनेको पर्वत गिर पड़े ।।२७।। ऐसे क्रोध पूर्ण उस दैत्यराज को समीप आया देख चण्डिका देवी भी क्रोधित हो उसे मारने को उद्यत हो गई ।।२८।।

साक्षिप्त्वातस्यवैपाशतबबधमहासुरम् ।
तत्याजमाहिपरूपसोपिबद्धोमहामृधे ॥२९
तत सिंहोभवत्सद्योयावत्तस्यांबिकाशिर ।
छिनत्तितावत्पुरुष खड्गपाणिरदृश्यत ॥३०
ततएवाशुपुरुषदेवीचिच्छेदसायकै ।
तखड्गचर्मणासार्धंतत सोभून्महागज ॥३१
करेणचमहासिंहतचकर्षजगर्जच ।
कर्षतस्तुकरदेवीखड्गेननिरकृतत ॥३२

अर्द्धनिष्क्रान्तएवासौयुध्यमानोमहासुरः ।
तयामहासिनादेव्याशिरश्छित्वानिपातितः ॥४०
एवंसमहिषोनामससैन्यः ससुहृद्गणः ।
त्रैलोक्यमोहयित्वातुतयादेव्याविनाशितः ॥४१
त्रैलोक्यस्थैस्तदाभूतैर्महिषेविनिपातिते ।
जयेत्युक्तं ततः सर्वैः सदेवासुरमानवैः ॥४२
ततोहाहाकृतसर्वंदैत्यसैन्यंननाशयत् ।
प्रहर्षंचपरंजग्मुः सकलादेवतागणाः ॥४३
तुष्टुवुस्तांसुरादेवीसहदिव्यैर्महर्षिभिः ।
जगुर्गंधर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४४

देवी भी अपनी बाण-वर्षा द्वारा उन समस्त पर्वतों को चूर्ण करके युद्ध करने लगी। उस समय चूंकि मद्य-पान से देवी का शरीर रक्त वर्ण होगया था एवं सभी शब्दों का स्पष्ट उच्चारण नहीं हुआ ॥३६॥ देवी ने कहा—अरे मूर्ख ! जब तक मैं मद्य पीती हूँ, तभी तक तू गर्जना करले फिर मेरे द्वारा तुझे निहत हुआ देख देवतागण यहाँ तेरे स्थान पर गर्जना करेंगे ॥३७॥ ऋषि ने कहा—देवी ऐसा कहकर छलांग लगाकर उस महादानव पर सवार होगई तथा उसे अपने चरणों से दबाकर उस असुर के कंठ में त्रिशूल से प्रहार करने लगी ॥३८॥ इसके पश्चात् उस महादानव की आभा प्रायः समाप्त होगई और देवी के पैरों से दबा होने से ग्रस्त-सा होगया ॥३९॥ उसके बाद संघर्ष करते हुए उस महादानव का महासि से सिर कलम कर उसे समाप्त कर दिया ॥४०॥ इस प्रकार से वह महिषासुर अपनी सेना और असुरगणों के समेत त्रैलोक्य को त्रसित कर अन्त में देवी द्वारा विनाश कर दिया गया ॥४१॥ उस समय महिषासुर के निहत होने पर तीनों लोकों के देवता, मनुष्य और भू-पाताल निवासी बलि आदि सभी ने देवी का जयघोष किया ॥४२॥ उसके पश्चात् देवी ने हाहाकार करती शेष दैत्य सेना को भी नष्ट कर दिया, जिससे कि सुरगण अत्यन्त आनन्दित हुए ॥४३। देवता व ऋषि-मुनिगण देवी का गुण-गान करने लगे। गन्धर्व पति गायन करने लगे एवं अप्सरायें नृत्य करने लगीं ॥४४॥

७६--शक्रादिकृत देवीस्तव

तत सुरगणा सर्वे देव्याइ द्रपुरोगमा ।
स्तुतिमारेभिरेकर्त्तुं निहतेमहिपासुरे ॥१
शक्रादय सुरगणानिहतेतिवीर्येतस्मिन्दुरात्मनिसुरारिबलेचदेव्या।
तातुष्टुवु प्रणतिनम्रशिरोधरासावाग्भि प्रहर्षपुलकाद्गमचारुदेहा ॥२
दव्यायययाततमिद जगदात्मशक्त्यानि शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामविकामखिलदेवमहर्पिपूज्याभक्त्यानता स्मविदधातुशुभानिसान॥ ३
यस्या प्रभावमतुलभगवाननतोब्रह्माहरश्चनहिवक्तुमलवलच ।
साचडिकाखिलजगत्परिपालनायनाशायचाशुभभयस्यमतिकरोतु ॥४
याश्री स्वयसुकृतिनाभवनेष्वलक्ष्मी पापात्मनाकृतधियाहृदयेपुबुद्धि ।
श्रद्धासताकुलजनप्रभवस्यलज्जातात्वानता स्मपरिपालयदेविविश्वम् ॥५
किंवर्णयामतवरूपमचिंत्यमेतत्किंचातिवीर्यमसुरक्षयकारिभूरि ।
किंचाहवेपुचरितानितवाद्भुता नसर्वेपुदव्यसुरदेवगणादिकेपु ॥६
हेतु समस्तजगतात्रिगुणापिदेवैर्नज्ञायसेहरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिद जगद शभूतमव्याकृताहिपरमाप्रकृतिस्त्वमाद्या ॥७

ऋषि ने कहा—उस काल इन्द्र सहित समस्त सुरगण देवी द्वारा महिषासुर का वध किया जाने से आनन्दित होकर देवी का गुण गान करने लगे ॥१॥ भगवती देवी ने सुरगणों के घोर शत्रु महापराक्रमी दैत्यराज महिषासुर का वध कर दिया तो इन्द्र सहित सम्पूर्ण सुरगणों के सुशोभित तन इस आनन्द से और अधिक पुलकित हो उठे, वे अपने सिर व कन्धों का नवाकर विभिन्न प्रकार से गुण गान करते हुए दुर्गा की स्तुति करने लगे ॥२॥ देवताओं ने कहा—इस प्राणि जगत् को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणत हुई हैं एवं जो समस्त सुरगणों एवं महामुनियों की पूज्या हैं हम भक्तिपूर्वक उन अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं, वह हम सबका कल्याण करें ॥३॥ अनन्त भगवान्, ब्रह्मा एवं महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं,

वह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिए और उसके अहित व भय के नाश के लिए आकांक्षित हों ॥४॥ पुनीत कार्य करने वाले प्राणियों के गृह में लक्ष्मी स्वरूप, पाप-कर्म करने वालों के गृह में दरिद्र स्वरूप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के मस्तिष्क में बुद्धि स्वरूप, सद्‌आचरण वालों के लिये श्रद्धा स्वरूप और पवित्र कुल में उत्पन्न प्राणियों की लज्जास्वरूप हैं, उन देवी को नमस्कार करते हैं। हे देवि ! आप जगत् का पोषण करें ॥५॥ आपका अचिन्त्य स्वरूप वर्णन करने में हम असमर्थ हैं। हे देवि ! आपका दानवों का विनाश करने वाला अपरिमित वीर्य एवं दानवों व देवगणों के प्रति रण-क्षेत्र में आपका अनुपम आचरण हम किस प्रकार वर्णन करें ॥६॥ हे देवि ! आप विकारहीन आद्याप्रकृति हैं अथ च सत्व, रज एवं तमोगुण वाली होने पर भी आप विश्व के लिए कल्याणकारी हो। राग द्वेष आदि से युक्त विष्णु व महेश आदि भी आपका प्रकृत तत्त्व नहीं जानते, हे देवि ! आप अपार हैं और सभी जगत् पदार्थों की आप आश्रय-स्वरूप हैं यह विश्व आपका ही अंश स्वरूप है ॥७॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेनतृप्तिंप्रयातिसकलेषुमखेषुदेवी ।
स्वाहासिवैपितृगणस्यचतृप्तिहेतुरुच्चार्यसेत्वमतएवजनैःस्वधाच ॥८
यामुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रतात्वमभ्यस्यसेसुनियतेंद्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासिसाभगवतीपरमाहिदेवि ॥९
शब्दात्मिकासुविमलर्ग्यजुषांनिधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतांचसाम्नाम् ।
देवीत्रयीभगवतीभवभावनायवार्त्तासिसर्वजगतांपरमार्त्तिहन्त्री ॥१०
मेधासिदेविविदिताखिलशास्त्रसारादुर्गासिदुर्गभवसागरनौरसङ्गा ।
श्रीःकैटभारिहृदयैककृताधिवासागौरीत्वमेवशशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥११
ईषत्सहासममलंपरिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारिकनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतंप्रहृतमात्तरुषातथापिवक्त्रंविलोक्यसहसामहिषासुरेण ॥१२
दृष्ट्वातुदेविकुपितंभ्रुकुटीकरालमुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छविय्न्नसद्यः ।
प्राणान्मुमोचमहिषस्तदतीवचित्रंकैर्जीव्यतेहिकुपितांतकदर्शनेन ॥१३

देविप्रसीदपरमाभवतीभवायसद्योविनाशयसिकोपवतीकुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैवयदस्तमेतन्नीतबलमुविपुलमहिषासुरस्य ॥१४

हे देवि ! आपके नाम उच्चारण मे ही सम्पूर्ण यज्ञो मे देवतागण तृप्ति प्राप्त करते हैं, चू कि आप ही ऋषिगण एवं सुरगण को तृप्त करने वाले स्वाहा एव स्वधा स्वरूप उच्चारण की जाती हो ॥८॥ हे देवि ! आपकी महान् आराधना का विषय अचिन्त्य है और जितेन्द्रिय तत्वसार तथा दोष-विहीन, मोक्ष के आकांक्षी ऋषिगण आपको मुक्ति का कारण मानते हैं। हे देवि ! इसलिये आप ही भगवती सर्वश्रेष्ठ मोक्ष विद्या हैं ॥९॥ हे देवि ! आप शब्द युक्त तीन वेद स्वरूप हैं और प्रणव युक्त, अनुपम पद वाले ऋक्, यजु व साम वेदो का आश्रय स्वरूप हैं, आप ही सम्पूर्ण ऐश्वर्य पूर्ण हैं, आप ही विश्व का जीवन-रक्षक कृषि-स्वरूप हैं, हे देवि ! समस्त विश्व की घोर विपत्ति को शमन करने वाली आप ही हैं ॥१०॥ हे देवि ! आप ही बुद्धि स्वरूप हैं, कठिन भव-सागर से निस्तार करने वाली अनुपम नौका स्वरूप हैं कैटभ शत्रु के वध-कर्त्ता भगवान् विष्णु के हृदय मे निवास करने वाली लक्ष्मी आप ही हैं और महादेवजी के बांये अङ्ग पर प्रतिष्ठित गौरी आप ही हैं ॥११॥ इस पर भी आपका मन्द हास्य पूर्ण, स्वच्छ, पूर्ण-चन्द्र तुल्य, सुन्दर वर्ण, कांति युक्त, अनुपम मुख देखकर भी महिषासुर ने कुपित होकर आप पर शस्त्राघात किया, यह आश्चर्यपूर्ण है अर्थात् समस्त त्रिभुवन को मोहित करने वाली आपकी मुख-कान्ति से भी वह दुष्ट मोहित नहीं हुआ ॥१२॥ हे देवि ! अत्यन्त क्रोधपूर्ण, तनी हुई भ्रकुटि सहित उदित पूर्ण चन्द्र के समान आपके मुख को देखकर भी तुरन्त ही महिषासुर ने प्राण त्याग नहीं किया, यह आश्चर्यपूर्ण है, क्योंकि क्रोध युक्त यमराज को देखकर भी कोई जीवित रह सकता है ? ॥१३॥ हे भगवती ! आप प्रसन्न हों, विश्व का कल्याण करने वाली लक्ष्मी आप ही हैं, हे देवि ! क्रोधित होने पर आप समस्त कुल नाश कर देती हैं, यह हम जान गये हैं क्योंकि आपने महिषासुर और उसकी विशाल असुर सेना को नष्ट किया है ॥१४॥

तेसमताजनपदेषुधनानितेषांयशांसिनचसीदतिवधुवर्गः ।
धन्यास्तएवनिभृतात्मजभृत्यदारायेषांसदाभ्युदयदाभवतीप्रसन्ना ॥१५

धर्म्याणिदेविसकलानिसदैवकर्मण्यत्याहृत प्रतिदिनसुकृतीकरोति ।
स्वर्गंप्रयातिचततोभवतीप्रसादाल्लोकत्रयेपिफलदाननुदेवितेन॥ १६
दुर्गेस्मृताहरसिभीतिमशेषजतोः स्वस्थैः स्मृतामतिमतीवशुभाददासि ।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणिकात्वदन्यासर्वोपकारकरणायसदार्द्रचित्ता ॥१७
एभिर्हतैर्जगदुपैतिसुखंतथैतेकुर्वंतुनामनरकायचिरायपापम् ।
संग्राममृत्युमधिगम्यदिवंप्रयांतुमत्वेतिनूनमहितान्विनिहंसिदेवि ॥१८
दृष्ट्वैवकिंनभवतीप्रकरोतिभस्मसर्वासुरानरिषुयत्प्रहिणोपिशस्त्रम् ।
लोकान्प्रयातुरिपवोपिहिशस्त्रपूताइत्थंमतिर्भवतितेष्वहितेषुसाध्वी ॥१९
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः शूलाग्रकांतिनिवहेनदृशोसुराणाम् ।
यन्नागताविलयमंशुमदिंदुखंडयोग्याननंतवविलोकयतांतदेतत् ॥२०
दुर्वृत्तवृत्तशमनंतवदेविशीलंरूपंतथैतदविचिंत्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यंचहंतृहृतदेवपराक्रमाणांवैरिष्वपिप्रकटितैवदयात्वयेत्थम् ॥२१

हे दुर्गे ! आप सन्तुष्ट होकर जिनको कल्याण देती हैं, वही राष्ट्र मे पूज्य होते हैं, उन्ही को धन और प्रसिद्धि प्राप्त होती है, उनका धर्म अक्षय रहता है और उनके पुत्र, स्त्री व सेवक सधर्मी व गम्भीर होते हैं ॥१५॥ हे देवि ! आपके ही प्रसाद से पुण्य कर्म करने वाले व्यक्ति नित्यप्रति पूर्ण आदर सहित धर्मानुरक्त कार्य करते हैं तथा मृत्यूपरात आपकी ही कृपा से स्वर्ग प्राप्त करते हैं, इसलिए हे अम्बिका ! आप ही त्रैलोक्य को फलदायक हो ॥१६॥ हे देवि ! त्रसित मनुष्य जब आपका नाम स्मरण करते हैं तो आप उन्हें भयहीन बनाती हैं और स्वस्थ हृदय प्राणि जब आपका स्मरण करते हैं तो आप उन्हें कल्याण-दाता बुद्धि प्रदान करती हैं, हे दरिद्रो का दुख व भय हरण करने वाली ! आपके अतिरिक्त अन्य किस का हृदय सभी के हितार्थ कृपालु अथवा दयापूर्ण रहता है ? ॥१७॥ "समस्त असुरो के निहत होने से विश्व सुखी होवे और नरक प्राप्ति के लिये बहुत अवधि तक पाप कर्म करके इस रण-क्षेत्र मे निहत होकर स्वर्ग को प्राप्त करे" ऐसा सोचकर आप देव शत्रुओं का शमन करती हैं ॥१८॥ आपकी तो दृष्टि मात्र से ही शत्रुगण भस्म हो सकते हैं, किन्तु शत्रुओं को अपने शस्त्र से पवित्र कर स्वर्ग मे पहुँचाने के लिये आपने शत्रुओं

पर शस्त्र चलाया निस्सदेह आपकी असुरो का हित करने वाली मति सर्व श्रेष्ठ है ॥१६॥ हे देवि ! आपके खड्ग की तीव्र आभा और त्रिशूल के अग्रभाग की कांति से भी उन सभी दैत्यो की दृष्टि समाप्त नही हुई, इसका केवल कारण यही है कि आपका शोभायुक्त मुख चन्द्र की आभापूर्ण किरणो से उनके नत्र अत्यन्त शीतल होगये थे ॥२०॥ हे दुर्गे ! आपका स्वभाव दुराचारी मनुष्यो क दुराचार का विनाश करने वाला एव आपका रूप अतुलनीय व अचिन्त्य है। हे देवि ! आपका वीर्य देवगण के बल को हरने वाले दैत्यो का विनाश करता है, अतएव शत्रुओ पर भी आपकी कृपा पूर्ण स्पष्ट है ॥२१॥

केनोपमाभवतुतेस्यपराक्रमस्यरूपचशत्रुभयकार्यतिहारिकुत्र ।
चित्तेकृपासमरनिष्ठुरताचदृष्टात्वय्येवदेविवरदेभुवनत्रयेपि ॥२२
त्रैलोक्यमेतदखिलरिपुनाशनेनत्रातत्वयासमरमूर्द्धनितेपिहत्वा ।
नीतादिवरिपुगणाभयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवनमस्ते २३
शूलेनपाहिनोदेविपाहिखड्गेनचाम्बिके ।
घंटास्वनेननपाहिचापज्यानिस्वनेनच ॥२४
प्राच्यारक्षप्रतीच्याचचंडिकेरक्षदक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्यउत्तरस्यातथेश्वरि ॥२५
सौम्यानियानिरूपाणित्रैलोक्येविचरतिते ।
यानिचात्यतघोराणितैरक्षास्मास्तथाभुवम् ॥२६
खड्गशूलगदादीनियानिचास्त्राणितेम्बिके ।
करपल्लवसगीनितैरस्मान्रक्षसर्वत ॥२७
एवस्तुतासुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नंदनोद्भवै. ।
अर्चिताजगताधात्रीतथागधानुलेपनै ॥२८

हे देवि ! आपका पराक्रम किसी अन्य के साथ तुलना नहीं किया जा सकता। आपका रूप शत्रुओ को भयदाता एव अत्यन्त अनुपम है। ऐसा अनुपम स्वरूप स्वर्ग, पृथ्वी व पाताल मे अन्य किसी का नही है। हे अम्बिके ! आपका हृदय दयापूर्ण तो है ही, साथ ही रणक्षेत्र मे निष्ठुरता पूर्ण भी है ऐसी समस्त तीनों लोकों में आप ही हैं ॥२२॥ हे देवि ! आपने शत्रुओं का विनाश

करके तीनो लोकों की रक्षा की है, युद्ध क्षेत्र में उन्हीं शत्रुओं को निधन करके स्वर्ग प्रदान किया एव उन्हीं मद-मत्त दैत्यो के कारण हमारा भय भी समाप्त होगया, हे देवि ! आपको नमस्कार है ॥२३॥ हे दुर्गे ! शूल द्वारा हमारी रक्षा करे ! हे अम्बिके ! खड्ग द्वारा हमारी रक्षा करे । हे देवि ! घण्टा एव धनुष प्रत्यचा के शब्द द्वारा हमारी रक्षा करे ॥२४॥ हे चण्डिके ! शूल घुमाकर आप हमारी पूर्व, पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में रक्षा करे ॥२५॥ तीनो लोकों मे विचरने वाले आपके जितने सौम्य रूप एव भयङ्कर रूप है, उनके द्वारा हमारी व मर्त्यलोक की रक्षा कीजिये ॥२६॥ हे अम्बिका देवि ! अपने कर-कमलो मे सुशोभित खड्ग, शूल, गदा आदि अस्त्रा द्वारा चारों ओर हमारी रक्षा करे ॥२७॥ ऋषि ने कहा—सुरगणों ने इस प्रकार उन देवी का गुण-गान किया और नन्दन कानन म उत्पन्न हुए पुष्प, दिव्य गन्ध और धूपादि के द्वारा भक्ति पूर्वक उन जगज्जननी की पूजा की ॥२८॥

भक्त्यासमस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यधूपै:सुधूपिता ।
प्राहप्रसादसुमुखासमस्तान्प्रणतान्सुरान् ॥२९
व्रियतांत्रिदशा सर्वेयदस्मत्तोभिवाञ्छितम् ।
ददाम्यहमतिप्रीत्यास्तवैरेभि सुपूजिता ॥३०
कर्त्तव्यमपर यच्चदुष्कं रतन्नविद्महे ।
[इ]त्याकर्ण्यवचोदेव्या प्रत्यूचुस्तेदिवौकस ॥३१
[भ]गवत्याकृतसर्वंनकिंचिदवशिष्यते ।
[य]दयनिहत शत्रुरस्माकमहिषासुर ॥३२
[य]दिचापिवरोदेयस्त्वयास्माकमहेश्वरि ।
[सं]स्मृतासस्मृतात्वनोहिंसेथा परमापद ॥३३
[य]श्चमर्त्यस्तवैरेभिस्त्वास्तोष्यत्यमलानने ।
[त]स्यवित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसपदाम् ।
[वृ]द्धयेस्मत्प्रपन्नात्वभवेथा सर्वदाम्बिके ॥३४
इतिप्रसादितादेवैर्जगतोर्थेतथात्मन ।
तथेत्युक्त्वाभद्रकालीबभूवांतर्हितानृप ॥३५

इत्येतत्कथितभूपसंभूतामायथापुरा ।
देवीदेवशरीरेभ्योजगत्त्रयहितैषिणी ॥३६
पुनश्चगौरीदेहात्सासमुद्भूतायथाभवत् ।
वधायदुष्टदैत्यानांतथाशुंभनिशुंभयोः ॥३७
रक्षणायचलोकानादेवानामुपकारिणी ।
तच्छ्रुणुष्वमयाख्यात यथावत्कथयामिते ॥३८

उस समय वर प्रदान करने की इच्छा से उनका मुख मण्डल अत्यन्त शोभायमान होगया और उन्होंने सभी विनीत देवताओं के प्रति कहा ॥२६॥ देवी ने कहा—हे त्रिदशगण ! अपना इच्छित वर मुझसे मागो, तुम्हारे स्तवन से मैं परम सन्तुष्ट हुई हू, इसलिये प्रीति सहित वर प्रदान करूँगी ॥३०॥ इस महिषासुर का वध करने के पश्चात् क्या करना है, यह मैं नहीं जानती, अब तुम्हें जो कुछ दुःसाध्य हो, वही मुझे बताओ, देवी के ऐसे वचन सुनकर देवगण बोले ॥३१॥ देवताओं ने कहा—हे भगवती ! आपने हमारे हितार्थ इस प्रबल शत्रु महिषासुर को मार डाला, इससे हमारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होगया है, अब कुछ कार्य शेष नहीं रहा ॥३२॥ फिर भी यदि आप वर देने की इच्छा ही करती हो तो हमे यही वर दीजिये कि जब कभी हम आपका स्मरण करे, तभी आप हमारे सङ्कट को दूर करें ॥३३॥ जो मनुष्य हमारे इस स्तोत्र द्वारा आपकी स्तुति करें, उनकी आप प्रसन्न होकर ज्ञानाधिक्य, ऐश्वर्य युक्त धन, पत्नी आदि की वृद्धि करना, क्योंकि आप सब कुछ देने में समर्थ हैं ॥३४॥ ऋषि ने कहा—हे राजन् ! देवताओं द्वारा विश्व के हितार्थ प्रसन्न की हुई भद्रकाली 'ऐसा ही होगा' कहकर अन्तर्धान होगई ॥३५॥ देवताओं के देह से जिस प्रकार विश्व का हित करने वाली वह देवी पूर्वकाल मे आविर्भूत हुई, यह तुमसे वर्णन किया ॥३६॥ अब जिस प्रकार भगवती गौरी के शरीर से उत्पन्न होकर शुम्भ निशुम्भ और अन्य असुरो का नाश ॥३७॥ लोकरक्षार्थ और देवोपकारार्थ किया, उसे यथावत् तुम्हारे प्रति कहता हूँ, श्रवण करो ॥३८॥

७७—देवी से शुंभ के दूत का कथन

पुराशुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्याशचीपते ।
त्रैलोक्ययज्ञभागाश्चहृतामदबलाश्रयात् ॥१
तावेवसूर्यतातद्वदधिकारतथैन्दवम् ।
कौबेरमथयाम्यचचक्रातेवरुणस्यच ॥२
तावेवपवनर्द्धिचचक्रतुर्वह्निकर्मच ।
अन्येपाचाधिकारान्स स्वयमेवाधितिष्ठति ।
ततादेवाविनिर्धूताभ्रष्टराज्या पराजिता ॥३
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताम्यासर्वेनिराकृता ।
महासुरम्यातादेवीसस्मरत्यपराजिताम् ॥४
तयास्माकवरोदत्तोयथापत्सुस्मृताखिला. ।
भवतानाशयिष्यामितत्क्षणात्परमापद ॥५
इतिकृत्वामतिदेवाहिमवतनगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्रततोदेवीविष्णुमायाप्रतुष्टुवु ॥६

ऋषि ने कहा—पुराकाल की बात है, शुम्भनिशुम्भ नामक दो असुरो ने अपने अहंबल से शचिपति देवेन्द्र के त्रैलोक्य का राज्य और सम्पूर्ण यज्ञ भाग को छीन लिया ॥१॥ उन शुम्भ, निशुम्भ ने चन्द्र, सूर्य, कुबेर, वरुण के अधिकार को अपने हाथ मे लिया और पवन तथा अग्नि का कार्य भी स्वय करने लगे तथा सभी देवताओ के पदो पर उन्होने अधिकार कर लिया ॥२॥ फिर उन दोनो घोर असुरो के द्वारा अधिकार से भ्रष्ट और तिरस्कार को प्राप्त हुए, राज्य से हीन एव पराजित ॥३॥ देवगण उन अपराजिता भगवती का स्मरण करने लगे ॥४॥ देवी ने उन्हे विपद्काल मे स्मरण करते ही विपत्ति नष्ट करने का वर दिया था, अब घोर विपत्ति आ गई इसलिये उन्ही की शरण मे जाना उचित है ॥५॥ इस प्रकार विचार करके देवतागण पर्वत श्रेष्ठ हिमालय म जाकर विष्णु की उन माया का स्तव करने लगे ॥६॥

नमोदेव्यैमहादेव्यैशिवायैमततंनमः ।
नम प्रकृत्यैभद्रायैनियत्ताःप्रणताःस्मताम् ॥७
रौद्रायैनमोनित्यायैगौर्य्यैधात्र्यैनमोनमः ।
नमोजगत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः ॥८
ज्योत्स्नायैचंद्ररूपिण्यैसुखायैसततंनमः ।
कल्याण्यैप्रणतामृध्यैसिद्धचैकूर्म्यैनमोनमः ॥९
नैर्ऋ त्यैभूभृतांलक्ष्म्यैशर्वाण्यैतेनमोनमः ।
दुर्गायैदुर्गपारायैसारायैसर्वकारिणि ।
ख्यात्यैतथैवकृष्णायैधूम्रायैसततनमः ॥१०
अतिसौम्यातिरौद्रायैनमस्तस्यैनमोनमः ।
नमोजत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः ॥११
यादेवीसर्वभूतेपुविष्णुमायेतिशब्दिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१३
यादेवीसर्वभूतेपुबुद्धिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१४

देवताओं ने कहा—देवी को नमस्कार है, महादेवी, शिवा, प्रकृति और भद्रा को वारम्बार नमस्कार है, हम विनीत होकर उन भगवती को वारम्बार नमस्कार करते हैं ॥७॥ रौद्रा नित्या, गौरी, धात्री, जगत्-प्रतिष्ठा और कृत्या को हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥८॥ हम उन प्रकाश स्वरूपा, चन्द्ररूपा तथा परमानन्द स्वरूपिणी देवी को नमस्कार करते है, उन कल्याणि, वृद्धि रूपिणी एव साक्षात् सिद्धि को नमस्कार करते हैं ॥९॥ नैर्ऋति स्वरूपा और राजाओं की गृह लक्ष्मी स्वरूपा देवी को नमस्कार है, शर्वाणि, दुर्गा, दुर्गपारा, सारा, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रा स्वरूपिणी भगवती को हम नमस्कार करते हैं ॥१०॥ जो अति सौम्य तथा अत्यन्त रौद्र हैं, उनको हम विनय पूर्वक नमस्कार करते हैं, जग-प्रतिष्ठा रूपिणी एव कृति स्वरूपा देवी को नमस्कार करते हैं ॥११॥ जो सब प्राणियों में विष्णुमाया नाम से प्रसिद्ध है उनको बारम्बार नमस्कार है ॥१२॥ सब प्राणियों मे चेतना रूप वाली

देवी को हम नमस्कार करते हैं ॥१३॥ सब प्राणियों में बुद्धि रूप से स्थित रहने वाली भगवती को बारम्बार नमस्कार है ॥१४॥

यादेवीसर्वभूतेषुनिद्रारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥१५
यादेवीसर्वभूतेषुक्षुधारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥१६
यादेवीसर्वभूतेषुच्छायारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥१७
यादेवीसर्वभूतेषुशक्तिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥१८
यादेवीसर्वभूतेषुतृष्णारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम. ॥१९
यादेवीसर्वभूतेषुक्षांतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥२०॥
यादेवीसर्वभूतेषुजातिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनम ॥२१

सब प्राणियों में निद्रारूप से स्थित देवी को बारम्बार नमस्कार है ॥१५॥ सब जीवों में क्षुधा रूप से स्थित रहने वाली देवी को बारम्बार नमस्कार है ॥१६॥ जो देवी सब भूतों में छाया रूप से अवस्थित रहती हैं, उनको नमस्कार, नमस्कार है ॥१७॥ सब प्राणियों में शक्ति रूप से विराजमान देवी को अनेक बार नमस्कार ॥१८॥ सब प्राणियों में तृष्णा रूप से प्रतिष्ठित भगवती को बारम्बार नमस्कार ॥१९॥ सब प्राणियों में क्षान्ति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२०॥ सब जीवों में जाति रूप से निवास करने वाली देवी को नमस्कार ॥२१॥

यादेवीसर्वभूतेषुलज्जारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२२

यादेवीसर्वभूतेपुशांतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ।।२३
यादेवीसर्वभूतेपुश्रद्धारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ।।२४
यादेवीसर्वभूतेपुकान्तिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ।।२५
यादेवीसर्वभूतेपुलक्ष्मीरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ।।२६
यादेवीसर्वभूतेपुधृतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ।।२७
यादेवीसर्वभूतेपुवृत्तिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ।।२८

जो सब प्राणियों में लज्जा रूप से रहती हैं, उन देवी को बारम्बार नमस्कार ।।२२।। सब प्राणियों में शान्तिरूप से अवस्थान करने वाली देवी को नमस्कार ।।२३।। सब जीवों में श्रद्धारूप से स्थित भगवती को नमस्कार ।।२४।। सब प्राणियों में कांतिरूप से विराजमान देवी को नमस्कार ।।२५।। सब जीवों में लक्ष्मीरूप से प्रतिष्ठित देवी को नमस्कार ।।२६।। सब जीवों में धृति रूप से अवस्थान करने वाली महामाया को नमस्कार ।।२७।। सब प्राणियों में वृत्ति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ।।२८।।

यादेवीसर्वभूतेपुस्मृतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ।।२९
यादेवीसर्वभूतेपुदयारूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ।।३०
यादेवीसर्वभूतेपुतुष्टिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ।।३१
यादेवीसर्वभूतेपुपुष्टिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ।।३२

यादेवीसर्वभूतेषुमातृरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३४
यादेवीसर्वभूतेषु भ्रांतिरूपेणसंस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३५

सब प्राणियो मे स्मृति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥२६॥ सब प्राणियो मे दया रूप से अधिष्ठित देवी को नमस्कार ॥३०॥ सब प्राणियों मे नीति रूप से स्थित देवी को नमस्कार ॥३१॥ सब जीवो मे तुष्टि रूप से स्थित भगवती को नमस्कार ॥३२॥ सब जीवो मे पुष्टि रूप से निवास करने वाली देवी को नमस्कार ॥३३॥ सब प्राणियो मे मातृ रूप से स्थित देवी को नमस्कार ॥३४॥ सब प्राणियो मे भ्रान्ति रूप से अवस्थित देवी को नमस्कार ॥३५॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्रीभूतानांखिलेषुया ।
भूतेषुसततंव्याप्त्यैतस्यैदेव्यैनमोनमः ॥३६
चितिरूपेणयाकृत्स्नमेतद्व्याप्यस्थिताजगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥३७
स्मृतासुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथासुरेन्द्रैः णदिनेशसेविता ।
करोतुसानः शुभहेतुरीश्वरीशुभानिभद्राण्यभिहृत्य चापदः ॥३८
यासांप्रतंचोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशाचसुरैर्नमस्यते ॥
याचस्मृतातत्क्षणमेवहंतिनः सर्वापदोभक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥३९
एवंस्तवाभियुक्तानांदेवानांतत्रपार्वती ।
स्नातुमभ्याययौतोयेजाह्नव्यानृपनंदन ॥४०
साऽब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेत्रका ।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥४१
स्तोत्रममैतत्क्रियतेशुंभदैत्यनिराकृतैः ।
देवैः समस्तैः समरेनिशुंभेनपराजितैः ॥४२

सब इन्द्रियो और जीवो की अधिष्ठात्री और सब प्राणियों मे व्याप्ति रूप से विद्यमान देवी को नमस्कार ॥३६॥ चैतन्य रूप से सम्पूर्ण विश्व मे व्याप्त

रह कर अधिष्ठान करने वाली भगवती को बारम्बार नमस्कार है ॥३७॥ पुराकाल में अपने इच्छित को प्राप्त करके हमने जिन देवी की स्तुति की और जो मंगलों के करने वाली हैं, उन्हीं भगवती को, प्रचण्ड असुरों से पीड़ित हुए हम नमस्कार करते हैं, भक्ति से झुकते हुए देह वाले हम जब आपका स्मरण करते हैं तब जो तुरन्त ही हमारी विपत्ति को दूर करतीं हैं, वह देवी हमारी विपत्ति को नष्ट करके सब प्रकार से हमारा मंगल करें ॥३८-३९॥ ऋषि ने कहा—हे नृपपुत्र ! देवगण इस प्रकार से स्तुति कर ही रहे थे, तभी भगवती पार्वती गंगा स्नान को जाने के लिये उनके सम्मुख हुई ॥४०॥ शोभित भ्रुकुटि वाली वह पार्वतीजी देवताओं से पूछने लगीं—हे देवगण ! तुम किनकी स्तुति कर रहे हो, इतनी बातों के साथ ही पार्वतीजी के देह कोश से भगवती शिवा उत्पन्न होकर बोलीं ॥४१॥ युद्ध में निशुंभ द्वारा पराजित और शुंभ द्वारा निष्कासित यह देवगण मेरी स्तुति कर रहे हैं ॥४२॥

शरीरकोशाद्यत्तस्या पार्वत्यानिःसृताम्बिका ।
कौशिकीतिसमस्तेषुततोलोकेषुगीयते ॥४३
तस्याविनिर्गतायान्तुकृष्णाभूत्सापिपार्वती ।
कालिकेतिसमाख्यानाहिमाचलकृताश्रया ॥४४
ततोम्बिकांपरंरूपंबिभ्राणांसुमनोहरम् ।
ददर्शचण्डोमुण्डश्चभृत्यौशुम्भनिशुम्भयोः ॥४५
ताभ्यांशुम्भायचाख्याताअतीवसुमनोहरा ।
काप्यास्तेस्त्रीमहाराजभासयन्तीहिमाचलम् ॥४६
नैवतादृक्क्वचिद्रूपंदृष्टंकेनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायताकाप्यसौदेवीगृह्यतांचासुरेश्वर ॥४७
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गीद्योतयन्तीदिशस्त्विषा ।
सातुतिष्ठतिदैत्येन्द्रतांभवान्द्रष्टुमर्हति ॥४८
यानिरत्नानिमणयोगजाश्वादीनिवैप्रभो ।
त्रैलोक्येतुसमस्तानिसाम्प्रतंभान्तितेगृहे ॥४९

पार्वती जी के देहकोश से उत्पन्न होने के कारण वह शिवा 'कौशिकी'

नाम से प्रसिद्ध हुई ॥४३॥ जब पार्वती जी के देह से वह कौशिकी देवी निकल गई तब उन्होने कृष्ण वर्ण धारण करके कालिका नाम से प्रसिद्ध होकर हिमाचल मे निवास किया ॥४४॥ तदुपरान्त अम्बिका ने अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया और शुम्भ निशुम्भ असुरो के भृत्य चण्ड मुण्ड ने उस स्वरूप को देखा ॥४५॥ तब चण्ड मुण्ड शुम्भासुर के पास गये और उनसे बोले—हे महाराज ! एक अत्यन्त रूपवती स्त्री हिमाचल को सुशोभित करती हुई वहाँ रह रही है ॥४६॥ ऐसा श्रेष्ठ स्वरूप किसी ने भी न देखा होगा, इसलिये यह स्त्री कौन है, इसका पता करके, उसे ग्रहण कर लीजिये ॥४७॥ वह सुन्दराणी स्त्रियो मे रत्नरूप है हे असुरेन्द्र ! वह स्त्री अपने शरीर की कान्ति से सब दिशाओ का प्रकाशित कर रही है, आपको उसे अवश्य देखना चाहिये ॥४८॥ हे प्रभो ! तीनो लोको मे हाथी, घोड़े, रत्नादिक जो सर्वश्रेष्ठ धन हैं, वह सभी आपके घर मे सुशोभित हैं ॥४९॥

ऐरावत समानीतोगजरत्नपुरदरात् ।
पारिजातरुश्चायतथैवोच्चै श्रवाहय ॥५०
विमानहससयुक्तमेतत्तिष्ठतितगणे ।
रत्नभूतमिहानीतयदासीद्वेधसोद्भुतम् ॥५१
निधिरेपमहापद्म समानीतोधनेश्वरात् ।
किजल्किनींददौचाब्धिर्मालामम्लानपकजाम् ॥५२
छत्र तेवारुणगेहेवकाँचनस्रावितिष्टति ।
तथायस्यदनवरोय पुरासीत्प्रजापते ॥५३
मृत्योरुत्क्रान्तिदानामशक्तिरीशत्वयाहृता ।
पाश सलिलराजस्यभ्रातुस्तवपरिग्रहे ॥५४
निशु भस्याब्धिजाताश्चसमस्तारत्नजातय: ।
वह्निश्चापिददौतुभ्यमग्नि शौचेचवाससी ॥५५
एवदैत्येद्ररत्ननिसमस्तान्याहृतानिते ।
स्त्रीरत्नमेपाकल्याणीत्वयाकस्मान्नगृह्यते ॥५६

गजरत्न ऐरावत, सुरम्य पारिजातवृक्ष, और उच्चैःश्रवा अश्व, इन्द्र के यहाँ से लिया गया ॥५०॥ विधाता का हंसयुक्त रत्न रूप विमान भी यहाँ लाकर आपके आँगन में स्थित किया गया ॥५१॥ महापद्म नाम की यह निधि कुबेर से और किञ्जल्किनि नामक कभी भी न मुरझाने वाली पद्ममाला भी समुद्र से प्राप्त की गई ॥५२॥ वरुण का काँचनस्रावि छत्र और प्रजापति का यह श्रेष्ठ रथ भी यहाँ विद्यमान है ॥५३॥ यम का मरणदायिनी शक्ति भी आपने छीन ली और आपके भाई निशुम्भ के यहाँ वरुण का पाश ॥५४॥ और समुद्र से प्राप्त हुए सब रत्न विद्यमान हैं अग्नि ने उनको पवित्र करके वस्त्र एवं उत्तरीय दिया है ॥५५॥ हे असुरेन्द्र ! इस प्रकार यह सभी रत्न आपने ग्रहण किये हैं तो इस स्त्री रत्न को ही ग्रहण क्यों नहीं करते ? ॥५६॥

निशम्येतिवचःशुम्भःसतदाचण्डमुण्डयोः ।
प्रेषयामाससुग्रीवंदूतंदेव्यामहासुरम् ॥५७॥
इतिचेतिचवक्तव्यासागत्वावचनान्मम ।
यथाचाभ्येतिसम्प्रीत्यातथाकार्यंत्वयालघु ॥५८॥
सतत्रगत्वायत्रास्तेशैलोद्देशेऽतिशोभने ।
तांचदेवींततःप्राहश्लक्ष्णंमधुरयागिरा ॥५९॥
देविदैत्येश्वरःशुम्भस्त्रैलोक्येपरमेश्वरः ।
दूतोऽहंप्रेषितस्तेनत्वत्सकाशमिहागतः ॥६०॥
अव्याहताज्ञःसर्वासुयःसदादेवयोनिषु ।
निर्जिताखिलदैत्यारिःसयदाहशृणुष्वतत् ॥६१॥
ममत्रैलोक्यमखिलंममदेवावशानुगाः ।
यज्ञभागानहंसर्वानुपाश्नामिपृथक्पृथक् ॥६२॥
त्रैलोक्येवररत्नानिममवश्यान्यशेषतः ।
तथैवगजरत्नंचहृत्वादेवेन्द्रवाहनम् ॥६३॥

ऐसी बात करना जिससे वह अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र ही यहाँ आकर उपस्थित हो जाय ॥५८॥ जिस अत्यन्त सुशोभित पर्वत-प्रान्त में पार्वती जी निवास कर रही थी, उस स्थान में पहुँच कर वह दूत उनसे बोला ॥५९॥ दूत ने कहा—हे देवि ! दैत्येन्द्र शुम्भ तीनों लोकों के ईश्वर हैं, उन्होंने मुझे अपने दूत रूप से तुम्हारे पास भेजा है, इसीलिये मैं यहाँ आया हूँ ॥६०॥ उनकी आज्ञा सब देवताओं को अटल रूप से मान्य है, क्योंकि उन्होंने देवताओं को परास्त कर दिया है, अब उन्होंने जो कहा है उसे मुझसे श्रवण करो ॥६१॥ उन्होंने कहा है—तीनों लोक मेरे हैं, सभी देवता मेरे वश में और मेरे अनुगत हैं, समस्त के यज्ञ भाग को भी मैं ही भोगता हूँ ॥६२॥ तीनों लोकों के सम्पूर्ण रत्न मेरे वशीभूत हैं, सभी श्रेष्ठ हाथी तथा गजरत्न ऐरावत भी मैंने ले लिया है ॥६३॥

क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नममामरैः ।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्यसमर्पितम् ॥६४
यानिचान्यानिदेवेषुगन्धर्वेषूरगेषुच ।
रत्नभूतानिभूतानितानिमय्येवशोभने ॥६५
स्त्रीरत्नभूतांत्वांदेविलोकेमन्यामहेवयम् ।
सात्वमस्मानुपागच्छयतोरत्नभुजोवयम् ॥६६
मांवाममानुजंवापिनिशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भजत्वंचचलापांगिरत्नभूतासिवैयतः ॥६७
परमैश्वर्यमतुलंप्राप्स्यसेमत्परिग्रहात् ।
एतद्बुद्ध्यासमालोच्यमत्परिग्रहतांव्रज ॥६८

समुद्र मथन से निकला हुआ उच्चैःश्रवा घोड़ा भी देवताओं ने विनय पूर्वक मुझे भेंट किया है ॥६४॥ देवताओं, गन्धर्वों और नागों के सभी रत्न इस समय मेरे ही हैं ॥६५॥ हे देवी ! लोक में तुम्हें हम स्त्री रत्न मानते हैं हम सभी रत्नों के भोगने वाले होने से, तुम रत्न स्वरूपा को हमारे घर आना चाहिये ॥६६॥ हे चञ्चलकटाक्ष वाली ! तुम मुझे या मेरे अत्यन्त पराक्रमी भ्राता निशुम्भ को स्वीकार करो, क्योंकि तुम रत्न स्वरूप हो ॥६७॥ मेरी

क मना करने से तुम्हें अतुलनीय परमैश्वर्यों की प्राप्ति होगी, इस बात को बुद्धि से विचार कर मेरा ही चिन्तन करो ॥६८॥

इत्युक्तासातदादेवीगंभीरातःस्मिताजगौ ।
दुर्गाभगवतीभद्राययेदं धार्यतेजगत् ॥६९
सत्यमुक्तं त्वयानात्रमिथ्याकिंचित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुंभोनिशुंभश्चापितादृशः ॥७०
किंत्वत्रयत्प्रतिज्ञातंमिथ्यातत्क्रियतेकथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञायाकृतापुरा ॥७१
योमाजयतिसंग्रामेयोमेदर्पंव्यपोहति ।
योमेप्रतिवलोलोकेसमेभर्त्ताभविष्यति ॥७२
तदागच्छतुशुंभोत्रनिशुंभोवामहासुरः ।
मांजित्वाकिंचिरेणात्रपाणिंगृह्णातुमेलघु ॥७३
अवलिप्तासिमैवंत्वंदेविब्रूहिममाग्रतः ।
त्रैलोक्येकःपुमांस्तिष्ठेदग्रेशुंभनिशुंभयोः ॥७४

ऋषि ने कहा—दूत की बात सुनकर विश्व को धारण करने वाली भगवती दुर्गा ने गम्भीर भाव पूर्वक कुछ हँस कर कहा ॥६९॥ देवी बोली—हे दूत ! तुम्हारा कथन यथार्थ है, शुम्भ तीनों लोकों के स्वामी हैं और निशुम्भ भी उन्हीं के तुल्य हैं ॥७०॥ किन्तु मैंने एक प्रतिज्ञा की हुई है, उसे किस प्रकार तोड़ दूँ ? अल्प बुद्धि के वश में होकर जो प्रतिज्ञा मैंने की है, उसे श्रवण करो ॥७१॥ जो पुरुष युद्ध में मुझे परास्त करेगा, जो मेरा दर्प खण्डित करेगा और जो मेरे समान बलवान् होगा, वही पुरुष मेरा पति होगा ॥७२॥ अब वह शुम्भ या निशुम्भ यहाँ आकर उनमें जो समर्थ हो, वह मुझे परास्त करके ग्रहण करलें, विलम्ब न करें ॥७३॥ दूत ने कहा—हे देवि ! तुम्हें अत्यन्त गर्व है, मुझसे ऐसा न कहो, शुम्भ निशुम्भ का सामना तीनों लोकों में कौन कर सकता है ? ॥७४॥

अन्येषामपिदैत्यानांसर्वेदेवानवैयुधि ।
तिष्ठन्तिसम्मुखेदेविकिंपुनःस्त्रीत्वमेकिका ॥७५

इद्राद्या सकलादेवास्तस्थुर्येषानसयगे ।
शुभादीनाकथतेषांस्त्रीप्रयास्यसिसमुखम् ।।७६
सात्वगच्छमयैवोक्तापार्श्वंशुम्भनिशुम्भयो ।
केशाकर्षणनिर्द्धूतगौरवामागमिष्यसि ।।७७
एवमेतद्वलीशुम्भोनिशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।
किंकरोमिप्रतिज्ञामेयदनालोचितापुरा ।।७८
सत्वगच्छमयैवोक्तयदेतत्सर्वमाहृत ।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्रायसचयुक्त करोतुतत् ।।७६

शुभ निशुभ का तो कहना ही क्या है, उनके अनुचर दैत्यो के साम ही सब देवता मिलकर भी नही ठहर सके तो तुम स्त्री होकर उनसे f प्रकार सग्राम करोगी ? ।।७६।। इसलिये तुम मेरी बात मानकर शुभ-निश के पास चलो, अन्यथा मैं ही तुम्हारे केश पकड कर घसीट ले चलूँगा, नि तुम्हारा सब गव चूर्ण हो जायगा ।।७७।। देवी ने कहा—हे दूत ! श निशुभ दोनो ही नि सदेह ऐसे महा बलवान् हैं, परन्तु क्या करूँ, पहिले बात को न जानकर अल्प बुद्धि से ऐसी प्रतिज्ञा कर बैठी ।।७८।। इसलिये वहाँ जाकर मैंने जो कहा है, वह आदर पूर्वक उनसे कहो, इसके पश्चा जो कुछ उचित समझे, वह करेंगे ।।७६।।

७८—धूम्रलोचन वध

इत्याकर्ण्यवचोदेव्या सदूतोमर्षपूरित ।
समाचष्टसमागम्यदैत्यराजायविस्तरात् ।।१
तस्यदूतस्यतद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराटतत ।
सक्रोध प्राहदैत्यानामधिपधूम्रलोचनम् ।।२
हेधूम्रलोचनाशुत्वस्वसैन्यपरिवारितः ।
तामानयबलाद्दुष्टाकेशाकर्षणविह्वलाम् ।।३

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठते परः ।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥४
तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥५
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥६
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यसि ।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥७

ऋषि ने कहा—देवी के यह वचन सुनकर दूत को अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने दैत्येश्वर के पास जाकर सब वृत्तान्त उन्हें सुनाया ॥१॥ दूत की बात सुनकर दैत्यराज शुम्भ ने क्रोध पूर्वक दैत्यों के अधिपति धूम्रलोचन से कहा ॥२॥ हे धूम्र लोचन ! तुम सेना सहित वहाँ जाकर उस दुष्टा के केश पकड़ कर यहाँ घसीट लाओ ॥३॥ यदि कोई उसकी रक्षा में तत्पर हो, तो वह देवता, यक्ष, गन्धर्व कोई भी हो, उसे मार डालो ॥४॥ ऋषि ने कहा—शुम्भ की आज्ञा सुनकर धूम्रलोचन साठ हजार दैत्यों को साथ लेकर शीघ्र ही वहाँ पहुँचा ॥५॥ और हिमाचल में बैठी हुई देवी से उस धूम्रलोचन ने उच्च स्वर से कहा—शुम्भ निशुम्भ के पास चलो ॥६॥ यदि तुम स्वेच्छा से उनके पास न चलोगी तो मैं तुम्हारे केश पकड़ कर बलपूर्वक वहाँ ले चलूँगा ॥७॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान्बलसंवृतः ।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥८
इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥९
अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥१०
ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥११

कांश्चित्करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रम्य चरणेनान्यान्निजघान महासुरान् ॥१२
केषाञ्चित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी ।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान्पृथक् ॥१३
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥१४

देवी ने कहा—तुम्हे दैत्यों के अधिपति शुंभ ने यहाँ भेजा है, तुम स्वय बलशाली और सेना के सहित यहाँ आये हो, यदि तुम बलपूर्वक ले जाना चाहोगे तो भी मैं तुम्हारा क्या कर सकूँगी ? ऋषि ने कहा—देवी की बात सुनते ही धूम्रलोचन उनकी ओर दौडा, परन्तु देवी के हुंकार से ही भस्म होगया ॥८-९॥ तब उसकी सेना ने क्रोध करके देवी के ऊपर तीक्ष्ण बाण, परशु और शक्ति की वर्षा की ॥१०॥ यह देखकर देवी के वाहन सिंह ने क्रोध से कपायमान होकर भयङ्कर गर्जन किया और असुर-सेना पर टूट पडा ॥११॥ उसने किसी को पजे से, किसी को मुख से, किसी को होठ से आक्रमण पूर्वक मारा ॥१२॥ किसी का हृदय नख से चीर दिया, किसी का मस्तक हथेली के प्रहार से, शरीर से अलग किया ॥१३॥ अनेक असुरो के बाहु और मस्तक छिन्न-भिन्न कर डाले और बहुतों का रक्त-पान कर लिया ॥१४॥

क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥१५
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥१६
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥१७
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ ।
गच्छतं तत्र गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥१८
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥१९

तस्य हतायाँदुष्टायाँसिंहेचविनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यतावद्धागृहीत्वातामथाम्बिकाम् ।।२०

क्षण भर मे ही उस सिंह ने असुरो की उस विशाल सेना को नष्ट कर डाला ।।१५।। धूम्रलोचन का देवी के द्वारा और सम्पूर्ण सेना का उनके वाहन सिंह द्वारा मारा जाना सुनकर ।।१६।। दैत्येश्वर शुंभ अत्यन्त क्रोध मे भर गया, उसके होठ फडकने लगे और उसने चण्ड-मुण्ड को इस प्रकार आज्ञा दी ।।१७।। हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम बहुत-सी सेना लेकर वहाँ जाओ और स्त्री को तुरन्त पकड लाओ ।।१८।। उसके केश पकड कर खीच लाओ या उसे बाँध कर ले आओ, यदि ऐसा न कर सको तो पूर्ण बल लगाकर उसका वध कर देना ।।१९।। उसको और उसके सिंह को मार कर उसी दशा मे यहाँ ले आओ ।२०।

७९–चण्डमुण्ड वध

आज्ञप्तास्तेततोदैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमा. ।
चतुरंगवलोपेताययुरभ्युद्यतायुधा ।।१
ददृशुस्तेततोदेवीमीपद्धासाव्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरिशैलेन्द्रशृंगेमहतिकाचने ।।२
तेदृष्ट्वातासमादातुमुद्यमचक्रुरुद्यता ।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्येतत्समीपगाः ।।३
तत कोपचकारोच्चैर विकातानरीन्प्रति ।
कोपेनचास्यावदनमपीवर्णमभूत्तदा ।।४
भृकुटीकुटिलात्तस्याललाटफलकाद्द्रुतम् ।
कालीकरालवदनाविनिष्क्रातासिपाशिनी ।।५
विचित्रखट्वागधरानरमालाविभूषणा ।
द्वीपिचर्मपरीधानाशुष्कमासातिभैरवा ।।६

अतिविस्तारवदनाजिह्वाललनभीषणा ।
निमग्नारक्तनयनानादापूरितदिङ्मुखा ॥७

ऋषि ने कहा—शुंभ की ऐसी आज्ञा प्राप्त होते ही चण्डमुण्ड अपने साथ चतुरंगिणी सशस्त्र सेना लेकर वहाँ गये और उन्होंने देखा कि हिमालय के स्वर्णिम शिखर पर सिंहारूढ़ देवी मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं ॥१-२॥ वह असुर और उनके साथी देवी को इस प्रकार स्थित देख, धनुष खेंच कर और तलवार उठाकर उनको पकड़ने का प्रयत्न करने लगे ॥३॥ तब देवी ने उन सबके प्रति अत्यन्त क्रोध किया, इस कारण देवी का मुख कृष्ण वर्ण का हो गया ॥४॥ फिर देवी ने जैसे ही भृकुटी चढ़ाई, वैसे ही उनके ललाट से खड्ग-पाश धारिणी कराल वदना भयङ्कर काली उत्पन्न हुई ॥५॥ वह विचित्र खट्वांग युक्त, मुण्डमाल से सुशोभित, बाघम्बर धारण किये अत्यन्त शुष्क माँस वाली जिह्वा को लपलपाती हुई भीतर की ओर घुसे हुए लाल नेत्र वाली उत्पन्न होती अपने घोर शब्द से दिशाओं को परिपूर्ण करने लगी ॥६-७॥

सावेगेनाभिपतिताघातयतीमहासुरान् ।
सैन्येतत्रसुरारीणामभक्षयततद्बलम् ॥८
पार्ष्णिग्राहाकुशग्राहयोधघटासमन्वितान् ।
समादायैकहस्तेनमुखेचिक्षेपवारणान् ॥९
तथैवयोधतुरगैरथसारथिनासह ।
निक्षिप्यवक्त्रेदशनैश्चर्वयत्यतिभैरवम् ॥१०
एकजग्राहकेशेषुग्रीवायामथचापरम् ।
पादेनाक्रम्यचैवान्यमुरसान्यमपोथयत ॥११
तैर्मुक्तानिचशस्त्राणिमहास्त्राणितथासुरैः ।
मुखेनजग्राहरुषादशनैर्मथितान्यपि ॥१२
बलिनातद्बलसर्वमसुराणांदुरात्मनाम् ।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्याश्चाताडयत्तथा ॥१३
असिनानिहता केचित्केचित्खट्वांगताडिताः ।
जग्मुर्विनाशमसुरादताग्राभिहतारणे ॥१४

तदुपरान्त वह देवी दैत्य-सेना के ऊपर वेग सहित टूट पडी और सब असुरो को नष्ट करती हुई उनके भक्षण मे तत्पर हुई ॥८॥ तथा पार्श्व रक्षक, अ कुश हाथ मे लिये हुए योद्धा और घटाओ के सहित ही हाथियो को पकड-पकड कर मुख मे डालने लगी ॥९॥ तथा अश्व, रथ और सारथी सहित सबको मुख मे डाल कर भयङ्कर रूप से चबाने लगी ॥१०॥ उस काली ने किसी के केश पकडे, किसी का कण्ठ दबाया और किसी की छाती पर चढ कर पैर की ठोकर से उसे मार डाला ॥११॥ उन असुरो के शस्त्रास्त्रो को भी क्रोधपूर्वक मुख मे लेकर दाँतो से चबाने लगी ॥१२॥ वह काली उन महाबली एव विशाल शरीर वाले असुरो के दल को मसलते-मसलते किसी को भक्षण कर रही थी और किसी को मार कर भगाती थी ॥१३॥ कोई असुर खड्ग के प्रहार से, कोई खट्वाग के द्वारा ताडित होने से और कोई दाँतो के अग्रभाग द्वारा चबाये जाने से नष्ट होगये ॥१४॥

क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणानिपातितम् ।
दृष्ट्वाचडोभिदुद्रावताकालीमतिभीषणाम् ॥१५
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीतामहासुर ।
छादयामासचक्रैश्च मु डक्षिप्तै सहस्रश ॥१६
तानिचक्राण्यनेकानिविशमानानितन्मुखम् ।
बभुर्यथार्कबिबानिसुबहूनिघनोदरम् ॥१७
ततोजहासातिरुषाभीमभैरवनादिनी ।
कालीकरालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥१८
उत्थायचमहासिहदेवीचडमधावत ।
गृहीत्वाचास्यकेशेषुशिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥१९
छिन्नेशिरसिदैत्येंद्रश्चक्रेनादसुभैरवम् ॥२०

उस असुर-सैन्य के इस प्रकार क्षणार मे नष्ट हो जाने से क्रोधित हुआ चण्ड अत्यन्त वेग पूर्वक काली की ओर दौडा ॥१५॥ और उसने उन भीमाक्षी देवी पर भीषण बाण-वर्षा की तथा सहस्रो चक्रो को घुमा कर उन्हें आच्छादित कर दिया ॥१६॥ वह सभी चक्र देवी के मुख मे घुसने लगे और

मेघमण्डल मे प्रविष्ट अनेक सूर्यमण्डलो के समान सुशोभित हुए ।।१७।। फिर घोर निनाद करती हुई काली ने भीषण अट्टहास किया, उस समय वह अपनी दुर्दर्श दन्त-प्रभा से चमकने लगी ।।१८।। तदनन्तर वह देवी अपने महा वाहन सिंह पर खड़ी होकर चण्ड की ओर वेग से दौड़ी और उसके बाल पकड़ कर अपने खड्ग से उसका शिर काट डाला ।।१६।। शीश कटते समय चण्डासुर ने घोर गर्जना की, जिससे तीन लोक त्रसित होगये ।।२०।।

अथमुण्डोम्यधावत्तादृष्ट्वाचड निपातितम् ।
तमप्यपातयद्भूमौखट्वागाभिहतरुषा ।।२१
हतशेषततःसैन्यदृष्ट्वाचड निपातितम् ।
मु ड चसुमहावीर्यंदिशोभेजेभयातुरम् ।।२२
शिरश्चण्डस्यकालीसागृहीत्वामौंडमेवच ।
प्राहप्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्यचिण्डकाम् ।।२३
मयातवात्रोपहृतौचण्डमु डौमहापशू ।
युद्धयज्ञेस्वयशुम्भनिशुम्भचहनिष्यसि ।।२४
तवानीतौततोदृष्ट्वाचण्डमुण्डौमहासुरौ ।
उवाचकालीकल्याणीललितचिण्डकावच ।।२५
यस्माच्च ड चमुण्ड चगृहीत्वात्वमुपागता ।
चामुण्डेतिततोलोकेख्यातादेवीभविष्यसि ।।२६

चण्ड को मरा हुआ देखकर मुण्ड काली की ओर दौड़ा, तब देवी ने उसे भी खट्वाग से काट कर गिरा दिया ।।२१।। फिर बची हुई सेना भी चण्ड-मुण्ड का वध देखकर भयातुर हुई इधर-उधर भाग चली ।।२२।। फिर वह काली चण्ड-मुण्ड के कटे हुए मस्तक उठाकर चंडिका के पास गई और प्रचण्ड अट्टहास पूर्वक बोली ।।२३।। महा पशु चण्ड-मुण्ड नामक दो असुरो को मार कर यह उपहार प्रस्तुत है, अब शुभ निशुभ का वध आप स्वय ही करना ।।२४।। ऋषि ने कहा—उन चण्ड-मुण्ड नामक असुरो को उस दशा मे वहाँ देखकर चंडिका देवी ने काली से कहा—।।२५।। देवी बोली—तुम चण्ड-मुण्ड

को लेकर यहाँ आई हो, इसलिये लोक में तुम्हारा 'चामुण्डा' नाम प्रसिद्ध होगा ॥२६॥

८०—रक्त बीज वध

चण्डेचनिहतेदैत्येमु ण्डेचविनिपातिते ।
वहुलेपुचसैन्येपुक्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥१
ततःकोपपराधीनचेता शुम्भ प्रतापवान् ।
उद्योगसर्वसैन्यानादैत्यानामादिदेशह ॥२
अद्यसर्वबलैर्दैत्या षडशीतिरुदायुधा ।
कम्बूनाचतुराशीतिर्नियान्तुस्वबलैर्वृ ता ॥३
कोटिवीर्याणिपचाशदसुराणाकुलानिवै ।
शतकुलानिधूम्राणानिर्गच्छतुममाज्ञया ॥४
कालकादौहृदामौर्या कालकेयास्तथासुरा. ।
युद्धायसज्जानिर्यान्तुआज्ञयात्वरितामम ॥५
इत्याज्ञाप्यासुरपति शुम्भोभैरवशासन ।
निर्जगाममहासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृ तः ॥६
आयातचण्डिकादृष्ट्वातत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनै पूरयामासधरणीगगनातरम् ॥७

ऋषि ने कहा—चण्ड-मुण्ड के साथ ही समस्त सेना के नष्ट होने के कारण असुरेश्वर ॥१॥ प्रतापी शुम्भ ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक सम्पूर्ण असुर सेना को एक साथ वहाँ आकर युद्ध करने की आज्ञा दी ॥२॥ सम्पूर्ण एक साथ ही लेकर उदायुध नामक छियासी और कम्बु नामक चौरासी दैत्य वहाँ जाँय ॥३॥ कोटिवीर्य नामक पचास कुल के धूम्रवश नामक एक सौ कुल के असुर मेरी आज्ञा से निकले ॥४॥ काल, दौहृद मौर्य और कालकेय वश के असुर भी शीघ्र सज कर सग्राम मे पहुचे ॥५॥ असुरेश्वर शुम्भ इस प्रकार आज्ञा देकर *सहस्रों की सख्या मे महासेना को लेकर स्वय भी सग्राम के लिये चला ॥६॥*

उस अत्यन्त भयङ्कर सैन्य-समूह को आता देखकर चंडिका ने प्रत्यंचा की घोर टङ्कार से पृथिवी-आकाश को भर दिया ॥७॥

सचसिंहोमहानादमतीवकृतवान्नृप ।
घंटास्वनेनतन्नादमंबिकाचाप्यवृंहयत् । ८
धनुर्ज्यासिंहघंटानांनादापूरितदिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली जग्येविस्तारितानना ॥९
तन्निनादमुपश्रुत्यदैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवीसिंहस्तथाकालीशरोषैः परिवारिता ॥१०
एतस्मिन्नन्तरेभूपविनाशायसुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विता ॥११
ब्रह्मेशगुहविष्णूनातथेंद्रस्यचशक्तय ।
शरीरेभ्योविनिष्क्रम्यतद्रूपैश्चंडिकांययु ॥१२
यस्यदेवस्ययद्रूपयथाभूपणवाहनम् ।
तद्वदेवहितच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ ॥१३
हंसयुक्तविमानस्थासाक्षसूत्रकमंडलु ।
आयाताब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणीसाभिधीयते ॥१४

हे राजन् ! फिर देवी के वाहन सिंह ने घोर गर्जन किया और देवी ने अपने घंटा के शब्द से उस नाद को द्विगुण कर दिया ॥८॥ प्रत्यंचा की टंकार से और सिंह तथा घंटा के नाद से दिशाएँ परिपूर्ण होगईं और तब काली ने भी घोर नाद पूर्वक जय-जयकार किया ॥९॥ उस नाद को सुनकर दैत्य-सेना ने चंडिका, काली और सिंह को चारों से क्रोधपूर्वक घेर लिया ॥१०॥ हे राजन् ! तभी असुरों के नाश और देवताओं के हित के लिये अत्यन्त बल, पराक्रम से युक्त ॥११॥ ब्रह्मा, शिव, विष्णु, कार्तिकेय और इन्द्र की शक्तियाँ उनके देह से प्रकट हो होकर उन्हीं देवताओं का रूप ग्रहण कर चण्डिका के निकट आईं ॥१२॥ जिस देवता का जो स्वरूप और वाहन था, वैसे ही रूप और वाहन आदि से सज्जित हुई शक्तियाँ असुरों से संग्राम करने को उद्यत हुईं ॥१३॥

ब्रह्माजी की शक्ति हाथ में अक्ष माला और कमण्डलु धारण किये हुए हंस विमान पर आरूढ़ होकर वहाँ आई, उस शक्ति का नाम ब्रह्माणी हुआ ।।१४।।

माहेश्वरीवृषारूढात्रिशूलवरधारिणी ।
महाहिवलयाप्राप्ताचन्द्रलेखाविभूषणा ।।१५
कौमारीशक्तिहस्ताचमयूरवरवाहना ।
योद्धुमभ्याययौदैत्यानम्बिकागुहरूपिणी ।।१६
तथैववैष्णवीशक्तिर्गरुडोपरिसंस्थिता ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ।।१७
यज्ञवाराहमतुलरूपयाबिभ्रतीहरेः ।
शक्तिःसाप्याययौतत्रवाराहीबिभ्रतीतनुम् ।।१८
नारसिंहीनृसिंहस्यबिभ्रतीसदृशंवपुः ।
प्राप्तातत्रसटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ।।१९
वज्रहस्तातथैवैन्द्रीगजराजोपरिस्थिता ।
प्राप्तासहस्रनयनायथाशक्रस्तथैवसा ।।२०
ततः परिवृतस्ताभिरीशानोदेवशक्तिभिः ।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं ममप्रीत्याहचण्डिकाम् ।।२१

शिवजी की शक्ति त्रिशूल को धारण किये, चन्द्ररेखा से सुशोभित, नागों के आभूषण धारण करके और बैल पर चढ़ कर आई, वह माहेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई ।।१५।। कौमारी शक्ति हाथ में शक्ति धारण किये, सुन्दर मोर पर चढ़ कर आई ।।१६।। विष्णु की शक्ति वैष्णवी शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनु और खड्ग धारण करके युद्ध के लिये आई ।।१७।। यज्ञ वाराह रूपधारी भगवान् विष्णु की शक्ति भी वाराहरूप में वहाँ आई ।।१८।। नारसिंही शक्ति नृसिंह रूप में वहाँ आई, उनके सटाक्षेप से नक्षत्रों की पंक्ति चलायमान होगई ।।१९।। इन्द्र की शक्ति हाथ में वज्र धारण कर, हाथी पर चढ़ी हुई युद्ध क्षेत्र में आई, उसका नाम ऐन्द्रीशक्ति हुआ ।।२०।। फिर उन सब देव-शक्तियों के सहित चण्डिकामे भगवान् शंकर ने कहा—मेरी प्रसन्नता के लिये इन सब असुरों का शीघ्र ही वध कर डालो ।।२१।।

ततोदेवीशरीरात्तु विनिष्क्रांतातिभीषणा ।
चंडिकाशक्तिरत्युग्राशिवाशतनिनादिनी ॥२२
साचाहधूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
दूतत्वगच्छभगवन्पार्श्वंशुम्भनिशुंभयो ॥२३
ब्रूहिशुम्भनिशुम्भचदानवावतिगर्वितौ ।
येचान्येदानवास्तत्रयुद्धायसमुपस्थिता ॥२४
त्रैलोक्यमिन्द्रोलभतांदेवा सन्तुहविर्भुज. ।
यूयंप्रयातपातालयदिजीवितुमिच्छथ ॥२५
बलावलेपादथचेद्भवतो युद्धकांक्षिण. ।
तदागच्छततृप्यतुमच्छिवा पिशितेनव. ॥२६
यतोनियुक्तोदूत्येनतयादेव्याशिवःस्वयम् ।
शिवदूतीतिलोकेऽस्मिस्तत साख्यातिमागता ॥२७॥

फिर देवी के देह से अत्यन्त भयंकर सौ शिवाओं के सम्मिलित नाद करने के समान भीषण नाद करती हुई चण्डिका शक्ति प्रकट हुई ॥२२॥ तब उन अपराजिता चण्डिका देवी ने भगवान् शकर से कहा—हे भगवन् ! आप शुंभ निशुंभ के पास जाकर दौत्य कर्म कीजिये ॥२३॥ वहाँ पहुँचकर शुंभ निशुंभ सहित सब युद्धाभिलाषी दैत्यों से कहिये ॥२४॥ हे दैत्यो ! इन्द्र तीनों लोकों के पावें, देवता पुनः यज्ञ भाग को भोगने वाले हों और तुम यदि जीवन की इच्छा करते हो तो पाताल लोक में जा कर रहो ॥२५॥ अथवा बल से गर्वित हुये तुम यदि युद्ध करना चाहते हो तो आओ, मेरी शिवाएँ तुम्हारे रक्त पान से तृप्त होंगी ॥२६॥ देवी ने शिवजी को दौत्य कर्म में स्वयं नियुक्त किया, इसलिए उन्हें 'शिवदूती' कहा गया ॥२७॥

तेपिश्रुत्वावचोदेव्याः शर्वाख्यात महासुराः ।
अमर्षापूरिताजग्मुर्यत्रकात्यायनीस्थिता ॥२८
ततःप्रथममेवाग्रे शरैश्चशक्त्यृष्टिभिः ।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तांदेवीममरारय. ॥२९

साचतत्प्रहितान्बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
चिच्छेदलीलयाध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभि ॥३०
तस्याग्रतस्तथाकालीशूलपातविदारितान् ।
खट्वांगपोथितांश्चारीन्कुर्वतीव्यचरत्तदा ॥३१
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजस ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून्येनयेनस्मधावति ॥३२
माहेश्वरीत्रिशूलेनतथाचक्रेणवैष्णवी ।
दैत्याञ्जघानकौमारीतथाशक्त्यातिकोपना ॥ ३
ऐन्द्रीकुलिशपातेनशतशोदैत्यदानवा ।
पेतुर्विदारिता पृथ्व्यांरुधिरौघप्रवर्षिण ॥३४
तुण्डप्रहारविध्वस्तादंष्ट्राग्रक्षतवक्षस ।
वाराहमूर्त्यान्यपतश्चक्रेणचविदारिता: ॥३५

शिवजी के द्वारा सन्देश प्राप्त करके वह घोर असुर क्रोध पूर्वक उन देवी कात्यायनी के समीप पहुँचे ॥२८॥ फिर वे उन देवी के समक्ष बाण, शक्ति और ऋष्टि आदि की भयङ्कर वर्षा करने लगे ॥२६॥ असुरों द्वारा चलाये गये सभी शस्त्रास्त्रों को चण्डिका देवी ने अपने बड़े-बड़े बाणों से लीला पूर्वक काट डाला ॥३०॥ तभी उन चण्डिका देवी के सामने काली देवी किसी असुर को शूल से विदीर्ण करती और खट्वाङ्ग से मारती हुई घूम रही थीं ॥३१॥ जिस जिस ओर शत्रुगण दौड़ रहे थे, उसी-उसी ओर जाकर ब्रह्माणी शक्ति उन पर जल छिड़क कर उन्हें वीर्य और तेज से हीन करने लगी ॥३२॥ माहेश्वरी त्रिशूल से, वैष्णवी चक्र से और कौमारी शक्ति के द्वारा ही बहुत से दैत्यों को मार रही थीं ॥३३॥ ऐन्द्री शक्ति के वज्र प्रहार से ताड़ित हुए सैंकड़ों दैत्य रक्त वमन करते-करते धराशायी होने लगे ॥३४॥ वाराह शक्ति के मुख प्रहार और दंष्ट्रा के अग्रभाग से ताड़ित असुरगण हृदय विदीर्ण होने के कारण पृथिवी पर गिरने लगे ॥३५॥

नखैर्विदारिताश्चान्याभक्षयन्तीमहासुरान् ।
नारसिंहीचचाराजौनादापूर्णदिगंतरा ॥३६

चडाट्टहासैरसुरा शिवदूत्यभिदूषिता ।
पेतु पृथिव्यापतितास्ताश्चखादाथसातदा ॥३७
इतिमातृगणक्रुद्ध मर्द्दयतमहासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्बिविधैर्नेशुर्देवारिसैनिका ॥३८
पलायनपरान्दृष्ट्वादैत्यान्मातृगणार्द्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौक्रुद्धोरक्तबीजोमहासुरः ॥३९
रक्तबिंदुर्यदाभूमौपतत्यस्यशरीरत ।
समुत्पततिमेदिन्यास्तत्प्रमाणोमहासुर ॥४०
युयुधेसगदापाणिरिंद्रशक्त्यामहासुर- ।
ततश्चैन्द्रीस्ववज्रे णरक्तबीजमताडयत् ॥४१
कुलिशेनाहतस्याशुबहुसुस्रावशोणितम् ।
समुत्तस्थुस्ततोयोधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमा ॥४२
यावत पतितास्तस्यशरीराद्रक्तबिंदव ।
तावत पुरुषाजातास्तद्वीर्यबलविक्रमा ॥४३

नारसिंही शक्ति अपने गर्जन से दिशाओं और आकाश को परिपूर्ण करके दैत्यों को नख से विदारण कर भक्षण करते करते, इस प्रकार वह युद्ध भूमि मे घूम रही थी ॥३६॥ शिवदूती के प्रचण्ड अट्टहास से अभिभूत होकर राक्षसगण धराशायी होने लगे और फिर उन गिरे हुये असुरो का वह शिवदूती भी भक्षण करने लगी ॥३७॥ इस प्रकार उन्हें क्रोध पूर्वक मर्दन करते देख कर दैत्य-सेना भाग पडी ॥३८॥ उनको भागता हुआ देख कर रक्त बीज नामक दैत्य क्रोधपूर्वक युद्ध के लिये आया ॥३९॥ जैसे ही उस असुर के शरीर से रक्त की एक बूँद पृथिवी पर टपकती वैसे ही उसी के समान एक दैत्य उत्पन्न हो जाता ॥४०॥ गदा ग्रहण पूर्वक वह असुर ऐन्द्री शक्ति के साथ युद्ध करने लगा तब ऐन्द्री शक्ति ने उस पर वज्र-प्रहार किया ॥४१॥ वज्र प्रहार के कारण रक्तबीज के देह से टपके हुए रक्त से उसी के समान रूप और पराक्रम वाले अनेक वीर उत्पन्न हो गय ॥४२॥ रक्त की जितनी बूँदें टपकी

उतने ही योद्धा उत्पन्न हुए, वे सब योद्धा बल, वीर्य, पराक्रमादि में रक्तबीज के ही समान थे ।।४३।।

तेचापियुयुधुस्तत्रपुरुषारक्तसम्भवा ।
सममातृभिरत्युग्र शस्त्रपातातिभीषणम् ।।४४
पुनश्चवज्रपातेनक्षतमस्यशिरोयदा ।
ववाहरक्त पुरुषास्ततोजाता सहस्रश ।।४५
वैष्णवीसमरेचैनचक्रेणाभिजघानह ।
गदयाताडयामासऐन्द्रीतमसुरेश्वरम् ।।४६
वैष्णवीचक्रभिन्नस्यरुधिरस्रावसम्भवैः ।
सहस्रशोजगद्व्याप्त तत्प्रमाणैर्महासुरैः ।।४७
शक्त्याजघानकौमारीवाराहीचतथासिना ।
माहेश्वरीत्रिशूलेनरक्तबीजमहासुरम् ।।४८
सचापिगदयादैत्य सर्वाएवाहनत्पृथक् ।
मातृ कोपसमाविष्टोरक्तबीजोमहासुरम् ।।४९

रक्त की बूँदों से उत्पन्न हुए योद्धागण उन मातृगणों के साथ अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्रों द्वारा घोर संग्राम करने लगे ।।४४।। जब ऐन्द्री शक्ति ने उसके मस्तक को पुनर्बार छिन्न किया, तब क्षत स्थान से प्रवाहित हुए रक्त ने सहस्रों असुर उत्पन्न हो गये ।।४५।। वैष्णवी शक्ति ने उसे चक्र से तथा ऐन्द्री शक्ति ने वज्र से मारा ।।४६।। वैष्णवी शक्ति के चक्र से कट कर उस दैत्य के देह से जो रक्त प्रवाहित हुआ, उनसे उसी के समान उत्पन्न हुए सहस्रों विकराल असुरों से यह संसार व्याप्त हो गया ।।४७।। तब उस रक्तबीजासुर को कौमारी अपनी शक्ति से, वाराही खड्ग से और माहेश्वरी त्रिशूल से मारने लगी ।।४८।। तब वह घोर राक्षस रक्तबीज भी सब मातृगणों पर गदा द्वारा प्रहार करने लगा ।।४९।।

तस्याहतस्यबहुधाशक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपातयोवैरक्तौघस्तेनासन्शतशोसुरा ।।५०

तैश्चासुरसृक्सम्भूतैरसुरै सकलजगत् ।
व्याप्तमासीत्ततोदेवाभयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५१
तान्विपण्णानुसुरान्दृष्ट्वाचण्डिकाप्राहसत्वरा ।
उवाचकालीचामुण्डेविस्तीर्णं वदनकुरु ॥५२
मच्छस्त्रपातसम्भूतान्रक्तबिन्दून्महासुरान् ।
रक्तबीजात्प्रतीच्छत्ववक्त्रेणानेनवेगिना ॥५३
भक्षयतीचररणेतदुत्पन्नान्महासुरान् ।
एवमेपक्षयदैत्यःक्षीणरक्तोगमिष्यति ।
भक्ष्यमाणास्त्वयाचोग्रानैवोत्पत्स्यतिचापरे ॥५४
इत्युक्त्वाताततोदेवीशूलेनाभिजघानतम् ।
मुखेनकालीजगृहेरक्तबीजस्यशोणितम् ॥५५

शक्ति, शूल आदि विभिन्न प्रकार के अस्त्रो से आहत हुए उस रक्तबीज के देह से पृथिवी पर पतित हुए रक्त बिंदुओ द्वारा सैकडो असुरो की उत्पत्ति हुई ॥५०॥ उसके रक्त स उत्पन्न हुए असुरो से सम्पूर्ण विश्व व्याप्त होगया, इससे देवगण अत्यन्त भयभीत हुए ॥५१॥ तब देवताओ को भयभीत देख कर चण्डिका ने काली से कहा—हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फाडो ॥५२॥ और मेरे द्वारा शस्त्र मारने से गिरती हुई रक्त की बूँदो या उससे उत्पन्न होने वाले असुरो को वेग पूर्वक अपने मुख मे लेती जाओ ॥५३॥ तथा उससे उत्पन्न हुए राक्षसो का भक्षण करती हुई युद्ध भूमि मे घूमती रहो, इस प्रकार रक्त के क्षीण होने पर ही यह नष्ट हो सकेगा ॥५४॥ इस प्रकार तुम उसका भक्षण प्रारम्भ करोगी तो उसका पुन उत्पन्न होना रुक जायगा, ऋषि ने कहा—काली के प्रति ऐसा कह कर चण्डिका देवी ने उस असुर को त्रिशूल से आहत किया और उससे गिरे हुए रक्त को काली ने अपने मुख म ग्रहण कर लिया ॥५५॥

ततोसावाजघानाथगदयातत्रचण्डिकाम् ।
नचास्यावेदनाचक्रेगदापातोल्पिकामपि ॥५६

तस्याहतस्यदेहात्तुबहुसुस्रावशोणितम् ।
यतस्ततस्वक्त्रेणचामुण्डासप्रतीच्छनी ॥५७
मुखेसमुद्गतायेस्यारक्तपातान्महासुरा ।
तांचखादाथचामुण्डापपौतस्यचशोणितम् ॥५८
देवीशूलेनचक्रेणबाणैरसिभिरिष्टिभिः ।
जघानरक्तबीजंतंचामुण्डापीतशोणितम् ॥५९
सपपातमहीपृष्ठेशस्त्रसङ्घसमाहतः ।
नीरक्तश्चमहीपालरक्तबीजोमहासुर ॥६०
ततस्तेहर्षमतुलमवापुस्त्रिदशानृप ॥
तेषामातृगणोमत्तोननर्त्तासृङ्मदोद्धत ॥६१

फिर उस रक्तबीज ने देवी पर गदा का प्रहार किया, परन्तु उससे देवी को किंचित् भी वेदना नही हुई ॥५६॥ इधर रक्तबीज के देह से गिरते हुए रक्त को चामुण्डा अपने मुख मे लिये जा रही थी ॥५७॥ काली के मुख मे गिरे हुए रक्त से जो असुर उत्पन्न हुए उनका भी उसने भक्षण कर लिया ॥५८॥ जब इस प्रकार चामुण्डा ने रक्तबीज का रक्त पान किया तब चण्डिका ने उसे शूल, चक्र, बाण, खड्ग और ऋष्टि से मारा ॥५९॥ फिर वह घोर असुर शस्त्रो द्वारा क्षत-विक्षत तथा रक्त-हीन होकर पृथिवी मे गिर पड़ा ॥६०॥ (हे राजन् ! इस पर देवताओं को महान् हर्ष हुआ और वे मातगण उन असुरों का रक्त पान करके मदोन्मत्त हुई नाचने लगी ॥६१॥

८१–निशुम्भ वध

विचित्रमिदमाख्यातंभगवन्भवतामम ।
देव्याश्चरितमाहात्म्यंरक्तबीजवधाश्रितम् ॥१
भूयश्चेच्छाम्यहंश्रोतुंरक्तबीजेनिपातिते ।
चकारशुम्भोयत्कर्मनिशुम्भश्चातिकोपन २॥

चकारकोवमतुलरक्तबीजेनिपातिते ।
शुम्भासुरोनिशुम्भश्चहतेष्वन्येपुचाहवे ॥३
हन्यमानमहासैन्य विलोक्यामर्पमुद्वहन् ।
अभ्यधावन्निशुम्भोथमुख्ययासुरसेनया ॥४
तस्याग्रतस्तथापृष्ठे पार्श्वयोश्चमहासुरा ।
सदष्टौष्ठपुटा क्रुद्धाहतु देवीमुपाययु ॥५
आजगाममहावीर्य शु भोपिस्वबलैवृं त ।
निहतु चडिकांकोपात्कृत्वायुद्ध तुमातृभि ॥६
ततोयुद्धमतीवासीद्देव्या शु भनिशुम्भयो ।
शरवर्पमतीवोग्र मेघयोरिववर्षतो ॥७

राजा ने कहा—हे भगवन् आपने मुझ से रक्तबीज के वध के विषय मे देवी चरित्र के अद्भुत माहात्म्य का वर्णन किया ॥१॥ अत्यन्त क्रोधित शम्भु ने रक्तबीज के मारे जाने पर जो कार्य किया, मैं अब उसे सुनना चाहता हूँ ॥२॥ ऋषि बोले—युद्ध मे रक्तबीज के समाप्त होने पर एव विभिन्न सेनाओ के मारे जाने पर दोनों राक्षस शु भ और निशु भ बहुत क्रोधित हुए ॥३॥ इस प्रकार उस सभी सेना को मरता देखकर निशु भासुर अत्यन्त क्रोध सहित राक्षसों की मुख्य सेना को साथ लेकर देवी के सामने दौड़ा ॥४॥ तथा उस घोर असुर के सम्मुख, पृष्ठ भाग में एव अगल-बगल बड़े बड़े राक्षस अपने ओठों को भींचते हुए क्रोध सहित देवी को समाप्त करने के लिए आये ॥५॥ तत्पश्चात् महाबलशाली असुर शु भ अपनी सेना को साथ लेकर देवी के गणो के साथ युद्ध करते हुए देवी को मारने के निमित्त क्रोधपूर्वक आया ॥६॥ तब दो मेघो के समान अत्यन्त प्रचण्ड बाण-वर्षा करते हुए शु भ व निशु भ का देवी के साथ भयकर युद्ध होने लगा ॥७॥

चिच्छेदास्तांच्छरांस्ताभ्यांचडिकास्वशरोत्करैः ।
ताडयामासचांगेषुशस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥८

निशुम्भोनिशितंखड्गंचर्मचादायसुप्रभम् ।
अताडयन्मूर्ध्निसिंहदेव्यावाहनमुत्तमम् ॥९
ताडितेवाहनेदेवीक्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशुचिच्छेदचर्मचाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१०
छिन्नचर्मणिखड्गे चशक्तिंचिक्षेपसोसुरः ।
तामप्यस्यद्विधाचक्रेचक्रेणाभिमुखागताम् ॥११
कोपाध्मातोनिशुम्भोथशूलंजग्राहदानवः ।
आयातमुष्टिपातेनदेवीतच्चाप्यचूर्णयत् ॥१२
अथादायगदांसोपिचिक्षेपचण्डिकांप्रति ।
सापिदेव्यात्रिशूलेनभिन्नाभस्मत्वमागता ॥१३
ततः परशुहस्ततमायांतंदैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्यदेवीबाणौघैरपातयतभूतले ॥१४

चण्डिका देवी उन दोनो राक्षसो द्वारा चलाये गये बाणो को अपने बाणों के द्वारा जल्दी से काटकर अपने शस्त्रों से दोनों विकराल असुरों के अंगो पर वार करने लगीं ॥८॥ तेज धार वाली तलवार और चमकती ढाल निशुंभ ने देवी के श्रेष्ठ वाहन सिंह के मस्तक मे मारी ॥९॥ वाहन पर आक्रमण हुआ देखकर देवी ने क्षुरप्र नाम के अस्त्र से निशुंभ की तेज तलवार काटकर उसकी अष्टचन्द्रा ढाल भी काट डाली ॥१०॥ तलवार और ढाल के कट जाने पर असुर निशुंभ ने देवी पर शक्ति छोडी लेकिन देवी ने चक्र द्वारा उस सम्मुख आती हुई शक्ति के भी दो टुकड़े कर दिये ॥११॥ फिर क्रोध में भरे हुए राक्षस ने शूल लेकर चलाया और देवी ने आक्रमण से शूल को भी घूँसा मारकर चूर्ण कर डाला ॥१२॥ तब उस दानव ने घुमाकर गदा चलाई, किन्तु देवी ने उस गदा को भी अपने त्रिशूल से खण्ड करके भस्म कर दिया ॥१३॥ फिर जब वह महादानव फरसा हाथ मे लेकर आया तो देवी ने उसे बाणों से घायल कर धरती पर गिरा दिया ॥१४॥

तस्मिन्निपतितेभूमौनिशुम्भेभीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीवसंक्रुद्धःप्रययौहन्तुमम्बिकाम् ॥१५

सरथस्थस्तदात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥१६
समायान्तमालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥१७
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च ।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥१८
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः ।
पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥१९
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥२०
अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह ।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥२१

महाबली भयंकर भाई निशुंभ को पृथ्वी पर गिरता देख कर राक्षस शुंभ अत्यन्त क्रोधपूर्वक देवी को मारने आया ।।१५।। तथा बहुत लम्बी महा पराक्रमयुक्त अष्टभुजाओ सहित और बडे बडे अस्त्र लेकर रथ मे बैठकर वह सम्पूर्ण आकाश मे फैला हुआ दीखने लगा ।।१६।। उसे आता देखकर देवी ने शंख बजाकर अत्यन्त असहनीय शब्द धनुष की प्रत्यंचा से किया ।।१७।। तथा सम्पूर्ण असुरो की सेना का गतिशील विनाश करने वाले अपने घन्टे की शब्द-ध्वनी से सम्पूर्ण दिशाओ को भर दिया ।।१८।। अनन्तर सिंह ने भी हाथियों के महामद को नष्ट करने वाले महानाद से आकाश, पृथ्वी एवं दस दिशाओं को पूर्ण कर दिया ।।१९।। फिर देवी काली ने आकाश मे उछलकर अपने दोनो हाथो से पृथ्वी पर आघात किया जिसकी शब्द ध्वनि से पहली समस्त शब्द-ध्वनि मन्द हो गयी ।।२०।। शिवदूती भी शत्रु राक्षसो का अमंगल करने वाली तेज हंसी मे हँसी, उस के शब्द से राक्षस लोग दुखी हुए और शुंभ अत्यन्त क्रोधित हुआ ।।२१।।

शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा ।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥२३

सिंहनादेनशुम्भस्यव्याप्तं लोकत्रयांतरम् ।
निर्घातनिःस्वनोघोरोजितवानवनीपते ॥२४
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवीशुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेदस्वशरैरुग्रैःशतशोथसहस्रश. ॥२५
तत्र साचण्डिकाक्रुद्धाशूलेनाभिजघानतम् ।
सतदाभिहतोभूमौमूर्छितोनिपपातह ॥२६
ततोनिशुंभः सम्प्राप्यचेतनामात्तकार्मुकः ।
आजघानशरैर्देवींकालीकेसरिणंतथा ॥२७
पुनश्चकृत्वाबाहूनामयुतदनुजेश्वरः ।
चक्रायुतेनदितिजश्छादयामासचण्डिकाम् ॥२८

आकाश में स्थित देवगण तब जय-जय शब्द करने लगे जब अम्बिका ने शुंभ से कहा "दुरात्मन् ! ठहर, ठहर" ॥२२॥ असुर शुंभ ने अत्यन्त भयंकर तेज अग्नि वाली शक्ति छोड़ी, अग्नि के समान आती हुई उस शक्ति को देवी ने महोल्कानाम्नी शक्ति से काट कर दूर फेंक दी ॥२३॥ फिर तीनों लोक शुम्भ दानव के सिंहनाद से पूर्ण हो गये, तब हे अवनीपाल ! आकाश से उत्पन्न विद्युत् की भयानक शब्द-ध्वनि ने शुंभ के नाद पर विजय पायी ॥२३॥ शुंभ द्वारा चलाये गये सौ सहस्र शरों को देवी ने अपने तेज बाणों से काट डाला और देवी द्वारा चलाये गये सैंकड़ों सहस्रों बाणों को शुंभ ने भी अपने तेज बाणों से काट डाला ॥२५॥ तत्पश्चात् चण्डिका देवी ने क्रोध सहित शूल द्वारा शुंभ को घायल किया और शूल से आहत असुर शुंभ अचेत होकर धरती पर गिर गया ॥२६॥ इसके बाद चेतना आने पर निशुंभासुर धनुष के बाणों से देवी काली और सिंह को आहत करने लगा ॥२७॥ फिर राक्षसराज दैत्य निशुंभ ने दस हजार भुजाऐं धारण कीं और उनसे चक्र व युद्धास्त्रों द्वारा चण्डिका देवी पर छा गया ॥२८॥

ततोभगवतीक्रुद्धादुर्गादुर्गार्त्तिनाशिनी ।
चिच्छेदतानिचक्राणिस्वशरैः सायकांश्चतान् ॥२९॥

ततोनिशु भोवेगेनगदामादायचण्डिकाम् ।
अभ्यधावतवैहतु दैत्यसेनासमावृत ॥३०
तस्यापततएवाशुगदाचिच्छेदचण्डिका ।
खड्गेनशितधारेणसचशूलसमाददे ॥३१
शूलहस्तसमायान्तनिशु भममरार्द्दनम् ।
हृदिविव्याधशूलेनवेगाविद्धेनचण्डिका ॥३२
भिन्नस्यतस्यशूलेनहृदयान्नि सृतोपर ।
महाबलोमहावीर्यस्तिष्ठेतिपुरुषोवदन् ॥३३
तस्यनिष्क्रामतोदेवीप्रहस्यस्वनवत्तत ।
शिरश्चिच्छेदखड्गेनतत्तेसावपतद्भुवि ॥३४
तत सिंहश्चखादोग्रद ष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरास्तास्तथाकालीशिवदूतीतथापरान् ॥३५

इससे क्रोधित हुई संकट नाशिनी देवी दुर्गा ने उन सम्पूर्ण वाणो और चक्र को काट डाला ॥२६॥ उसके पश्चात् निशु भ दैत्यो की सेना सहित गदा लेकर उन देवी को नष्ट करने के लिए अत्य त तेजी से दौडा ॥३०॥ तब निशु भ राक्षस की उस आती हुई गदा को चण्डिका देवी ने अत्यन्त तेज धार वाली तलवार से काट डाला फिर निशु भ ने शूल ले लिया ॥३१॥ फिर शूल लेकर सामने आते हुए असुर निशु भ को देवी ने महान् गति से अपना त्रिशूल चला कर हृदय के बीच वेघ दिया ॥३८॥ तो शूल से बिंधे असुर हृदय से एक दूसरा महावली और महावीर्यवान् पुरुष देवी से 'ठहर' शब्द कहता हुआ निकला ॥३३॥ तब देवी ने हंसकर नाद करते हुए उस बाहर आये हुए असुर का सिर तलवार से काट डाला और वह धरती पर गिर पडा ॥३४॥ इसके बाद सिंह तज दातोंसे गर्दन चबाकर असुर का भक्षण करने लगा तथा शिवदूती और काली अन्य दूसरे राक्षसो का भक्षण करने लगी ॥३५॥

कौमारीशक्तिनिर्भिन्ना केचिन्नेशुर्महासुरा ।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेनतोयेनान्येनिराकृता ॥३६

माहेश्वरीत्रिशूलेनभिन्नाःपेतुस्तथापरे ।
वाराहीतुंडघातेनकेचिच्चूर्णीकृताभुवि ।।३७
खंडखंडचचक्रेणवैष्णव्यादानवाःकृताः ।
वज्रेणचैंद्रीहस्ताग्रविमुक्तेनतथापरे ।।३८
केचिद्विनेशुरसुरा केचिन्नष्टामहाहवात् ।
भक्षिताश्चापरेकालीशिवदूतीमृगाधिपै. ।।३९

कई विकराल राक्षस कौमारी-शक्ति के बल से कटकर मरगये। ब्रह्माणी के मन्त्रपूत जल को छूने से ही अपने आप अनेक राक्षस समाप्त हो गये ।।३६।। माहेश्वरी के त्रिशूल की चोट से बहुत से अनेक दानव अलग-अलग होकर गिर पडे और कोई-कोई दानव वाराही के मुख के आघात से पिसकर भूमि पर गिर गये ।।३७।। वैष्णवी ने चक्र से अन्य दूसरे असुरो को टुकडे-टुकडे कर डाला और ऐन्द्री द्वारा छोडे गये वज्र से घायल होकर ।।३८।। उन दानवो मे कोई समाप्त हुए और कोई-कोई महायुद्ध से भाग गये। तथा जो बचे, उनका काली, शिवदूती और सिह ने भक्षण कर लिया ।।३९।।

८२-शुम्भ वध

निशुम्भनिहतंदृष्ट्वाभ्रातरंप्राणसंमितम् ।
हन्यमानंबलंचैवशुम्भःक्रुद्धोब्रवीद्वचः ।।१
बलावलेपाद्दुष्टेत्वंमादुर्गेगर्वमावह ।
अन्यासांबलमाश्रित्ययुध्यसेयातिमानिनी ।।२
एकैवाहंजगत्यत्रद्वितीयाकाममापरा ।
पश्यैतादुष्टमय्येवविशन्त्योमद्विभूतयः ।।३
ततःसमस्तास्तादेव्याब्रह्माणीप्रमुखालयम् ।।
तस्यादेव्यास्तनौजग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ।।४

अहविभूत्यावहुभिरिह्रूपैर्यास्थिता ॥
तत्संहृतंमयैकैवतिष्ठाम्याजौस्थिरोभव ॥५
ततः प्रवृतेयुद्धं देव्या शुम्भस्यचोभयो ।
पश्यतांसर्वदेवानामसुराणांचदारुणम् ॥६
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथाचास्त्रैःसुदारुणैः ।
ततोयुद्धमभूद्भूय सर्वलोकभयंकरम् ॥७

ऋषि बोले—शुंभ ने प्राणों के समान भाई निशुंभ और सेना को मरा देखकर क्रोधपूर्वक कहा ॥१॥ हे दुष्टे दुर्गे ! तू बल का अभिमान न कर, तू दूसरों के बल पर आश्रित होकर मानवों के समान युद्ध करती है ॥२॥ देवी ने कहा—अरे दुष्ट ! इस समर में केवल एक मैं ही हूँ, मेरे अलावा दूसरा कौन है ? देख, यह मेरी सब विभूति मुझ में ही विद्यमान है ॥३॥ ऋषि ने कहा—इसके पश्चात् ब्रह्माणी आदि समस्त शक्तियाँ देवी की देह में विलीन हो गई और तब अकेली अम्बिका ही सम्मुख रह गई ॥४॥ फिर देवी बोली—अरे शुंभ ! इस स्थान पर मैं अपनी विभूति द्वारा अनेक रूप में विद्यमान थी, अब उन सभी रूपों को नष्ट करके मैं युद्ध-क्षेत्र में अकेली ही रही हूँ, तू स्थिर हो ॥५॥ ऋषि ने कहा—"तदनन्तर यह सब देखते हुए देवता और दानवों के सामने असुर शुंभ और देवी दानवों का भयंकर युद्ध होने लगा ॥६॥ फिर देवी और शुंभासुर में परस्पर बाणवर्षा, शोणित व दारुण अस्त्रों के प्रहार द्वारा ऐसा युद्ध हुआ, जो सम्पूर्ण लोगों में भय उत्पन्न करने वाला था ॥७॥

दिव्यान्यस्त्राणिशतशोमुमुचेऽथाम्बिका ।
बभञ्जतानिदैत्येंद्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥८
मुक्तानितेनचास्त्राणिदिव्यानिपरमेश्वरी ।
बभञ्जलीलयैवोग्रहुँकारोच्चारणादिभिः ॥९
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयतसोऽसुरः ।
साचतत्कुपितादेवीधनुश्चिच्छेदचेषुभिः ॥१०

छिन्नेधनुषिदैत्येंद्रस्तयाशक्तिमथाददे ।
चिच्छेददेवीचक्रेणतामप्यस्यकरेस्थिताम् ॥११
तत खड्गमुपादायशतचन्द्रचभानुमत् ।
अभ्यधावततादेवींदैत्यानामधिपेश्वरः ॥१२
तस्यापततएवाशु खड्गं चिच्छेदच डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्मचार्ककरामलम् ॥१३
अश्वाश्चपातयामासरथसारथिनासह ।
हताश्व.सतदादैत्यश्छिन्नधन्वाविसारथिः ।
जग्राहमुगदरघोरमम्बिकानिधनोद्यत ॥१४

अम्बिका द्वारा छोडे गये शत-शत दिव्य अस्त्रों को उस दैत्यराज शुंभासुर ने उनको काटने वाले अस्त्रों से सभी अस्त्रों को काट डाला ॥८॥ और शुभसुर द्वारा छोडे गये सभी दिव्यास्त्रो को देवी चण्डिका ने अपनी लीला से व हुंकार द्वारा तोड डाला ॥६॥ फिर उस भयकर राक्षस ने सैकडो वाणों की वर्षा द्वारा देवी को आच्छादित कर दिया। तब देवी ने भी क्रोध से वाणों द्वारा उसका धनुष काट डाला ॥१०॥ धनुष कट जाने पर शुभ राक्षस ने शक्ति ले ली, किन्तु देवी ने उस शक्ति को भी चक्र से उसके हाथों ही में काट डाला ॥११॥ तब वह दैत्यराज ने दीप्तियुक्त विशिष्ट चन्द्रहाल और तलवार लेकर देवी पर आक्रमण वाला हुआ ॥१२॥ तब देवीने शुभ की तलवार एवं सूर्य की किरणों के समान उज्ज्वल टाल को धनुष से तीक्षण वाण छोड-कर काट डाला ॥१३॥ जब उस राक्षस-राज के रथ के घोडे निर्जीव हो गये, धनुष खण्डित होगया और सारथी भी नष्ट हो गया, तब वह भयकर मुगद्दर लेकर अम्बिका को मारने के लिये तैयार हुआ ॥१४॥

चिच्छेदापततस्तस्यमुद्गरनिशितैः शरैः ।
तथापिसोऽभ्यधावत्तामुष्टिमुद्यम्यवेगवान् ॥१५
समुष्टिपातयामासहृदयेदैत्यपुङ्गवः ।
देव्यास्तचापिसादेवीतलेनोरस्यताडयत् ॥१६

तलप्रहाराभिहतोनिपपातमहीतले ।
सदैत्यराज सहसापुनरेवतथोत्थित ॥१६
उत्पत्यचप्रगृह्योच्चैर्देवीगगनमास्थित ।
तत्रापिसानिराधारायुयुधेतेनचण्डिका ॥१८
नियुद्ध खेतदादैत्यश्चण्डिकाचपरस्परम् ।
चक्रतु प्रथमसिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥१६
ततानियुद्ध सुचिरकृत्वातेनाम्बिकासह ।
उत्पात्यभ्रामयामासचिक्षेपधरणीतले ॥२०
सक्षिप्तोधरणीप्राप्यमुष्टिमुद्यम्यवेगित ।
अभ्यधावनदुष्टात्माचण्डिकानिधनेच्छया ॥२१

तब सामने आये दानव का मुद्गर देवी ने तीक्ष्ण बाणों से नष्ट कर दिया, किन्तु फिर भी वह महादानव मुष्टिका तानकर तेज गति से देवी पर दौड़ा ॥१५॥ महादानव ने वह मुष्टिका प्रहार देवी के हृदय पर किया। तब देवी ने भी थप्पड़ द्वारा उसके सीने पर आघात किया ॥१६॥ थप्पड़ के आघात से पीडित दैत्यराज पृथ्वी पर गिरा और तुरन्त ही पुन उठा ॥१७॥ इसके पश्चात् उछल कर देवी को लेकर शुम्भ आकाश मे पहुँच गया और देवी भी आकाश म निरालम्ब होकर केवल भुजाओं से युद्ध करने लगी ॥१८॥ आकाश मे शुम्भ व चण्डिका देवी अद्वितीय और मुनियो को अचम्भे मे डालने वाला युद्ध करने लगे ॥१६॥ उस दानव के साथ बिना अस्त्र केवल भुजाओ से युद्ध करके उसे उछाल कर ऊपर घुमाया और फिर धरती पर पटक दिया ॥२०॥ धरती पर गिरकर वह दुष्टात्मा दानव मुष्टिका उठाकर चण्डिका को मारने की इच्छा से आक्रामक हुआ ॥२१॥

तमायान्ततोदेवीसर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यापातयामासभित्त्वाशूलेनवक्षसि ॥२२
सगतासु पपातोर्व्यादेवीशूलाग्रविक्षत ।
चालयन्सकलापृथ्वीसाब्धिद्वीपासपर्वताम् ॥२३

ततःप्रसन्नमखिलंहतेतस्मिन्दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवापनिर्मलंचाभवन्नभः ॥२४
उत्पातमेघाःसोल्कायेप्रागासंस्तेशमययुः ।
सरितोमार्गवाहिन्यस्तथासुम्भेनिपातिते ॥२५
ततोदेवगणाःसर्वेहर्षनिर्भरमानसाः ।
बभूवुर्निहतेतस्मिन्गंधर्वाललितजगुः ॥२६
अवादयंस्तथैवान्येननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
ववुःपुण्यास्तथावाताःसुप्रभोभूद्दिवाकरः ॥२७
जज्वलुश्चाग्नयःशांताःशान्तःदिग्जनितस्वनाः ॥२८

उस दैत्यराज शुंभ को आक्रामक देव देवी ने अपने शूल से उसका हृदय वेध दिया और उसको पुनः पृथ्वी पर गिरा दिया ॥२२॥ देवी के शूल के अग्र भाग द्वारा शुंभ का हृदय आहत हुआ जब वह निर्जीव होकर पृथ्वी पर गिरा तो उस समय समुद्र, द्वीप और पर्वतों सहित समस्त पृथ्वी विचलित हो गई ॥२३॥ उस दुरात्मा दानव के मारे जाने पर सभी आनन्दित हुए, संसार बहुत स्वस्थ हुआ और आकाश पूर्णतः स्वच्छ होगया ॥२४॥ शुंभ के रहते हुए जो भी अनिष्टकारी मेघ और उल्कागण विद्यमान थे, वे सब शुंभ के मृत्यु-परान्त अदृश्य होगये और नदियाँ भी अपने समुचित मार्गों मे बहने लगी ॥२५॥ (उस दानव के समाप्त होने पर सम्पूर्ण देवगण के चित्त मे अत्यन्त हर्ष हुआ और गंधर्व मधुर गान करने लगे ॥२६॥ कोई वाद्य बजाने लगा और अप्सराएँ नाचने लगी,) शीतल मन्द वायु चलने लगी और सूर्य ने भी सुन्दर आभा फैला दी ॥२७॥ यज्ञ की बुझी अग्नि जलने लगी और सभी दिशाओं मे शांत शब्द फैला प्रतीत हुआ ॥२८॥

८३—देवी स्तोत्र

देव्याहतेतत्रमहासुरेन्द्रे सेन्द्राःसुरावह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनींतुष्टुवुरिष्टलाभाद्विकासिवक्त्राब्जविकासिताशाः ॥१

देवाऊचु' देविप्रपन्नार्तिहरेप्रसीदप्रसीदमातर्जगतोखिलस्य ।
प्रसीदविश्वेश्वरिपाहिविश्वं त्वमीश्वरीदेविचराचरस्य ॥२
आधारभूताजगतस्त्वमेकामहीस्वरूपेणयत स्थितासि ।
अपास्वरूपस्थितयात्वयैतदाप्याप्यतेकृत्स्नमलघ्यवीर्ये ॥३
त्वर्णैष्णवीशक्तिरनतविर्याविश्वस्यबीजपरमासिदेवि ।
मायासमोहितदेविसमस्तमेतत्त्वणैप्रसन्नाभुविमुक्तिहेतुः ॥४
विद्या समस्तास्तवदेविभेदा स्त्रिय समस्ता सकलजगत्सु ।
त्वयैकयापूरितमबयैतत्कातेस्तुतिःस्तव्यपरापरोक्ति ॥५
सर्वभूतायदादेवीभुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
त्वस्तुतास्तुतयेकावाभवतिपरमोक्तय. ॥६
सर्वस्यवद्धिरूपेणजनस्यहृदिसस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥७

ऋषि ने कहा—देवी ने जब उस महादानव को नष्ट कर दिया, तो समस्त देवता अपने इच्छित फल प्राप्त होने के कारण प्रसन्न मुख कमलो से इन्द्र व अग्नि को आगे कर समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर उन कात्यायनी देवी की स्तुति करने लगे ॥१॥ देवता बोले—"हे शरणागत दुख-भजन देवि ! प्रसन्न हो, हे सम्पूर्ण जगत् की जननी प्रसन्न हो, हे विश्वेश्वरि ! प्रसन्न हो, तुम विश्व की रक्षा करो, हे देवि ! चराचरो की तुम ही ईश्वरी हो ॥२॥ हे देवि ! तुम ही जगत् की आधार रूप हो, क्योकि पृथ्वी का रूप तुम्हीं मे स्थित है हे देवि ! जल का स्वरूप भी तुम ही धारण करके इस सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करती हो, हे देवि ! तुम्हारा वीर्य उल्लघन नही किया जा सकता ॥३॥ हे देवि ! अनन्त वीर्य वैष्णवी शक्ति तुम ही हो, ससार की हेतुभूत परमलीला तुम ही हो, सम्पूर्ण जगत् को तुमने ही मोहित कर रखा है, हे देवि ! तुम जब प्रसन्न होती हो, तब ही पृथ्वी पर मुक्ति का कारण होती हो ॥४॥ हे देवि ! तुम्हारी मूर्ति विशेष मे ही समस्त विद्या विद्यमान हैं और त्रिलोक मे समस्त स्त्रियाँ तुम्हारी मूर्ति विशेष हैं, हे जननी ! तुम एक अकेली इस जगत् मे व्याप्त हो तुम स्तुति से परे और तुम्हारी स्तुति ही श्रेष्ठ उक्ति है और अधिक क्या

स्तुति करे ॥५॥ समस्त प्राणी-स्वरूप में तुम ही प्रकाशमान हो और स्वर्ग व मुक्ति तुम ही प्रदान करती हो, इसलिये तुम्हारी स्तुति करते हैं, किन्तु हे देवि! तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मस्वरूप की स्तुति के लिए कोई भी उक्ति श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि तुम निर्गुण हो और निर्गुण के गुणों की कीर्तन रूप स्तुति किस प्रकार संभव है? ॥६॥ तुम बुद्धि के रूप में सबके हृदय में बसी हो, हे स्वर्ग-मुक्ति दाता! हे देवि! हे नारायणि! तुमको नमस्कार है ॥७॥

कलाकाष्ठादिरूपेणपरिणामप्रदायिनी ।
विश्वस्योपरतौशक्तेनारायणिनमोस्तुते ॥८
सर्वमङ्गलमाङ्गल्येशिवेसर्वार्थसाधिके ।
शरण्येत्र्यम्बकेगौरिनारायणिनमोस्तुते ॥९
सृष्टिस्थितिविनाशानांशक्तिभूतेसनातनि ।
गुणाश्रयेगुणमयेनारायणिनमोस्तुते ॥१०
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥११
हंसयुक्तविमानस्थेब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भःक्षरिकेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥१२
त्रिशूलचन्द्राहिधरेमहावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेणनारायणिनमोस्तुते ॥१३
मयूरकुक्कुटवृतेमहाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थानेनारायणिनमोस्तुते ॥१४

हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥११॥ हंस युक्त विमान मे ब्राह्मी रूप धारण कर युद्ध क्षेत्र मे कुशाभिमन्त्रित जल छिड़कती हो, हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१२॥ माहेश्वरी रूप मे बैल पर सवार होकर अर्द्धचन्द्र और नाग भूषण सहित त्रिशूल आपने धारण किया,हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥१३॥ तुमने कौमारी रूप मे मयूर और कुक्कुट युक्त होकर महा शक्ति धारण की, हे अनघे ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१४॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्ग गृहीतपरमायुधे ।
प्रसीदवैष्णवीरूपेनारायणिनमोस्तुते ॥१५
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।
वराहरूपिणिशिवेनारायणिनमोस्तुते ॥१६
नृसिंहरूपेणोग्रे णहतुं दैत्यान्कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहितेनारायणिनमोस्तुते ॥१७
किरीटिनिमहावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।
वृत्रप्राणहरेचैंद्रिनारायणिनमोस्तुते ॥१८
शिवदूतीस्वरूपेणहतदैत्येमहाबले ।
घोररूपेमहारावेनारायणिनमोस्तुते ॥१९
दंष्ट्राकरालवदनेशिरोमालाविभूषणे ।
चामुण्डेमुण्डमथनेनारायणिनमोस्तुते ॥२०
लक्ष्मिलज्जेमहाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधेध्रुवे ।
महारात्रेमहामायेनारायणिनमोस्तुते ॥२१

वैष्णवी रूप मे शङ्ख, चक्र, गदा एवं शार्ङ्ग धनुष परम आयुधों को तुमने धारण किया, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१५॥ वराह रूप में तुमने हे शिवे ! हे नारायणि ! दाँतो से जल-मग्न पृथ्वी को उठाकर महाचक्र ग्रहण किया, तुमको नमस्कार ॥१६॥ नृसिंह रूप मे दानवों के नाश को उद्यत हो त्रैलोक्य की रक्षा करने वाली हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ॥१७॥ हे नारायणि ! हे ऐन्द्री ! हजारों नयनों से उज्ज्वल किरीटों के धारण करने वाली एवं महावज्र ग्रहण करने वाली, तुमको नमस्कार ॥१८॥ शिवदूती के रूप में

भयंकर स्वरूप धारण कर हे नारायणि तुमने महावलि दानवों को समाप्त किया,तुमको नमस्कार ।।१९।। दष्ट्रा और कराल मुख के सिरों की माला धारण कर हे नारायणि ! तुमने चण्ड और मुण्ड नाम के दानवों को नष्ट किया, तुमको नमस्कार ।।२०।। लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, महारात्रि, महामाया, ध्रुवा तुम ही हो, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ।।२१।।

मेधेसरस्वतिवरेभूतिबाभ्रवितामसि ।
नियतेत्वप्रसीदेशेनारायणिनमोस्तुते ।।२२
सर्वत पाणिपादातेसर्वतोक्षिशिरोमुखे ।
सर्वत श्रवणघ्राणेनारायणिनमोस्तुते ।।२३
मर्वस्वरूपेसर्वेशेसर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहिनोदेविदुर्गेदेविनमोस्तुते ।।२४
एतत्तेवदनसौम्यलोचनत्रयभूषितम् ।
पातुन.सर्वभीतिम्य कात्यायनिनमोस्तुते ।।२५
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलपातुनोभीतेर्भद्रकालिनमोस्तुते ।।२६
हिनस्तिदैत्यतेजासिस्वनेनापूर्ययाजगत् ।
साघटापातुनोदेविपापेभ्योन सुतानिव ।।२७
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्तेकरोज्ज्वलः ।
शुभायखड्गोभवतुचंडिकेत्वानतावयम् ।।२८

मेधा, मरस्वती, भूति, बाभवी, तामसि तुम ही हो, हे नारायणि ! हे ईशे ! हे नियते ! तुम प्रसन्न हो, तुमको नमस्कार ।।२२।। सर्वत्र हाथ, पैर, सिर, मुख, कान, नासिका तुम्हारे ही स्वरूप हैं हे नारायणि ! तुमको नमस्कार ।।२३।। सर्वस्वरूप, सर्वेश्वरी, सर्वशक्ति समन्वित हे देवि ! हे दुर्गे ! भय से रक्षा करो, तुमको नमस्कार ।।२४।। तुम्हारा सौम्य मुख और उस पर विभूषित त्रिनेत्रों वाली हे कात्यायनि ! सबसे रक्षा करो, तुमको नमस्कार ।।२५।। ज्वाला से भी अधिक कराल अत्युग्र तेज और अशेषासुर को नष्ट करने वाला

तुम्हारा त्रिशूल हे भद्रकालि ! हमारी भय से रक्षा करे तुमको नमस्कार ।।२६।। अपनी ध्वनि से विश्व को पूरित कर दानवों के तेज को नष्ट करने वाला तुम्हारा घंटा पुत्रवत् पापो से हमारी रक्षा करे ।।२७।। असुरगण के लहू और वसा के पङ्क से चर्चित किरणों के समान उज्ज्वल यह शोभायमान तलवार, हे चण्डिके ! हमारा कल्याण करे ।।२८।।

रोगानशेषानपहंसितुष्टारुष्टा तु कामान्सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानानविपन्नराणांत्वामाश्रिताह्याश्रयताप्रयांति ।।२९
एतत्कृतयत्कदनत्वयाद्यधर्मंद्विषादेविमहासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्त्तिकृत्वाम्बिकेतत्प्रकरोतिकान्या ।।३०
विद्यासुशास्त्रेषुविवेकदीपेष्वाद्येषुवाक्येषुचकात्वदन्या ।
ममत्वगर्त्तेतिमहांधकारेविभ्रामयस्येतदतीवविश्वम् ।।३१
रक्षांसियत्रोग्रविषाश्चनागायत्रारयोदस्युबलानियत्र ।
दावानलोयत्रतथाब्धिमध्येतत्रस्थितात्वपरिपासिविश्वम् ।।३२
विश्वेश्वरीत्वपरिपासिविश्वविश्वात्मिकाधारयसीतिविश्वम् ।
विश्वेशवंद्याभवतीभवतिविश्वाश्रयायेत्वयिभक्तिनम्रा ।।३३
देविप्रसीदपरिपालयनोरिभीतेर्नित्ययथासुरवधादधुनैवसद्य ।
पापानिसर्वजगताप्रशमनयाशुउत्पातपाकजनिताश्चमहोपसर्गान्३४
प्रणतानांप्रसीदत्वंदेविविश्वार्त्तिहारिणि ।
त्रैलोक्यवासिनामीड्येलोकानावरदाभव ।।३५

प्रसन्न होने पर सभी रोगो को नष्ट करती हो एवं अप्रसन्न होने पर सभी आकांक्षित वस्तुओं को छीन लेती हो। तुम्हारे आश्रितो पर कभी कोई विपत्ति नहीं रहती और तुम्हारे आश्रित ही अन्य सबको आश्रय देने वाले होते हैं ।।२६।। अनेक रूप धारण कर तुमने धर्म के विपक्षी घोर असुरो का मारा यह क्या कोई दूसरी नारी कर सकती है ? ।।३०।। विद्या, महा शास्त्रो विवेक-दीप और वेदो व आदि वाक्यो के होते हुए भी महा अंधकारमय ममत्व रूपी गर्त्त मे विश्व को तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन बचा सकता है ।।३१।। जहाँ असुर हैं, विकराल सर्प हैं, शत्रु हैं, चोरो के समूह हैं, दावानल है, तुम वहाँ

इत्थयदायदावाधादानवोत्थाभविष्यति ।
तदातदावतीर्याहंकरिष्याम्यरिसंक्षयम् ।।५१

फिर जब सौ साल तक वर्षा न होगी तो जल न होने यानी सूखा के कारण ऋषिगण मेरी प्रार्थना करेंगे उस समय मैं बिना मनुष्य योनि के ही जन्म लूँगी ।।४३।। उस समय मेरे सौ नेत्र होंगे, जिनसे मुनियों को देखूँगी और मुनिगण मुझे "शताक्षी" कहकर कीर्त्तन करेंगे ।।४२।। तत्पश्चात् जब तक वर्षा का अभाव रहेगा, तब तक हे सुरगण ! स्वकीय देह उत्पन्न शाक से समस्त लोकों का पालन करूँगी ।।४५।। इसलिए जगत् में मेरा "शाकम्भरी" नाम प्रसिद्ध होगा और वर्षा न होने की उस अवधि में दुर्गम नाम के महादानव को समाप्त करूँगी ।।४६।। और फिर मैं ऋषियों की रक्षा के लिए हिमालय पर विकराल स्वरूप से असुरों का वध करूँगी ।।४७।। उस समय सभी ऋषिगण विनम्र होकर मेरी प्रार्थना करेंगे और मैं भीमा देवी के नाम प्रसिद्ध होऊँगी ।।४८।। जिस काल में अरुण नामक एक महादानव तीनों लोकों में भारी विपत्ति पैदा करेगा,उस समय अनेक षट्पद समन्वित भ्रमरों का रूप ग्रहण कर ।।४९।। तीनों लोकों का उद्धार करने के लिए उस महादानव को मारूँगी, इसलिए प्राणी मेरी 'भ्रामरी' नाम से स्तुति करेंगे ।।५०।। इस तरह जिस काल में असुरों द्वारा विपत्तियाँ पैदा की जायगी, उस समय मैं अवतरित होकर उनका नाश करूँगी ।।५१।।

८४—देवताओं को देवी का वरदान

एभि स्तवैश्चमांनित्यस्तोष्यतेय समाहित ।
तस्याहसकलांवाधांनाशयिष्याम्यसशयम् ।।१
मधुकैटभनाशचमहिषासुरघातनम् ।
कीर्त्तयिष्यतियेतद्वद्वधशुम्भनिशुम्भयो ।।२
अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनवम्यांचैकचेतस ।
स्तोष्यन्तिचैवयेभक्त्याममाहात्म्यमुत्तमम् ।।३

शत्रुओं को नष्ट करती रहो, यही वर हम माँगते हैं ॥३७॥ देवी बोली—वैवस्वत मनवन्तर के बीच अट्ठाईसवें युग में दो महादानव शुंभ और निशुंभ के नाम से जन्म लेंगे ॥३८॥ उस समय मैं यशोदा के गर्भ से नायनन्द के गेह में जन्म लूँगी और विन्ध्याचलवासिनी होकर उन दोनों को नष्ट करूँगी ॥३६॥ फिर पृथ्वी पर अत्यन्त विकराल रूप में अवतार लेकर वैप्रचित्त नाम के असुरों का विनाश करूँगी ॥४०॥ वैप्रचित्त नाम के भीषण दैत्यों को भक्षण करते हुए मेरी दन्तमुक्तावली कुसुम के समान लाल रंग की हो जायगी ॥४१॥ इसके पश्चात् स्वर्ग में देवगण और मर्त्यलोक में मानव स्तुति करते हुए सदैव मुझे "रक्त दन्तिका" के नाम से पुकारेंगे ॥४२॥

भूयश्चशतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनभसि ।
मुनिभिःसंस्तुताभूमौसंभविष्याम्ययोनिजा ॥४३
तत शतेननेत्राणांनिरीक्षिष्यामियन्मुनीन् ।
कीर्त्तयिष्यतिमनुजा शताक्षीमितिमातत ॥४४
सतोहमखिललोकमात्मदेहसमुद्भवै. ।
भरिष्यामिसुरा शाकैरावृष्टे प्राणधारकै ॥४५
शाकम्भरीतिविख्यातिंतदायास्याम्यहंभुवि ।
तत्रैवचवधिष्यामिदुर्गमाख्यंमहासुरम् ।
(दुर्गादेवीतिविख्याततन्मेनामभविष्यति ।
पुनश्चाहंयदाभीमरूपंकृत्वाहिमाचले) ॥४६
रक्षांसिभक्षयिष्यामिमुनीनांत्राणकारणात् ॥४७
तदामामुनय सर्वेस्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तय ।
भीमादेवीतिविख्याततन्मेनामभविष्यति ॥४८
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्येमहाबाधांकरिष्यति ।
तदाहंभ्रामररूपंकृत्वासंख्येयषट्पदम् ॥४६
त्रैलोक्यस्यहितार्थायवधिष्यामिमहासुरम् ।
भ्रामरीतिचमांलोकास्तदास्तोष्यन्तिसर्वत ॥५०

इत्ययदायदावाधादानवोत्थाभविष्यति ।
तदातदावतीर्याहंकरिष्याम्यरिसंक्षयम् ।।५१

फिर जब सौ साल तक वर्षा न होगी तो जल न होने यानी सूखा के कारण ऋषिगण मेरी प्रार्थना करेंगे उस समय मैं बिना मनुष्य योनि के ही जन्म लूँगी ।।४३।। उस समय मेरे सौ नेत्र होंगे, जिनसे मुनियों को देखूँगी और मुनिगण मुझे "शताक्षी" कहकर कीर्तन करेंगे ।।४२।। तत्पश्चात् जब तक वर्षा का अभाव रहेगा, तब तक हे सुरगण ! स्वकीय देह उत्पन्न शाक से समस्त लोकों का पालन करूँगी ।।४५।। इसलिए जगत् मे मेरा "शाकम्भरी" नाम प्रसिद्ध होगा और वर्षा न होने की उस अवधि में दुगम नाम के महादानव को समाप्त करूँगी ।।४६।। और फिर मैं ऋषियों की रक्षा के लिए हिमालय पर विकराल स्वरूप से असुरों का वध करूँगी ।।४७।। उस समय सभी ऋषिगण विनम्र होकर मेरी प्रार्थना करेंगे और मैं भीमा देवी के नाम प्रसिद्ध होऊँगी ।।४८।। जिस काल में अरुण नामक एक महादानव तीनों लोकों मे भारी विपत्ति पैदा करेगा,उस समय अनेक षट्पद समन्वित भ्रमरों का रूप ग्रहण कर ।।४६।। तीनों लोकों का उद्धार करने के लिए उस महादानव का मारूँगी, इसलिए प्राणी मेरी 'भ्रामरी' नाम से स्तुति करेंगे ।।५०।। इस तरह जिस काल में असुरों द्वारा विपत्तियाँ पैदा की जांयगी, उस समय मैं अवतरित होकर उनका नाश करूँगी ।।५१।।

८४—देवताओं को देवी का वरदान

एभि स्तवैश्चमांनित्यस्तोष्यतेय समाहित ।
तस्याहसकलांवाधांनाशयिष्याम्यसंशयम् ।।१
मधुकैटमनाशचमहिषासुरघातनम् ।
कीर्तयिष्यतियेनद्वद्वधशुम्भनिशुम्भयो ।।२
अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनवम्यांचैक चेतसः ।
स्रोष्यन्तिचैवयेभक्त्यामममाहात्म्यमुत्तमम् ।।३

नतेषांद्दुष्कृतंकिंचिदुःक्रतोत्थानचापद ।
नभविष्यतिदारिद्र्यनचौवेष्टवियोजनम् ॥४
शत्रुतोनभयतेषांदस्युतोवानराजत ।
नशस्त्रानलतोयोघात्कदाचित्सभविष्यति ॥५
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यपठितव्यसमाहितैः ।
श्रोतव्यचसदाभक्त्यापरस्वस्त्ययनमहत् ॥६
उपसर्गानशेषांस्तुमहामारीसमुद्भवान् ।
तथात्रिविधमुत्पातमाहात्म्यशमयेन्मम ॥७

देवी ने कहा—इन सभी वचनों से सचेत होकर जो मनुष्य मेरी प्रतिदिन स्तुति करेगा, यह सदेहहीन है कि मैं उन सभी विपत्तियों का विनाश करूँगी ॥१॥ मधुकैटभ, शुंभ निशुंभ और महिषासुर की कथा का उत्तम माहात्म्य जो मनुष्य एक चित्त होकर भक्ति पूर्वक अष्टमी, चतुर्दशी या नवमी तिथि मे सुनें या कहे ॥२॥ सो उनको पाप एव पाप से पैदा कोई बाधा नहीं रहेगी, दरिद्रता दूर होगी एव प्रियजनों का वियोग भी न होगा ॥४॥ दुश्मन, चोर और राजा से किसी स्थान पर भय न होगा और अस्त्र, अग्नि व पानी से भी निडर रहेंगे ॥५॥ इसलिए मेरा वह माहात्म्य दत्तचित्त होकर अध्ययन करे और श्रवण करे। मेरा यह माहात्म्य ही मेरी सर्वश्रेष्ठ स्तुति है ॥६॥ यह महामारी जन्य सभी विपदाओं और तीनों प्रकार की विपत्तियों को नाश करता है ॥७॥

यत्रैतत्पठ्यतेसम्यक्नित्यमायतनेमम ।
सदानतद्विमोक्ष्यामिसांनिध्यतत्रमेस्थितम् ॥८
बलिप्रदानेपूजायामग्निकार्येमहोत्सवे ।
सर्वममैतच्चरितमुच्चार्यश्राव्यमेवच ॥९
जानताजानतावापिबलिपूजांतथाकृताम् ।
प्रतीच्छिष्याम्यहप्रीत्यावह्निहोमतथाकृतम् ॥१०
शरत्कालेमहापूजाक्रियतेयाचवार्षिकी ।
तस्यांममैतन्माहात्म्यश्रुत्वाभक्तिसमन्वित ॥११

सर्वबाधाविनिर्मुक्तोधनधान्यसमन्वित ।
मनुष्योमत्प्रसादेनभविष्यतिनसशय ॥१२
श्रुत्वाममैतन्माहात्म्यमथोत्पत्ती पृथक्शभा ।
पराक्रमाँश्चयुद्धेपुजायतेनिभय पुमान् ॥१३
रिपव सक्षय याँतिकल्याणचोपपद्यते ॥
नन्दतेचकुलपु साँमाहात्म्य ममश्रृण्वताम् ॥१४

जिस गृह मे यह माहात्म्य समुचित विधि से मनन किया जाता है, मैं सर्वदा उसी गृह मे अथवा उसके समीप वास करती हूँ ॥८॥ पूजा-कार्य या बलि के अवसर पर तथा यज्ञ कार्य आदि उत्सवो मे मेरी यह समस्त कथा बोलनी और सुननी चाहिए ॥६॥ प्राणीगण जाने या अनजाने जो पूजा करें, बलि दे या अग्नि मे आहुति देते हैं, वह सब मैं प्रसन्न होकर स्वीकार करती हूँ ॥१०॥ शरद् ऋतु म वार्षिक महा पूजा के अवसर पर मेरा यह चरित्र भक्ति-पूर्वक सुनने से ॥११॥ मनुष्य मेरा प्रसाद पाकर समस्त बाधाओ से विमुक्त होते है और यह सदेह से परे है कि वे धन, सम्पत्ति और पुत्र प्राप्त करते हैं ॥१२॥ यह माहात्म्य, शुभ उत्पत्ति की कथा एव युद्ध-कौशल चरित्र सुनने से मनुष्य को भय नही रहता ॥१३॥ उसके शत्रुओ का शमन होता एव उसका कल्याण होता है । और मेरे माहात्म्य का श्रवण करने वाले मनुष्य का परिवार आनन्द-पूर्ण हो जाता है ॥१४॥

शान्तिकर्मणिसर्वत्रतथादु स्वप्नदर्शने ।
ग्रहपीडासुचोग्रासुमाहात्म्यश्रृणुयान्मम ॥१५
उपसर्गा शमयातिग्रहपीडाश्चदारुणा ।
दु स्वप्नचनृभिर्दृ ष्ट सुस्वप्नमुपजायते ॥१६
बालग्रहाभिभूतानाबालानाशातिकारकम् ।
सघातभेदेचनृणामैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१७
दुर्वृ त्तानामशेषाणाबलहानिकरपरम् ।
रक्षोभूतपिशाचानापठनादेवनाशनम् ॥१८
सर्वममतन्माहात्म्यममसनिधिकारकम् ॥१९

पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्चगन्धदीपैस्तथोत्तमैः ।
विप्राणाभोजनैर्होमैःप्रेक्षणीयैरहर्निशम् ॥२०
अन्यैश्चविविधैर्भोगैःप्रदानैर्वत्सरेणया ।
प्रीतिर्मेक्रियतेसास्मिन्सकृदुच्चरितश्रुते ॥२१

सभी शाति कार्यों, भयानक स्वप्न देखने के अवसर पर और घोर पारिवारिक दुःख के समय मेरा यह चरित्र सुने ॥१५॥ इसके श्रवण से विपदाऐं एवं घोर पारिवारिक दुःख मिट जाते हैं और जैसे मनुष्य को दुखद स्वप्न शीघ्र फलदायक बनते है, उसी प्रकार तुरन्त उत्तम फल प्रदान करते है ॥१६॥ मेरी यह कथा पूतना, डकिनी, शाकिनी, बालको पर आयी ग्रहो को शमन करने वाली है और यदि मनुष्यो मे आपस मे मतभेद व शत्रुता हो जाय तो श्रेष्ठ विधि से पुनः प्रीति कराने वाली है ॥१७॥ यह समस्त अविचारी व दुष्ट मनुष्यो को निर्बल करता, उनके बल को घटाता है, इसके अध्ययन से असुर, भूत व पिशाच नष्ट हो जाते हैं ॥१८॥ माहात्म्य के अध्ययन से अध्ययन करने वाला मेरे निकट आता है। यह प्रारम्भ, मध्य और समाप्ति पर मुझे सर्व प्रकार प्रसन्न करता है ॥१९॥ उत्तम पशु, फूल, अर्घ्य, धूप, गन्ध, दीप, ब्रह्मभोज, यज्ञ, प्रोक्षणीय एव ॥२०॥ अन्य दूसरी रीतियो से एक वर्ष पर्यन्त दिन रात पूजा करने वाले से मैं जितनी प्रसन्न हो सकती हूँ, उतनी इस माहात्म्य को सिर्फ एक ही बार श्रवण से प्रसन्न हो जाती हूँ ॥२१॥

श्रुतहरतिपापानितथारोग्यप्रयच्छति ।
रक्षाकरोतिभूतेभ्योजन्मनाकीर्त्तनमम ॥२२
युद्धेपुचरितयन्मेदुष्टदैत्यनिवर्हणम् ।
तस्मिञ्छ्रुतेवैरिकृतभयपुंसानजायते ॥२३
युष्माभिःस्तुतयोयाश्चयाश्चब्रह्मर्षिभिःकृताः ।
ब्रह्मणाचकृतायास्ताःप्रयच्छतिशुभागतिम् ॥२४
अरण्येप्रांतरेवापिदावाग्निपरिवारितः ।
दस्युभिर्वावृतःशून्येगृहीतोवापिशत्रुभिः ॥२५

हे मनुजेन्द्र ! समस्त ब्रह्माण्ड उन देवी से युक्त है और प्रलय के समय में यह ब्रह्माण्ड महामारी के रूप में महाकाली से युक्त होता है ॥३५॥ वही, जब समय आता है तो महामारी बन जाती है, तथा जगत् की उत्पत्ति के अवसर पर वही सृष्टि का स्वरूप हो जाती है और रक्षा के समय वही देवी सनातनी रूप में मनुष्यों की रक्षा करती है ॥३६॥ आनन्द के समय वही प्राणियों के गेह में विभिन्न ऐश्वर्य प्रदान करती है और जब वह नहीं होती तो लक्ष्मी रूपी ऐश्वर्य चला जाता है व विनाश हो जाता है ॥३७॥ उस देवी की प्रार्थना जो करे और सुगन्ध, धूप, पुष्प, दीप वगैरह से पूजा जो करे उसे ऐश्वर्य, पुत्र और धर्म भक्ति की प्राप्ति होती है ॥३८॥

८५—सुरथ और वैश्य को देवी का वरदान

एतत्ते कथितम्भूपदेवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवम्प्रभावासादेवीययेदं धार्यतेजगत् ॥१
विद्यातथैवक्रियतेभगवद्विष्णुमायया ।
तयात्वमेषवैश्यश्चतथैवान्येविवेकिनः ।
मोह्यन्तेमोहिताश्चैवमोहमेष्यन्तिचापरे ॥२
तामुपैहिमहाराजशरणंपरमेश्वरीम् ।
आराधितासैवनृणांभोगस्वर्गापवर्गदा ॥३
इतितस्यवचः श्रुत्वासुरथःसनराधिपः ।
प्रणिपत्यमहाभागंतमृषिंसंशितव्रतम् ॥४
निर्विण्णोतिममत्वेनराज्यापहरणेनच ।
जगामसद्यस्तपसेसचवैश्योमहामुने ॥५
सदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थित ।
सचवैश्यस्तपस्तेपेदेवीसूक्तं परंजपन् ॥६
तौतस्मिन्पुलिनेदेव्याः कृत्वामूर्तिमहीमयीम् ।
अर्हणाञ्चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ॥७

जगद्विध्वंसकेतस्मिन्महोग्रेतुलविक्रमे ।
निशुम्भेचमहावीर्येशेषा पातालमाययु. ॥३२
एवंभगवतीदेवीसानित्यापि पुन पुन. ।
सम्भूयकुरुतेभूपजगत परिपालनम् ॥३३
तयैतन्मोह्यतेविश्वंसैवविश्वंप्रसूयते ।
सायाचिताचविज्ञानंतुष्टाऋद्धिंप्रयच्छति ॥३४

मेरे चरित्र को बार-बार मनन करने वाले प्राणी को देखकर ही मेरे प्रभाव से सिंह जैसे हिंसक पशु, चोर और शत्रु भी पलायन कर जाते हैं ॥२६॥ ऋषि ने कहा—अत ऐसा उपदेश देती हुई महा पराक्रमी चण्डिका देवी सुरगण के सम्मुख एकदम अन्तर्धान होगई ॥३०॥ तत्पश्चात् शत्रुओं के भय से निर्भीक सुरगण यज्ञ भाग भोजन करते हुए अपने-अपने कार्यों में व्यस्त होगये ॥३१॥ विश्व का विनाश करने वाले महा पराक्रमी व देवताओं के शत्रु शुंभ एवं महाबली निशुंभ को जब रण स्थल में चण्डिका ने नष्ट कर दिया तो शेष असुरगण पाताल को चले गये ॥३२॥ हे राजा! वह भगवती देवी नित्या होकर भी अनेक बार पृथ्वी पर प्रकट होकर इस विश्व का पोषण करती है ॥३३॥ उसी भगवती की माया में यह जगत् मोहित है, वही इस जगत् की सृष्टि-कर्त्ता है और उसकी समीप स्तुति करने पर वह प्रसन्न होकर तत्वज्ञान एवं धन-धान्य प्रदान करती है ॥३४॥

व्याप्तंतयैतत्सकलंब्रह्माण्डंमनुजेश्वर ।
महाकाल्यामहाकालेमहामारीस्वरूपया ॥३५
सैवकालेमहामारीसैवसृष्टिर्भवत्यजा ।
स्थितिंकरोतिभूतानांसैवकालेसनातनी ॥३६
भवकालेनृणांसैवलक्ष्मीर्वृद्धिप्रदागृहे ।
सैवाभावेतथालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥३७
स्तुतासम्पूजितापुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ।
ददातिवित्तंपुत्रांश्चमतिंधर्मेगतिंशुभाम् ॥३८

हे मनुजेश्वर ! समस्त ब्रह्माड उन देवी से युक्त है और प्रलय के समय मे यह ब्रह्माण्ड महामारी के रूप मे महाकाली से युक्त होता है ।।३५।। वही, जब समय आता है तो महामारी बन जाती है, तथा जगत् की उत्पत्ति के अवसर पर वही सृष्टि का स्वरूप हो जाती है और रक्षा के समय वही देवी सनातनी रूप मे मनुष्यो की रक्षा करती है ।।३६।। आनन्द के समय वही प्राणियो के गेह मे विभिन्न ऐश्वर्य प्रदान करती है और जब वह नही होती तो लक्ष्मी रूपी ऐश्वर्य चला जाता है व विनाश हो जाता है ।।३७।। उस देवी की प्रार्थना जो करे और सुगन्ध, धूप, पुष्प, दीप वगैरह से पूजा जो करे उसे ऐश्वर्य, पुत्र और धर्म भक्ति की प्राप्ति होती है ।।३८।।

८५—सुरथ और वैश्य को देवी का वरदान

एतत्तेकथितभूपदेवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।
एवप्रभावासादेवीययेदं धार्यतेजगत् ।।१
विद्यातथैवक्रियतेभगवद्विष्णुमायया ।
तथात्वमेषवैश्यश्चतथैवान्येविवेकिन ।
मोह्य तेमोहिताश्चैवमोहमेष्यतिचापरे ।।२
तामुपैहिमहाराजशरणपरमेश्वरीम् ।
आराधितासैवनृणाभोगस्वर्गापवर्गदा ।।३
इतिनस्यवच श्रुत्वासुरथःसनराधिपः ।
प्रणिपत्यमहाभागतमृषिसशितव्रतम् ।।४
निर्विण्णोतिममत्वेनराज्यापहरणेनच ।
जगाममयस्तपसेसचवैश्योमहामुने ।।५
सदर्शनार्थमवाया नदीपुलिनसस्थित ।
सचवैश्यस्तपस्तपेदेवीसूक्त परजपन् ।।६
तौतस्मिन्पुलिनेदेव्या कृत्वामूर्तिमहीमयीम् ।
अर्हणाचक्रतुस्तस्या पुष्पधूपाग्नितर्पणै ।।७

ऋषि ने कहा—हे भूप ! आपको मैंने यह सर्वोत्तम माहात्म्य देवी का वर्णन किया। वह देवी जो इस विश्व को धारण करने वाली विष्णु माया भगवती की कृपा ऐसी है कि वही मनुष्य को तत्वज्ञान प्रदान करती हैं और वही तुम्ह इस वैश्य को एव अन्य दूसरे बुद्धिमान् व्यक्तियो का भी मोहित किये हुए है, साथ ही भविष्य मे भी मनुष्य उनके ही द्वारा माहित रहेंगे ॥१॥ हे राजा ! ऐसी परमेश्वरी भगवती की शरणागत होओ जिनकी पूजा करने से ही वह प्राणी को आनन्द स्वर्ग एव मुक्ति प्राप्त होती है ॥३॥ मार्कण्डेय ने कहा—"हे महर्षि ! भारी ममता एव राज्य के हरण होने से बहुत दुःखी वह कठोर व्रत करने वाला सुरथ मुनि के इन वचनो को सुनकर वह उन मुनि को प्रणाम करके तुरन्त तपस्या करने चला गया एव वह वैश्य भी तपस्या करने चला गया ॥४-५॥ तत्पश्चात् राजा व वैश्य दोनो नदी के तट पर पहुँचे और वहाँ देवी के दर्शनो के लिए सर्वोत्तम देवी-सूक्त जपते हुए तपस्या मे लीन होगये ॥६॥ वही दोनो ने मिट्टी से देवी की मूर्ति स्थापित की और पुष्प, सुगन्ध, धूप, यज्ञ एव तर्पण से उनकी आराधना की ॥७॥

निराहारौयतात्मानौतन्मनस्कौसमाहितौ ।
ददतुस्तौबलिंचैवनिजगात्रासृगुक्षितम् ॥८
एवसमाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैयतात्मनो ।
परितुष्टाजगद्धात्रीप्रत्यक्षप्राहचण्डिका ॥९
यत्प्रार्थ्यतेत्वयाभूपत्वयाचकुलनन्दन ।
मत्तस्तत्प्राप्यतासर्वपरितुष्टाददामितत् ॥१०
ततोवव्रे नृपोराज्यमविभ्र श्यप्रजन्मनि ।
अत्र चनिजराज्यहतशत्रुबलबलात् ॥११
सोपिवैश्यस्ततोज्ञानवव्रे निर्विण्णमानस ।
ममेत्यहमितिप्राज्ञ सगविच्युतिकारकम् ॥१२
स्वल्पैरहोभिर्नृपतेस्वराज्यप्राप्स्यतेभवान् ।
हत्वारिपूनस्खलिततवतत्रभविष्यति ॥१३

मृतश्चभूय. सप्राप्यजन्मदेवाद्विवस्वतः ।
सावर्णिकोनाममनुर्भवान्भुविभविष्यति ।।१४
वैश्यवर्यत्वयास्मत्तोवरोयश्चाभिवाछ्छितः ।
तप्रयच्छामिससिद्ध्यै तवज्ञानभविष्यति ।।१५
इतिदत्त्वातयोर्देवीयथाभिलपितवरम् ।
वभूवाँतर्हितासद्योभक्त्याताम्यामभिष्टुता ।।१६
एवदेव्यावरलब्ध्वासुरथः क्षत्रियर्पभः ।
सूर्याज्जन्मसमासाद्यसावर्णिर्भवितामनुः ।।१७

वे दोनो आहार बिना अथवा सूक्ष्म आहार लेकर आराधना मे लीन हुए और उन्होंने अपने शरीरो से रक्त की बलि दी ।।८।। इस तरह तीन वर्ष पर्यन्त एकाग्र चित्त से तपस्या करने पर जगत् उद्धारक चण्डिका ने प्रसन्न हो उनके सम्मुख आकर कहा ।।९।। देवी ने कहा—हे राजा ! और हे श्रेष्ठ कुल वैश्य ! तुम जो मेरी आराधना करते हो, तुम मेरे समीप होकर सभी इच्छित फल प्राप्त करोगे, मैं प्रसन्न होकर तुम्हें प्रदान करती हू ।।१०।। मार्कण्डेय जी ने कहा—दूसरे पश्चात् नृप ने वर मागा कि द्वितीय जन्म मे अखड-राज्य और इस जन्म मे वल द्वारा अपने शत्रुओं को नष्ट कर अपना राज्य पुन पा सकूँ ।।११।। पीडित मन वाले विवेकी वैश्य ने 'यह मेरा' और 'मैं' के मोह नाश करने वाला ज्ञान मांगा ।।१२।। देवी ने कहा—हे राजा ! कुछ ही समय में तुम शत्रुओ का दमन करके अपने राज्य को पुन प्राप्त करोगे एव भविष्य मे तुम्हे अपने राज्य का त्याग नहीं करना होगा ।।१३।। फिर मरने के बाद तुम उत्पत्ति लाभ प्राप्त करके पृथ्वी पर सावर्णि नामक प्रसिद्ध मनु होओगे ।।१४।। हे वैश्य ! तुमने जो वर मुझसे मांगा है, उसकी सिद्धि के लिए तुमको वर प्रदान करती हूँ ।।१५।। मार्कण्डेय ने कहा—इस प्रकार उन दोनो को इच्छित वरदान प्रदान कर तुरन्त ही वह अन्तर्धान होगई उससे पूर्व उन्होने पूर्ण भक्ति से देवी की स्तुति की ।।१६।। अन क्षत्रिय मे श्रेष्ठ राजा सुरथ देवी से वर प्राप्त करके सूर्यदेव से उत्पत्ति लाभ प्राप्त कर पृथ्वी पर सावर्णि नामक मनु होंगे ।।१७।।

८६—पाँच मन्वन्तर कथन

सावर्णिकमिदसम्यक्प्रोक्त मन्वन्तरत्तव ।
तथैवदेवीमाहात्म्यमहिषासुरघातनम् ।।१
उत्पत्तयश्चयादेव्यामातृणाञ्चमहाहवे ।
तथं वसभवोदेव्याश्चामुण्डायायथाभव ।।२
शिवदूत्याश्चमाहात्म्यवध शुम्भनिशुम्भयो ।
रक्तबीजवधश्चं वसर्वमेतत्तवोदितम् ।।३
श्रूयताँमुनिशार्दूलसावर्णिकमथापरम् ।
दत्तपुत्रश्चसावर्णिभावीयोनवमोमनु ।।४
कथयामिमनोस्तस्ययेदेवामुनयोनृपा ।
पारामरीचिभर्गाश्चसुधर्माणस्तथासुरा ।।५
एतेत्रिधाभविष्यन्तिसर्वेद्वादशकागणा ।
तेषामिद्रोभविष्यस्तुसहस्राक्षोमहाबल ।।६
साम्प्रतकार्तिकेयोयोवह्निपुत्र षडानन ।
अद्भुतोनामशक्रोऽसौभावीतस्यान्तरेमनो ।।७

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ऋषि श्रेष्ठ ! यह सावर्णिक का मन्वन्तर आपसे वर्णन किया एव इसी सदर्भ मे देवी माहात्म्य, महिषासुर-दमन ।।१।। घोर रण मे मातृगणो एव देवी की उत्पत्ति, चामुण्डा देवी की उत्पत्ति ।।२।। शिवदूती माहात्म्य, शुभ निशुभ और रक्त बीज वध इन सभी को उचित प्रकार से आपसे कहा ।।३।। हे ऋषिवर ! अब नवे दक्ष-पुत्र सावर्णिक के मन्वन्तर का वर्णन सुनो ।।४।। उसम मनु के मानव-काल मे जो देवता, मुनि और राजा होंगे, वह सुनो । पाराशर, मरीचि, भर्ग और सुधर्मा देवताओ के ।।५।। यह तीन गण एव प्रत्यक गण म बारह सख्य दवगण हैं । वर्त्तमान वह्नि पुत्र षडानन कार्तिकेय, इस भविष्य के मन्वन्तर मे महा पराक्रमी सहस्राक्ष इन्द्र होंगे ।।६ ७।।

भूरिद्युम्न सुपर्वाचलस्यैतेतनयामनोः ।
भविष्याधर्मपुत्रस्यसावर्णस्यान्तरश्रृणु ॥१६
विहगमा कामगाश्चनिर्माणरतयस्तथा ।
त्रि प्रकाराभविष्यन्तिएकैकस्मिन्शकोगणः ॥१७
मासर्तु दिवसायेतुनिर्माणपतयस्तुते ।
विहङ्गमारात्रयोऽथमौहूर्त्ताःकामगागणा ॥१८
इन्द्रोवृषाख्योभविताितेषाप्रख्यातविक्रम ।
हविष्माश्चवरिष्ठश्चऋष्टिरन्यस्तथारुणि ॥१९
निश्चरश्चानघश्च वविष्टिश्चान्योमहामुनिः ।
सप्तर्षयोऽन्तरेतस्मिन्नगितेजाश्चसप्तम ॥२०
सर्वत्रग सुशर्माचदेवानीक पुरूद्वहः ।
हेमधन्वादृढायुश्चभाविनस्तत्सुतानृपा ॥२१

सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिषेण, वीर्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जयद्रथ ॥१५॥ भूरिद्युम्न और सुपर्वा दस पुत्र दशम मनु के हैं, अन्य मनु धर्म पुत्र सावर्ण का मन्वन्तर इस प्रकार है ॥१६॥ विहगम, का मन एव निर्माण पति तीन गण देवताओ के हैं और प्रत्येक गण मे तीस सुर होगे ॥१७॥ मास, ऋतु एव दिवस निर्माण-पति हैं, रात्रि विहङ्गमदेव और सम्पूर्ण मुहूर्त जन्य विषय-कामग सुरो के गण हैं ॥१८॥ महा पराक्रमी वृषाख्य इन्द्र होगे । इस मन्वन्तर की अवधि मे हविष्मान्, वरिष्ठ, अरुणतनय ॥१९॥ निश्चर, अनघ, विष्टि एव सप्तम अग्निदेव, सप्तर्षि होगे ॥२०॥ सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानिक, पुरूद्वह, हेमधन्वा व दृढायु उन मनु के पुत्र होगे और राजा होगे ॥२१॥

द्वादशेरुद्रपुत्रस्यप्राप्तेमन्वन्तरेमनो ।
सावर्णाख्याश्चयेदेवामुनयश्चश्रृणुष्वतान् ॥२२
सुधर्माण सुमनसोहरितोरोहितस्तथा ।
सुवर्णाश्चसुरास्तत्रपञ्च तेदशकागणा ॥२३
तेषामिन्द्रस्तुविज्ञेयश्रृतधामामहाबल ।
सर्वैरिन्द्रगुणैर्युक्ता सप्तर्षीनपिमेश्रृणु ॥२४

द्युतिस्तपस्वीसुतपास्तपोमूर्तिस्तपोनिधिः ।
तपोरतिस्तथैवान्य.सप्तमन्तुनपध्रुतिः ॥२५
देववानुपदेवश्चदेवश्रेष्ठोविदूरथः ।
मित्रवान्मित्रविन्दश्चभाविनस्तत्सुतानृपा. ॥२६

सावर्ण मनु के द्वादश मन्वन्तर के बीच जो देव और ऋषि होंगे, अब उनका वर्णन सुनो ॥२२॥ उनके मन्वन्तर में सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित एवं सुवर्ण इस प्रकार के देवता होंगे और प्रत्येक गण में दस देवगण होंगे ॥२३॥ इंद्र के समस्त गुणों से युक्त पराक्रमी ऋतधामा इंद्र होंगे । महर्षियों का वर्णन सुनो ॥२४॥ महर्षियों के नाम हैं द्युति,तपस्वी,सुतपा.,तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति एवं सप्तम तपोधृति ।।२५॥ देववान्' उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान् एवं मित्रविन्द उन मनु के पुत्र एवं भावी नृप होंगे ॥२६॥

अयोदशान्यपर्य्यायेरौच्यास्यस्यमनो सुगन् ।
महर्षीश्चनृपांश्चवगदतोमेनिशामय ॥२७
सुधर्माणः.सुरास्तत्रसुकर्माणस्तथापरे ।
सुशर्माण सुराह्येतेममस्तामुनिसत्तम ॥२८
महाबलोमहावीर्य्यस्तेषामिन्द्रोदिवस्पतिः ।
भविष्यानयसप्तर्षीन्गदतोमेनिशामय ॥२९
धृतिमानव्ययश्चैवतत्त्वदर्शीनिरुत्सुकः ।
निर्मोह् सुतपाश्चान्योनिष्प्रकम्पश्चसप्तम. ॥३०
चित्रसेनोविचित्रश्चनियतिर्निर्भयोदृढः ।
सुनेत्र क्षत्रबुद्धिश्चसुव्रतश्चैवतत्सुता ॥३१

अब मैं रौच्य नाम के त्रयोदश मनु के मन्वन्तर में जो महर्षि और उनके पुत्र राजा होंगे, उनका वर्णन सुनो ॥२७॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! उनके मन्वन्तर में सुधर्मा और सुकर्मा देवता होंगे ॥२८॥ महापराक्रमी दिवस्पति इन्द्र होंगे । साथ ही महर्षियों के विषय में भी सुनो ॥२९॥ धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा एवं सप्तम निष्प्रकम्प महर्षि होंगे ॥३०॥ एवं रौच्य

मनु के पुत्र चित्रसेन, विचित्र नियति, निर्भय, दृढ, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि और सुव्रत नामक पुत्र होंगे ॥३१॥

८७-रुचि को पितरों का गार्हस्थ्य उपदेश

रुचि प्रजापतिं पूर्वं निर्ममो निरहङ्कृतः ।
यत्रास्तमितशायी च चचार पृथिवीमिमाम् ॥१
अनग्निमनिकेतन्तमेकाहारमनाश्रमम् ।
विमुक्तसङ्ग तद्दृष्ट्वा प्रोचुस्तत्पितरो मुनिम् ॥२
वत्स कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसग्रह ।
स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद्बन्धस्तेनानिशं विना ॥३
गृही समस्तदेवानां पितृणाञ्च तथार्हणाम् ।
ऋषीणामतिथीनाञ्च कुर्वंल्लोकानुपाश्नुते ॥४
स्वाहोच्चारणतो देवान्स्वधोच्चारणत पितृन् ।
विभजत्यन्नदानेन भूताद्यानतिथीनपि ॥५
स त्वं दैवादृणाद्बन्धबन्धमस्मदृणादपि ।
आवाप्नोषि मनुष्यापि भूतेभ्यश्च दिने दिने ॥६
अनुत्पाद्य सुतान्देवानसन्तर्प्य पितॄंस्तथा ।
भूतादींश्च कथं मौढ्यात्सुगतिं गन्तुमिच्छसि ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—प्राचीन काल की बात है कि प्रजापति रुचि ने समस्त ममता का त्याग कर दिया और अहङ्कार रहित होकर जहाँ भी सूर्यास्त हो जाय, वहीं सो जाते थे इस प्रकार से पृथिवी में भ्रमण करने लगे ॥१॥ उनके पितरों ने जब उन्हें अग्नि रहित, गृह-रहित, एकाहारी, निराश्रय और सग त्यागी के रूप में देखा तो इस प्रकार बोले ॥२॥ पितरों ने कहा—हे वत्स ! तुमने स्त्री का पाणिग्रहण क्यों नहीं किया, क्योंकि वह स्वर्ग और मोक्ष का कारण है, विवाह के न होने से तो सभी बन्धन हैं ॥३॥ सभी देवता, पितर,

का कारण नहीं हो सकता ।।१०।। ममता रूपी कीचड़ मे लिप्त होने वाले आत्मा को जो परिग्रह हीन पुरुष नित्यप्रति चित्त रूपी जल से धोते हैं वही पुरुष श्रेष्ठ हैं ।।११।। अनेक जन्मों मे उत्पन्न कर्मरूपी कीचड़ मे सने हुए आत्मा को सद्वासना रूपी जल से स्वच्छ करना ही बुद्धिमानों को उचित है ।।१२।। पितर बोले—यह ठीक है कि संयतेन्द्रिय पुरुषों को आत्मा को स्वच्छ करना चाहिये, परन्तु हे वत्स ! तुम जिस मार्ग पर चल रहे हो, क्या वह मार्ग मोक्ष प्राप्ति कराने वाला है ? ।।१३।। जैसे निष्काम दान से अमंगल का नाश होता है, वैसे ही शुभ अशुभ फल के भोग से पूर्व जन्म के संचित कर्म का नाश होता है ।।१४।।

एवनवन्धोभवतिकुर्वत कारणात्मक ।
नचवन्धायतत्कर्मभवत्यनभिसन्धितम् ।।१५
पूर्वकर्मकृतभोगं क्षीयतेऽहनिशतथा
सुखदु खात्मकैर्वत्सपुण्यापुण्यात्मकंनृणाम् ।।१६
एवप्रक्षाल्यतेप्राज्ञैरात्माबन्धाच्चरक्ष्यते ।
नत्वेवमविवेकेनपापपङ्केनलिप्यते ।।१७
अविद्यापठ्यतेवेदे कर्ममार्ग पितामहा ।
तत्कथकर्मणोमार्गेभवन्तोयोजयन्तिमाम् ।।१८
अविद्यासत्यमेवेतत्कर्मनैतन्मृषावच ।
किन्तुविद्यापरिप्राप्तौहेतुःकर्मनसशय ।।१९
विहिताकरणात्पु भिरसद्भिः क्रियतेतुय ।
सयमोमुक्तयेनासौप्रत्युताऽधोगतिप्रद ।।२०
प्रक्षालयामीतिभवान्वत्सात्मानन्नुमन्यते ।
विहिताकरणोद्भूतैं पापैस्त्वन्तुविलिप्यसे ।।२१
अविद्याप्युपकारायविषवज्जायतेनृणाम् ।
अनुपायेनवन्धायान्यायतोहिसा ।।२२
तस्माद्वत्सकुरुष्वत्वविधिवद्दारसग्रहम् ।
माजन्मविफलतऽस्तुप्राप्यतुलविंत्रम् ।।२३

अतभि सधि के वर्म बन्धन का कारण न होने से कर्म करने वालों को ही ससार के बन्धन मे नहीं पड़ना होता ॥१५॥ हे पुत्र ! सुन, दुःख के रूप मे भोगे जाने वाले भोग से ही पूर्व जन्म के सचित पुण्य पाप युक्त कर्म दिन रात क्षीण होते रहते हैं ॥१६॥ बुद्धिमान् मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अविवेक रूप पाप के कीचड मे निमग्न न हो और आत्मा को इस प्रकार स्वच्छ करे तथा बन्धन से अपने को बचावे ॥१७॥ रुचि ने कहा—हे पितरगण ! वेद में कर्म मार्ग को ही अविद्या कहा गया है, फिर आप मुझे कर्म मार्ग मे क्यो प्रवृत्त करना चाहते हैं ॥१८॥ पितरो ने कहा—कर्ममार्ग का अविद्या कहा है, वह यथार्थ है, परन्तु कर्म के द्वारा यह वचन असत्य हो जाता है, क्योकि कर्म न हो तो विद्या की प्राप्ति होनी है ॥१९॥ सभी करने योग्य कार्यो के न करने से असत् पुरुष मोक्ष के लिये जो सयमादि करते हैं, अन्त मे वह अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥२०॥ हे पुत्र ! तुम समझते हो कि मैं आत्मा को धो रहा हूं, परन्तु यह निश्चय समझो कि विहित कर्म के न करने से उसके पाप मे जलते हैं ॥२१॥ जैसे अपकार करने वाला विष औषधि रूप मे मनुष्य का उपकार करने वाला होता है, वैसे ही यह अविद्या भी मनुष्य के लिये उपकारिणी होती है, अन्य गुण वाला होने पर भी अनुष्ठित कार्य उचित उपाय के द्वारा हमारे लिये कल्याण-प्रद होता है ॥२२॥ हे पुत्र ! इसलिये तुम अब विवाह कर लो, जिससे सासारिक धर्म की प्राप्ति न होने से तुम्हारा जन्म असफल न हो ॥२३॥

८८—रुचिकृत पुत्रस्तव

सतेनपितृवाक्येनभृशमुद्विग्नमानसः ।
कन्याभिलाषीविप्रापि पश्विभामसंदिनीम् ॥१
कन्यामलभमानोऽसौपितृवाक्याग्निदीपित ।
चिन्तामवापमहतीमतीवोद्विग्नमानस. ॥२
किकरोमिक्वगच्छामिकथमेदाग्मग्रहः ।
क्षिप्रमवेत्पितृणांयोममभ्युदयकारक ॥३

इतिचिन्तयतस्तस्यमतिर्जातामहात्मन ।
तपसारायाम्येनब्रह्माणकमलोद्भवम् ॥४
ततोवर्षशतदिव्यतपस्तेपेसवेधसम् ।
दिदृक्षु सुचिरकालपरनियममास्थितः ॥५
तत स्वदर्शयामासब्रह्मालोकपितामहः ।
उवाचतप्रपन्नोऽस्मीरुच्यतामभिवाञ्छितम् ॥६
ततोऽसौप्रणिपत्याहब्रह्माणजगतोगतिम् ।
पितृणावचनात्तेनयत्कर्तुं मभिवाञ्छितम् ।
ब्रह्माचाहर्षविप्रश्रुत्वातस्याभिवाञ्छितम् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—ब्रह्मर्षि रुचि ने पितरों का ऐसा मन्तव्य सुन कर उद्विग्न चित्त से कन्या की इच्छा की और इसके लिये पृथिवी में विचरण करने लगे ॥१॥ पितरों की वाणी रूपी अग्नि में तपने के पश्चात् कन्या प्राप्त न होने से उन्हें बड़ी चिन्ता हुई ॥२॥ पितरों का अभ्युदय करने वाला मेरा विवाह कार्य किस प्रकार से शीघ्रता पूर्वक सम्पन्न हो ? इसके लिये मुझे क्या करना और कहाँ जाना चाहिये ? ॥३॥ इस प्रकार चिन्ता करते करते उन्होंने निश्चय किया कि मुझे तपस्या के द्वारा भगवान् ब्रह्माजी की आराधना करनी चाहिये ॥४॥ ऐसा निश्चय कर ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिये विधिवत् दिव्य सौ वर्ष तक तप किया ॥५॥ तब ब्रह्माजी उसके समक्ष साक्षात् रूप से प्रकट हुए और रुचि से उन्होंने कहा—मैं प्रसन्न हुआ हूँ, तुम अपना इच्छित वर माँगो ॥६॥ यह सुनकर रुचि ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया और पितरों के आदेशानुसार जो कामना की है वह उनसे निवेदन की, तब रुचि की इच्छा जान कर ब्रह्माजी बोले ॥७॥

प्रजापतिस्त्वभविताम्रष्टव्याभवताप्रजा ।
सृष्ट्वाप्रजा सुतान्विप्रसमुत्पाद्यक्रियास्तथा ॥८
कृत्वाकृताधिकारस्त्वतत सिद्धिमवाप्स्यसि ।
सत्वयथोक्त पितृभि कुरुदारपरिग्रहम् ॥९

कामचेममभिध्यायक्रियतांपितृपूजनम् ।
तएवतुष्टाःपितर प्रदास्यन्तितवेप्सितान् ।
पत्नीसुताश्चसन्तुष्टाः किंनदद्युःपितामहाः ॥१०
इत्यृषेर्वचनश्रुत्वाब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
नद्याविविक्तेपुलिनेचकारपितृतर्पणम् ॥११
तुष्टावचपितृन्विप्र स्तवैरेभिस्तथादृतः ।
एकाग्र प्रयतोभूत्वाभक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥१२
नमस्येऽहपितृञ्छ्राद्धे येवसन्त्यधिदेवता. ।
देवैरपिहितर्प्यन्तेयेचश्राद्धेस्वधोत्तरैः ॥१३
नमस्तेऽहपितृन्स्वर्गेयेतर्प्यन्तेमहर्षिभिः ।
श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्याभुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥१४

उन्होंने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुम प्रजा को उत्पन्न करने वाले प्रजापति जब तुम प्रजा की सृष्टि और सन्तानोत्पत्ति करके समस्त क्रिया ॥८॥ करके अधिकार से च्युत होजाओगे, तब तुम्हें सिद्धि की प्राप्ति होगी इसीलिये पितर गण तुम्हें विवाह करने का आदेश देते हैं ॥९॥ इसे अपना कर्त्तव्य मानकर पितरों का पूजन करो, वह सन्तुष्ट होकर तुम्हें इच्छित पत्नी और पुत्र देंगे ? सन्तुष्ट हुए पितर गण क्या नहीं दे सकते ? ॥१०॥ मार्कंडेयजी ने कहा—अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी का ऐसा आदेश पाकर रुचि ने नदी के निर्जन तट पर पितरों का तर्पण किया ॥११॥ उन्होंने अत्यन्त आदर पूर्वक, एकाग्रचित्त से, भक्तिभाव के द्वारा मस्तक झुका कर स्तोत्र के द्वारा पितरों को प्रसन्न किया ॥१२॥ रुचि ने कहा—श्राद्ध काल में जो अधिदेवता रूप से निवास करते हैं और श्राद्ध में देवगण भी स्वाहा कह कर जिनका तृप्ति-विधान करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हू, ॥१३॥ जिन्हें महर्षि गण भुक्ति-मुक्ति की कामना युक्त श्राद्ध में तृप्त करते हैं, उन पितरों को नमस्कार है ॥१४॥

नमस्येऽहपितृन्स्वर्गेसिद्धा सन्तर्पयन्तियान् ।
श्राद्धेषुदिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥१५

नमस्येऽहपितृन्मत्यरर्च्यन्तेभुवियेसदा ।
श्राद्धे पुश्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः ॥१७
नमस्येऽहपितृन्विप्रेरर्च्यन्तेभुवियेसदा ।
वाञ्छिताभीष्टलाभायप्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८
नमस्येऽहपितृन्येवैतर्प्यन्तेऽरण्यवासिभि ।
वन्यैं श्राद्ध यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्विषैं ॥१९
नमस्येऽहपितृन्विप्रैर्नैऽिकव्रतचारिभि ।
येसयतात्मभिर्नित्यसतर्प्यन्तेसमाधिभि ॥२०
नमस्येऽहपितृञ्छ्राद्धै राजन्यास्तर्पयन्तियान् ।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ॥२१

जिन पितरो को सिद्ध स्वर्ग मे श्राद्ध के समय सभी दिव्य उपहारो से तृप्त करते हैं उनको मैं नमस्कार करता हू ॥१५॥ जिन पितरो का अत्युत्कृष्ट समृद्धि की कामना वाले गुह्यकगण भक्ति मे तन्मय होकर पूजन करते हैं, उन पितरो को मेरा नमस्कार है ॥१६॥ मर्त्यलोक के निवासी मनुष्यगण इच्छित लोको के दाता जिन पितरो की श्राद्ध मे श्रद्धा सहित पूजा करते हैं, उन पितरो को नमस्कार है ॥१७॥ जो पितरगण प्राजापत्य पद प्रदान करने वाले हैं, वे ब्राह्मणो के द्वारा इच्छित विषय की प्राप्ति के निमित्त पूजे जाते हैं, मैं उन्हें नमस्कार करता हूं ॥१८॥ जिन वन वासियो के पाप मिताहार और तपस्या के कारण क्षीण होगये हैं, वे वन्य श्राद्ध द्वारा जिन पितरो को तृप्त करते हैं, उन्हे मेरा नमस्कार है ॥१९॥ सयतात्मा नैष्ठिक ब्रह्मचारी विप्र जिन पितरो को समाधि द्वारा तृप्त करते हैं, उन्हे मेरा नमस्कार है ॥२०॥ तीनो लोको मे फल देने वाले जिन पितरो को क्षत्रियगण श्रद्धा पूर्वक कव्य देकर तृप्त करते है, उन पितरों को नमस्कार है ॥२१॥

नमस्येऽहपितृन्वैश्यैरर्च्यन्तेभुवियेसदा ।
स्वकर्माभिरतै नित्यपुष्पधूपान्नवारिभि ॥२२
नमस्येहपितृञ्छ्राद्धे येशूद्रै रपिभक्तित ।
सन्तप्यन्तेजगत्यत्रनाम्नाख्याता सुकालिन ॥२३

नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धै पातालेयेमहासुरैं ।
सन्तर्प्यन्तेस्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदै सदा ।।२४
नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धै रर्च्यन्तेयेरसातले ।।
भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैं कामानभीप्सुभि ।।२५
नमस्येऽहंपितृञ्छ्राद्धै सर्पै सन्तर्पितान्सदा ।
तत्रैवविधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैं ।।२६
पितृन्नमस्येनिवसन्तिसाक्षाद्ये देवलोकेचतथान्तरिक्षे ।
महीतलेयेचसुरादिपूज्यास्तेमेप्रतीच्छन्तुमयोपनीतम् ।।२७
पितृन्नमस्येपरमात्मभूतायेवैं विमानेनिवसन्तिमूर्त्ता ।
यजन्तियानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वरा क्लेशविमुक्तिहेतून् ।।२८

अपने कम म लगे हुए वैश्य जिन पितरो को पुष्प, धूप, अन्न और जल के द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरो को मैं नमस्कार करता हूँ ।।२२।। इस ससार म जिन सुकालीन नामक प्रसिद्ध पितरा को शूद्रगण श्रद्धा भक्ति पूर्वक तृप्त करते हैं उन पितरो को नमस्कार है ।।२३।। जिन स्वधाहारी पितरो को पातालवासी महाअसुर दम्भ और मद का त्याग करके श्राद्ध के द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरो को नमस्कार है ।।२४।। काम की अभिलाषा वाले नागवंशीय रसातल मे जिन पितरो को अशेष भोग और श्राद्ध से सदा तृप्त करते हैं, उन पितरा को मैं नमस्कार करता हूँ ।।२५।। जिन पितरो को वे सर्पगण मन्त्र, भोग और सम्पत्ति स युक्त होकर श्राद्ध द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरो को नमस्कार करता हूँ ।।२६।। जो पितरगण देवलोक और अन्तरिक्ष में प्रत्यक्ष-रूप से रहत हैं और भूतल म देवताओं द्वारा जिनका अचन किया जाता है, उनको नमस्कार है वह मेरी प्रायना स्वीकार करें ।।२७।। जो परम आत्मभूत पितर विमान म साक्षात् रूप से निवास करते हैं तया जिन पितरों की क्लेश नाशिनी वाणी द्वारा यन म आराधना करते हैं उन्हें प्रणाम करता हू ।।२८।।

पितृन्नमस्येदिवियेचमूर्त्ता स्वधाभुज काम्यफलाभिसन्धौ ।
प्रदानशक्ता सकलेप्सितानांविमुक्तिदायेऽनभिसहितेपु ।।२९

तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितर समस्ताइच्छावतायेप्रदिशन्तिकामान् ।
सुरत्वमिन्द्रत्वमताऽधिक वासुतान्पशून्स्वानिवलगृहाणि ॥३०
सोमस्ययेरश्मिपुयेऽर्कबिम्बेशुक्लेविमानेचसदावसन्ति ।
तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिनापुष्टिमितोव्रजन्तु ॥३१
येपाहुतेऽग्नौहविपाचतृप्तिर्येभुञ्जते विप्रशरीरसंस्था. ।
येपिण्डदानेनमुदप्रयान्तितृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयै. ॥ ३२
कव्यान्यशेपाणिचयान्यभीष्टान्यतीवतेपाममरार्चितानाम् ॥३३
तेपातुसान्निध्यमिहास्तुपुष्पगन्धान्नभोज्येपुमयाकृतेपु ॥३४
दिनेदिनेयेप्रतिगृह्णतेऽर्च्चामासातपूज्याभुवियेऽष्टकासु ।
येवत्सरातेऽभ्युदयेचपूज्या प्रयान्तुतेमेपितरोऽत्रतृप्तिम् ॥३५॥

जो स्वर्ग मे मूर्तिमान् रहकर काम्यफल के निमित्त स्वधा का आहार करते हैं और प्राथियो को इच्छित प्रदान करने में समर्थ हैं तथा निष्काम कर्म मे मोक्ष प्रदान करते है, उन पितरो को प्रणाम है ॥२६॥ जो प्राथियो को प्रार्थित वस्तु प्रदान करते हैं और जो देवत्व, इन्द्रत्व अथवा इससे भी बढ कर हैं तथा जो पुत्र, पशु, धन, बल, घर आदि कामना के अनुसार देते हैं, वह पितरगण मेरे इस पूजन से तृप्ति को प्राप्त हो ॥३०॥ जो पितरगण सोम-किरणो, सूर्य-विम्ब और श्वेत विमान मे निवास करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त होते हुए अन्न, जल, गधादि से पुष्टि को प्राप्त हो ॥३१॥ जो अग्नि मे घृत की आहुति देने से तृप्ति को प्राप्त होते हैं। जो ब्राह्मण के देह मे प्रविष्ट होकर भोजन-ग्रहण करते हैं तथा जो पिण्डदान से संतुष्ट होते हैं, वह पितरगण इस अन्न और जल के द्वारा सन्तुष्ट हो ॥३२-३३॥ देवताओ द्वारा पूजित उन पितरो के लिए जो कव्य अभीष्ट हैं, उन्हे पुष्प, गन्ध, अन्नादि पदार्थों का मैंने सग्रह किया है, वह इनके निकट आवें ॥३४॥ जो नित्यप्रति पूजा ग्रहण करते और प्रतिमास अष्टका मे पूजे जाते है, तथा वर्ष के अन्त में जिनका पूजन होता है, वह पितरगण मेरे इस पूजन द्वारा तृप्त हो ॥३५॥

पूज्या द्विजानांकुमुदेन्दुभासोयेक्षत्रियाणांचनवार्कवर्णाः ।
तथाविशांयेकनकावदातानीलीनिभा शूद्रजनस्ययेच ॥३६
तेऽस्मिन्समस्तामम पुण्पगंघधूपान्नतोयादिनिवेदनेन ।
तथाग्निहोमेनचयांतुतृप्तिसदापितृभ्य.प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३७
येदेवपूर्व्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्तिकव्यानिशुभाहुतानि ।
तृप्ताश्चयेभूतिसृजोभवतितृप्यन्तुतेस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३८
रक्षांसिभूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तस्त्वशिवंप्रजानाम् ।
आद्या सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यंतुतेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥३९
अग्निष्वात्तावर्हिषदआज्यपाःसोमपास्तथा ।
व्रजंतुतृप्तिश्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पितामया ॥४०
अग्निष्वात्ताःपितृगणा.प्राचीरक्षन्तुमेदिशम् ।
तथावर्हिषदःपान्तुयाम्यायेपितर.स्मृताः ॥४१
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपिसोमपाः ।
रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ॥४२

जो पितरगण श्वेत वर्ण वाले और प्रभा से सम्पन्न होकर देवताओं के द्वारा पूजनीय होते हैं तथा नवोदित सूर्य के समान रक्त वर्ण वाले होकर क्षत्रियो के द्वारा पूजित होने हैं जो स्वर्ण जैसी कान्ति वाले होकर वैश्यों द्वारा पूजे जाते हैं और नीलिमा रूप होकर शूद्रो द्वारा पूजनीय होते हैं ॥३६॥ वह सभी पितरगण मेरे द्वारा किये गये पुष्प, धूप, अन्न तथा जलादि की भेंट और अग्निहोत्र से तृप्त हो, उन पितरो को मेरा प्रणाम है ॥३७॥ जो अत्यन्त तृप्ति के लिये देवताओ के समक्ष होमे गये सब श्रेष्ठ अन्न रूप कव्य का आहार करके तृप्त होते और अणिमादि आठों सिद्धियाँ प्रकट करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्ति को प्राप्त हों, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥३८॥ जो पितरगण राक्षस, भूत और विकराल असुरो को नष्ट करने वाले और अमंगल को मिटाने वाले हैं तथा जो देवताओं के आदि पुरुष और इन्द्र के पूजनीय हैं, वह पितरगण मेरे द्वारा तृप्त हों, मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ ॥३९॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद,

आज्यपा और सोमपा पितरगण मेरे द्वारा तर्पण को प्राप्त होकर इस श्राद्ध म तृप्त हो ॥४०॥ अग्निष्वात्ता पितर पूर्व दिशा म मेरी रक्षा करें और बर्हिषद पितर दक्षिण दिशा म रक्षा करें ॥४१॥ आज्यपा पितर पश्चिम दिशा म तथा सोमप। पितर उत्तर दिशा म राक्षस, भूत, पिचास और असुरों द्वारा उत्पन्न किय उपद्रव से रक्षा करें ॥४२॥

सर्वतश्चाधिपस्तेपायमोरक्षाकरोतुमे ।
विश्वोविश्वभुगाराध्योधर्म्मोधन्य शुभानन ॥४३
भूतिदोभूतिकृद्भूतिं पितृणायेगणानव ।
कल्याण कल्यताकर्त्ताकल्य कल्यतराश्रय ॥४४
कल्यताहेतुरनघ पडिमेतेगणा स्मृता ।
वरोवरेण्योवरद पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा ॥४५
विश्वपातातथाधातासप्तैवेतेतथागणा ।
महान्महात्मामहितोमहिमावान्महावल ॥४६
गणा पञ्चतथैवैतेपितृणांपापनाशना ।
सुखदोधनदश्चान्योधर्मदोऽन्यश्चभूतिद ॥४७
पितृणाकथ्यतेचैतत्तथागणचतुष्टमम् ।
एकत्रिंशत्पितृगणायैर्व्याप्तमखिलजगत् ।
तेमेऽनुतृप्तास्तुष्यतुयच्छन्तुचसदाहितम् ॥४८

जिन पितरो के विश्व, विश्वभुक् आराध्य धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृद् और भूति यह नौ सख्यक गण हैं उनके अधिपति यम मेरी सब ओर से रक्षा करें, कल्याण, कल्यता, कर्त्ता कल्य, कल्यतराश्रय ॥४३-४४॥ कल्यता हेतु और अनघ यह छ प्रकार के गण जिन पितरो के हैं तथा जिन पितरो के वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद ॥४५॥ विश्वपाता और धाता यह सात प्रकार के गण हैं तथा महान्, महात्मा, महित, महिमावान्, महाबल ॥४६॥ यह पाँच प्रकार के गण जिन पितरो के हैं एव सुखद, धनद, धमद और भूतिदाता यह चार प्रकार के पितरो के गण हैं यह सब मिलाकर

इकत्तीस पितरगण सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किये हुए हैं, वह सभी मेरे द्वारा तृप्ति को प्राप्त होकर मेरी कामना पूर्ण करें और मेरे लिए सदैव हितकारी हों ।।४८।।

८६—रुचि को पितरों का वरदान

एवंतुस्तुवतस्तस्यतेजसोराशिरुच्छ्रितः ।
प्रादुर्बभूवसहसागगनव्याप्तिकारकः ।।१
तद्दृष्ट्वासुमहत्तेजःसमाच्छाद्यस्थितंजगत् ।
जानुभ्यामवनिंगत्वारुचिःस्तोत्रमिदंजगौ ।।२
अमूर्तानांचमूर्त्तानांपितृणांदीप्ततेजसाम् ।
नमस्यामिसदातेषांध्यानिनांदिव्यचक्षुषाम् ।।३
इन्द्रादीनांचनेतारोदक्षमारीचयोस्तथा ।
सप्तर्षीणांतथान्येषांतान्नमस्यामिकामदान् ।।४
मन्वादीनांमुनीन्द्राणांसूर्याचन्द्रमसोस्तथा ।
तान्नमस्याम्यहंसर्वान्पितरश्चार्णवेषु ये ।।५
नक्षत्राणांग्रहाणांचवाय्वग्न्योर्नभसस्तथा ।
द्यावापृथिव्योश्चतथानमस्यामिकृताञ्जलिः ।।६
देवर्षीणांग्रहाणांचसर्वलोकनमस्कृतान् ।
अक्षय्यस्यसदादातॄन्नमस्येऽहंकृताञ्जलिः ।।७

मार्कण्डेय जी ने कहा—रुचि के द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जाने पर उनके समीप उच्च शिखायुक्त और आकाश व्यापी तेज सहसा प्रकट हुआ ।।१।। उस तेज का सम्पूर्ण विश्व को आच्छादित करके अवस्थित देखा तो रुचि ने जानु से पृथिवी को स्पर्श करके इस स्तोत्र का कीर्तन किया ।।२।। रुचि बोले—उन ध्यान सम्पन्न, दिव्य नेत्र, दीप्त तेज, निराकार एवं पूजितपितरों को मैं

नमस्कार करता हूं ।।३।। दक्ष, मरीचि, सप्तर्षि तथा इन्द्रादि के नेता स्वरूप काम के देने वाले पितरो का मैं नमस्कार करता हूं ।।४।। मनु इत्यादि मुनीश्वरों तथा सूर्य-चन्द्रमा के नेता और काम के प्रदान करने वाले, समुद्र और जल मे अवस्थित उन सभी पितरो को मैं नमस्कार करता हू ।।५।। नक्षत्र, ग्रह वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथिवी के नेता तथा काम प्रदायक पितरो को हाथ जोड कर प्रणाम करता हूं ।।६।। देवर्षियो के उत्पत्ति कर्त्ता, अक्षय फल के दाता और सब लोकों द्वारा नमस्कार किये जाने वाले पितरो को करबद्ध प्रणाम करता हूं ।।७।।

प्रजापते कश्यपायसोमायवरुणायच ।
योगेश्वरेभ्यश्चसदानमस्यामिकृतांजलि ।।८
नमोगणेभ्य सप्तभ्यस्तथालोकेषुसप्तसु ।
स्वयभुवेनमस्यामिब्रह्मणेयोगचक्षुषे ।।९
सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्तिधरांस्तथा ।
नमस्यामितथासोमपितरजगतामहम् ।।१०
अग्निरूपांस्तथैवान्याग्नमस्यामिपितृनहम् ।
अग्नीषोममयविश्वयतएदशेषत ।।११
येतुतेजसियेचैतेसोमसूर्याग्निमूर्त्तयः ।
जगत्स्वरूपिणश्चैवतथाब्रह्मस्वरूपिण ।।१२
तेभ्योऽखिलेभ्योयोगिभ्य पितृभ्योयतमानसः ।
नमोनमोनमस्तेमेप्रसीद तुस्वधाभुजः ।।१३

प्रजापतियो म कश्यप और सोम, वरुण तथा योगेश्वर स्वरूप हैं, उन पितरो को मैं हाथ जोड कर प्रणाम करता हू ।।८।। जो सात लोकों मे सात गणो के मध्य स्थित हैं, उन्हें तथा जो योग-चक्षु स्वयम् ब्रह्मा स्वरूप हैं, उन पितरों को प्रणाम करता हू ।।९।। जो पितर सोम के आश्रय, योगमूर्ति, सोमरूप एव जगत्पिता है, उनको मैं प्रणाम करता हूं ।।१०।। जिन अशेष पितरों के द्वारा अग्नि सोम और जगत् उत्पन्न हुआ है, उन अग्नि रूपी अन्याग्य

सभी पितरगण को मैं प्रणाम करता हूं ॥११॥ जो चन्द्र, सूर्य, अग्नि रूपी तेज में स्थित होकर विश्व स्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं उन समस्त योगी पितरों को मैं अपने संयत मन के द्वारा बारम्बार नमस्कार करता हूं, वे स्वधा का आस्वादन करने वाले पितर मुझ पर प्रसन्न हों ॥१२-१३॥

एवंस्तुतास्ततस्तेनतेजसामुनिसत्तम ।
निश्चक्रमुस्तेपितरोभासयन्तोदिशोदश ॥१४
निवेदितचयत्तेनपुष्पगन्धानुलेपनम् ।
तद्भूषितानथमतान्ददृशेपुरत.स्थितान् ॥१५
प्रणिपत्यपुनर्भक्त्यापुनरेवकृतांजलि. ।
नमस्तुभ्यनमस्तुभ्यमित्याहपृथगादृतः ॥१६
ततः प्रसन्ना पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् ।
वरवृणीष्वेतिसतानुवाचाननकंधर. ॥१७
सम्प्रतसर्गकर्तृत्वमादिष्टब्रह्मणामम ।
सोऽहपुत्रीमभीप्सामिधन्यांदिव्याप्रजावतीम् ॥१८
अद्य वसद्य पत्नीतेभवत्वतिमनोरमा ।
तस्यांचपुत्रोभविताभवतोमनुरुत्तमः ॥१६
मन्वन्तराधिपोधीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षित ।
रुचेरौच्यइतिख्यातियोयास्यतिजगत्त्रये ॥२०
तस्यापिवहव पुत्रामहाबलपराक्रमा ।
भविष्यन्तिमहात्मान पृथिवीपरिपालका. ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे मुनिवर ! रुचि के द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जाने पर दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए पितरगण प्रकट हुए ॥१४॥ फिर उन्हें जो पुष्प, गन्ध चन्दनादि अर्पण किया गया था, उससे विभूषित हुए पितरों को रुचि ने अपने सामने आते हुए देखा ॥१५॥ तब वह भक्ति सहित हाथ जोड़ कर प्रणाम पूर्वक सब को नमस्कार करने लगे ॥१६॥ फिर पितरों ने प्रसन्न होकर मुनिवर रुचि से कहा—वर मांगो, इस पर रुचि ने शीश नीचा

करके उनसे निवेदन किया ॥१७॥ रुचि बोले—मुझे ब्रह्माजी ने सृष्टि उत्पन्न करने का आदेश दिया है, इसलिए मैं अब सन्तानोत्पत्ति के निमित्त भार्या प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१८॥ पितरों ने कहा—हे वत्स ! तुम्हें अभी इसी स्थान में मनोहारिणी भार्या की प्राप्ति होगी, उसके गर्भ से तुम्हारे श्रेष्ठ मनु पुत्र की उत्पत्ति होगी ॥१९॥ हे रुचे ! तुम्हारा वह पुत्र बुद्धिमान् मन्वन्तराधिपति होगा और तुम्हारे नाम के अनुसार ही उसकी ख्याति होगी अर्थात् वह 'रौच्य' नाम से विश्व में विख्यात होगा ॥२०॥ फिर उस रौच्य के भी महाबली, पराक्रमी, पृथिवी का पालन करने वाले बहुत से महात्मा पुत्र उत्पन्न होंगे ॥२१॥

त्वंचप्रजापतिर्भूत्वाप्रजा.सृष्ट्वाचतुर्विधा ।
क्षीणाधिकारोधर्मज्ञततःसिद्धिमवाप्यसि ॥२२
स्तोत्रेणानेनचनरोयोऽस्मांस्तोष्यतिभक्तित ।
तस्यतुष्टावयभोगानात्मज्ञानतथोत्तमम् ॥२३
शरीरारोग्यमर्थंचपुत्रपौत्रादिकन्तथा ।
प्रदास्यामोनसदेहोयच्चान्यदभिवाँछितम् ॥२४
तस्मात्पुण्यफलंलोकेवाँछद्भि सततंनरैः ।
पितृणाँचाक्षयांतृप्तिस्तव्या स्तोत्रेणमानवैः ॥२५
वांछद्भि.सततंस्तव्या स्तोत्रेणानेनवैयतः ।
श्राद्धेचमइमभक्त्याअस्मत्प्रीतिकरस्तवम् ॥२६
पठिष्यंतिद्विजाग्र्याणाँभु जतामुपुरतःस्थितः ।
स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्यासन्निधानेपरेकृते ॥२७
अस्माकमक्षयंश्राद्धं तद्भविष्यत्यसशयम् ।
यद्यप्यश्रोत्रियंश्राद्ध यद्यप्युपहतभवेत् ॥२८

तुम भी प्रजापति होकर चार प्रकार की प्रजा उत्पन्न करोगे और जब धर्म-ज्ञाता तथा अधिकार से क्षीण होगे तब तुम्हें सिद्धि की प्राप्ति होगी ॥२२॥ जो मनुष्य इस स्तोत्र के सहित भक्ति भाव पूर्वक हमारा स्तवन करेंगे, हम

उन पर सतुष्ट होंगे और उन्हें भोग तथा श्रेष्ठ आत्मज्ञान प्रदान करेंगे ॥२३॥ जो शरीर की आरोग्यता, धन, पुत्र-पौत्रादि की कामना अथवा अन्यान्य अभिलाषा करेंगे वह इस स्तोत्र के द्वारा हमारी स्तुति करने पर, हम से अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करेंगे ॥२४॥ इसलिए ससार मे पुण्यफल प्राप्ति की कामना वाले मनुष्यों को इस स्तोत्र के द्वारा पितरो की अक्षय तृप्ति करनी उचित है ॥२५॥ जो हमें प्रसन्न करना चाहें, वह इस स्तोत्र का निरन्तर पाठ करें, श्राद्ध के समय भोजन करते हुए ब्राह्मणो के समक्ष स्थित होकर जो मनुष्य हमारी प्रीति उत्पन्न करने वाले ॥२६॥ इस स्तोत्र को भक्तिपूर्वक पाठ करेगा और स्तोत्र सुनने से उत्पन्न हुई प्रीति के द्वारा निकट में स्थित को इष्ट मानेगा, उसके द्वारा हमारा अक्षय श्राद्ध अवश्य ही सम्पन्न होगा यदि श्राद्ध श्रोत्रिय रहित अथवा दोष युक्त हो ॥२७॥

अन्यायोपात्तवित्तेनयदिवाकृतमन्यया ।
अश्राद्धार्हैरुपहृतैरुपहारैस्तथाकृतम् ॥२९
अकालेप्यथवाऽदेशेविधिहीनमथापिवा ।
अश्रद्धयावापुरुषैर्दम्भमाश्रित्यवाकृतम् ॥३०
अस्माकंतृप्तयेश्राद्ध तथाप्येनदुदीरणाद् ।
यत्रैतत्पठतेश्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ॥३१
अस्माकंजायतेतृप्तिस्तत्रद्वादशवार्षिकी ।
हेमतेद्वादशाब्दानितृप्तिमेतत्प्रयच्छति ॥३२
शिशिरेद्विगुणाब्दांश्चतृप्तिस्तोत्रमिदं शुभम् ।
वसंतेषोडशसमास्तृप्तयेश्राद्धकर्मणि ॥३३
ग्रीष्मेचषोडशैवैतत्पठितंतृप्तिकारकम् ।
विकलेऽपिकृतेश्राद्धे स्तोत्रेणानेनसाधिते ॥३४
वर्षासुतृप्तिरस्माकमक्षयाजायतेरुचे ।
शरत्कालेऽपिपठितंश्राद्धकालेप्रयच्छति ॥३५

अस्माकमेतत्पुरुषस्तृप्तिर्भवदशाब्दिकीम् ।
यस्मिन्गृहेचलिखितमेतत्तिष्ठतिनित्यदा ।।३६
सन्निधानकृतेश्राद्धे तत्रास्माकभविष्यति ।
तस्मादेतत्त्वयाश्राद्धे विप्राणांभुञ्जतपुरः ।।३७

या अन्याय द्वारा उत्पादित धन के द्वारा किया जाय या असमय में, विपरीत स्थान में या अविधि से अश्रद्धा पूर्वक अथवा दूषित उपहार से दंभी मनुष्यों के द्वारा सम्पन्न किया जाय ।।२८-२९-३०।। तो भी इस स्तोत्र का पाठ होने से वह श्राद्ध में तृप्ति देने वाला होगा, जिस श्राद्ध में हमें सुखी करने वाले इस स्तोत्र का पाठ होता है ।।३१।। उस श्राद्ध से हमें बारह वर्ष तक तृप्ति रहती है, या हेमन्त काल में यह स्तोत्र हमें बारह वर्ष तक तृप्ति देने वाला होता है ।।३२।। शिशिर ऋतु में यह स्तोत्र चौबीस वर्ष तक और वसंत ऋतु में करने पर सोलह वर्ष तक तृप्ति दायक होता है ।।३३।। ग्रीष्मकाल में इस स्तोत्र के पाठ पूर्वक श्राद्ध करने से सोलह वर्ष तक तृप्ति रहती है, किसी कारणवश श्राद्ध दूषित हो तो इस स्तोत्र के पाठ से श्रेष्ठ हो जाता है ।।३४।। हे रुचे ! वर्षाऋतु में श्राद्ध के समय इस स्तोत्र के पढ़ने से हमारी अक्षय तृप्ति होती है, यदि शरद् ऋतु में इस स्तोत्र के पाठ सहित श्राद्ध का द्रव्य अर्पण करे तो पन्द्रह वर्ष तक तृप्ति होती है, जिस घर में यह स्तोत्र लिखा हुआ श्रेष्ठ स्थान पर रखा रहता है, उस घर में श्राद्ध करने से हमारी सन्निधि प्राप्त होती है, अर्थात् हम उस घर में उस समय उपस्थित रहते हैं, इसलिये तुम श्राद्ध में भोजन करते हुए ब्राह्मणों के सम्मुख हमारे इस स्तोत्र को पढ़ कर सुनाओ । इससे हमारी पुष्टि होगी । इस प्रकार रुचि को समझा कर पितृगण स्वर्ग को चले गये ।।३५-३८।।

६०—रौच्य मनु का जन्म

ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौमनोरमा ।
प्रम्लोचानामतन्वङ्गीतस्समीपेवराप्सरा ।।१

साचोवाचमहात्मानरुचिसुमधुराक्षरम् ।
प्रश्रयावनतासुभ्रू प्रम्लोचावरवराप्सरा ॥२
अतीवरूपिणीकन्यामत्सुतातपतावर ।
जातावरुणपुत्रेणपुष्करेणमहात्मना ॥३
तागृहाणमयादत्ताभार्य्यार्थेवरवर्णिनीम् ।
मनुर्महामतिस्तस्यासमुत्पत्स्यतितेसुत ॥४
तथेतितेनसाऽप्युक्तातस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ।
उज्जहारतत कन्यामालिनीनामनामत. ॥५
नद्याश्चपुलिनेतस्मिन्सरुचिर्मु निसत्तम ।
जग्राहपाणिविधिवत्समानाय्यमहामुन न् ॥६
तस्यातस्यसुतोजज्ञे महावीर्योमहामति ।
रौच्योऽभवत्पितुर्नाम्नाख्यातोऽत्रवसुधातले ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर उस नदी में से प्रम्लोचना नाम की एक
सरा बाहर आई और उन रुचि नामक मुनि से कहने लगी—हे महात्मन् !
ी मालिनी नामक एक कन्या है जो वरुण देव के पुत्र श्रीमान् पुष्कर द्वारा
पन्न की गई है। उस अत्यन्त रूपवती सुशील कन्या रत्न को मैं आपको
र्पित करती हू। आप उसे भार्या रूप में ग्रहण करके गृहस्थी बनिये (उसके
र्भ से आपका जो पुत्र उत्पन्न होगा वही आगामी मन्वन्तर मे मनु बनेगा।
(से ४) मार्कण्डेयजी कहने लगे कि उस अप्सरा के ऐसे वचन सुनकर रुचि
उसे स्वीकार कर लिया और उसी नदी के तट पर महामुनियो को एकत्र
रके उस मालिनी कन्या से विधिवत् विवाह कर लिया। कुछ काल उससे जो
हापराक्रमी और वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ वह अपने पिता के नाम के अनुसार
च्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥७॥

तस्यमन्वन्तरेदेवास्तथासप्तर्षयश्चये ।
तनयाश्चनृपाश्चैवतेसम्यक्कथितास्तव ॥८
धर्मवृद्धिस्तथारोग्यधनधान्यसुतोद्भव ।
नृणाभवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वतरेश्रु ते ॥९

पितृस्तवतथाश्रुत्वापितृणांचतथागणान् ।
सर्वान्कामानवाप्नोतितत्प्रसादान्महामुने ॥१०

इस रौच्य नामक मन्वन्तर के देवता, सप्तर्षि और समस्त राजाओं तथा उनके पुत्रो के विषय मे पहले बतलाया जा चुका है ॥८॥ इस मन्वन्तर की कथा सुनने से धर्म की वृद्धि होती है, आरोग्य, धन, धान्य और पुत्र की प्राप्ति होती है। जो पितरो की स्तुति और उनके गुणो को श्रद्धा पूर्वक श्रावण करता है उसकी सभी अभिलाषायें पूरी होती हैं ॥९-१०॥

९१—भौत्य मन्वन्तर आरम्भ

ततः परंशृणुभौत्यस्यसमुत्पत्तिंनिशामय ।
देवानृषींस्तथापुत्रास्तथैववसुधाधिपान् ॥१
बभूवाङ्गिरस शिष्योभूतिर्नाम्नातिकोपनः ।
चण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्थेमुनिरागस्यसौम्यवाक् ॥२
तस्याश्रमेमातरिश्वानववावतिनिष्ठुरम् ।
नातितापरविश्चक्रेपर्ज्जन्योनातिकर्दमम् ॥३
नातिशीतचशीतांशुःपरिपूर्णोऽपिरश्मिभिः ।
चकारभीत्यातोतस्यकोपनस्यातितेजसः ॥४
ऋतवश्चन्नमत्यक्त्वावृक्षेष्वाश्रमजन्मसु ।
तस्यपुष्पफलचक्रुराज्ञयासार्वकालिकम् ॥५
ऊहुरापश्चच्छन्देनतस्याश्रमसमीपगा ।
कमण्डलुगताश्चैवतस्यभीतामहात्मनः ॥६
नातिक्लेशसहोविप्र.सोऽभवत्कोपनोभृशम् ।
अपुत्रश्चमहाभाग सतपस्यकरोन्मनः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—"ततपश्चात्" भौत्य नामक मनु के उत्पन्न होने और उनके मन्वन्तर के सुरगण, ऋषि और उनके नृप पुत्रों का वर्णन सुनो ॥१॥

ऋषि अङ्गिरा के भूति मुनि शिष्य थे, जो कि क्रोधी और क्षणिक अप-
राध पर ही घोर शाप देते थे एवं अनजाने ही निरपराधी को उनके कटु वचनों
का सामना करना पड़ता था ॥२॥ उन क्रोधी और तेजस्वी का ऐसा भय छाया
हुआ था कि उनके आश्रम मे वायु सरल स्वभाव बहती थी, सूर्य असहनीय
उष्णता नहीं देते थे, इन्द्र अनपेक्षित वर्षा नहीं करते थे ॥३॥ पूर्ण चन्द्रमा
अपनी चाँदनी से शीत प्रदान नहीं करता था एवं उनके भय से असहनीय शीत
नहीं होता था ॥४॥ ऋतुएँ भी उनकी आज्ञा का पालन करते हुए सभी ऋतुओं
के सभी प्रकार के फल पुष्प उनके आश्रम की वृक्षावलियों मे उत्पन्न करती थीं
॥५॥ ऋषि भूति के भय से आश्रम के समीप बहता हुआ जल भी उनकी इच्छा-
नुसार क्षणमात्र मे उनके कमण्डलु मे आ जाता था ॥६॥ हे ब्राह्मण ! वह
महा क्रोधी ऋषि किसी बाधा को सहन नहीं करते थे, चूंकि उनके पुत्र उत्पन्न
नहीं हुआ इस कारण वह तपस्या मे लीन हुए ॥७॥

पुत्रकामोयताहार शीतवातानलाहतः ।
तपस्यामिविचिन्त्येतितपस्येवमनोदधे ॥८
तस्येन्दुर्नातिशीतायनातितापायभास्करः ।
ववन्मातरिश्वाचववौनातिमहामुने ॥९
आपीड्यमानोद्वन्द्वं श्रमभूतिमुं निसत्तमः ।
अनवाप्याभिलापंततपस सन्यवर्त्तत ॥१०
तस्यभ्रातासुवर्च्चाभूद्यज्ञेतेनाभिमन्त्रित. ।
यियासु शान्तिनामानशिष्यमाह्महामतिम् ॥
प्रशान्तमक्षप्रनिमविनीतगुरुकर्मणि ।
सदोद्युक्तं शुभाचारमुदारंमुनिसत्तमम् ॥१२
अहयज्ञं गमिष्यामिभ्रातु शान्तेसुवर्च्चस· ।
तेनाहूतन्त्वयाचेहयत्त्वत्तं व्यश्रृणुष्वतत् ॥१३
अतिजागरणंवह्ने स्त्वयाकार्य्यंममाश्रमे ।
तथातयाप्रयत्नेनययाग्निर्नशमव्रजेत् ॥१४

पुत्र की इच्छा से तपस्या करने वाले उन महात्मा ने संयत आहार एवं शीत, वायु व अग्नि की वेदना सहकर भी तपस्या करने का व्रत लिया और अन्तत तपस्या मे ही चित्त लगाया ॥८॥ हे महर्षि ! उनके तपस्या काल में भी भयभीत चन्द्रमा शीत एव सूर्य असहनीय ऊष्णता नहीं देते थे तथा वायु भी समक्ष मे मन्द-मन्द मे स्वाभाविक बहती थी ॥९॥ वह ऋषि श्रेष्ठ भूति शीत एव ताप दोनो ही से पीडित रहकर अपनी मनोकामना प्राप्त न कर सके, तो उन्होंने तपस्या त्याग दी ॥१०॥ उनके एक भाई सुवर्चा ने उनको यज्ञ मे आमन्त्रित किया उस समय भाई के यहाँ जाने की इच्छा कर उन्होने अपने शिष्य शान्तिनाम को बुलाया अपने नाम के अनुकूल वह गुरु के कार्य में सदैव तत्पर और उदार चित्त एव सदाचारी थे ॥१२॥ भूति बोले—हे शान्ते ! अपने भाई सुवर्चा के आमन्त्रण पर मैं यज्ञ में जाता हू, अब तुम्हे आश्रम में रहकर जो कार्य करने है, वह ध्यान से सुनो ॥१३॥ मेरे आश्रम में प्रतिदिन अग्नि प्रज्वलित रखना वह बुझे नहीं ऐसे यत्नशील रहना ॥१४॥

इत्याज्ञाप्यतथेत्युक्तोगुरु शिष्येणशान्तिना ।
जगामयज्ञ तभ्रातुराहूत सयवीयस ॥१५
सचशान्तिर्गनाद्यावरसमित्पुष्पफलादिकम् ।
उपानयतिभूत्यर्थंगुरोस्तस्यमहात्मन ॥१६
अन्यच्चकुरुतेकर्मगुरुभक्तिवशानुग ।
प्रशान्तस्तावदनलोयोऽसौभूतिपरिग्रह ॥१७
तद्दृष्ट्वासोऽनलशान्तशान्तिरत्यन्तदु खित ।
भीतश्चभूतेर्वहुधाचिन्तामापमहामति ॥१८
किंकरोमिकथ वात्रभविताागमनगुरो ।
मयाद्यप्रतिपत्तव्यंकिंकृतेसुकृतभवेत् ॥१९
प्रशान्ताग्निमिमधिष्ण्ययदिपश्यतिमेगुरु ।
ततोमाविपमेह्यद्यव्यसनेन्नियोक्ष्यति ॥२०
यद्यन्यमग्निमत्राहमग्निस्थानेकरोमितत् ।
सर्वप्रत्यक्षदृग्भस्मसोऽवश्यमाकरिष्यति ॥२१

मार्कण्डेयजी ने कहा—शिष्य शान्ति ने गुरु की आज्ञा को 'इसी प्रकार होगा' कहकर शिरोधार्य किया। तब भूति अपने भाई के यहाँ यज्ञ में गये ॥१५॥ तदनन्तर अपने गुरु की अग्नि प्रज्वलित रखने के लिए जंगल से समिधा, पुष्प, फल आदि एकत्रित कर लाते ॥१६॥ साथ ही गुरु-भक्ति मे वशीभूत शान्ति अन्य दूसरे कार्य भी करने लगे, उसी समय भूति द्वारा प्रज्वलित रखी गई, अग्नि किसी प्रकार बुझ गई ॥१७॥ बुद्धिमान् मुनि शान्ति उस अग्नि को बुझी हुई देखकर दुखी हुए और अपने गुरु भूति के भय से चिन्ता-ग्रस्त होगये ॥१८॥ वह विचारने लगे कि क्या किया जाय ? इस समय क्या उचित कर्म हो, जिसमे भला हो सके, अब गुरु किस प्रकार आयेंगे ? ॥१९॥ मेरे गुरु यदि आश्रम मे अग्नि को बुझी हुई देखेंगे तो तत्काल मुझे दण्ड देकर दुख देंगे ॥२०॥ और यदि मैं पुन. अग्नि प्रज्वलित करता हूँ, तो वह सर्वज्ञानी गुरु मुझे निश्चय ही भस्म कर देंगे ॥२१॥

सोऽहपापोगुरोस्तस्यनिमित्तंकोपशापयोः ।
तथात्माननशोचामियथापापकृतगुरोः ॥२२
दृष्ट्वाप्रशान्तमनलंनूनशप्स्यतिमांगुरुः ।
ययावापावकःक्रुद्धस्तथावीर्योहिसद्विजः ॥२३
यस्यप्रभावाद्विन्यन्तोदेवास्तिष्ठन्तिशासने ।
कृतागससमांयुक्त्याकयानोधर्षयिष्यति ॥२४
वहुधैवंविचिन्त्यासौभीतस्तस्यसदागुरोः ।
ययौमतिमताश्रेष्ठ शरणजातवेदसम् ॥२५
सचकारतदास्तोत्रंसम्प्रर्च्यंर्यतमानसः ।
सचैकचित्तोमेदिन्यान्यस्तजानु कृताञ्जलिः ॥२६

मैं पापात्मा उन गुरु के क्रोध और शाप का वैसा शोक नहीं कर सकता जिस तरह गुरु के समीप हुए पाप का शोक होता है ॥२२॥ गुरु जब आयेंगे तो अग्नि को बुझी देखकर अवश्य घोर रूप में क्रोधित होकर मुझे शाप देंगे अथवा उनसे भयभीत अग्नि भी मुझे शाप दे सकती है, क्योंकि मेरे गुरु का

वीर्य ही ऐसा है ॥२३॥ जिनसे भयभीत होकर सुरगण भी उनके पराधीन हो गये हैं,वह मुझ अपराधी को देखकर किस प्रकार दण्डित करेंगे ? ॥२४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—अपने गुरु से भयभीत विवेकी शिष्य शान्ति इस प्रकार चिन्तित हुए जातवेदः अग्नि की शरण मे पहुँचे ॥२५॥ इसके पश्चात् वह शान्त संयत चित्त होकर धरती मे घुटने नवा एव हाथ जोड सप्तशिखा युक्त अग्नि-स्तोत्र का पाठ करने लगे ॥२६॥

ओनम.सर्वभूतानासाधनायमहात्मने ।
एकद्विपञ्चधिष्ण्यायराजसूयेपडात्मने ॥२७
नम समस्तदेवानावृत्तिदायसुवर्च्चसे ।
शुक्ररूपायजगतामशेषाणास्थितिप्रद ॥२८
त्वं मुखसर्वदेवानात्वयात्त भगवन्हविः ।
प्रीणयस्यखिलान्देवास्त्वत्प्राणासर्वदेवताः ॥२९
हुतहविस्त्वय्यनलमेघत्वमुपगच्छति ।
ततश्चजलरूपेणपरिणाममुपतियत् ॥३०
तेनाखिलौपधीजन्मभवत्यनिलसारथे ।
औपधीभिरशेपाभि.सुखंजीवन्तिजन्तवः ॥३१
वितन्वतेनरायज्ञांस्त्वत्सृष्टास्वोपधीपुच ।
यज्ञै र्देवास्तथादैत्यास्तद्वद्रक्षांसिपावक ॥३२
आप्याय्यन्तेचतेयज्ञास्त्वदाधाराहुताशन ।
अत.सर्वस्यस्ययोनिस्त्व वह्ने सर्वमयस्तथा ॥३३
देवतादानवायक्षादैत्यागन्धर्व्वाराक्षसा. ।
मानुपा पशवोवृक्षामृगपक्षिसरीसृपाः ॥३४
आप्याय्यन्तेत्वयासर्वेसंवर्ध्यन्तेचपावक ।
त्वत्तएवोद्भवयान्तित्वय्यन्तेचतथालयम् ॥३५

शान्ति बोले—समस्त प्राणियो के साधन, महात्मा, दो पच रूप एव राजसूय यज्ञ मे षणमूर्ति धारण करने वाले, उनको नमस्कार ॥२७॥ सम्पूर्ण सुरगण को वृत्ति प्रदान-कर्त्ता सुवर्चा और सम्पूर्ण विश्व को स्थिति प्रदान करने

वाले शुक्र रूप तुमको नमस्कार ।।२८।। हे सम्पूर्ण देवगण के मुख-स्वरूप ! ईश्वर तुम्हारे द्वारा ही घृत पान कर देवगण को सन्तुष्ट करते हैं एव तुम ही समस्त देव गण के प्राण रूप हो ।।२६।। तुम ही मे हवि हुत होकर अमल मेध्यत्व प्राप्त करती है और फिर उसका जल स्वरूप हो जाता है ।।३०।। हे अनिलसार ! तुम से ही सभी औषधियो की उत्पत्ति होती है और उन औषधियो स ही प्राणिगण सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं ।।३१।। हे पावक ! तुम्हारे द्वारा उत्पन्न औषधियों से प्राणी जो यज्ञ करते हैं, ऐसे यज्ञो से ही सुर, दैत्य और असुर ।।३२।। तृप्त होते हैं । हे हुताशन ! उन सभी यज्ञो के तुम आधार रूप हो । इसलिए हे वह्ने ! तुम सभी के उत्पन्न करने वाले और सर्व व्यापी हो ।।३३।। हे पावक ! सुर, असुर, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मानव, पशु,वृक्ष,मृग,आपही से तृप्त व पोपित होते हैं एव तुम से ही उत्पन्न अन्त में तुम ही मे मिल जाते हैं ।।३५।।

अप.सृजसिदेवत्वत्वमत्सिपुनरेवता ।
पच्यमानास्त्वयाताश्चप्राणिनापुष्टिकारणम् ।।३६
देवेपुतेजोरूपेणकान्त्यासिद्धेष्ववस्थित ।
विपरूपेण नागेपुवायुरूप पतत्निपु ।।३७
मनुजेपुभवान्क्रोधोमोह पक्षिमृगादिपु ।
अवष्टम्भोऽसितरुपुकाठिन्य त्व महीप्रति ।।३८
जलेद्रवस्त्व भगवाञ्जवरूपीतयाऽनिले ।
व्यापित्वेनतथैवाग्नेनभसित्व व्यवस्थित ।।३६
त्वमग्नेसर्वभूतानामन्तश्चरसिपालयन् ।
त्वामेकमाहु कवयस्त्वामाहु स्त्रिविधपुन ।।४०
त्वयासृष्टमिदविश्व वदन्तिपरमर्पय ।।४१
त्वामृतेहिजगत्सर्व सद्योनश्येद्धुताशान ।
तुभ्य कृत्वाद्विज पूजास्वकर्मविहितागतिम् ।।४२

हे देव ! तुम ही जल के उत्पादक हो और फिर उसको पान करते हो, तथा तुम्हारे द्वारा ही उसका पाचन होता है, जो प्राणियों को पुष्टिकारक

बनाता है ॥३६॥ देवगण मे तुम्ही तेज स्वरूप' सिद्धो मे क्रान्ति स्वरूप, नागो मे विष स्वरूप एवम् पक्षियो मे वायु स्वरूप हो ॥३७॥ मनुष्यो मे क्रोध रूप मे पक्षी व मृगादि मे मोह रूप मे, वृक्षो मे जड रूप मे, पृथिवी में कठोर रूप मे ॥३८॥ जल मे द्रव्य रूप मे तुम ही स्थित हो और वायु को गति रूप में और आकाश को व्याप्त रूप मे आत्मा द्वारा अवस्थित किया है ॥३९॥ हे अग्ने ! पोषण करते हुए तुम ही उन प्राणियो के अन्तर मे विचरते हो। यद्यपि कवि तुम्हारा निर्देश एक से ही करते हैं, फिर भी तुम त्रिविध कहलाती हो ॥४०॥ कविगण तुम्हारी अष्टधा के रूप में कल्पना करके आप यज्ञ की कल्पना करते है, तुम से ही विश्व की उत्पत्ति हुई है, ऐसा महान् ऋषियो ने कहा है ॥४१॥ हे हुताशन ! समस्त विश्व तुम्हारे नष्ट होने पर विनाश होता है ॥४२॥

प्रयातिहव्यकव्याद्यं स्वधास्वाहाभ्युदीरणात् ।
परिणामात्मवीर्याणिप्राणिनाममरार्चित ॥४३
दहन्तिसर्वभूतानिततोनिष्क्रम्यहेतयः ।
जातवेदस्त्वयैवेदविश्वं सृष्टं महाद्युते ॥४४
तवैववैदिककर्मसर्वभूतात्मकजगत् ।
नमस्तेऽनलपिंगाक्षनमस्तेऽस्तुहुताशन ॥४५
पावकाद्यनमस्तेऽस्तुनमस्तेहव्यवाहन ।
त्वमेवसर्वभूतानांपावनाद्विश्वपावनः ।
त्वमेवभुक्तपीतानामापाचनाद्विश्वपाचकः ॥४६
सस्यानांपाककर्त्तात्वपोष्टात्वंजगतस्तथा ।
त्वमेवमेघस्त्वंवायुस्त्वबीजंसस्यहेतुकम् ॥४७
पोषायसर्वभूतानांभूतभव्यभवोह्यसि ।
त्वंज्योतिः सर्वभूतेषुत्वमादित्योविभावसुः ॥४८
त्वमहस्त्वतथारात्रिरुभेसन्ध्येतथाभवान् ।
हिरण्येतास्त्वंवह्ने हिरण्योद्भवकारणम् ॥४९

विप्रगण हव्य कव्यादि द्वारा तुम्हारी आराधना करके 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करके स्वकर्म विहित गति प्राप्त करते हैं। हे अमरार्चित अर्थात् सुरगण द्वारा पूजित ! प्राणियो के परिणामात्मा वीर्य स्वरूप ॥४३॥ तुम से उत्पन्न सम्पूर्ण अग्निशिखाएँ भूतगणों को भस्म करती हैं, हे महाद्युते जातवेद ! सम्पूर्ण विश्व के तुम सृष्टि-कर्त्ता हो ॥४४॥ हे अनल ! सर्वभूतात्मक यह विश्व एवम् वैदिक कर्म तुम्हारे अधीन हैं। हे पिङ्गाक्ष अनल ! तुमको नमस्कार, हे हुताशन ! तुमको प्रणाम ! ॥४५॥ हे आद्य ! हे पावक तुमको प्रणाम, तुम ही भोज्य एवम् पेय को पचाने वाले विश्व-पावन हो, हे विश्व पावन ! तुम सर्व भूत पवित्रकर्त्ता हो ॥४५॥ अन्न को पकाने वाले तुम विश्व को पुष्टिकरण एव तुम ही मेघ, वायु व सस्य उत्पादन के लिए बीज रूप भी हो ॥४७॥ सभी का पोषण करने वाले तुम ही भूत, भविष्य और वर्त्तमान रूप हो। तुम ही सम्पूर्ण प्राणियों में ज्योति का स्वरूप और आदित्य सूर्य हो ॥४८॥ दिन, रात्रि और सन्ध्या तुम ही हो। हे वह्ने ! रेता एवम् हिरण्य की उत्पत्ति कारक तुम ही हो ॥४६॥

हिरण्यगर्भश्चभवान्हिरण्य सदृशप्रभ ।
त्वमुहूर्त्तक्षणश्चत्वत्वत्रुटिस्त्वतथालव ॥५०
कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणासिजगत्प्रभो ।
त्वमेतदखिलकाल परिणामात्मकोभवान् ॥५१
याजिह्वाभवत कालीकालनिष्ठाकरीप्रभो ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५२
करालीनामयाजिह्वामहाप्रलयकारणम् ।
तयान पापिपापेभ्यऐहिकाच्चमहानयात् ॥५३
मनोजवाचयाजिह्वालघिमागुणलक्षणा ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५४
करोतिकामभूतेभ्योयातेजिह्वासुलोहिता ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५५

मधुम्रवर्णायाजिह्वाप्राणिनांरोगदायिका ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५६

तुम ही हिरण्य गर्भ एवं हिरण्य के समकक्ष कान्तिमान् हो। मुहूर्त, क्षण त्रुटि एवं लव तुम ही हो ॥५०॥ हे जगत्प्रभो! कलाकाष्ठा और निमेषादि के रूप में तुम ही परिणामात्मक अन्तकाल हो ॥५१॥ हे प्रभो! अपनी कालनिष्ठा पूर्ण काली जीभ द्वारा पाप, भय एवं ऐहिक भय से हमारी रक्षा करो ॥५२॥ कराली नामक जो जीभ तुम्हारी महाप्रलय के समय से है, उसके द्वारा हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५३॥ अपनी लघिमागुण युक्त मनाज्वा जीभ से हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५४॥ प्राणियों की कामना पूर्ति करने वाली अपनी सुलोहिता नामक जीभ से हमारी ऐहिक भय और पापों से रक्षा करो ॥५५॥ प्राणियों के रोगों का शमन करने वाली, सधूम्रवर्ण जीभ से ऐहिक भय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५६॥

स्फुलिंगिनीचयाजिह्वायत सकलपुद्गला ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५७
यातेविश्वसृजाजिह्वाप्राणिनांशर्मदायिनी ।
तयान पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥५८
पिङ्गाक्षलोहितग्रीवकृष्णवत्मंहुताशन ।
त्राहिमासर्वदोषेभ्य ससारादुद्धरेहमाम् ॥५९
प्रसीदवह्ने सप्तार्चि कृशानोहव्यवाहन ।
अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टभिरुदीरित ॥६०
अग्नेऽग्रेसर्वभूतानासमुत्पत्तिविभावसो ।
प्रसीदहव्यवाहाख्यअभिष्टुतमयाव्यय ॥६१
त्वमक्षयोवह्निरचिन्त्यरूप समृद्धिमन्दुष्प्रसहोऽतितीव्र ।
तवाव्ययभीममशेषलोकसवर्धकहन्त्यथवातिवीर्य्यम् ॥६२
त्वमुत्तमतत्त्वमशेषसत्त्वहृत्पुण्डरीकस्थमनन्तमीड्यम् ।
त्वयाततविश्वमिदचराचरहुताशनैकोबहुधात्वमत्र ॥६३

आत्मा एवं देह को उत्पन्न करने वाले स्फुलिङ्गिनी भीम न दैहिक महाभय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५७॥ प्राणियों को मङ्गल दाता विश्वा नामक अपनी जीभ से ऐहिक भय और पापों से हमारी रक्षा करो ॥५८॥ हे हुताशन ! तुम्हारे नेत्र पिंगल वर्ण, ग्रीवा लोहित वर्ण और तुम्हारी देह कृष्ण वर्ण है। तुम सर्व प्रकार के दोषों से मेरी रक्षा करो और इस विश्व से उद्धार कीजिये ॥५९॥ हे वह्ने ! आठ नामों वाले हो सप्तार्चि; हव्यवाहन, कृशानु, अग्नि, पावक, शुक्र नाम से विख्यात तुम प्रसन्न होओ ॥६०॥ हे अग्ने ! समस्त भूतों से तुम उत्पन्न हो। हे विभावसो ! हे अव्यय हव्यवाह ! मैं तुम्हारी आराधना करता हूँ उससे तुम मुझ पर प्रसन्न होओ ॥६१॥ हे वह्ने ! तुम अक्षय हो, तुम्हारा अचिन्त्य रूप है, तुम समृद्धिमान्, आश्रयदाता एवं अत्यन्त तीव्रतापूर्ण हो और अव्यय व भीम तुम्हारे मूर्तिमान् रूप अत्यन्त बलशाली एवं समस्त विश्व का भी विनाश करने वाले हैं ॥६२॥ हे हुताशन ! तुम श्रेष्ठ सत्त्व और समस्त जीवों के हृदय कमल सदृश हो और तुम उन सबके पूज्य अनन्त ब्रह्म रूप हो। उस ब्रह्म स्वरूप से तुमने इस प्राणी जगत् को परिपूर्ण कर रखा है। इसलिए तुम एक होकर भी अनेक रूप में इस विश्व में स्थिति करते हो ॥६३॥

त्वमक्षय सगिरिवनावसुन्धरानभ ससोमार्कमहर्दिवाखिलम् ।
महोदधेर्जठरगतश्च वाडवोभवान्विभुःपिबतिपयांसिपावक ॥६४
हुताशनस्त्वमितिमदाभिपूज्यसेमहाक्रतौनियमपरैर्महर्षिभि ।
अभिष्टुत पिबसिचसोममध्वरेवषट्कृतान्यपिचहवींषिभूतये ॥६५
त्वविप्रै सततमिहेज्यसेफलार्थवेदाङ्गेष्वथसकलेषुगीयसेत्वम् ।
त्वद्धेतोर्यजनपरायणाद्विजेन्द्रावेदाङ्गान्यधिगमयन्तिसर्वकाले ६६
त्वब्रह्मायजनपरस्तथैवविष्णुर्भूतेश सुरपतिरर्यमाजलेश. ।
सूर्येन्दूसकलसुरासुराश्चहव्यै सन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ६७
अर्चिर्भि परमहोपघातदुष्ट स्पृष्ट तवशुचितामुपैतिसमस्तम् ।
स्नानानापरममतीवभस्मनासत्सन्ध्यायांमुनिभिरतीवसेव्यसेतत् ६८

तत्कृत्वाश्निदिवमवाप्नुवन्तिलोका: ।
सद्भक्त्यासुखनियता समूहगीतम् ॥६६
प्रसीदवह्ने शुचिनामधेयप्रसीदवायोविमलातिदीप्ते ।
प्रसीदमेपावकवैद्य ताभप्रसीदहव्याशनपाहिमात्तम् ॥७०
यत्ते वह्ने शिवरूपयेचतेसप्तहेतय ।
तै पाहिन.स्तुतोदेवपितापुत्रमिवात्मजम् ॥७१

हे अनल ! तुम अक्षय हो, एव सूर्य सहित पृथ्वी तुम्हारे ही स्वरूप हैं और चन्द्रमा एवं सूर्य सहित आकाश स्वरूप तुम ही हो, दिन और रात के रूप मे निखिल कालस्वरूप हो, तुम ही महा समुद्र के अन्तर्गत वडवाग्नि और परम विभूति से समस्त किरणो में विद्यमान हो ॥६४॥ हे हुताशन ! तुम्हारा भोजन हुतहवि है इसीलिए नियम परायण परम मुनिगण यज्ञो मे तुम्हारी सदैव पूजा करते हैं और उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर विश्व के कल्याणार्थ सोमरस और वषटकारसहित हवि. सेवन करते हो ॥६५॥ सम्पूर्ण वेदाग मे तुम्हारा गायन है और यज्ञ परायण हेतु श्रेष्ठ ब्राह्मण सदैव वेदाग अध्ययन करते हैं ॥६६॥ यजन परायण ब्रह्मा, विष्णु, भूतनाथ महादेव तुम ही हो। देवराज इन्द्र, अर्यमा, जलेश्वर वरुण, सूर्य एव चन्द्रमा तुम ही हो, सुर एवं असुर हव्य द्वारा तुम्हे सतुष्ट कर इच्छित फल प्राप्त करते हैं ॥६७॥ नहा उपघात से दूषित समस्त वस्तुएँ तुम्हारी लौ के स्पर्श मात्र से पवित्र होती हैं, अनेक स्नानो मे भस्म द्वारा ही स्नान उत्तम माना जाता है, अतएव ऋषिगण सन्ध्या समय यही स्नान करते हैं ॥६८॥ इस प्रकार करने वाले मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करते हैं और सच्ची भक्ति से सर्व सुख प्राप्त करते हैं ॥६९॥ हे वह्ने ! इसीलिए ही तुम्हारा नाम शुचि है, आप उसी रूप मे मुझ पर प्रसन्न होवें। तुम स्वच्छ एव प्रबल वायु स्वरूप, उसी रूप मे मुझ पर प्रसन्न होवें। हे पावक ! तुम वैद्युताग्नि आदि नामों से कीतिमान् हो, उसी रूप मे मुझ पर प्रसन्न होओ। हे हव्यादन ! तुम प्रसन्न होकर मेरी रक्षा करो ॥७०॥ हे वह्ने ! तुम मङ्गलमय रूप हो। जो सप्तहेति ज्वालाएँ हैं, उनसे हे देव मेरी

स्तुति से प्रसन्न होकर जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार मेरी रक्षा करो ॥७१॥

९२-सर्व मन्वन्तर श्रवण फल कथन

एवंस्तुतस्ततस्तेनभगवान्हव्यवाहनः ।
ज्वालामालावृततनुस्तस्यासीदग्रतोमुने ॥१
देवोविभावसु.प्रीतस्तोत्रेणानेनवै द्विज ।
शान्तिमाहप्रणतमेघगम्भीरवागथ ॥२
परितुष्टोऽस्मितेविप्रभक्त्यायातेस्तुति कृत्व ।
वरददामिभवतेप्रार्थ्यतायत्तवेप्सितम् ॥३
भगवन्कृतकृत्योऽस्मियत्त्वापश्यामिरूपिणम् ।
तथापिभक्तिनम्रस्यभवताश्रूयतांमम ॥४
भ्रातृयज्ञ गतोदेवममाचार्योनिजाश्रमात् ।
आगतआश्रमधिष्ण्यस्त्वत्सनायसपश्यतु ॥५
ममापराधात्सन्त्यक्त धिष्ण्ययद्येविभावसो ।
तत्त्वयाधिष्ठितसोऽद्यपूर्ववत्पश्यतुद्विज ॥६
तथान्यदपिमेदेवप्रसाद कुरुपेयदि ।
पुत्रोविशिष्टोभवतुतदपुत्रस्यमेगुरो ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ऋषि ! शांति की ऐसी स्तुति पर भगवान् हव्यवाहन ज्वालामाला सहित उनके समक्ष प्रकट हुए ॥१॥ हे ब्राह्मण ! विभावसु देव ने स्तोत्रों से सन्तुष्ट होकर उन प्रणत तपस्वी शांति से मेघ सम गम्भीर शब्दों में कहा ॥२॥ अग्नि ने कहा—'हे ब्राह्मण मैं तुम्हारी भक्तिपूर्ण स्तुति से प्रसन्न हुआ हूं । तुम अपने इच्छित वर की प्रार्थना करो मैं वर देता हूं ॥३॥ शांति बोले—हे भगवन् ! आपके स्वरूप को देख कर मैं

कृतकृत्य हुआ हूँ। फिर भी नम्रता एवं भक्तिपूर्वक मेरा वचन सुनिये ॥४॥ हे देव ! मेरे गुरु अपने इस आश्रम से भाई के यहाँ यज्ञ में गये हैं। आश्रम में आकर वह अग्निकुण्ड में अग्नि प्रज्वलित देखें ॥५॥ हे विभावसो जिस अग्निकुण्ड को तुमने मेरे अपराध के कारण वंचित किया है वह द्विज श्रेष्ठ गुरु आने पर पहिले की भाँति ही प्रज्वलित देखें ॥६॥ हे देव ! यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो, तो दूसरा निवेदन है कि मेरे पुत्रहीन गुरु के गुणवान् पुत्र उत्पन्न हो ॥७॥

तथाचमैत्रीतनयेसकरिष्यतिमेगुरु ।
तथासमस्तसत्त्वेपुभवत्वस्यमनोमृदु ॥८
यश्चत्वास्तोष्यतेऽनेनप्रीतियातोऽसिमेऽव्यय ।
स्तोत्रेणतस्यवरदोभवेथामत्प्रसादित ॥९
एतच्छ्रुत्वावचस्तस्यतमाहद्विजसत्तमम् ।
स्तोत्रेणराधितस्तेनगुरुभक्त्याचपावक ॥१०
गुरोरर्थयतोब्रह्मन्याचितमेवरद्वयम् ।
नात्मार्थंतेनमेप्रीतिस्त्वय्यतीवमहामुने ॥११
भविष्यत्येतदखिलगुरोर्यत्प्रार्थितत्वया ।
मैत्रीसमस्तभूतेषुपुत्रश्चास्यभविष्यति ॥१२
मन्वन्तराधिप पुत्रश्चभौत्योनामभविष्यति ।
महाबलोमहावीर्य्योमहाप्राज्ञागुरुस्तव ॥१३
अनेनयश्च स्तोत्रेणस्तोष्यतेमासमाहित ।
तस्याभिलपतसर्वंपुण्यचास्यभविष्यति ॥१४

अपने उस पुत्र से मेरे आचार्य जिस प्रकार प्रीति करें उसी प्रकार समस्त प्राणियों से प्रीति और कोमल व्यवहार करने वाले हों ॥८॥ हे अव्यय ! मुझ पर इस प्रकार तुम्हें प्रसन्न हुआ देख कर जो प्राणी भविष्य में तुम्हारी आराधना करें, उनके लिए भी, तुम मेरे लिए प्रसन्न होकर, वर प्रदान करने वाले हो ॥९॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—गुरु भक्ति एवं इस स्तोत्र द्वारा प्रसन्न

ग्नि देव द्विज शांति की प्रार्थना सुन कर बोले ॥१०॥ अग्नि ने कहा—हे ाह्मण ! तुमने अपने निज के लिए वर न मांगकर केवल अपने गुरु के लिए वर ी प्रार्थना की, हे महर्षि ! इस कारण मैं तुम से अत्यधिक प्रसन्न हूँ ॥११॥ गुरु के हेतु तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण होगी, सम्पूर्ण जीवों के प्रति उनकी प्रीति ोगी और उनको पुत्र-प्राप्ति होगी ॥१२॥ तुम्हारे गुरु अत्यन्त मेधावी हैं, उनके महापराक्रमी, वीर्यवान् भौत्य नाम का पुत्र होगा, जो मन्वन्तराधिपति होगा ॥१३॥ साथ ही जो मनुष्य एकचित्त होकर मेरे इस स्तोत्र से मेरी आराधना करेगा, उसकी सम्पूर्ण मन की इच्छाऐं पूरी होंगी और पुण्य का भागी भी होगा ॥१४॥

यज्ञेषुपर्वकालेषुतीर्थेज्याहोमकर्मसु ।
धर्मार्थपठतामेतन्ममपुष्टिकरंपरम् ॥१५
अहोरात्रकृतपापंश्च तमेतत्सकृद्द्विज ।
नाशयिष्यत्यसन्दिग्धंममतुष्टिकरंपरम् ॥१६
अहोमकालदोषादीनयोग्यैरपितत्कृतैः ।
येदोषास्तानिदं सद्यःशमयिष्यतिमंश्च तम् ॥१७
पौर्णमास्याममावास्यापर्वस्वन्येषुचस्तवः ।
ममैषमंश्च तोमर्त्यं भविताषापनाशनः ॥१८
इत्युक्त्वाभगवानग्निःपश्यतस्तस्यवैमुने ।
बभूवादर्शनःसद्योदीपस्योनिर्वृ तोयथा ॥१९
मचशान्तिर्गतेवह्नौररितुष्टेनचेतसा ।
हर्षरोमाञ्चिततनुःप्रविवेशाश्रमंगुरोः ॥२०
जाज्वल्यमानंतत्रासौगुरुधिष्ण्येहुताशनम् ।
ददर्शपूर्ववत्प्राप्ततःसपरमामुदम् ॥२१

यज्ञ, पर्वकाल, तीर्थ यज्ञ, धर्मार्थ, व यज्ञ-कर्म में यह बलदाता स्तोत्र जप करने अथवा केवल एक बार सुनने से ही दिन रात के सम्पूर्ण पापों का बिना सन्देह विनाश होगा । हे ब्राह्मण मेरा यह स्तोत्र अत्यन्त संतुष्टि दायक

है ॥१६॥ यज्ञकाल के व्यतीत होने पर यज्ञ करने एवं अनधिकारी पुरुष द्वारा यज्ञादि करने पर जो दोष होता है, वह सभी इस स्तोत्र के श्रवण से ही तुरन्त नष्ट होगा ॥१७॥ यह उत्तम स्तोत्र पूर्णिमा, अमावस्या या अन्य किसी पर्व के अवसर पर श्रवण करने से प्राणियों के पापों का शमन होगा ॥१८॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ऋषिवर ! किसी दीपक की लौ जिस प्रकार अचानक बुझ जाती है, उसी प्रकार वे अग्नि भगवान् यह वर देकर उन शान्ति मुनि के सामने अन्तर्धान हो गये ॥१९॥ पावक के अन्तर्धान होने पर शान्ति मुनि सन्तुष्ट हृदय एवं आनन्द से पूर्ण होकर अपने गुरु के आश्रम में पहुँचे ॥२०॥ तदनन्तर शान्ति मुनि अग्निकुण्ड में उसी प्रकार अग्नि को प्रज्ज्वलित देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥२१॥

एतस्मिन्नन्तरेसोऽपिगुरुस्तस्यमहात्मन ।
भ्रातुर्यवीयसोयज्ञादाजगामस्वमाश्रमम् ॥२२
तस्याग्रतश्चशिष्योऽसौचक्रेपादाभिवन्दनम् ।
गृहीतासनपूजश्चतमाहसतदागुरुः ॥२३
वत्सातिहार्द स्वयिमेतथान्येपुचजन्तुपु ।
नवेत्सिकिमिद त्वञ्चेद्व त्स्येतत्कथाशुभे ॥२४
सत सशान्तिस्तत्सर्वमाचाय्र्यायमहामुने ।
अग्निनाशादिकविप्र समाचष्टेयथातथम् ॥२५
सच्छ्रुत्वासपरिष्वज्यस्नेहार्द्र नयनोगुरु ।
शिष्यायप्रददौवेदान्सागोपाङ्गान्महामुने ॥२६
भौत्योनाममनुस्तस्यपुत्रोभूतेरजायत ।
तस्यमन्वन्तरेदेवानृषीन्भूपांश्चमेश्रृणु ॥२७
भविष्यस्यभविष्यास्तुगदतोममविस्तरात् ।
देवेन्द्रोयश्चभवितातस्यविख्यातकर्मणः ॥२८

उसी समय शान्ति के गुरु वह ऋषि श्रेष्ठ छोटे भाई के यहाँ से यज्ञ में से अपने आश्रम में वापिस आये ॥२२॥ तब सम्मुख आकर शिष्य शान्ति ने

उनकी चरण-वंदना की। उसके पश्चात् गुरु पूजा वन्दन पूर्ण कर आसन ग्रहण कर शांति से बोले ॥२३॥ हे वत्स! तुम्हारे व अन्य दूसरे जीव प्राणियों के प्रति मेरे हृदय में प्रीति उत्पन्न हुई है, ऐसा कैसे हुआ, मैं अनभिज्ञ हूं। हे वत्स! कदाचित्, यदि तुम्हारे ज्ञान में हो, तो मुझ से वर्णन करो ॥२४॥ हे महर्षि! तब विप्र शांति ने अग्नि बुझने आदि की सम्पूर्ण विगत कथा गुरु से कही ॥२५॥ हे महर्षि! गुरु ने समस्त घटना सुनकर प्रेम से आर्द्र नेत्रों से शिष्य शांति को आलिंगन बद्ध कर लिया और उसे साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण वेद भी प्रदान किये ॥२६॥ इस प्रकार उन भूति ऋषि के पुत्र भौत्य मनु ने जन्म लिया। उन मनु के मन्वन्तर के बीच जो देवगण, ऋषि, राजा और इन्द्रादि होंगे उनका विस्तार पूर्वक वर्णन सुनो ॥२७-२८॥

> चाक्षुषाश्चकनिष्ठाश्चपवित्राभ्राजिरास्तथा ।
> धारावृकाश्चैत्येतेवैपञ्चदेवगणा स्मृताः ॥२९
> शुचिरिन्द्रस्तदातेषांत्रिदशानांनविष्यति ।
> महाबलोमहावीर्य्यं सर्वैरिन्द्रगुणैर्युतं ॥३०
> आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्चशुचिर्मुक्तोऽथमाधव ।
> शुक्रोऽजितश्चसप्तैतेतदामसप्तर्षयःस्मृता ॥३१
> गुरुर्गंभीरोब्रध्नश्चभरतोऽनुग्रहस्तथा ।
> श्रीमानीचप्रतीरश्चविष्णु संक्रन्दनस्तथा ॥३२
> तेजस्वीसुबलश्चैवभौत्यस्यैतेमनो सुताः ।
> चतुर्दशमयैतत्तेमन्वन्तरमुदाहृतम् ॥३३
> श्रुत्वामन्वन्तराणीत्थक्रमेणमुनिसत्तम ।
> पुण्यमाप्नोतिमनुजस्तथाक्षीणाचसन्ततिम् ॥३४
> श्रुत्वामन्वन्तरपूर्वंधर्ममाप्नोतिमानवः ।
> स्वारोचिषस्यश्रवणात्सर्वकामानवाप्नुते ॥३५

चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर और धारावृक प्रकार के देवगण होंगे ॥२९॥ उस काल में इन्द्र के समस्त गुणों से पूर्ण महापराक्रमी शौर्यवान्

"शुचि" उनके इन्द्र होंगे ॥३०॥ उस मन्वन्तर में अग्निध्र, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शुक्र और अजित नामक सप्त महर्षि होंगे ॥३१॥ गुरु, गभीर, ब्रध्न, भरत, अनुग्रह, श्रीमानि, प्रतीर, विष्णु, गन्धमान तथा ॥३२॥ तेजस्वी सुबल नामक पुत्र भौत्य मनु के होंगे। इस प्रकार मैंने आप से चौदह मन्वन्तरों के विषय में कहा ॥३३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह समस्त मन्वन्तरों का क्रमबद्ध वर्णन सुनने से मनुष्य पुण्य-लाभ प्राप्त करते हैं एवं उनका परिवार सदैव अक्षुण्ण रहता है ॥३४॥ प्रथम मन्वन्तर का वर्णन सुन कर धर्म में आस्था बढ़ती है और दूसरे मन्वन्तर के श्रवण से उनकी समस्त मन की इच्छाऐं पूरी होती हैं ॥३५॥

औत्तमेधनमाप्नोतिज्ञानमाप्नोतितामसे ।
रैवतेचश्रु तेवुद्धिसुरूपाविन्दतेस्त्रियम् ॥३६
आरोग्यचाक्षुषेपु साश्र तेवैवस्वतेवलम् ।
गुणवत्पुत्रपौत्रास्तुसूर्य्यसावर्णिकेश्रु ते ॥३७
माहात्म्यब्रह्मसावर्णेर्धर्मसावर्णिकेशुभाम् ।
मतिमाप्नोतिमनुजोरुद्रसावर्णिकेजयम् ॥३८
ज्ञातिश्रेष्ठोगुणैर्यु क्तोदक्षसावर्णिकेश्रु ते ।
निशातयत्यरिवलरौच्यश्र ुत्वानरोत्तम ॥३९
देवप्रसादमाप्नोतिभौत्येमन्वन्तरेश्रु ते ।
तथाग्निहोत्रपुत्रांश्चगुणयुक्तानवाप्नुते ॥४०
सर्वाण्यनुक्रमाद्यश्चश्रृणोतिमुनिसत्तम ।
मन्वन्तराणितस्यापिश्र ूयतांफलमुत्तमम् ॥४१

तृतीय मन्वन्तर औत्तम के श्रवण से धन व चतुर्थ तामस मन्वन्तर के श्रवण से ज्ञान प्राप्ति होती है। पचम रैवत मन्वन्तर के श्रवण से बुद्धिमान् एव रूपवती भार्या मिलती है ॥३६॥ षष्ठ मन्वन्तर चाक्षुष के श्रवण से मनुष्य नीरोग रहते हैं, सप्तम मन्वन्तर वैवस्वत के श्रवण से पराक्रम एवं अष्टम सूर्य सावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से गुणी पुत्र एव पौत्र प्राप्त होते हैं ॥३७॥

नवम ब्रह्म सावर्णि मन्वन्तर के श्रवण से माहात्म्य, दसम धर्म सावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से कल्याण और ग्यारहवें रुद्रसावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से सुबुद्धि और विजय प्राप्त होती है ॥३८॥ हे नर श्रेष्ठ ! बारहवें मन्वन्तर दक्ष सावर्णिक के श्रवण से पुरुष जाति में सर्वोत्तम और गुणवान् होता है, तेरहवें मन्वन्तर रौच्य के श्रवण से शत्रुओं का बल शमन करने की समर्थता प्राप्त होती है ॥३९॥ चौदहवें मन्वन्तर भौत्य के श्रवण से भगवान् का प्रसाद, अग्निहोत्र फल एवं गुणवान् पुत्र की प्राप्ति होती है ॥४०॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! प्रथम मन्वन्तर से क्रमबद्ध सभी मन्वन्तरों का श्रवण करने वाले मनुष्यों को किस प्रकार श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है, इसका वर्णन सुनो ॥४१॥

तन्देवानृषीनिन्द्रान्मनू स्तत्तनयान्नृपान् ।
श्रुत्वावंशांश्चसर्वेभ्य पापेभ्योप्रमुच्यते ॥४२
देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्येयेतन्मन्वन्तराधिपाः ।
तेप्रीयन्तेनयाप्रीता प्रयच्छन्तिशुभांमतिम् ॥४३
तत शुभांमतिप्राप्यकृत्वावर्मतयाशुभम् ।
शुभांगतिमवाप्नोतियावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४४
सर्वेभ्युत्तु तवक्षेम्या सर्वेसौम्यास्तयाग्रहा ।
भवन्त्यनसंशयश्रुत्वाक्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥४५

हे ब्राह्मण ! उन मन्वन्तरों के देवगण, सम्पूर्ण ऋषिगण, मनु के नृप पुत्रगण एवं उनकी वंशावलि वर्णन का श्रवण करने पर मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त हो जाते हैं ॥४२॥ देवगण, मुनिगण, इन्द्र, नृपतिगण एवं उन मन्वन्तर के अधिपति अपर, वे सब सन्तुष्ट होते हैं एवं सन्तुष्ट होने पर सद्बुद्धि प्रदान करते हैं ॥४३॥ इस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त कर शुभ कार्य करने से जब तक चौदह इन्द्र रहेंगे, तब-तब सद्बुद्धि मनुष्य प्राप्त करते रहेंगे ॥४४॥ क्रमबद्ध मन्वन्तरों का वर्णन श्रवण करने सम्पूर्ण ऋतुऐं सहनीय होती हैं और निस्सन्देह सम्पूर्ण ग्रह भी शान्त हो जाते हैं ॥४५॥

८३— राज वंशानुकीर्तन

भगवान् दिनाथस्य वंशदायन्तस्य निदर्नि ।
ब्रह्मादिरनगानवलोकदार्वश्यापिता ॥१
दक्षाद्यदितिस्तस्या भृगु अदिब्रह्मलम ।
मनु प्रवेष्टव गम्भश्रवधप्रदीप्तिं ॥२
भृगुवानवृत्तान्विवस्वतार्मिनुत्तुवम् ।
वनिमवशयानूरमादीवृत्वाशयानिम् ॥३
यादिवनोभिपार्थ नेवमनुवर्तृ नि ।
तदासविविपिसंत वानदर्यस्पद्भव ॥४
स्त्राधंदोनरेद्वालापिगिमानिमहागमनाम् ।
उत्तमदभुपर गर्वसारे.ममुनखे ॥५
मनुवंतमधेश्चानु [illegible]
मन्वेपशतनोभुपा गन्धर्वा
समंशावजिवन भूरा परमायां
[illegible] [illegible]

दातश: ॥६॥ धर्मात्मा, यज्ञ कर्त्ता, और ब्रह्मज्ञानी नृपों ने जिस वंश में जन्म लेकर पृथ्वी का पोषण किया, उस वंश का वर्णन श्रवण करने से मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त हो जाता हैं ॥७॥

लदयश्च यतोवंशोयतोवंशा सहस्रश: ।
भिद्यन्तेमनुजेन्द्राणामवरोहायथावटात् ॥८
ब्रह्माप्रजापति:पूर्व सिसृक्षुर्विविधा.प्रजा: ।
अंगुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम ॥९
वामङ्गुष्ठाच्चतत्पत्नीजगत्सूतिक्रोविभु: ।
ससर्जभगवान्ब्रह्माजगतांकारणपरम् ॥१०
अदितिस्तस्यदक्षस्यकन्याजायतशोभना ।
तस्यांचकश्यपोदेव मार्तंडसमजीजनत् ॥११
ब्रह्मास्वरूपंजगतामशेषाणांवरप्रदम् ।
आदिमध्यान्तभूतंचसर्गस्थित्यंतकर्मसु ॥१२
मतोऽखिलमिदंयस्मिन्नशेषंचस्थितंद्विज ।
यत्स्वरूपंजगच्चेदंसदेवासुरमानुषम् ॥१३
य:सर्वभूत:सर्वात्मापरमात्मासनातन: ।
आदित्यामभवद्भास्वान्पूर्व माराधितस्तया ॥१४

एक वटवृक्ष के एक अंकुर से ही एक अलग पूर्ण वृक्ष खड़ा हो जाता है, उसी तरह मनुजेन्द्रों के सहस्रों वंश उत्पन्न होगये, वह सुनिये ॥८॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! पूर्व समय में विभिन्न प्रजा उत्पन्न करने की आकांक्षा से प्रजापति ब्रह्माजी ने अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से दक्ष प्रधिपति को जन्म दिया ॥९॥ विश्व के जन्मदाता भगवान् ब्रह्माजी ने विश्व सृष्टि के लिए अपने बाये हाथ के अंगूठे से दक्ष की पत्नी को जन्म दिया ॥१०॥ अदिति नाम की एक सुन्दर कन्या ने दक्ष के यहाँ जन्म लिया। उस कन्या और कश्यप से मार्तण्ड देव उत्पन्न हुए ॥११॥ हे ब्राह्मण ! ब्रह्म स्वरूप जो अशेष इस विश्व को वरदाता है, सृष्टि स्थिति एवं प्रलय के कार्य में प्रारम्भ व अन्त स्वरूप

६३—राज वंशानुकीर्तन

भगवन्कथितासम्यक्त्वयामन्वन्तरस्थितिः ।
क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तोमयाचैवावधारिता ॥१
ब्रह्माद्यमखिलवंशभूभुजाद्विजसत्तम ।
श्रोतु ममेच्छतःसम्यग्भगवन्प्रब्रवीहिमे ॥२
शृणुवत्सनृपाणांत्वमशेषाणांसमुद्भवम् ।
चरितचजगन्मूलमादौकृत्वाप्रजापतिम् ॥३
अयहिवशोभूपालै रनेकक्रतुकर्तृभि. ।
सग्रामजिद्भिर्धर्मज्ञै शतसख्यै रलकृत ॥४
श्रु त्वाचैषांनरेन्द्राणांचरितानिमहात्मनाम् ।
उत्पत्तयश्चपुरुष सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥५
मनुर्यत्रतथेक्ष्वाकुरनरण्योभगीरथः ।
अन्येचशतशोभूपाःसम्यक्पालितभूमयः ॥६
धर्मज्ञायज्विन शूरा परमार्थार्थवेदिनः ।
श्रु तेतस्मिन्पुमाग्वशेपापौधाद्विप्रमुच्यते ॥७

क्रोष्टकि बोले—हे महाराज ! मन्वन्तरो के विषय मे आपने भली प्रकार वर्णन किया है और मैंने भी उसे विस्तारपूर्वक श्रवण किया है ॥१॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! मैं अधिपतियो की ,सम्पूर्ण वंशावलि ब्रह्माजी से प्रारम्भ कर सुनने का इच्छुक हूँ । हे महाराज ! वह मुझ से सम्यक् प्रकार से कहिये ॥२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—हे विश्वाधार ब्रह्माजी से प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण अधिपतियो की जन्म-गाथा एव चरित्र का वर्णन सुनो ॥३॥ यह वंश यज्ञ करने वाले, रण विजेता, धर्मज्ञ सैकडो विविध नृपो से अलकृत है ॥४॥ इन महान् नृपतियो के जन्म और चरित्र के विषय मे सुनकर मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होता है ॥५॥ मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ, एवं अन्य दूसरे

दातश: ॥६॥ धर्मात्मा, यज्ञ कर्त्ता, और ब्रह्मज्ञानी नृपों ने जिस वंश में जन्म लेकर पृथ्वी का पोषण किया, उस वंश का वर्णन श्रवण करने से मनुष्य समस्त पापों से विमुक्त हो जाता है ॥७॥

तदयश्रूयतांवंशोयतोवंशा सहस्रशः ।
भिद्यन्तेमनुजेन्द्राणामवरोहायथावटात् ॥८
ब्रह्माप्रजापतिःपूर्वं सिसृक्षुर्विविधा.प्रजाः ।
अंगुष्टाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम ॥९
वामङ्गुष्टात्ततत्पत्नीजगत्मूर्तिकरोविभुः ।
ससर्जंभगवान्ब्रह्माजगतांकारणपरम् ॥१०
अदितिस्तस्यदक्षस्यकन्याजायतशोभना ।
तस्यांचकश्यपोदेवं मार्तंडसमजीजनत् ॥११
ब्रह्मास्वरूपंजगतामशेषाणांवरप्रदम् ।
आदिमध्यान्तभूतचसर्गस्थित्यतकर्मसु ॥१२
यतोऽखिलमिदं यस्मिन्नशेपंचस्थितंद्विज ।
यत्स्वरूपंजगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ॥१३
यःसर्वभूतःसर्वात्मापरमात्मासनातनः ।
आदित्यामभवद्भास्वान्पूर्वं माराधितस्तया ॥१४

एक वटवृक्ष के एक अकुर से ही एक अलग पूर्ण वृक्ष खड़ा हो जाता , उसी तरह मनुजेन्द्रों के सहस्रों वंश उत्पन्न होगये, वह सुनिये ॥८॥ हे ाह्मण श्रेष्ठ ! पूर्व समय में विभिन्न प्रजा उत्पन्न करने की आकांक्षा से जापति ब्रह्माजी ने अपने दाहिने हाथ के अंगूठे से दक्ष अधिपति को जन्म ाया ॥९॥ विश्व के जन्मदाता भगवान् ब्रह्माजी ने विश्व सृष्टि के लिए अपने ायें हाथ के अंगूठे से दक्ष की पत्नी को जन्म दिया ॥१०॥ अदिति नाम की क सुन्दर कन्या ने दक्ष के यहाँ जन्म लिया। उस कन्या और कश्यप से ार्तण्ड देव उत्पन्न हुए ॥११॥ हे ब्राह्मण ! ब्रह्म स्वरूप जो अशेष इस श्व को वरदाता हैं, सृष्टि स्थिति एवं प्रलय के कार्य में प्रारम्भ व अन्त स्वरूप

हैं ॥१२॥ समस्त विश्व के जन्म दाता, जिनमे समस्त विश्व विद्यमान है असुर और मनुष्यो सहित यह विश्व उनका स्वरूप है ॥१३॥ जो सर्व स्वरूप और सर्वात्मा सनातन परमात्मा हैं, अदिति द्वारा स्तुति करने पर उन्हीं भास्कर सूर्य ने उसके गर्भ से जन्म ग्रहण किया ॥१४॥

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिमत्स्वरूपविवस्वत ।
यत्कारणचादिदेव सोऽभवत्कश्यपात्मज. ॥१५
यथाचाराधितोदेव्यासोऽदित्याकश्यपेनच ।
आराधितेनचोक्त यत्तेनदेवेनभास्वता ॥१६
प्रभावचावतीर्णस्ययथावन्मुनिसत्तम ।
भवताकथितसम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यशेषत: ॥१७
विस्पष्टापरमाविद्याज्योतिर्भाशाश्वतीस्फुटा ।
कैवल्यज्ञानमाविर्भू प्राकाम्यसविदेवच ॥१८
बोधश्चावगतिश्चै वस्मृतिविज्ञानमेवच ।
इत्येनानीहरूपाणितस्यारूपस्यभास्वत ॥१६
श्रूयताचमहाभागविस्तराद्वदतोमम ।
यत्पृष्टवानसिरवेराविर्भावोयथाभवत् ॥२०

क्रौष्टुकी बोले—हे महाराज ! भास्वान् सूर्य के स्वरूप जिसके कारण वह आदि देव कश्यप के पुत्र के रूप मे उत्पन्न हुए उसका वर्णन सुनना चाहता हूँ ॥१५॥ एव अदिति व कश्यप ने जिस प्रकार आराधना की और आराधना से प्रसन्न सूर्यदेव ने जो कहा ॥१६॥ एव गृहीत जन्मा सूर्य का प्रकार जैसे पहले आपने वर्णन किया है श्रेष्ठ ! वह सभी सम्यक् प्रकार से श्रवण करने की इच्छा है ॥१७॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—विस्पष्टा, परमा, विद्या, ज्योति, शाश्वती, दीप्ति, कैवल्य, ज्ञान, आविर्भाव, प्राकाम्य, सवित् ॥१८॥ बोध, अवगति, स्मृति एवं विज्ञान आदि सभी सूर्यदेव के स्वरूप हैं । हे महाभाग ! रवि के अविर्भाव के विषय मे विस्तारपूर्वक श्रवण करो ॥२०॥

निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोकेसर्वतस्त मसावृते ।
बृहद्दण्डमभूदेकमक्षरकारणपरम् ॥२१

तद्विभेदतदन्त.स्थोभगवान्प्रपितामह् ।
पद्मयोनि स्वयब्रह्माय स्रष्टाजगताप्रभु ॥२२
तन्मुखादोमितिमहानभूच्छब्दोमहामुने ।
ततोभूस्तुभुवस्तस्मात्ततश्चस्वरनन्तरम् ॥२३
एताव्याहृतयस्तिस्र स्वरूपतद्विवस्वत ।
ओमित्यस्मात्स्वरूपात्तुसूक्ष्मरूपरवे परम् ॥२४
ततोमहरितिस्थूलजनस्थूलतरतत ।
ततस्तपस्तत सत्यमितिमूर्तानिसप्तधा ॥२५
स्थितानितस्यरूपाणिभवन्तिनभन्तिच ।
स्वभावभावयोर्भावयतोगच्छन्तिसक्षयम् ॥२६
आद्यन्तयत्परसूक्ष्मम‌रूपपरमस्थितम् ।
ओमित्युक्त मयाविप्रतत्परब्रह्मतद्वपु ॥२७

सृष्टि के पूर्व, जब यह विश्व आभाहीन, अन्धकारमय था तब क्षय रहित एक विशाल अण्ड उत्पन्न हुआ ॥२१॥ उसी समय जगत् के जन्मदाता प्रपितामह ब्रह्मा पद्म-योनि मे विद्यमान थे, उन्ही ने स्वय इस अण्डे को भेद दिया ॥२२॥ हे महर्षि ! ब्रह्माजी के मुखारविन्द से उस समय ॐ शब्द हुआ। ओंकार अब्द से पहले भू, भुव एव तत्पश्चात् स्व उत्पन्न हुआ ॥२३॥ यह व्याहृति भगवान् भास्कर का स्वरूप है। ॐ शब्द के स्वरूप से सूर्य का अत्यन्त सूक्ष्म रूप हुआ है ॥२४॥ उससे स्थूल रूप मह ' तत्पश्चात् स्थूल रूप 'जन' फिर स्थूल रूप 'तप ' अनन्तर स्थूल रूप 'सत्य' उत्पन्न होगया। सूर्य का सपूर्ण रूप स्थूल है। विवस्वान् सूर्य के स्थूलो के सूक्ष्म भेद स ओंकार के सप्त रूप उत्पन्न हुए ॥२५॥ सूर्य भगवान् के सप्त रूप भी कभी कभी सम्मुख होते हैं और कभी छिप रहते हैं, क्योकि उनके स्वभाव एव प्रकृति का अस्तित्व सत्तात्मक होता है ॥२६॥ हे ब्राह्मण ! इस जगत् के प्रारम्भ व अन्त मे निराकार परम सूक्ष्म परमात्मा विद्यमान हैं, ॐ कार से मेरा अभिप्राय उन्हीं स है। हे ब्राह्मण ! वह ब्रह्मस्वरूप ही मार्कण्ड देव की देह है ॥२७॥

९४—वेदमय-मार्तण्ड की उत्पत्ति

तस्मादण्डाद्विभिन्नाद्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
ऋचोबभूवु प्रथमप्रथमाद्वदनान्मुने ॥१
जपापुष्पनिभा सद्यस्तेजोरुपाह्यसहता ।
पृथक्पृथग्विभिन्नाश्चरजोरूपवहास्तत ॥२
यजूंषिदक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानिकानिचित् ।
यादृग्वर्णंतथावर्णान्यसंहतिधराणिच ॥३
पश्चिमयद्विभोर्वक्त्रं ब्रह्मण परमेष्ठिन ।
आविर्भूतानिसामानितत्तच्छन्दांसितासितान्यथ ॥४
अथर्वणामशेषचभृङ्गाञ्जनचयप्रभम् ।
यावद्घोरस्वरूपतदाभिचारिकशान्तिकम् ॥५
उत्तराप्रवटीभूतवदनात्तस्यवेधस. ।
सुखसत्त्वतम प्रायसौम्यासौम्यस्वरूपवत् ॥६
ऋचोरजोगुणा सत्त्वयजुषाचगुणामुने ।
तमोगुणानिसामानितम सत्त्वमथर्वसु ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—'हे नृपते ! उस अण्डे के भेदन पर अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी साकार हुए और उनके मुख से निकले वचनों से ऋग्वेद की रचना हुई ॥१॥ वह जपापुष्प तुल्य तेजस्वरूप और पृथक् विभिन्न रजो रूप धारण करने वाला था ॥२॥ ब्रह्माजी के दक्षिण मुख से स्वर्ण तुल्य वर्णयुक्त असंहति धारण करने वाले समस्त यजु की अनिरुद्ध भाव से रचना हुई ॥३॥ तदनन्तर परमात्मा ब्रह्माजी के पश्चिम मुख से साम की रचना हुई, सम्पूर्ण साम छन्द पूर्ण था ॥४॥ ब्रह्माजी के उत्तर मुख से भृंग व अञ्जन के समूह के समान आभापूर्ण कृष्ण वर्ण, आभिचारिक, शान्तिकर्त्ता, सुख, सत्त्व, तम से युक्त सौम्य और असौम्य स्वरूप अथर्व की रचना हुई ॥५-६॥ हे नृपते ! सम्पूर्ण ऋक् में रजोगुण, सम्पूर्ण यजुः में सत्त्व गुण, सम्पूर्ण साम में तमोगुण एवं सम्पूर्ण अथर्व में सत्त्व एवं तमोगुण है ॥७॥

एतानिज्वलमानानितेजसाऽप्रतिमेनवै ।
पृथक्पृथगवस्थानभाञ्जिपूर्वमिवाभवन् ॥८
ततस्तदाद्य यत्तेजश्रोमित्युक्त्वाभिक्षव्दचते ।
तस्यस्वभावाद्यत्तेजस्तत्समावृत्यसस्थितम् ॥६
यथायजुर्मयतेजस्तद्वत्साम्नामहामुने ।
एकत्वमुपयातानिपरेतेजसिमश्रये ॥१०
शान्तिकपौष्टिकचैवतथाचैवाभिचारिकम् ।
ऋगादिपुलयब्रह्मन्त्रितयत्रिष्वथागमत् ॥११
ततोविश्वमिदमद्यस्तमोनाशात्सुनिर्मलम् ।
विभावनीयविप्रर्पतिर्य्यगूर्ध्वमवस्तथा ॥१२
ततस्तन्मण्डलीभूतछान्दसतेजउत्तमम् ।
परेणतेजसाब्रह्मन्नेकत्वमुपगम्यतत् ॥१३
आदित्यसज्ञामगमदादावेवयतोऽभवत् ।
विश्वस्यास्यमहाभागकारणश्चाव्ययात्मकम् ॥१४

इन सभी ने अद्वितीय तेज से प्रकाशवान् होकर पृथक्-पृथक् भाव से स्थिति की ॥८॥ उसके पश्चात् प्रथम का वह तेज, जिसके लिये ॐ शब्द प्रयुक्त हुआ है, उसमे उत्पन्न जो तेज है, उसे वह अपने मे समेट कर स्थित हुआ ॥६॥ हे महर्षि ! इस प्रकार साम युक्त तेज एव यजुर्युक्त तेज को भी अपने मे समेट लिया, इस प्रकार सम्पूर्ण तेज उस ॐ स्वरूप परम तेज मे आवृत्त होकर एक होगये ॥१०॥ हे विप्र ! इसके बाद ऋक्, साम यजु तीनो वेदो मे, शांति युक्त, पौष्टिक, आभिचारिक इन तीनो में अर्थत्र भेद भी मिल गया ॥११॥ हे ब्रह्मर्षे ! अन्धकार नष्ट होने पर समस्त जगत् तुरन्त स्वच्छ होगया, जिससे उसका ऊर्ध्व, अध और निर्यक् अथवा पार्श्व देश प्रकाश म आये ॥१२॥ हे विप्र ! तत्पश्चात् वह परम छन्दम तेज मण्डलीभूत हो फिर श्रेष्ठ ॐ कार तेज मे लीन होकर एक होगया ॥१३॥ इस प्रकार इस तेज को आदि मे उत्पन्न होने के कारण 'आदित्य' की सज्ञा दी गई। हे महाभाग ! यही इस जगत् का अव्ययात्म कारण है ॥१४॥

प्रातर्म्मध्यन्दिनेचैवतथाचैवापराह्निके ।
त्रयीतपतिसाकालेऋग्यजु.सामसज्ञिता ॥१५
ऋचस्तपतिपूर्वाह्णे मध्याह्णे चयजू पिवे ।
सामानिचाराह्णे वैतपन्तिमुनिसत्तम॥१६
शान्तिकमृक्षुपूर्वाह्णे यजु ष्वेवचपौष्टिकम् ।
विन्यस्तसाम्निसायाह्णे ह्याभिचारिकमन्तत. ॥१७
मध्यन्दिनेऽपराह्णे चसमेचैवाभिचारिकम् ।
अपराह्णे पितृणान्तुसाम्नाकार्य्याणितानिवै ॥१८
विसृष्टौऋड्मयोब्रह्मास्थितौविष्णुर्यजुर्मयः ।
रुद्र.साममयोन्तेचत्तस्मात्तस्याशुचिध्वनिः ॥१६
तदेवभगवान्भास्वान्वेदात्मावेदसस्थित ।
वेदविद्यात्मकश्चैवपर:पुरुपउच्यते २०
सर्गस्थित्यन्तहेतुश्चरज सत्वादिकान्गुणान् ।
आश्रित्यब्रह्मविष्ण्वादिसज्ञामभ्येतिशाश्वत ॥२१
देवै सदेड्य.सतुवेदमूर्तिरमूर्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्ति. ।
विश्वाश्रयज्योतिरवेद्यधर्माविदान्तगम्य परम.परेश ॥२२

ऋक्, यजु और साम तीनो सज्ञाऐं प्रात, मध्याह्न एव अपराह्न काल मे तपती हैं ॥१५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उनमे ऋक् प्रात काल, यजु मध्याह्न मे और साम अपराह्न मे तपता है ॥१६॥ पूर्वाह्न-काल ऋक् मे शान्ति कर्म, मध्याह्न मे यजु मे पौष्टिक एव अपराह्न काल मे साम मे सम्पूर्ण आभिचारिक कर्म निहित है ॥१७॥ मध्याह्न और अपराह्न समय मे ही अभिचारिक-कर्म करे एव साम द्वारा केवल अपराह्न मे ही पितरो का कार्य सम्पन्न करे ॥१८॥ सृष्टि के समय मे ब्रह्मा ऋक्‌मय, स्थितिकाल मे विष्णु यजुर्मय एव शमन काल मे रुद्र साम मय होते हैं, इसलिये अपराह्न काल को अशुचि कहते है ॥१६॥ इस कारण उपर्युक्त प्रकार से वेदात्मा, वेद सस्थित एव वेद विद्यायुक्त भगवान् भास्वान् परम पुरुप नाम उच्चारण किया गया है ॥२०॥ सृष्टि के आदि,स्थिति व प्रलयकर्त्ता यह शाश्वत आदित्य सत्व रज एव तमोगुण को आश्रय कर ब्रह्मा,विष्णु और महेश नाम प्राप्त होते हैं ॥२१॥ देवताओ द्वारा सदैव आराध्य

की स्तुति करने लगे ।।४।। ब्रह्माजी ने कहा—जो समस्त जगत् के आत्मा रूप और इस जगत् में विद्यमान हैं, विश्व जिनका मूर्त्त रूप है एवं योगी भी जिस अनिन्द्रयगाह्य श्रेष्ठ ज्योति की आराधना करते है, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ ।।५।। ऋग्वेद युक्त अचिन्त्य शक्ति, यजुर्वेद के आधार साम की रचना के कारण, स्थूलता प्रभुक्त तीनों में निहित, अर्द्ध मात्रा स्वरूप, परब्रह्म रूप और महान् गुणी हैं ।।६।। सब प्रथम उन्हीं सर्वाधार रूपी परम पूज्य, परमेश्वर, अवह्निरूप, परमज्योति, देवात्मता के लिये स्थूल रूप एवं श्रेष्ठों से श्रेष्ठतम आदि पुरुष भगवान् भास्कर को नमस्कार करता हूँ ।।७।।

सृष्टिकरामियदहतवशक्तिराद्यातत्प्रेरितोजलमहीपवनाग्निरूपाम् ।
तद्देवतादिविपगाप्रणवाद्यशेपानात्मेच्छयास्थितिलयावपितद्वदेव ।।८
वह्निस्त्वमेवजलशोषणात पृथिव्या सृष्टिकरोपिजगताचतथाद्यपाकम् ।
व्यापीत्वमेवभगवन्गगनस्वरूपत्वपञ्चधाजगदिदपरिपासिविश्वम् ।।९
यज्ञैर्यजन्तिपरमात्मविदोभवन्तविष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयविवस्वन् ।
ध्यायन्तिचापियतयोनियतात्मचित्ता सर्वेश्वरपरममात्मविमुक्तिकाम १०

नमस्तेदेवरूवपाययज्ञरूपायतेनम ।
परब्रह्मस्वरूपायचिन्त्यमानाययोगिभि ।।११
उपसहरतेजोयत्तेजस सहृतिस्तव ।
सृष्टेर्विघातायविभोसृष्टौचाहसमुद्यत ।।१२
इत्येवसस्तुतोभास्वान्ब्रह्मणासर्गकर्तृणा ।
उपसहृतवास्तेज परस्वल्पमधारयत् ।।१३
चकारचतत सृष्टिजगत पद्मसम्भव ।
तथातेषुमहाभाग पूर्वकल्पान्तरेपुवै ।।१४
देवासुरादीन्मर्त्यांश्चपश्वादीन्वृक्षवीरुध ।
ससर्जपूर्ववद्ब्रह्मानरकांश्चमहामुने ।।१५

हे देव ! आपकी ही शक्ति नित्या है, क्योंकि मैं उससे प्रेरणा पाकर ही, जल, पृथ्वी, वायु और अग्नि देवतादि एवं प्रणवादि अशेष की सृष्टि करता हूँ । इस प्रकार स्थिति और प्रलय भी स्वेच्छा से नहीं करता, वह सब भी

आपकी प्रेरणा से ही करता हूँ ॥८॥ हे भगवन्! तुम वह्निरूप भी हो। जिस समय धरती में तुम जल शुष्क करते हो तब मैं विश्व-सृष्टि एवं प्रथम पाक सम्पन्न करता हूँ, सर्वव्यापी आकाश स्वरूप आप ही हो, पञ्चरूप इस जगत् के रक्षक भी आप ही हो ॥९॥ हे भास्कर! परमात्मविद सकल यज्ञमय विष्णु स्वरूप में यज्ञ द्वारा आपकी आराधना करते हैं, आत्म-मोक्ष के आकांक्षी जितेन्द्रिय यति भी आपको परम सर्वेश्वर मानकर आपका मनन करते हैं ॥१०॥ आप देवरूप हैं, आपको प्रणाम करता हूँ, आप ही यज्ञरूप और परब्रह्म स्वरूप मानकर योगी आपका चिन्तन करते हैं, आपको प्रणाम करता हूँ ॥११॥ हे प्रभो! आप तेज को त्यागें, मैं सृष्टि की रचना के लिए उद्यत हूँ, आपका तीव्र तेज सृष्टि की रचना में बाधक है ॥१२॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—भगवान् भास्कर ने सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी की आराधना से प्रसन्न होकर अपना तीव्र तेज त्याग दिया और केवल सामान्य तेज धारण किया ॥१३॥ फिर महाभाग ब्रह्माजी ने पूर्व कल्पान्त कल्प में विश्व की सृष्टि रचना की ॥१४॥ हे महर्षि! ब्रह्माजी ने पूर्व की भाँति सुर, असुर, मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि एवं समस्त नरक की रचना की ॥१५॥

९६—कश्यप प्रजापति की सृष्टि

सृष्ट्वाजगदिदंब्रह्माप्रविभागमथाकरोत् ।
वर्णाश्रमसमुद्राद्रिद्वीपानांपूर्ववद्यथा ॥१
देवदैत्योरगादीनांसंस्थानानिपूर्ववत् ।
वेदेभ्यएवभगवानकरोत्कमलोद्भव ॥२
ब्रह्मणस्तनयोयोऽभून्मरीचिरितिविश्रुत ।
कश्यपस्तस्यपुत्रोऽभूत्काश्यपोनामनामतः ॥३
दक्षस्यतनयास्तस्य तस्य भार्यास्त्रयोदश ।
बहवस्तत्सुतास्त्वासन्देवदैत्योरगादयः ॥४

अदितिर्जनयामासदेवास्त्रिभुवनेश्वरान् ।
दैत्यान्दितिर्दनुश्चोग्रान्दानवानुरुविक्रमान् ॥५
गरुडारुणौचविनतायक्षरक्षासिवैखसा ।
कद्रू सुपावनागाश्चगन्धर्वान्सुपुवेमुनि ॥६
क्रोधायाजज्ञिरेकुल्यारिष्टायाश्चाप्सरोगणा ।
ऐरावतादीन्मातङ्गानिराचसुपुवेद्विज ॥७

माकण्डेयजी ने कहा—ब्रह्माजी ने विश्व की रचना करके पूर्व की भाँति वर्ण, आश्रम, समुद्र, गिरि और सम्पूर्ण द्वीपो का विभाजन किया ॥१॥ भगवान् ब्रह्माजी ने देवगण दैत्य एव उरगणो का रूप तथा स्थिति देवगणा से प्रारम्भ कर पूर्व की भाँति ही निर्दिष्ट किये ॥२॥ ब्रह्माजी के मरीचि नामक पुत्र से कश्यप नामक एक विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए थे जो कि कश्यप नाम से ही विख्यात हुए ॥३॥ हे विप्र ! दक्ष की तेरह कन्याऐं उनकी पत्नियाँ हुइ, जिनके गर्भ से देव, दैत्य और उरग आदि अनेक पुत्र उत्पन्न हुए ॥४॥ अदिति से त्रिभुनेश्वर देवताओ को जन्म दिया, दिति ने दैत्यो और दनु ने महापराक्रमी क्रौधी दानवो को जन्म दिया ॥५॥ विनता ने गरुण व अरुण खगा ने यक्ष व राक्षसो, कद्रू ने नागो एव मुनि ने गन्धर्वों को जन्म दिया ॥६॥ हे ब्राह्मण ! क्रोधा से कुल्यागण, रिष्टा से अप्सराऐं और ईरा से ऐरावत इत्यादि हथियो ने जन्म लिया ॥७॥

ताम्नाचसुपुवेश्येनीप्रमुखा कन्यकाद्विल ।
यासाप्रसूता खगमा श्येनभासशुकादय ॥८
इलाया पादपाजाता प्रधायायादसागणा ।
आदित्यायासमुत्पन्नाकश्यपस्येतिसन्तति ॥९
तस्याश्चपुत्रदौहित्रै पौत्रदौहित्रिकादिभि ।
व्याप्तमेतज्जगत्सूत्यातेपातासाश्चवैमुने ॥१०
तेपाकश्यपपुत्राणाप्रधानादेवतागणा ।
सात्विकाराजसास्त्वेते तामसाश्चमुनेगणा ॥११

देवान्यज्ञभुजश्चक्रेनथा त्रिभुवनेश्वरान् ।
ब्रह्मब्रह्मविदाश्रेष्ठ.परमेष्ठीप्रजापति ॥१२
तानबाधन्तसहिता· स पत्नार्दैत्य दानवा ।
राक्षसाश्चतथायुद्ध तेपामासीत्सुदारुणम् ॥१३
दिव्यवर्पसहस्रन्तुपराजीयन्तदेवता: ।
जयिनश्चाभवन्विप्रबलिनोदैत्यदानवा: ॥१४

ताम्रा से श्येनी आदि कन्याऐं उत्पन्न हुई । इन कन्याओं से ही श्येन, भास एवं शुकादि खेचरगण उत्पन्न हुए ॥८॥ इला ने पादपगणों एव प्रधा से पतङ्ग गणो ने जन्म लिया । हे ऋषिवर ! अदिति के गर्भ से उत्पन्न कश्यप की जो सन्तानें थीं ॥९॥ उनके पुत्र धेवले और नाती, धेवते आदि एव उनकी सन्तानें समस्त विश्व मे व्याप्त हो गई ॥१०॥ हे ऋषि ! कश्यप के पुत्रों मे देवता ही प्रमुख हैं, उनके त्रिविधगण, सात्विक, राजस एव तामस हैं ॥११॥ परमेष्ठ एव ब्रह्मज्ञ श्रेष्ठ प्रजापति ब्रह्माजी देवतागणो को त्रिभुनेश्वर एव यज्ञभुक् किया था ॥१२॥ किन्तु विमाताओं से उत्पन्न दैत्य, दानव और राक्षस मिलकर देवतागणों के प्रति शत्रुता का आचरण करते हुए बाधा पैदा करते थे, इसलिये उनका देवगणो के साथ हजारों वर्षो तक विकराल युद्ध हुआ । हे ब्राह्मण ! इस महायुद्ध मे देवगणों की पराजय हुई और बलवान् दैत्य व दानव जीत गये ॥१३-१४॥

ततोनिराकृतान्पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा ।
हतत्रिभुवनान्दृष्ट्वाह्यदितिर्मुनिसत्तम ॥१५
आच्छिन्नयज्ञभागाश्चक्षुचासपीडिताभृशम् ।
आराधनायसवितु परयत्नप्रचक्रमे ॥१६
एकाग्रानियताहारापरनियममास्थिता ।
तुष्टावतेजसाराशिंगगनस्थंदिवाकरम् ॥१७
नमस्तुभ्यपरासूक्ष्माभौवर्णीबिभ्रतेतनुम् ।
धामधामवतामीशधाम्नामाधारशाश्वत ॥१८

यद्रूपजीवनार्यैकवीरुधाममृतात्मकम् ।
पीयतेदेवपितृभिस्तस्मैसोमात्मनेनम ॥२६
आप्यायदाहरूपाभ्यांरूपविश्वमयन्तव ।
समेतमग्नीषोमाभ्यानमस्तस्मैगुणात्मने ॥२७
यद्रूपमृग्यजुसाम्नामैक्येनतपतेनव ।
विश्वमेतत्त्रयीसञ्ज्ञनमस्तुमेविभावसो ॥२८

जल वर्षा से उत्पन्न अशेष औषधियों को पकाने के लिये जो भास्कर मूर्ति आप धारण करते हो, उस मूर्ति को प्रणाम ॥२२॥ हे तरणे ! सस्य-पोषण हेतु हिमवर्षा इत्यादि के लिये घोर शीतपूर्ण आपका जो रूप है, आपकी उस मूर्ति को प्रणाम ॥२३॥ हे रवे ! बसन्त ऋतु काल में न अत्यन्त तेज और न अत्यन्त शीतपूर्ण आपकी जो सौम्य मूर्ति है, हे देव ! आपकी उस मूर्ति को नमस्कार ॥२४॥ अशेष देवता एवं पितृगण को तृप्ति प्रदान करने वाले अन्न को पकाने वाली आपकी जो मूर्ति है उसको नमस्कार करती हूँ ॥२५॥ सम्पूर्ण गुल्मलता के जीवन का आधार आपका जो अमृतमय रूप है, जिसे देवता और पितर भी पान करते हैं, ऐसे सोम स्वरूप आपको नमस्कार ॥२६॥ अग्नि एवं सोम दोनों रूपों के मिलन से आपका जो जगत्मय स्वरूप बना है, ऐसे आप गुणात्मा को नमस्कार ॥२८॥

यत्तुतस्मात्परंरूपमोमित्युक्त्वाभिसंज्ञितम् ।
अस्थूलानन्तममलनमस्तस्मैसदात्मने ॥२९
एवमानियतादेवीचक्रेस्तोत्रमहर्निशम् ।
निराहाराविवस्वन्तमाराधयिपुर्मुने ॥३०
ततःकालेनमहताभगवांस्तपनोऽम्बरे ।
प्रत्यक्षतामगादस्यादाक्षायण्याद्विजोत्तम ॥३१
सादर्दशमहाकूटतेजसोऽम्बरसंश्रितम् ।
जगादमेप्रसीदेतितत्त्वापश्यामिगोपते ॥३२
यथादृष्टवतीपूर्वमम्बरस्थसुदुर्दृशम् ।
निराहाराविवस्वन्तंतपन्तंतदनन्तरम् ॥३३

जगतामुपकारायतथापस्तवगोपते ।
आददानस्ययद्रूपतीव्र तस्मैनमाम्यहम् ॥१९
ग्रहीतुमष्टमासेनकालेनेन्दुमयरसम् ।
बिभ्रतस्तवयद्रूपमतितीव्र नतास्मितत् ॥२०
तमेवमुञ्चत सवरसवेवर्षणायायत् ।
रूपमाप्यायकभास्वस्तस्मैमेघायतेनम ॥२१

हे ऋषिश्रेष्ठ ! तदुपरान्त दैत्य दानवों द्वारा त्रिभुवन का हरण किया गया एवं इस प्रकार अपने पुत्रों को पराजित हुआ एवं यज्ञ भागों से वंचित किये हुए देखकर, अदिति शोक एवं पीड़ा सहित भगवान् भास्कर देव की स्तुति करने लगी ॥१५-१६॥ एकचित्त नियताहार एवं उत्तम नियम परायणता का पालन करती हुए आकाश मंडल में विद्यमान तेज राशि भगवान् सूर्यदेव की आराधना करने लगी ॥१७॥ अदिति बोली—हे शाश्वत ! आप सुन्दर सूक्ष्म सुवर्ण तन धारक हो आप ज्योति स्वरूप, ज्योतिष्कगणों में मुख्य एवं ज्योति के आधार हो, आपको नमस्कार ॥१८॥ हे गोपते ! विश्व का कल्याण करने के लिये जल ग्रहण करने वाली आपकी तीव्र मूर्ति को नमस्कार ॥१९॥ आठ महीने की अवधि पर्यन्त इन्दुमय रस ग्रहण करने वाली आपकी अत्यन्त तीव्र मूर्ति को प्रणाम करती हूं ॥२०॥ हे भगवन् ! उस एकत्रित सम्पूर्ण रस को परित्याग कर वर्षा करने के लिये आप जो तृप्ति कारक मेघ रूप धारण करते हो, उस मेघरूप आपकी मूर्ति को प्रणाम ॥२१॥

वार्युत्सर्गविनिष्पन्नमशेषश्चौषधीगणम् ।
पाकायतवयद्रूपभास्करतनमाम्यहम् ॥२२
यच्चरूपतवातीतहिमोत्सर्गादिशीतलम् ।
तत्कालसस्यपोषायतरणेतस्यतेनम ॥२३
नाति तीव्र चयद्रूपनातिशीतवयत्तव ।
वसन्तर्तौरवेसौम्यतस्मैदेवनमोनमः ॥२४
आप्यायनमशेषाणांदेवानाचतथापरम् ।
पितृणाचनमस्तस्मैमस्यानाधारहेतव ॥२५

यद्रूपजीवनार्यकवीरुधाममृतात्मकम् ।
पीयतेदेवपितृभिस्तस्मैसोमात्मनेनम ॥२६
आप्यायदाहृन्पाम्यात्पविश्वमयन्तुव ।
समेतमग्नीषोमाम्यानमस्तस्मैगुणात्मने ॥२७
यद्रूपमृग्यजु साम्नामैक्येनतपतेतव ।
विश्वमेतत्त्रयीसज्ञनमन्तमैविभावसो ॥२८

जल वर्षा से उत्पन्न अशेष औषधियों को पकाने के लिये जो भास्कर मूर्ति आप धारण करते हो, उस मूर्ति को प्रणाम ॥२२॥ हे तरणे ! शस्य-पोषण हेतु हिमवर्षा इत्यादि के लिये घोर शीतपूर्ण आपका जो रूप है, आपकी उस मूर्ति को प्रणाम ॥२३॥ हे रवे ! बसन्त ऋतु काल में न अत्यन्त तेज और न अत्यन्त शीतपूर्ण आपकी जो सौम्य मूर्ति है, हे देव ! आपकी उस मूर्ति को नमस्कार ॥२४॥ अशेष देवता एवं पितृगण को तृप्ति प्रदान करने वाले अन्न को पकाने वाली आपकी जो मूर्ति है उसको नमस्कार करती हूँ ॥२५॥ सम्पूर्ण गुल्मलता के जीवन का आधार आपका जो अमृतमय रूप है, जिसे देवता और पितर भी पान करते हैं, ऐसे सोम स्वरूप आपको नमस्कार ॥२६॥ अग्नि एवं सोम दोनों रूपों के मिलन से आपका जो जगत्मय स्वरूप बना है, ऐसे आप गुणात्मा को नमस्कार ॥२८॥

यत्तुतस्मात्परंरूपमोमित्युक्त्वाभिशब्दितम् ।
अस्थूलानन्तममलनमस्तस्मैसदात्मने ॥२९
एवंसानियतादेवीचक्रे स्तोनमहर्निशम् ।
निराहाराविवस्वन्तमाराधयिपुर्मुने ॥३०
तत कालेनमहताभगवास्तपनोऽम्बरे ।
प्रत्यक्षतामगादस्यादाक्षायण्याद्विजोत्तम ॥३१
साददर्शमहाकूट तेजसोऽम्बरसश्रितम् ।
जगादमेप्रसीदतिनत्वापश्यामिगोपते ॥३२
यथाहष्टवतोपूर्वमम्बरस्थसुदुर्द्दशम् ।
निराहाराविवस्वन्ततपन्तनदनन्तरम् ॥३३

सघाततेजसातद्वदिहृपश्यामिभूतले ।
प्रसादकुरुपश्येययद्रूपन्नेदिवाकर ।
भक्तानुकम्पकविभोभक्ताहृपाहिमेसुतान् ।।३४

इसके अतिरिक्त आपका जो उत्तम सूक्ष्म, अनन्त एव स्वच्छ ओंकार रूप कहा जाता है उस नित्यस्वरूप का नमस्कार ।।२६।। मार्कण्डेयजी ने कहा—हे ऋषिवर ! अदिति देवी इस प्रकार नियमपरायण एव निराहार जीवन पालन कर भास्कर भगवान् की आराधना करने की आकाक्षा से दिन रात उनकी स्तुति करने लगी ।।३०।। हे द्विजश्रेष्ठ ! इसके पश्चात् बहुत समय व्यतीत होने पर भगवान् सूय गगन स्थित हुए दक्ष सुता के समक्ष दिखाई देने लगे ।।३१।। जो एकदम चमकने वाली अ शुमाला द्वारा आकाश मडल मे भी स्पष्ट दशनीय नही थे, उन्ही तेजराशि स्वरूप रवि भगवान् को अदिति ने पृथ्वी के तल पर विद्यमान देखा । उन्हें देखकर अदिति बहुत भयभीत हुई और बोली—"हे गोपते ! आप मुझ पर प्रसन्न होवें, मैं आपको देख नही सकती ।।३२।। प्रारम्भ मे निराहार होकर आकाश मे विद्यमान असहनीय सूयदेव को जिस प्रकार तप्तता प्रदान करते देखा, अब इस धरातल पर भी मैं उसी प्रकार तीव्र तेजवान् मूर्ति को देख रही हूँ । हे दिनकर ! मुझ पर प्रसन्न होवें, जिससे मैं आपको स्वाभाविक स्वरूप का दर्शन कर सकूँ । हे प्रभो ! आप भक्तो पर कृपा करते हैं, मैं आपकी भक्त हू, आप मेरे पुत्रो की रक्षा करें ।।३३-३४।।

त्वधाताविसृजसिविश्वमेतत्त्वपासिस्थितिकरणायसप्रवृत्त ।
वय्यन्तेलयमखिलप्रयातितात्त्वत्तोऽन्यानहिगतिरस्तिसर्वलोके ।।३५
त्वब्रह्माहरिरजसज्ञितस्त्वमिन्द्रोवित्तेश पितृपतिरप्पति समीर ।
सोमाऽग्निर्गगनपतिर्महीधरोऽब्धि ।
किंस्तव्यतवसकलात्मरूपधाम्न ।।३६
यज्ञेशत्वामनुदिनमात्मकर्मसक्ता ।
स्तुवन्तोविविधपदैर्द्विजायजन्ति ।
ध्यायन्तोविनियतचेतसोभवन्तयोगस्था परमपद प्रयातिम्मर्त्या ।।३७

तपसिपचसिविश्व पासिभस्मीकरोषि,
प्रकटयसिमयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भे ।
सृजसिक मलजन्मापालयस्य,
च्युतास्य क्षपयसिचयुगातेरुद्ररूपस्त्वमेकः ॥३८

आप ब्रह्मा के रूप मे इस जगत् के जन्मदाता हैं, जगत् की सृष्टि के पश्चात् स्थिति काल मे इसका पोषण करते हैं एव प्रलय काल म सम्पूर्ण तत्त्व आप मे ही विलीन होते हैं। इसलिए सभी लोगो मे आपके अतिरिक्त अन्य कोई मति नही है ॥३५॥ आप ब्रह्मा, हरि, अजव्रजित शिव, इन्द्र, धनपति कुवेर, यम, वरुण एव समीर हैं और आप ही अग्नि, आकाश, पृथ्वी का आधार एव सागर हैं। आप ही समस्त तेज पदार्थों के आत्मरूप हैं, अधिक आपकी क्या स्तुति करूँ ? ॥३६॥ हे यज्ञेश! आपके कर्मोंमे लीन ब्राह्मण लोग प्रतिदिन विभिन्न छन्दो द्वारा स्तुति करके आपकी पूजा करते हैं। एकाग्रचित्त योगी पुरुष आपका ध्यान करते हुए परमधाम प्राप्त करते हैं ॥३७॥ विश्व को उष्णता प्रदान कर्त्ता तुम ही जगत् को रक्षित, भस्म किरणो द्वारा प्रकाशित करते हो एव जल गर्भ को भेदने वाली किरणों के समूह स आह्लादित एव पुन उत्पन्न करते हो, देवगण व मनुष्य सदैव आपको प्रणाम करत हैं और पापी मनुष्य एकचित्त होन पर भी आपको प्राप्त नहीं कर मक्त ॥३८॥

९७—अदिति के गर्भ से आदित्य का जन्म

तत स्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतोविभावसु ।
अदृश्यनतदादित्यस्तप्तनाम्रोपमप्रभ ॥१॥
अथताप्रणतादेवीतस्यसदर्शनान्मुने ।
प्राहभास्वान्वृणुष्वेष्टवरमत्तायमिच्छसि ॥२
प्रणताशिरसासाचजानुपीडितमेदिनी ।
प्रत्युवाचविवस्वन्तवरद समुपस्थितम् ॥३

ततोरश्मिसहस्रात्तु सौषुम्नाम्यो रवे कर: ।
विप्रावतारसचक्रे देवमातुरथोदरे ॥११
कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिसाचचक्रे समाहिता ।
शुचि मधारयामासदिव्यगर्भमितिद्विज ॥१२
ततस्ताकश्यप प्राहकिञ्चत्कोपप्लुताक्षरम् ।
किम्मारयसिगर्भाण्डमितिनित्योपवासिनी ॥१३
साचतप्राहगर्भाण्डमेतत्पश्येतिकोपना ।
नमारितविपक्षाणांमृत्यवेतद्भविष्यति ॥१४

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे ब्राह्मण ! उसके पश्चात् जल शुष्क करने वाले भगवान् भास्कर प्रसन्नतापूर्वक नतमस्तक अदिति से बोले ।।८।। हे अदिते ! सहस्रांशु तुम्हारे गर्भ से मैं जन्म लूँगा और तुम्हारे पुत्रगण के शत्रु समस्त दैत्य व दानवों को समूल नष्ट करूँगा । तुम्हारे पीड़ित पुत्र तुरन्त ही सुखी होंगे ।।९।। इस प्रकार वर देकर भगवान् भास्कर अदिति के सामने से अन्तर्धान हो गये और अदिति ने भी मनोवांछित वर प्राप्त करके तपस्या त्याग दी ।।१०।। हे ब्राह्मण । तदुपरान्त सूर्य की सौ पुत्र किरण सहस्रांशु से अदिति के गर्भ से अवतरित हुई ।।११।। हे ब्राह्मण ! वह अदिति सावधानी पूर्वक कृच्छ्रचांद्रायण आदि व्रत व अनुष्ठान करती हुई पवित्रता पूर्वक दिव्य गर्भ धारण करने लगी । तब कश्यप जी ने क्रोधित हो कहा—तुम प्रतिदिन उपवास करके अपने इस गर्भ को नष्ट करोगी ।।१३।। अदिति बोली—"हे कुपित स्वभाव, मैं इस गर्भ को नष्ट नहीं कर रही, यह तो शत्रु दैत्य और दानवों का दमन करने वाला होगा ।।१४।।

इत्युक्त्वातत्तदागर्भमुत्ससर्जसुरारणि ।
जाज्वल्यमानतेजाभि पत्युर्वचनकोपिता ।।१५
तदृष्ट्वाकश्यपोगर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ।
तुष्टावप्रणतोभूत्वाऋग्भिराद्याभिरादरात् ।।१६
संस्तूयमान सतदागर्भाण्डात्प्रकटोऽभवत् ।
पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसाव्याप्तदिङ्मुख ।।१७

अथान्तरिक्षादाभाष्यकश्यपमुनिसत्तमम् ।
सतोयमेघगम्भीरवागुवाचाशरीरिणी ॥१८
मारिततेयत प्रोक्तमेतदण्डस्त्वयामुने ।
तस्मान्मुनेसुतस्तेऽयमार्त्तण्डाख्योभविष्यति ॥१९
सूर्याधिकारचविभुर्जगत्येषकरिष्यति ।
हनिष्यत्यसुराश्चायंयज्ञभागहरानरीन् ॥२०
देवानिशम्येतिवचोगगनात्समुपागमन् ।
प्रहर्षमतुलयातादानवाश्चत्द्तौजस ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार कह देवमाता अदिति पति के वचनो को सुनकर तेज एव जाज्वल गर्भ को परित्याग किया ॥१५॥ उगते हुए सूय के तुल्य प्रभावान् उस गर्भ को देख कर कश्यप आदर सहित नत-मस्तक होकर मत्रोच्चारण द्वारा स्तुति करने लगे ॥१६॥ कश्यप की स्तुति का सुन कर वह भास्कर तेजस्वी किरणो को दिशाओ मे फैलाते हुए पद्मपत्र तुल्य वर्णयुक्त होकर गर्भाण्ड से प्रकट हुए ॥१७॥ इसके पश्चात् जलपूर्ण मेघ के समान अतरिक्ष के मध्य कोई विदेह वाणी ऋषिवर कश्यप को सम्बोधित करते हुए कहने लगी ॥१८॥ हे ऋषि, आपने इस अण्ड को 'मरित' कहा, इसलिए आपके इससे उत्पन्न पुत्र का नाम मार्तण्ड होगा ॥१९॥ यह महा-पुरुष, विश्व मे सूर्य की भाँति तेजस्वी होगे एव आपके देव पुत्रो के यज्ञ भाग हरने वाले दैत्य, दानव और असुरो का विनाश करेंगे ॥२०॥ अतरिक्ष वाणी के इन वचनो को सुन कर देवगण अत्यन्त हर्षित होकर आकाश से आये एव दैत्य, दानवगण तेज विहीन हो गये ॥२१॥

ततोयुद्धायदैतेयानाजुहावशतक्रतु ।
सहदेवैर्मुदायुक्तोदानवाश्चसमभ्ययु ॥२२
तेषायुद्धमभूद्घोरदेवानामसुरैः सह ।
शस्त्रास्त्रदीप्तिसदीप्त समस्तभुवनान्तरम् ॥२३
तस्मिन्युद्धे भगवतामार्त्तण्डेननिरीक्षिता ।
तेजसादह्यमानास्तेभस्मीभूतामहासुराः ॥२४

ततःप्रहर्षमतुलंप्राप्ता. सर्वेदिवौकसः ।
तुष्टुवुस्तेजसांयोनिमार्त ण्डमदितितथा ॥२५
स्वाधिकारांस्तथाप्राप्तायज्ञभागांश्चपूर्ववत् ।
भगवानपिमार्तण्ड.स्वाधिकारमथाकरोत् ॥२६
कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वचरश्मिभिः ।
वृत्ताग्निपिण्डसदृशोदग्धे नातिस्फुरद्वपुः ॥२७

उसके पश्चात् सुरगण सहित इन्द्र ने दैत्यों को युद्ध के लिये आमन्त्रित किया तो वे उत्साहपूर्वक आये ॥२२॥ उस समय दानवों से सुरगण का भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया और त्रिभुवन सुरों व असुरों के शस्त्रास्त्रों की चमक से भी उसी प्रकार तेजपूर्ण हो गया ॥२३॥ उस महाभयंकर संघर्ष में तमोगुण युद्ध में असुरगण भगवान् मार्तण्ड के तेज द्वारा नष्ट हो गये और देवगण शक्तिमान् होकर हर्ष मनाने लगे उन्होंने सूर्य भगवान् और अदिति की स्तुति की ॥२४-२५॥ अब देवता अपने अधिकार को पुनः प्राप्त करके यज्ञ भाग पाने लगे और सूर्य भगवान् और भी अधिक प्रकाशमान होकर आकाश में कदम्ब पुष्प की तरह स्थित होकर सर्वांग तेजोमयी किरणों का प्रसार करने लगे ॥२६:२७॥

९८—भानुतन लेखन

अथतस्मैददौकन्यांसंज्ञांनामविवस्वते ।
प्रसाद्यप्रणतोभूत्वाविश्वकर्मा प्रजापतिः ॥१
वैवस्वतस्तुसम्भूतोमनुस्तस्यांविवस्वतः ।
पूर्वमेवतथाख्याततत्स्वरूपंविशेषतः ।
भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामिमार्त ण्डस्यमहात्मनः ।
चरितंहृतियत्पापकलौसंशृण्वतांनृणाम् ॥२
त्रीण्यपत्यान्यसौतस्यांजनयामासगोपतिः ।
द्वौपुत्रौसुमहाभागौकन्याञ्चयमुनांमुने ॥३

मनुर्वैवस्वतोज्येष्ठ श्राद्धदेव प्रजापति ।
ततायमोयमीचैवयमलौसबभूवतु ॥४
यत्तेजोऽस्यधिकतस्यमार्तंडस्यविवस्वत ।
तेनातितापयामासत्रींल्लोकन्सचराचरान् ॥५
गोलाकारन्तुतद्दृष्ट्वासञ्ज्ञारूपविवस्वतः ।
असहन्तीमहत्तेज स्वाछायाप्रेक्ष्यसाऽब्रवीत् ॥६
अहयास्यामिभद्र तेस्यमेवभवनपितु ।
निर्विकारत्वयाप्यत्रस्थेयमच्छासनाच्छुभे ॥७
इमौचबालकौमह्य कन्याचवरवर्णिनी ।
सभाव्यौनैवचाख्येयमिद भगवतेत्वया ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—तदनन्तर प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्य नारायण ने सम्मुख प्रणत होकर उन्हे प्रसन्न किय। और अपनी 'सज्ञा' नाम की कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया सज्ञा के गर्भ से जिन 'वैवस्वत मनु, का जन्म हुआ उनका वर्णन विस्तार पूर्वक पहले ही किया जा चुका है। यह सुनकर कौष्टिक ने प्रार्थना की कि उसके पश्चात् मार्तण्ड का जो कुछ और चरित्र हो उसको भी मैं सुनना चाहता हूँ, क्योंकि उनका पुण्य चरित्र कलि-काल के पापो को मिटाने वाला है। मार्कण्डेय जी कहने लगे कि सज्ञा से सूर्य-भगवान् के तीन सतानें उत्पन्न हुई, वैवस्वत मनु तथा यम नामक दो पुत्र और यमुना नाम की पुत्री इनमें से वैवस्वत मनु ज्येष्ठ हैं और उनके पश्चात् यम और यमी जुडवां भाई-बहिन उत्पन्न हुए। उस समय का सूर्य का तेज बहुत अधिक था जिससे वह तीनो लोको को बहुत अधिक तप्त करते थे। उनकी पत्नी सज्ञा उस महान् तेज को सहन करने मे असमर्थ हुई और उसने अपनी छाया से एक बार कहा—हे शुभे ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं अपने पिता के घर जाती हूँ। तुम मेरी आज्ञानुसार यही रह कर मेरी इन तीनो सन्तानो को प्रेमपूर्वक पालन करती रहना और इस वृतान्त को सूर्य भगवान् को कभी मालूम न होने देना ॥१-८॥

आवेशग्रहणाद्देविप्राशापान्नैवकर्हिचित् ।
आख्यास्यामिमततुभ्यगम्यतायत्रवाञ्छितम् ॥९
इत्युक्ताछाययासज्ञाजगामपितृमन्दिरम् ।
तत्रावसत्पितुर्गेहेकञ्चित्कालशुभेक्षणा ॥१०
भर्तु समीपयाहीतिपित्रोक्तासापुन पुन ।
अगच्छद्वडवाभूत्वाकुरुन्विप्रोत्तरांस्तत ॥११
तत्रतेपेतप साध्वीनिराहारामहामुने ।
पितु समीपयाताया सज्ञायावाक्यतत्परा ॥१२
तद्रूपधारिणीछायाभास्करसमुस्थिता ।
तस्यांचभगवान्सूर्य्य सज्ञेयमितिचिन्तयन् ॥१३
तथैवजनयामासद्वौसुतौकन्यकांतथा ।
पूर्वजस्यमनोस्तुल्य सावर्णिस्तेसोऽभवत् ॥१४
यस्तयो प्रथमजात पुत्रयोर्द्विजसत्तम ।
द्वितीयोयोऽभवत्तान्य सग्रहोऽभूच्छनैश्चर ॥१५

छाया ने कहा—जब तक सूर्य भगवान् जब तक दण्ड देने के भाव से मेरे केश नही पकडेंगे अथवा शाप देने को उद्यत न होंगे तब तक मैं इस रहस्य को कदापि प्रकट न होने दूँगी। यह सुन कर सज्ञा अपने पिता के घर चली गई और कुछ समय तक वही निवास करती रही। इसके पश्चात् जब उसके पिता विश्वकर्मा ने उससे पति के घर जाने का कहा तो वह वडवा (घोडी) का रूप धारण करके उत्तर कुरु प्रदेश में जाकर निराहार तपस्या करने लगी। इस बीच मे छाया सज्ञा सूर्य भगवान् की सेवा करती रही और उन्होंने उसे अपनी पत्नी सज्ञा ही समझकर उससे भी दो सन्तानें उत्पन्न कीं इनमें से एक सावर्णि मनु और दूसरे शनिश्चर (ग्रह) थे ॥९-१५॥

कन्यायाभूतपतीयातावत्रेसवरणोनृप. ।
मन्वातुपार्थिवीतेपामात्मजानायथाऽकरोत् ॥१६
स्नेहान्नपूर्वजातानातथाऽन्यतीसती ।
मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्यायमश्चास्यानचक्षमे ॥१७

बहुशोयाच्यमानस्तुपितु पत्न्यासदु खित ॥
सव कोपाच्चबाल्याच्चभाविनोऽर्थस्यवैबलात् ॥१८
पदामन्तर्जयामासछायासज्ञायमोमुने ॥
तत शशापचयमसज्ञासामर्षिणीभृशम् ॥१६
पदातर्जयसेयस्मात्पितृभार्य्यागरीयसीम् ।
तस्मात्तवैषचरण पतिष्यतिनसशय ॥२०

छाया के गर्भ से एक 'तपती' नाम की कन्या भी हुई जिसका विवाह यथा समय सवरण नामक नृप से किया गया। छाया-सज्ञा अपनी सन्तानों से जितना अधिक स्नेह करती थी उतनी प्रथम पत्नी की तीनों सन्तानो से नहीं करती थी। उसके इस पक्षपात पूर्ण व्यवहार को देखकर वैवस्वत मनु ने तो कुछ न कहा पर यम के दूत उसे सहन न कर सके और एक बार उन्होने रोष पूर्वक तथा होनहार के वशीभूत होकर छाया सज्ञा को डाट कर मारने के लिये पैर उठाया। इस पर छाया को बडा क्रोध आया और उसने कहा—कि मैं तुम्हारे पूजनीय पिता की पत्नी हू, फिर भी तुमने मुझे मारने को लात उठाई इसके फल स्वरूप तुम्हारा यह पैर कट कर गिर जायगा" ॥१६-२०॥

यमस्तुतेनशापेनभृशपीडितमानस ।
मनुनासहधर्मात्मासर्वपित्रेन्यवेदयत् ॥२१
स्नेहेनतुल्यमस्मासुमातादेवनवर्तते ।
विसृज्यज्यायसोऽप्यस्मान्कनीयासोबुभूर्षति ॥२२
तस्यामयोद्यत पादोनतुदेहेनिपातित ।
बाल्याद्वायदिवामोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥२३
शप्तोऽहतातकोपेनजनन्यातनयोयत. ।
ततोनमन्येजननीमिमावैतपतावर ॥२४
विगुणेष्वपिपुत्रेपुनमाताविगुणापित ।
पादस्तेपततापुत्रकथमेतत्प्रवक्ष्यति ॥२५
तवप्रसादाच्चरणोनपतेद्भगवन्यथा ।
मातृशापादयमेऽद्यतथाचिन्तयगोपते ॥२६

इस शाप को सुनकर यम बड़े दुःखी हुए और पिता के पास जाकर सब वृत्तान्त उनको सुनाया और कहा कि हे देव ! माता हमारी अपेक्षा छोटे भाई-बहिनों का अधिक स्नेह और पालन-पोषण करती है। इससे असन्तुष्ट होकर बाल-स्वभाव वश अथवा भूल से मैंने उसकी ओर लात उठाई, पर मारा नहीं। फिर भी मैं उस अपराध को आपसे क्षमा चाहता हूँ॥ यम ने फिर कहा—पिता जी ! यदि कोई पुत्र दुष्ट, दुराचारी होता है तो भी माता उसका कभी अहित नहीं करती। पर उसने क्रोध करके 'तुम्हारा पैर गिर जाय' ऐसा जो शाप दे डाला इससे मुझे वह अपनी माता नहीं जान पड़ती। अब आप ऐसी कृपा करें कि माता के क्रोध पूर्वक दिये शाप के कारण मेरा यह पैर न गिरे ॥२१-२६॥

अमशयमिदपुत्रभविष्यत्यत्रकारणम् ।
येनत्वामाविशत्क्रोधोधर्मज्ञ सत्यवादिनम् ॥२७
सर्वेषामेवशापानांप्रतिघातोहिविद्यते ।
नतुमात्राभिशप्तानांक्वचिच्छापनिवर्तनम् ॥२८
नशक्यमेतन्मिथ्यातुकर्तुं मातुर्वचस्तव ।
किञ्चित्तेविधास्यामिपुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥२९
कृमयोमांसमादायप्रयास्यन्तिमहीतलम् ।
कृततस्यावच सत्यत्वंचत्रातोभविष्यसि ॥३०
आदित्यस्त्वब्रवीच्छायाकिमर्थंतनयेषुवै ।
तुल्येष्वप्यधिकःस्नेहएकत्रक्रियतेत्वया ॥३१
नूनंनैषात्वजननीमज्ञाऽपित्वमागता ।
विगुणेष्वप्यपत्येषुकम्प मातानपेक्षनम् ॥३२

सूर्य भगवान् ने कहा—पुत्र ! तुम धर्मज्ञाता और सत्य परायण होकर भी जब क्रोध के वशीभूत हो गये तो उसका यह दुष्परिणाम होना सम्भव है। और सब शापों से छुटकारा मिल सकता है पर माता के शाप से बच सकने का कोई मार्ग नहीं है। इसलिये तुम्हारी माता के वचनों को मिथ्या करने में तो असमर्थ हूँ पर तुम्हारी हित के कारण कोई अन्य उपाय-बतलाऊँगा। जिस

से तुम्हारी माता की बात पूरी हो जाय और तुम्हारा पैर भी बच जाय। इस-लिये ऐसा होगा कि कृमि तुम्हारे पैर का मांस लेकर पृथ्वी तल पर डाल देंगे—ऐसा होने पर तुम्हारी माता का शाप पूरा हो जायगा और फिर तुम्हारा पैर भी ठीक हो जायगा। इसके पश्चात् सूर्य भगवान् ने छाया से कहा कि—तुम्हारे लिये सभी सन्तान समान रूप से प्रिय होनी चाहिये। पर ऐसा न करके तुम किसी के प्रति कम और किसी से अधिक स्नेह करती हो। इससे मालूम पड़ता है कि तुम इनकी माता नहीं हो, यदि माता होती तो पुत्र को ऐसा शाप नहीं दे सकती थीं" ॥ २७-३२ ॥

सातत्परिहरन्तीचनाचचक्षेविवस्वतः ।
सचात्मानसमाधाययुक्तस्तत्त्वमपश्यत ॥३३
तशात्मुयतदृष्ट्वाछायासञ्ज्ञादिवस्पतिम् ।
भयेनकपिताब्रह्मन्यथावृत्तन्यवेदयेत् ॥३४
विवस्वास्तुततोक्रुद्धश्रुत्वाश्वसुरमभ्यगात् ।
सचापितयथान्यायमर्चयित्वादिवाकरम् ।
निर्दग्धुकामरोषेणसान्त्वयामाससुव्रत ॥३५
तवातितेजसाव्याप्तमिदरूपसुदुःसहम् ।
असहन्तीतत सञ्ज्ञावनेचरतिवैतपः ॥३६
द्रक्ष्यतेताभवानद्यस्वभार्याशुभचारिणीम् ।
रूपार्थं भवतोऽरण्येचरन्तीसुमहत्तप ॥३७
स्मृतमेब्रह्मणोवाक्ययदितेदेवरोचते ।
रूपनिवर्तयाम्येतत्तवकान्तदिवस्पते ॥३८
यतोहिभास्वतोरूपप्रागासीत्परिमण्डलम् ।
ततस्तथेतितप्राहत्वष्टारभगवान्रविः ॥
विश्वकर्मात्वनुज्ञातःशाकद्वीपेविवस्वत ।
अभिमारोप्यतत्तेज शातनायोपचक्रमे ॥४०

तब छाया सञ्ज्ञा ने सत्य बात छिपा कर कुछ बहाना बना दिया इस पर सूर्य भगवान् ने आत्मिक दृष्टि से समस्त घटना की वास्तविकता जान ली और

थे छाया-संज्ञा को शाप देने के लिये उद्यत हुये। इस पर छाया-संज्ञा भयभीत होकर काँप उठी और जो कुछ घटना घटी थी वह सब खोल कर सुनादी। सारा हाल जान कर सूर्य को बड़ा क्रोध पैदा हुआ और मन में आया समस्त विश्व को दग्ध कर दें। तब विश्व-कर्मा ने उनकी यथाविधि पूजा करके उनको शान्त किया और कहा कि तुम्हारे इस अत्यन्त दुःसह तेज को सहन न कर सकने से संज्ञा तप करने चली गई है। उसे अब भी एकान्त वन में तपस्या और संयम का पालन करते देख सकते हैं। अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं आपके वर्तमान रूप और आकार को सौम्य और दर्शनीय रूप में परिवर्तन करूँ। सूर्य भगवान् ने विश्व की बातों से संतुष्ट और प्रसन्न होकर कहा—'ऐसा ही करो।' तब भगवान् भास्कर शाकद्वीप में चले गये और विश्व कर्मा उन्हें खराद के समान घुमाकर नवीन सौम्य रूप देने लगे ॥ ३३-४० ॥

भ्रमताऽशेष जगता नाभिभूतेनभास्वता ।
समुद्राद्रिवनोपेतासारुरोहमहीनभः ॥४१
गगनश्चाखिलब्रह्मन्सचन्द्रग्रह तारकम् ।
अघोगतमहाभागबभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥४२
विक्षिप्त सलिलाःसर्वेबभूवुश्चतथाव्धय. ।
व्यभिद्यन्तमहाशैला.शीर्णमानुनिबन्धना ॥४३
ध्रुवाधाराण्यशेषाणिधिष्ण्यानिमुनिसत्तम ।
त्रुट्यद्रश्मिनिबन्धानिह्यधोजग्मु सहस्रशः ॥४४
वेगभ्रमण संजातवायुक्षिप्ता.समन्ततः ।
व्यशीर्यंतमहामेघाघोर रावविराविण. ॥४५
भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तभूम्याकाशरसातलम् ।
जगादाकुलमत्यर्थंतदासीन्मुनिसत्तम ॥४६
त्रैलोक्येसकलेविप्रभ्रममाणेसुरर्षयः ।
देवाश्चब्रह्मणासार्द्धंभास्वन्तमभितुष्टुवु ॥४७
आदिदेवोऽसिदेवानाज्ञातमेतत्स्वरूपतः ।
स्वर्गस्थित्यन्तकालेपुत्रिधाभेदेनतिष्ठसि ॥४८

स्वस्तितेऽस्तुजगन्नाथधर्मवर्पाहिमाकर ।
जुपस्वशान्ति लोकाना देवदेवदिवाकर ॥४९
इन्द्रश्चागत्यतदेवलिख्यमानयथाऽस्तुवत् ।
जयदेवजगद्व्यापिञ्जयाशेष जगत्पते ॥५०

मार्कण्डेय जी कहने लगे—समस्त विश्व के नाभि स्वरूप भगवान् भास्कर के घूमने से समुद्र, पर्वत, वन, जलस्रोत, पृथ्वी, आकाश आदि अस्थिर होने लगे। उस समय चन्द्रमा, ग्रह, तारागण आदि के सहित सम्पूर्ण गगन-मण्डल ही नीचे गिरता हुआ सा जान पड़ने लगा। समस्त सागर, नदी, जलाशयो की जलराशि मे हलचल पैदा होगई और महापर्वतो के शिखर-बिखरने लगे। *ध्रुव अपने स्थान से च्युत होने लगा और इससे समस्त आकाशस्थ पिंडो* की स्थिति उलटी-पलटी होने लगी। सब नीचे गिरने लगे। वायु भी महा भयङ्कर वेग से चक्कर काटने लगी और महामेघ घोर शब्द करने लगे। इस प्रकार सूर्य भगवान् के घूम जाने पर पृथ्वी, आकाश और रसातल म सर्वत्र विशृंखलता, गड़बड़ी उत्पन्न होकर समस्त विश्व मे आकुलता फैल गई। इस प्रकार त्रिलोक घूम जाने से सर्वत्र सङ्कट आया देखकर देवर्षि, देवगण, ब्रह्मा आदि भगवान् आदित्य की स्तुति, प्रार्थना करने लगे—आप समस्त देवो मे आदि देव हैं *आपकी महिमा सर्वत्र विदित है, आप ही स्वर्ग आदि समस्त लोकों* और अखिल भुवनो की स्थिति का कारण है, आप ही सबकी रक्षा और कल्याण करने वाले हैं। हे जगन्नाथ ! आप ही ग्रीष्म, वर्षा और शीत स्वरूप हैं। हे सब देवो में महान् दिवाकर देव ! प्रसन्न होकर त्रिलोक की व्याकुलता को दूर करो। स्वर्गाधिपति इन्द्र ने भी आकर सूर्य भगवान् की स्तुति की—हे देव ! आप ही सर्वत्र व्याप्त है, आपकी जय हो, हे अखिल जगत् पति आपकी जय हो ॥४१ से ५०॥

ऋषयश्चतत सप्तवसिष्ठात्रिपुरोगमा ।
तुष्टुवुर्बिविधैःस्तोत्रैं स्वस्तिस्वस्तीतिवादिन ॥५१
वेदोक्ताभिरथाग्र्याभिर्वालखिल्याश्चतुष्टुवु ।
भास्वन्तमृग्भिराद्याभिर्लिख्यमानमुदायुता ॥५२

त्वंनाथमोक्षिणांमोक्षोध्येयस्त्वंध्यानिनांपरः ।
त्वंगतिःसर्वभूतानाकर्मकाण्डेऽपिवर्ततांम् ॥५३
शप्रजाम्योऽस्तुदेवेशशन्नोऽस्तुजगताम्पते ।
शन्नोऽस्तुद्विपदेनित्यंशन्नश्चास्तुचतुष्पदे ॥५४
ततोविद्याधरगणायक्षराक्षसपन्नगाः ।
कृताञ्जलिपुटाःसर्वेशिरोभि प्रणतारविम् ॥५५
ऊचुरवं विधावाचो मन श्रोत्रसुखावहाः ।
सह्यं भवतुतेतेजोभूतानाभूतभावन ॥५६

इसके पश्चात् वसिष्ठ, अत्रि आदि सातो ऋषियों ने स्वस्ति वचन उच्चारण करके सूर्य भगवान् की अनेक प्रकार से स्तुति की। वालखिल्य ऋषि भी ऋग्वेद के आद्य वचनो द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगे—"हे भगवन्! आप ही मुमुक्षजनों को मोक्ष प्रदान करने वाले, ध्यानी पुरुषो के ध्येय और धर्मकाण्ड वालो को शुभ फल देने वाले तुम्ही हो। हे देव! हे जगन्नाथ! आप समस्त प्रजा का, हमारा और हमारे द्विपद तथा चतुष्पद जीवो का कल्याण करो। फिर विद्याधर, यक्ष, राक्षस, पन्नग आदि सब हाथ जोडकर सूर्य भगवान् को प्रणाम करके कहने लगे—हे भगवन्! आपका तेज समस्त छोटे-बडे जीवो के सहन करने योग्य हो। सब कोई उससे सुखी हो सकें ॥५१ से ५६॥

ततोहाहाहूहूश्चैवनारदस्तुम्बुरुस्तथा ।
उपगायितुमारब्धागान्धर्वकुशलारविम् ॥५७
षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः ।
मूर्च्छनाभिश्चतानैश्चसप्रयोगं सुखप्रदम् ॥५८
विश्वाचीचघृताचीचउर्वश्यथतिलोत्तमा ।
मेनकासहजन्याचरम्भाचाप्सरसांवरा ॥५९
ननृतुर्जगनामीशेलिख्यमानेविभावसो ।
भावभावविलासाढ्यान्कुर्वन्तोऽभिनयावहून् ॥६०

प्रावाद्यन्ततस्तत्रवेणुवीणादिझर्झरा ।
पणवा पुष्कराश्चैवमृदङ्गा पटहानका: ॥६१
देवदुन्दुभय शङ्खा शतशोऽथसहस्रश: ।
गायद्भिश्चैवगाधर्वंनृत्यद्भिश्चाप्सरोगणै: ॥६२
तूर्यवादित्रघोपैश्चसर्वकोलाहलीकृतम् ।
तत कृताञ्जलिपुटाभक्तिनम्रात्समूर्तय ॥६३
लिख्यमानसहस्राशु प्रणेमु सर्व देवता: ।
तत कोलाहलेतस्मिन्सर्व देवसमागमे ।
तेजस शातनञ्चक्रे विश्वकर्माशनै शनै ॥६४
इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसस्तुतस्य ।
तनुपरिलिखननिशम्यभानोर्व्रजतिदिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥६५

(इसके अनन्तर सगीत शास्त्र मे निपुण हाहा-हूहू, तुम्बरु, नारद आदि षडज, मध्यम और गाधार तीनो ग्रामो तथा मूर्च्छना, ताल आदि के नियमानुसार सूर्य भगवान् के सम्मुख श्रेय गायन करने लगे ॥५७-५८॥ उसी अवसर पर विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या, रम्भा आदि स्वर्ग की अप्सराऐ भी सूर्य भगवान् के नवीन रूप से प्रसन्न होकर हाव-भाव पूर्वक तरह तरह के नृत्यो का प्रदर्शन करने लगी ॥५९-६१॥ देवनन्द द्वारा वेणु, वीणा, दुर्दर पणव, पुष्कर, मृदङ्ग, पटव, आनक, दुन्दभी, शख आदि हजारो वाद्यो की ध्वनि होने लगी । इस प्रकार गन्धर्वों के सगीत, अप्सराओ के नृत्य और देवगणों के वाद्यो के शब्द द्वारा उस समय समस्त जगत् महान् ध्वनि से भर गया । फिर सब किसी ने अत्यन्त भक्ति और विनय सहित भगवान् भास्कर को नमस्कार किया । उसी कोलाहल के बीच विश्वकर्मा धीरे-धीरे सूर्य के तेज को कम करते गये ॥६१-६४॥) जो सूर्य भगवान् जाडा, वर्षा और ग्रीष्म आदि ऋतुओ के उत्पादक हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिनकी स्तुति करते उनकी यह तनुलिखन की कथा भक्ति पूर्वक सुनने से भानुलोक मे सद्गति प्राप्त होती है ॥६५॥

६६–विश्वकर्मा द्वारा सूर्यस्तवन

लिख्यमानेततोभानोविश्वकर्माप्रजापतिः ।
उद्भूतपुलक स्त्रोत्रमिदचक्रे विवस्वतः ॥१
विवस्वतेप्रणतहितानुकम्पिनेमहात्मनेसमजवसप्तसप्तये ।
सुतेजसेकमलकुलाववोधिनेनमस्तम.पटलपटावपाटिने ॥२
पावनातिशयपुण्यकर्मणेनैककामविपयप्रदायिने ।
भास्वरानलमयूखशायिनेसर्वलोकहितकारिणे नम ॥३
अजायलोकत्रयकारणायभूतात्मनेगोपतयेवृषाय ।
नमोमहाकारुणिकोत्तमायसूर्य्यायचक्षु प्रभवालयाय ॥४
विवस्वतेज्ञानभृतेन्त रात्मनेजगत्प्रतिष्ठायजगद्धितैषिणे ।
स्वयम्भुवेलोकसमस्तचक्षुपेसुरोत्तमायामिततेजसेनम. ॥५
क्षणमुदयाचलमौलिमणि सुरगणमहितहितोजगतः ।
त्वंमयूखसहस्त्रवपुर्जगतिविभासितमासिनुदन् ॥६
भवतिमिरासवपानमदाद्भवतिविलोहितविग्रहता ।
मिहिरविभासियत सुतरानिभुवनभावनभानिकरै ॥७

मार्कण्डेय जी कहने लगे—जिस समय विश्वकर्मा जी सूर्य भगवान् के तेज को क्षीण करके सहन योग्य बना रहे थे, उस समय उसके नवीन रूप के दर्शन से पुलकित होकर उन्होंने उस मूर्ति का स्तवन किया। विश्वकर्मा जी बोले—जो जीव आपके सम्मुख प्रणत हो रहे हैं। उन सबका आप कल्याण और कृपा करने वाले हैं। आप ही सम वेग वाले, सप्त अश्व वाले, कमलों को खिलाने वाले और अन्धकार को दूर करने वाले हैं, आपको नमस्कार हो। अत्यन्त पवित्र, पुण्य शाली, कामनाओं की पूर्ति करने वाले, अत्यन्त तीव्र किरणों से युक्त और समस्त लोकों के हितकारी भगवान् भास्कर को नमस्कार हो तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाले, पंचभूतों के मूल, रश्मि पति, धर्म स्वरूप, कृपालु और नेत्रों को प्रकाश देने वाले सूर्य भगवान् को नमस्कार हो। जगत् के आधार अन्तरात्मा के प्रकाश, स्वयम्भू, अखिल विश्व को दृष्टि शक्ति

देने वाले, देवों मे श्रेष्ठ, महान् तेजस्वी सूर्य भगवान् को नमस्कार हो। हे भगवन् ! तुम ही जगत् के हितकारी और उदयाचल के शिखर के माला स्वरूप हो, तुम ही सहस्रो रूप ग्रहण करके जगत् को प्रकाशित करते हो। तुम्ही तिमिर रूपी आसव को पान करने के निमित्त लोहित मूर्ति धारण करके किरणो द्वारा दीप्तिमान् होते हो ॥१-७॥

रथमधिरुह्यसमावयवचारुविकम्पितमुरुरुचिरम् ।
सततमखिन्नहयैर्भवश्चरसिजगद्धितायविततम् ॥८
अमृतमयेनरसेनसमविबुधपितॄनपितर्पयसे ।
अरिगणसूदनतेनतवप्रणतिमुपेत्यलिखामिवपुः ॥९
शुकसमवर्णहयप्रथितंतवपदपांसुपवित्रतमम् ।
नतजनवत्सलमाप्रणतत्रिभुवनपावनपाहिरवे ॥१०
इतिसकलप्रसूतिभूतत्रिभुवनभावनधामहेतुमेकम् ।
रविमखिलजगत्प्रदीपभूतत्रिदशवरप्रणतोऽस्मिसर्वदात्वाम् ॥११

हे सूर्य नारायण ! जिस रथ पर चढ़कर सात घोडो के द्वारा जगत् के हितार्थ तुम विचरण करते हो वह समान अवयव वाला, आकर्षक विस्तार युक्त और किंचित् काँपने वाला है। हे शत्रुहन्ता ! तुम देवता और पितरो को एक ही साथ जीवन प्रदायक सुधा प्रदान करते हो। इसी निमित्त जगत् की हित कामना से मैंने प्रथम ही आपको प्रणाम करके आपके देह को लिखा है (तराशा) है। हे भक्तवत्सल ! हे त्रिभुवन को पवित्र करने वाले ! मैं आपकी ही इस हरी-भरी सृष्टि के कारण विख्यात हुआ हूँ और तुम्हारी चरण-रज के प्रताप से अत्यन्त पवित्र माना जाता हू आप मेरी रक्षा करें। इस तरह मैं सर्वदा संसार के कारण रूप, त्रिभुवन को पवित्र बनाने वाले, तेज के भण्डार, जगत् के प्रकाशक और निर्माणकर्त्ता भगवान् सूर्य को नमस्कार करता हू ॥८-११॥

१००—रविमाहात्म्य वर्णन

एवंसूर्य्यस्तवंकुर्वन्विश्वकर्मादिवस्पते ।
तेजसः षोडशमागमण्डलस्थमधारयत् ॥१
शातितैस्तेजसोभागैर्दशभि पञ्चभिस्तथा ।
अतीवकान्तिमन्नाप्यमानोरागीत्तदावपु ॥२
शातितचास्यवत्तेजस्तेनचक्रं विनिर्मितम् ।
विष्णोः शूलचशर्वस्यशिविकाधनदस्यच ॥३
दण्डः प्रेतपते शक्तिर्देवसेनापतेस्तथा ।
अन्येषांचैवदेवानामायुधानिसविश्वकृत् ॥४
चकारतेजसाभानोर्भासुराण्यरिशान्तये ।
इतिशातिततेजाः सशुशुभेनातितेजसा ॥५
वपुर्दधारमार्तण्ड सर्वावयवशोभनम् ।
सददर्शंसमाधिस्थःस्वाभार्य्यावडवाकृतिम् ॥६
अधृष्यांसर्वभूतानातपसानियमेनच ।
उत्तराश्चकुरून्गत्वाऽश्वोभानुरागमत् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—विश्वकर्मा जी इस प्रकार सूर्य नारायण की स्तुति करके उनके तेज का पन्द्रह अंश निकाल कर सोलहवाँ भाग शेष रहने दिया। इससे सूर्य का कलेवर अत्यन्त सुन्दर, सौम्य और कांति वाला बन गया जो पन्द्रह अंश तेज निकाला गया था उसके द्वारा विश्वकर्मा ने विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशूल, कुबेर की पालकी, यम का दण्ड, कार्तिकेय की शक्ति और अन्य कितने ही अमोघ अस्त्र निर्माण किये जिनसे देवगण शत्रुओं को जीत सकें। इस प्रकार मार्तण्ड का तेज नियन्त्रित हो जाने पर उनकी शोभा बहुत बढ़ गई और जगत् के हितार्थ उनका कलेवर अत्यन्त उत्तम बन गया। इस प्रकार परमोपयोगी आकार पाकर वे अपने स्थान पर स्थित हुए और फिर ध्यान लगाकर अपनी पत्नी को घोड़ी के रूप में देखा जो कुरु प्रदेश में उनके हितार्थ अत्यन्त संयम नियम सहित तपस्या कर रही थी। तब सूर्यदेव भी घोड़े का स्वरूप रखकर उसके पास पहुँचे ॥१-७॥

साचदृष्ट्वातमायान्तपरपु सोविशङ्कया ।
जगामसमुखेतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥८
ततश्चनासिकायोगतयोस्तत्रसमेतयो ।
वडवायाचतेत्तेजोनासिकाभ्याविवस्वत ॥६
देवौतत्रसमुत्पन्नावश्विनौभिषजावरौ ।
नासत्यदस्रौतनयावश्विवक्त्राद्विनिर्गतौ ॥१०
मार्त्तण्डस्यसुतावेतावश्वरूपधरस्यहि ।
रेतसोऽन्तेचरेवन्त खड्गीधन्वीतनुत्रधृक् ॥११
अश्वारूढसमुद्भूतोबाणतूणसमन्वित. ।
तत स्वरूपममलदर्शयामासभानुमान् ॥१२
तस्यशान्तसमालोक्यसारूपमुदमाददे ।
स्वरूपधारिणीचेमासनिनायनिजालयम् ॥१३
सज्ञाभार्य्याप्रीतिमतीभास्करोवारितस्कर ।
तत पूर्वसुतोयोऽस्यासोऽभूद्वैवस्वतोमनु ॥१४

उनको समीप आते देखकर सज्ञा को अपने सतीत्व रक्षा की चिन्ता हुई और वह उनके सामने मुंह करके खड़ी हुई। जब दोनों की नासिकायें मिली तो सूर्य भगवान् का तेज नाक के मार्ग से ही घोड़ी के भीतर प्रविष्ट हुआ और उससे दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए जो देवगण के वैद्य बने। उनके मुख से निकले तेज से 'नासत्य' और 'दस्र' की उत्पत्ति हुई और शेष भाग से 'रेवन्त' का जन्म हुआ जो रक्षा आवरण, खड्ग और धनुष धारी हैं। फिर जब सूर्य भगवान् ने अपना निर्मल शान्त रूप दिखाया तो सज्ञा परम प्रसन्न हुई और अपना वास्तविक रूप ग्रहण करके उनके साथ स्वगृह में आगये ॥८–१४॥

द्वितीयश्चयम शापाद्धर्मदृष्टिरनुग्रहात् ।
यमस्तुतेनशापेनभृशपीडितमानस. ॥१५
धर्मेभिरोचतेयस्माद्धर्म राजस्ततस्मृत. ।
कृमयोमासमादायपादतस्तेमहीतलम् ॥१६

पतिष्यन्तीतिशापान्ततस्यचक्रे पितास्वयम् ।
धर्मदृष्टियंतश्चासौसमोमित्रेतयाऽहिते ॥१७
ततोनियोगेतयाम्येनकारतिमिरापह ।
तस्मैददौपिताविप्रभगवाँल्लोकपालताम् ॥१८
पितृणामाधिपत्यश्चपरितुष्टोदिवाकर ।
यमुनाचनदीचक्रे कलिंदान्तरवाहिनीम् ॥१९
अश्विनौदेवभिपजौकृतौपित्रामहात्मना ।
गुह्यकाधिपतित्वेचरेवन्तोविनियोजित ॥२०

सज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु की पदवी पर अधिष्ठित हुए, उनसे छोटे यम धर्म के ज्ञाता होने से धर्मराज बने। वे धर्म और सत्य पर स्थिर रहकर प्रत्येक प्राणी के साथ न्याय युक्त व्यवहार करते थे, इसे उन्हें जीवों के कर्मों का फल देने का कार्य दिया गया। उनको छाया सज्ञा ने जो शाप दिया था उसके फलस्वरूप उनके पैर का मांस कृमि पृथ्वी तल पर ले गये। सूर्य भगवान् ने उनको लोकपाल और पितरो का अधिकार भी दिया। पुत्री यमुना को कलिन्द देश मे वहने वाली नदी बनाया गया। अश्विनी कुमारो को देवताओं का वैद्य, रेवन्त को गुह्यकों का शासक नियुक्त किया ॥१५-२०॥

एवमप्याहृचततोभगवाँल्लोकभावित ।
त्वमप्यशेषलोकस्यपूज्योवत्सभविष्यसि ॥२१
अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषुच ।
त्वास्मरिष्यन्तियेमर्त्यामोक्ष्यन्तेतेमहापदः ॥२२
क्षेमवृद्धिसुखराज्यमारोग्यकीर्तिमुन्नतिम् ।
नराणापरितुष्टस्त्वपूजित सप्रदास्यसि ॥२३
छायासज्ञासुतश्चापिसावर्णि सुमहायशा ।
भाव्य सोऽनागतेकालेमनु सावर्णिकोऽष्टम. ॥२४
मेरुपृष्ठेनपोघोरमद्यापिचरतिप्रभु ।
भ्राताशनैश्चरस्तस्यग्रहोऽभूच्छासनाद्रवे ॥२५

यवीयसीतुयाकन्याऽऽदित्यस्याभूद्द्विजोत्तम ।
अभवत्सासरिच्छ्रेष्ठातपतीलोकपावनी ॥२६
यस्तुज्येष्ठोमहाभाग सर्गोयस्येहसाम्प्रतम् ।
विस्तरतस्यवक्ष्यामिमनोर्वैवस्वतस्यह ॥२७
इदयोजन्मदेवानाशृणुयाद्वापठेतवा ।
विवस्वतस्तूनूजानारवेर्माहात्म्यमेवच ॥२८
आपदप्राप्यमुच्येतप्राप्नुयाच्चमहायश. ।
अहोरात्रकृतपापमेतच्छमयतेश्रुतम् ।
माहात्म्यमादिदेवस्यमार्तण्डस्यमहात्मन. ॥२६

भगवान् सूर्य नारायण ने रेवन्त से कहा कि तुम सब लोकों मे पूजनीय होगे और जो कोई अग्नि, शत्रु, चोर आदि के भय से आक्रान्त होकर तुम्हारा स्मरण करेगा तो तुम विपत्ति मे उनकी रक्षा करने में समर्थ होगे । छाया सज्ञा के पुत्र सावर्ण मेरु पर्वत पर तपस्या मे निरत हैं और वे आगामी 'सावर्णिक' नाम के मन्वन्तर में मनु होकर महान् यशस्वी होगे । उनके भ्राता शनैश्चर को प्रमुख ग्रह नियत किया । यमुना जी को भी नदियों मे श्रेष्ठ स्थान दिया गया और वे लोकपावनी प्रसिद्ध हुई । वैवस्वत मनु का मन्वन्तर समय मे चल रहा है । उनके वश का विस्तार और वर्णन मन्वन्तर किया जायगा । इस प्रकार जो व्यक्ति सूर्य भगवान् का माहात्म्य और उनकी सन्तानो की कथा श्रद्धा पूर्वक श्रवण करते हैं वे सब प्रकार की आपत्तियो से छुटकारा पाकर सुख सौभाग्य के अधिकारी बनते हैं और उनके समस्त पाप दूर हो जाते हैं ॥२१-२६॥

१११—राज्य वर्द्धन की आयुवृद्धि

भगवन्कथित सम्यग्भानो सन्ततिसभव ।
माहात्म्यमादिदेवस्यस्वरूपच्चातिविस्तरात् ॥१
भूयोऽपिमाम्वत सम्यङ्माहात्म्यमुनिसत्तम ।
श्रोतुमिच्छाम्यहतन्मेप्रसन्नोवक्तुमर्हसि ॥२

श्रूयतामादिदेवस्यमाहात्म्यकथयामिते ।
विवस्वतोयच्चकारपूर्वमाराधितोजनै. ॥३
दमस्यपुत्रोविख्यातोराजाभूद्राज्यवर्धन ।
ससम्यक्पालनचक्रे पृथिव्या पृथिवीपति ॥४
घर्मत पाल्यमानतुतेनराष्ट्र महात्मना ।
ववृधेऽनुदिनविप्रजनेनचधनेनच ॥५
हृष्टपुष्टमतीवासीत्तस्मिन्राजन्यशेषत ।
निर्भय सकलश्चोर्व्यापौरजानपदोजनः ॥६
नोपसर्गोनचव्याधिर्नचव्यालोद्भवभयम् ।
नचावृष्टिभयन्तत्रदमपुत्रमहीपतौ ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! सूय के माहात्म्य को मैं पुन श्रवण करना चाहता हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न होकर उसे मुझे सुनाइये ॥१-२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—आदि देव भगवान् सूर्य ने पुराकाल मे आराधित होकर जो कुछ किया, वह सब तुम्हारे प्रति वर्णन करता हू ॥३॥ दम के पुत्र राज्यवर्द्धन नाम से प्रसिद्ध हुए और उन्हाने भले प्रकार से पृथ्वी का पालन किया ॥४॥ हे ब्रह्मन् ! उन्होंने अपने धर्म का पालन करते हुए प्रजा की रक्षा की, इसलिये उनके शासन काल म धन, जन से राष्ट्र की नित्य वृद्धि होने लगी ॥५॥ उनके राज्यारुढ होने पर अन्य राजा पुरजन और सम्पूर्ण पृथिवी अत्यन्त पुष्ट हुई ॥६॥ उन राजा राज्यवर्द्धन के राज्य म कोई उपसग, रोग हिंसक जीवो का तथा अनावृष्टि का भय आदि नही था ॥७॥

सईजेचमहायज्ञैर्ददौदानानिचार्थिनाम् ।
सुधर्मस्याविराधेनबुभुजेविषयानपि ॥८
तस्यैवकुर्वतोराज्यसम्यक्पालयत प्रजा ।
सप्तवर्षसहस्राणिजग्मुरेकमहर्यथा ॥९
विदूरथस्यतनयादाक्षिणात्यस्यभूभृत ।
तस्यपत्नीबभूवाथमानिनीनाममानिनी ॥१०

कदाचित्तस्यसासुभ्रू शिरसोऽभ्यञ्जनादृता ।
पश्यतोराजलोकस्यमुमोचाश्रूणिमानिनी ॥११
तदश्रु बिन्दवोगात्रेयदातस्यमहीपते ।
तदावीक्ष्याश्रुवदनातामपृच्छतमाननीम् ॥१२
किमेतदितिपप्रच्छमाननीराज्यवधनः ॥१३
पृष्टासातुततस्तेनभर्त्राप्राहमनस्विनी ।
नकिंचिदितिताभूय पप्रच्छसमहीपति ॥१४

वह महायज्ञो का अनुष्ठान करके अभ्यथियों को दान देते और विषयो का भोग भी धर्म सहित करते थे ॥८॥ इस प्रकार राज्य शासन चलाते और भले प्रकार प्रजा पालन करते हुए उनका सात सहस्र वर्ष का समय एक दिन के समान व्यतीत होगया ॥९॥ उनका विवाह दक्षिण देश के राजा विदूरथ की पुत्री मानिनी से हुआ था ॥१०॥ एक समय राजपुरुषो के समक्ष रानी मानिनी राजा के शिर पर तेल मल रही थी, तभी उसके नेत्र से आँसू टपक पडा ॥११॥ जब वह आँसू राजा के शरीर पर पडा, तब उन्होने उसके अश्रु-पूर्ण नेत्र देखकर उसका कारण पूछा ॥१२॥ परन्तु,उसने कोई उत्तर नही दिया और वह बिना शब्द किय रुदन करने लगी, यह देखकर राजा ने पूछा—तुम क्यो रो रही हो ? ॥१३॥ रानी ने राजा क प्रश्न का उत्तर 'कोई बात नही' कहकर दिया ॥१४॥

बहुश पृच्छतस्तस्य भूभृत सासुमध्यमा ।
नकिंचिदितिहोवाचसाभूयोराज्यवर्धनम् ।
किमेतदितिपप्रच्छमानिनीपार्थिवःपुन ।
बहुश प्रेरितातेनसाभर्तातित्रभामिनी ।)
दर्शयामासपलितकेशभारान्तरोद्भवम् ॥१५
पौराणाचमहीपालकिमन्यन्मन्युकारणम् ।
ममातिमन्दभाग्यायाजहासाथनृपस्तत ॥१६
सविहस्याहृतापत्नीशृण्वतासर्वभूभृताम् ।
पौराणाचमहीपालायेतत्रासन्समावृता ॥१७

शोकेनालविशालाक्षिरोदितव्यनतेशुभे ।
जन्मर्द्धिपरिणामाद्याविकारा सर्वजन्तुषु ॥१८
अधीता सकलावेदाइष्टायज्ञा सहस्रश ।
दत्ताद्विजानापुत्राश्चसमुत्पन्नावरानने ॥१६
भुक्ताभोगास्त्वयासार्द्धं येमर्त्यैरतिदुर्लभा ।
सम्यक्चपालितापृथ्वीशौर्ययुद्धेष्वनुष्ठितम् ॥२०
मित्रै सहेष्टं हसितविहृतचवनान्तरे ।
किमन्यन्नकृतभद्रे पलितेभ्योविभेपियत् ॥२१

राजा के पुन अनेक बार प्रश्न करने पर भी जब रानी ने कोई उत्तर नही दिया, तो राजा का आग्रह बढा और उनके वारम्वार पूछने पर रानी ने उनके बालो के बीच मे एक श्वेत बाल दिखाया ॥१५॥ और बोली—हे महाराज ! क्रोधित होने का कोई कारण नही है, आप इसे देखिये, यह मेरा मन्द भाग्य ही है, रानी की यह बात सुनकर राजा बडे जोर से हँस पडे ॥१६॥ उन्होंने हँसते हँसते ही राजपुरुषो और पुरजनो के समक्ष ही रानी मानिनी से कहा ॥१७॥ हे कल्याणी ! हे विशाल नेत्र वाली ! तुम रोओ मत, क्योंकि सभी जीवो मे जन्म, वृद्धि और परिणामादि विकार उत्पन्न होते रहते हैं, इसलिये इस विषय मे शोक नही करना चाहिये ॥१८॥ मैंने सभी वेदो का अध्ययन, हजारो यज्ञो का अनुष्ठान, ब्राह्मणो को दान और पुत्रोत्पादन ॥१६॥ मनुष्यो के लिय दुर्लभ सुखो का तुम्हारे साथ उपभोग, भले प्रकार पृथिवी-पालन, न्याय पूर्वक सग्राम ॥२०॥ तथा मित्रो के साथ हास-परिहास और वन-विहार आदि सभी कार्य किये हैं, ऐसा कौन-सा कार्य मेरे द्वारा होने से रह गया है, जिसके लिये तुम मेरा पका हुआ बाल देखकर डर रही हो ॥२१॥

भवन्तुकेशा.पलितावलय सन्तुमेशुभे ।
शैथिल्यमेतुमेकाय.कृतकृत्योऽस्मिमानिनि ॥२२
मूर्ध्नियद्दर्शितभद्रे भवत्यापलितमम ।
चिकित्सामेवतस्याहं करोमिवनमश्रयात् ॥२३

वाल्येबालक्रियापूर्वंतद्वत्कौमारकेचया ।
यौवनेचापियायोग्यावार्द्धं केवनसश्रया ॥२४
एवमत्पूर्वजैर्भद्रे कृतत्वत्पूर्वजैश्चयत् ।
अतोनतेश्रु पातस्यकिंचित्पश्यामिकारणम् ॥२५
अलन्तेमन्युनाभद्रे नन्वभ्युदयकारिमे ।
दर्शनपलितस्यास्यमारोदीर्निष्प्रयोजनम् ॥२६
तत प्रणम्यतभूपा पौराश्च वसमीपगाः ।
साम्नाप्रोचुर्महीपालामहर्षेराज्यवर्धनम् ॥२७
नरोदितव्यमनयातवपत्न्यानराधिप ।
रोदितव्यमिहास्माभिरथवासर्वजन्तुभि ॥२८

हे शुभे ! चाहे मेरे बाल पक गये हो, चाहे देह शिथिल हो जाय, इसमे अब मैं कोई हानि नही समझता, क्योंकि मैं अब धन्य होगया हूँ ॥२२॥ तुमने मेरे शिर में जो पका हुआ बाल देखा है, उसकी चिकित्सा वन कर आश्रय लेकर करूँगा ॥२३॥ बाल्यकाल मे बाल-क्रीडा, कौमारावस्था मे उसके अनुरूप कार्य और युवावस्था मे भोगादि तथा वृद्धावस्था के प्राप्त होने पर वन का ही आश्रय लेना चाहिये ॥२४॥ मेरे पूर्व पुरुषो ने तथा उनके भी पूर्व पुरुषो ने इसी प्रकार किया है; इसलिये मैं तुम्हारे रुदन को व्यर्थ ही समझता हूँ, इसलिये शोक को छोड दो ॥२५॥ मेरे इस श्वेत केश का दिखायी देना, मेरा भाग्योदय होना ही है, इसलिये रुदन नही करना चाहिये ॥२६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—हे महर्षे ! फिर पास मे बैठे हुए राज पुरुषो और पुरवासियो ने महाराज राज्यवर्द्धन को प्रणाम करके विनय पूर्वक कहा ॥२७॥ हे राजन् ! आपकी भार्या का रुदन व्यर्थ है, परन्तु अब हमारे अथवा अन्य सब प्राणियो के रोने का समय आगया है ॥२८॥

त्वग्रवीपियथानाथवनवामाश्रितवचः ।
पतन्तितेनन प्राणास्तानितानात्वयानृप ॥२९
सर्वयास्यामहेभूपयदियातिभवान्वनम् ।
ततोऽस्मिपक्रियाहानि सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥३०

भविष्यतिनसन्देहस्त्वयिनाथवनाश्रये ।
साचधर्मोपघातायचदितत्प्रविमुच्यताम् ॥३१
सप्तवर्षसहस्राणित्वयेयपालितामही ।
तत्समुत्थमहापुण्यमालोकयनराधिप ॥३२
वनेवसन्महाराजत्वकरिष्यमियत्तप ।
तन्महीपालनस्यास्यकलानार्हतिषोडशीम् ॥३३
सप्तवर्षसहस्राणिमयेयपालितामही ।
इदानीवनवासस्यममकालोयमागत. ॥३४
ममापत्यानिजातानिदृष्टामेऽपत्यसन्तती ।
स्वल्पैरेवमहोभिर्मेह्यन्तकोनसहिष्यति ॥३५

हे नाथ ! आप हमारा प्रति पालन करने वाले हैं, आपके मुख से वन का आश्रय ग्रहण करने की बात सुनकर हमारे प्राण ही निकले जा रहे हैं ॥२९॥ यदि आप वन को जाते हैं, तो हम सभी आपके साथ चलेंगे, क्योंकि आपके वनवासी होने पर मनुष्यों की सभी क्रिया नष्ट हो जायगी ॥३०॥ यदि आप इससे धर्म की हानि समझें तो अपने वनाश्रयी होने के विचार को छोड दीजिये ॥३१॥ हे राजन् ! आपको इस पृथिवी का पालन करते हुए सात सहस्र वर्ष हुए हैं, इतने काल मे कितने महा-पुण्य की उपलब्धि हुई है, इस पर विचार कीजिये ॥३२॥ हे राजन् ! वन मे निवास करके वहाँ आप जितनी तपस्या करेंगे, उसका फल इस पृथिवी पालन रूप कर्म के सोलहवें भाग के बराबर भी नही होगा ॥३३॥ राजा बोले—मैं सात सहस्र वर्ष से इस पृथिवी का पालन कर रहा हू, अब वनवास करने का उपयुक्त अवसर मेरे समक्ष उपस्थित है ॥३४॥ मेरे पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं, उन पुत्रो की जो सन्तान होगी उसे देखकर यमराज अब कुछ समय के लिये भी मेरा जीवित रहना सहन नही करेंगे ॥३५॥

यदेतत्पलितमूर्ध्निनत्तद्विजानीतनागराः ।
दूतभूतमनार्य्यस्यमृत्योरत्युग्रकर्मणः ॥३६

सोऽहं राज्येसुतंकृत्वाभोगांस्त्यक्त्वावनाश्रयः ।
तपस्तप्स्येसमायान्तिनयावद्यमसैनिका. ॥३७
ततोयियासु सवनदेवज्ञानवनीपतिः ।
पुत्रराज्याऽभिषेकायदिनलग्नान्यपृच्छत ॥३८
श्रुत्वाचतेतुनृपतेर्वचोव्याकुलचेतस ।
दिनलग्नचहोराश्चनविदु शास्त्रदृष्टय ॥३९
ऊचुश्चतमहीपालदैवज्ञावाष्पगद्गदम् ।
ज्ञानानिन प्रणष्टानिश्रुत्वैतद्दोवचोनृप ॥४०
ततोऽन्यनगरेभ्यश्चभृत्यराष्ट्रेभ्यएवच ।
ततस्तस्माच्चनगरात्प्राचुर्येणाभ्युपागमन् ॥४१
समुत्पत्यमहीपालतयियासु मुनेवनम् ।
प्रकम्पिशिरसोभूत्वाप्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः ॥४२

हे नागरिको ! मेरे शिर मे जो श्वेत केश देखा गया है, उसी केश को उग्र कर्म वाली मृत्यु का दूत समझो ॥३६॥ इसलिये मैं पुत्र का राज्याभिषेक करके और सम्पूर्ण भोगो को छोड कर वन मे निवास करता हुआ यम-सैनिकों को आने तक तप करूँगा ॥३७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर राजा ने वन मे जाने का दृढ निश्चय कर ज्योतिषियो से पुत्र के राज्याभिषेक दिन और लग्न दिखवाया ॥३८॥ राजा के वचन को सुनकर वे शास्त्रदर्शी ज्योतिषी भी व्याकुल हृदय होगये और इस कारण लग्नादि देखने मे असमर्थ रहकर ॥३९॥ गद्गद स्वर से राजा के प्रति बोले—हे राजन् ! आपकी बात सुनकर हमारा सभी ज्ञान लुप्त होगया है ॥४०॥ हे मुने ! इसके पश्चात् जो अन्यान्य राज्य उन महाराज के प्राधीन हुए थे, उनसे तथा उसी राजधानी के अन्य नगरों से अनेकानेक वृद्ध ब्राह्मण वहाँ ॥४१॥ आये और उन्होने अपने शिर को कम्पित करते हुए राजा से इस प्रकार कहा ॥४२॥

प्रसीदपाहिनोराजन्पालिता स्मयथापुरा ।
सीदिष्यत्यखिलोलोकस्त्वयिभूपवनाश्रये ॥४३
त्वकुरुष्वतथाराजन्ययानोसीदतेजगत् ।

यावज्जीवामहेत्वीरस्वल्पकालमिमेवयम् ।
नेच्छामश्चभवछून्यद्रष्टु सिंहासनविभो ॥४४
इत्येवतैस्तथान्यैश्चद्विजै पौग्पुर रारै ।
भूपैर्भृ त्यैरमात्यैश्चराजाप्रोक्त पुन.पुनः ॥४५
वनवासविनिर्वन्धनोपसहरतेयदा ।
क्षमिष्यत्यन्तकोनेतिददौसचतदोत्तरम् ॥४६
ततोऽमात्याश्चभूपाश्चपौरवृद्धास्तथाद्विजाः ।
समेत्यमन्त्रयामासु किमत्रक्रियतामिति ॥४७
तेयामन्नयताविप्रनिश्चयोऽयमजायत ।
अनुरागवताताश्रमहीपालेऽतिधार्मिके ॥४८
सम्यग्ध्यानपराभूत्वाप्रार्थयाम समाहिताः ।
तपसाराध्यभास्वन्तमायुरस्यमहीपते ॥४९

हे राजन् ! प्रसन्न होइये, हम पर अनुग्रह क'ते हुए पहिले के समान ही हमारा पालन कीजिये, हे महाराज ! आपके वन मे जाने से सभी जीव अत्यन्त दु खित होंगे ॥४३॥ इसलिये, जिस प्रकार यह विश्व दु खी न हो वैसा ही कार्य करिये, हमारा जीवन अल्पकाल का ही रह गया है, इतने समय मे हम इस सिंहासन को सूना नहीं देखना चाहते ॥४४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा— उन विप्रगण, राजागण, प्रजाजन, मन्त्रिगण और भृत्यो के द्वारा बारबार अनुरोध किये जाने पर भी ॥४५॥ उन्होंने वनवास की इच्छा को नहीं छोड़ा और उन सबको यही उत्तर दिया कि 'यम मुझे क्षमा नहीं करेंगे' ॥४६॥ तब, ब्राह्मणो, वृद्ध पुरवासियो, मन्त्रियो और भृत्यों ने परस्पर विचार करना प्रारभ किया कि 'अब क्या करें ?' ॥४७॥ हे ब्रह्मन् ! राजा के प्रति स्नेह रखने वाले उन विप्रादि ने यही निश्चय किया कि ॥४८॥ हम भले प्रकार ध्यान पूर्वक तप के द्वारा भगवान् सूर्य का आराधन करें और इन राजा की आयु के लिये प्रार्थना करें ॥४९॥

तत्रैकनिश्चया.कार्य्येकेचिद्गेहेचभास्करम् ।
सम्यगर्घोपचाराद्यै रुपहारैरपूजयन् ॥५०

अपरेमौनिनोभूत्वाऋग्जापेनतथाऽपरे ।
यजुषामथसाम्नाचतोषयाश्चक्रिरेर वम् ।।५१
अपरेचनिराहारानदीपुलिनशायिन ।
तपासिचक्रुरिच्छतोभास्कराराधनद्विजाः ।।५२
अग्निहोत्रपराश्चान्येरविसूक्तान्यहर्निशम् ।
जेपुस्तत्रापरेतस्थुर्भास्करेन्यस्तदृष्टय ।।५३
इत्येवमतिनिर्बन्धभास्कराराधनप्रति ।
बहुप्रकारचक्रुस्तेततविधिमुपाश्रिता ।।५४
तथातुयततातेषाभास्कराराधनप्रति ।
सुदामानामागन्धर्वउपगम्येदमब्रवीत् ।।५५
यद्याराधनमिष्टवोभास्करस्यद्विजातय ।
तदेतत्क्रियतायेनभानु प्रीतिमुपैष्यति ।।५६

ऐसा निश्चय करके सब सूर्य की पूजा करने लगे, किसी ने अर्घ्य देकर और किसी ने अन्य विधि से सूर्य भगवान् का पूजन किया ।।५०।। किसी ने मौनावलम्बन कर ऋक् मन्त्र से, किसी ने सामवेद के मन्त्रो से और किसी ने यजुर्वेद के विधान से भगवान् भास्कर को सन्तुष्ट किया ।।५१।। कोई नदी तट पर निराहार रह कर और कोई कठिन तप करके सूर्य को प्रसन्न करने लगे ।।५२।। किसी ने अग्निहोत्र परायण होकर दिन रात्रि निरन्तर रविसूक्त का जप किया और कोई भगवान् सूर्य की ओर देखते हुए ही खडे रहे ।।५३।। इस प्रकार वे सब अपनी-अपनी विधि से भास्कर की आराधना मे निश्चय पूर्वक लग गये ।।५४।। उन्हे इस प्रकार सूर्य के आराधन म दृढ़ता से लगे हुए देखकर एक सुदामा नामक गन्धर्व वहाँ आया और उन आराधको से कहने लगा ।।५५।। हे विप्रगण ! यदि सूर्य की ही आराधना आपका लक्ष्य है तो, इस प्रकार से आराधना करो जिससे वह प्रसन्न हो सकें ।।५६।।

तस्माद्गुरुविशालाख्यवनसिद्धनिषेवितम् ।
कामरुपेमहाशैलेगम्यतातत्रवेलघु ।।५७

तस्मिन्नाराधनभानोःक्रियतासुसमाहितै ।
सिद्धक्षेत्रहिलतत्रसर्वकामानवाप्स्यथ ॥५८
इतितेतद्वच श्रु त्वागत्वातत्काननद्विजा ।
ददृशुर्भास्वतस्तत्रपुण्यमायतनशुभम् ॥५९
तत्रतनियताहारावर्णाविप्रादयोद्विज ।
धूपपुष्पोपहाराढ्यापूजाचक्रु रतन्द्रिता ॥६०
पुष्पानुलेपनाद्यैश्चधूपगन्धादिकैस्तथा ।
जपहोमान्नदानाद्यै.पूजनतेसमाहिता. ।
कुर्वन्तस्तुष्टुवुर्ब्रह्मन्विवस्वन्तद्विजातयः ॥६१

कायरूप महापर्वत मे एक गुह विशाल नामक वन है, जो सिद्धो द्वारा सेवित है, तुम उसी वन मे जाकर ॥५७॥ सावधान चित्त से सूर्य का आराधन करो, इससे आपके इच्छित कार्य की सिद्धि होती है, क्योकि ऐसे कार्यो के अनुष्ठान मे सिद्ध क्षेत्र ही अधिक फल देने वाला होता है ॥५८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! गन्धर्व की यह बात सुनकर सब आराधक ब्राह्मण उस वन मे पहुँचे, वहाँ उन्हें भगवान् सूर्य का पवित्र मन्दिर दिखायी दिया ॥५९॥ ब्राह्मणादि सभी वर्णों ने वहाँ नियत आहार का अवलम्बन करके, प्रमाद रहित हो गन्ध-पुष्पादि के द्वारा सूर्य का पूजन किया ॥६०॥ हे विप्र ! गन्ध, पुष्प, अनुलेप, धूप, दीप, नैवेद्य पूर्वक जप, होमादि करते हुए सावधान चित्त से सभी आराधक ब्राह्मण सूर्य की स्तुति करने लगे ॥६१॥

देवदानवयक्षाणाग्रहाणाज्योतिषामपि ।
तेजसाम्यधिकदेवव्रजामशरणरविम् ॥६२
दिविस्थितचदेवेशद्योतयन्तसमन्तत. ।
वसुधामन्तरिक्ष चव्याप्नुवन्तमरीचिभि. ॥६३
आदित्यभास्करभानुसवितारदिवाकरम् ।
पूषाणमर्यमाणचस्वर्भानुं दीप्तदीधितिम् ॥६४

चतुर्युगान्तकालाग्निदुष्प्रेक्ष्यप्रलयान्तगम् ।
योगीश्वरमनन्तचरक्त पीतसितासितम् ॥६५
ऋषीणामग्निहोत्रेषुयज्ञदेवेष्ववस्थितम् ।
प्रजामशरणदेवतेजोराशितमच्युतम् ।
अक्षरपरमगुह्य मोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥६६
छन्दोभिरश्वरूपैश्चमकृद्युक्तं विहङ्गमम् ।
उदयास्तमनेयुक्त सदामेरो प्रदक्षिणे ॥६७
अनृत चऋतचैवपुण्यतीर्थपृथग्विधम् ।
विश्वस्थितिमचिन्त्यचप्रपन्ना स्मप्रभाकरम् ॥६८

ब्राह्मणों ने कहा—देवता, दैत्य, यक्ष और ज्योतिष-ग्रहों में अत्यधिक तेज सम्पन्न भगवान् भास्कर की शरण में हम आये हैं ॥६२॥ जो देवेश्वर आकाश में रह कर सभी दिशाओं को प्रकाशित तथा अपनी रश्मियों से सम्पूर्ण पृथिवी और अन्तरिक्ष को व्याप्त कर रहे है ॥६३॥ जो आदित्य, भास्कर, भानु, सविता देव, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु, दीप्त, दीधिति ॥६४॥ और योगीश्वर कहे जाते हैं और चतुर्युगी के अन्त मे दुष्प्रेक्ष्य कालाग्नि के समान होते हैं अथवा जो अनन्त, लाल, पीले, श्वेत और कृष्ण हैं ॥६५॥ जो ऋषियों के अग्निहोत्र के समय यज्ञदेव के रूप मे अवस्थित होते हैं, जो अक्षर, परमगुह्य, अत्यन्त श्रेष्ठ मुक्तिद्वार रूप ब्रह्म हैं, जो एक बार युक्त हुए छन्द रूप अश्व पर आरूढ होकर आकाश मे स्थित हैं, उदय और अस्त तक गमनशील और सुमेरु की प्रदक्षिणा मे सदा तत्पर रहते हैं ॥६६-६७॥ जो असत्य, सत्य, पुण्यतीर्थ तथा पृथक् रूप से विश्व मे अवस्थित हैं, उन अदिति-पुत्र अचिन्त्य स्वरूप आदिदेव भगवान् प्रभाकर की हमने शरण ग्रहण की है ॥६८॥

योब्रह्मायोमहादेवोयोविष्णुर्य प्रजापति ।
वायुराकाशमापश्चपृथिवीगिरिसागरा ॥६९
ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्यावानस्पत्यद्रु मौषधम् ।
व्यक्ताव्यक्तेपुभूतेपुधर्माधर्मप्रवर्त्तक ॥७०

यात्मीयाहेस्वर्गेचैवदैष्णवीनैरनेनतु ।
विधायस्यस्वस्पस्तुमानोर्भस्वाग्प्रसीदतु ॥७१
यस्यनर्यंमयस्येदमङ्गभूतजगत्प्रभो: ।
तत प्रसीदताभास्वान्जगतायश्चजीवनम् ॥७२
यस्यरमहारस्यप्रभामण्डलदुर्दशम् ।
द्वितीयमैन्द्रयमोम्यमनोमास्वान्प्रसीदतु ॥७३
तास्यांनतस्यस्पाम्यामिदविश्वविनिर्मितम् ।
यग्नीयोममयभास्वान्ननोदेव प्रसीदतु ॥७४
इत्यस्तुत्वानदानस्यामस्यापूजाविधानतः ।
तुनोयभगवान्भास्वान्विश्वनिर्माणैर्द्विजोत्तम ॥७५
ततःसमण्डलाद्दुत्रनिर्जयिवनमयन ।
यस्नोयंस्दोतेग्योद्दुदं शोदनंनगयि: ॥७६
ततस्तेन्स्पष्टस्पस्तामविनाग्मनजना: ॥
पुत्रगोत्रम्पिनोविप्राभक्तिनम्राःप्रणेमिरे ॥७७
नमोनमस्तेस्तुसहस्रदमेनवंस्यहेतुस्स्वमनोपये तु: ।

जब उन्होंने तीन महीने तक पूजन किया, तब भगवान् प्रसन्न हुए ॥७५॥ तथा स्वयं दुर्दश होकर भी उन्होंने आकाश मंडल में प्रकट होकर अपनी उदय-कालीन प्रभा सहित उन्हें दर्शन दिया ॥७६॥ उनके प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन करके पुलकायमान हुए उन मनुष्यों ने भक्ति से विनम्र होकर उन अनादि सवितादेव को प्रणाम करते हुए कहा ॥७७॥ हे सहस्ररश्मे ! आपको नमस्कार है, आप सभी भूतों के कारण और अखिल विश्व के पताकारूप हो, हे अखिल यज्ञधाम ! आप ही सब यज्ञों के आश्रय और योगियों के ध्यान योग्य हो, आप हम पर प्रसन्न हो ॥७८॥

९२—राजा और प्रजा की आयु वृद्धि

ततःप्रसन्नोभगवान्भानुराहाखिलाञ्जनान् ।
प्रियतायदभिप्रेतमत्त प्राप्तु द्विजादय ॥१
ततस्तेप्रणिपत्योचुर्विप्रक्षत्रादयोजना ।
ससाध्वसमशीतांशुमवलोक्यपुरःस्थितम् ॥२
भगवन्यदिनोभक्त्याप्रसन्नस्तिमिरापह ॥३
दशवर्षसहस्राणिततोनोजीवतान्नृप ।
निरामयोजितारातिसुकोश स्थिरयौवन ॥४
तथेत्युक्त्वाजनान्भास्वानदृश्योऽभून्महामुने ।
तेऽपिलब्धवरात्हृष्टा समाजग्मुर्जनेश्वरम् ॥५
यथावृत्त चतेतस्मैनरेन्द्रायन्यवेदयन् ।
वरलब्ध्वासहस्रांशो सकाशादखिलद्विज ॥६
तच्छ्रुत्वाजतहृपेतस्यसापत्नीमानिनीद्विजा ।
(प्रहर्षपरमयाताहर्षोद्गततनूरुहा)
सचराजाचिरदध्यौनाहंकिंचिद्व्रतजनम् ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—फिर भगवान् सूर्य ने प्रसन्न होकर उन सब

मे कहा—हे ब्राह्मणो ! तुम मुझ से जो प्राप्त करना चाहते हो, वह मुझ से माँगो ॥१॥ तब उन ब्राह्मणो ने उनको अपने सामने देख कर उन्हें प्रणाम किया और उन वरदायक भगवान् से बोले ॥२॥ विप्र प्रजागण ने कहा—हे भगवन् हे अन्धकार का नाश करने वाले प्रभो ! यदि आप हमारी भक्ति के कारण हम पर प्रसन्न हुए हैं ॥३॥ हमारे महाराज राज्यवर्द्धन रोग-रहित, शत्रुओं के विजेता और स्थिर यौवन वाले होकर दश सहस्र वर्ष तक जीवित रहें ॥४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे महा मुने ! भगवान् सूर्य ने उनसे 'ऐसा ही होगा' कहा और अन्तर्धान होगये तब वे सभी ब्राह्मण वर प्राप्ति से प्रसन्न-चित्त होकर राजा के पास पहुँचे ॥५॥ हे ब्रह्मन् ! सहस्र रश्मि वाले भगवान् सूर्य से वर प्राप्त होने इत्यादि का सम्पूर्ण वृत्तान्त उन ब्राह्मणो ने राजा को बताया ॥६॥ उस वृत्तान्त को सुन कर राजमहिषी मानिनी अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुई, जिससे उसका देह पुलकित हो गया, परन्तु राजा मौन रह कर बहुत समय तक विचार करते रहे ॥७॥

तत सामानिनीभूपहर्षापूरितमानसा ।
दिष्ट्याऽऽयुपामहीपालवर्द्ध स्वेत्याहतपतिम् ॥८
तथातयामुदाभर्त्तामानिन्यायसभाजित. ।
नाहर्किचिन्महीपालश्चिन्ताजडमनाद्विज ॥६
सापुन प्राहभर्त्तारचिन्तयानमधोमुखम् ।
कस्मान्नहर्षमस्येपिपरमाभ्युदयेनृप ॥१०
दशवर्षसहस्राणिनीरुजःस्थिरयौवन ।
भावीत्वमद्यप्रभृतिकिंतथापिनत्द्दष्यसे ॥११
चिन्तुतत्कारणब्रूहियच्चिन्ताकृष्टमानस ।
परमाभ्युदयेऽपित्वसप्राप्तेपृथिवीपते ॥१२
कथमभ्युदयोभद्रे किंसभाजयसेचमाम् ।
प्राप्तोदु खमहस्राणांकिमभाजनमिष्यते ॥
दशवर्षसहस्राणिजीविष्याम्यहमेकक. ।
नत्वतयविपत्तौमेकिन्नु दुःखभविष्यति ॥१४

फिर मानिनी ने प्रसन्नचित्त होकर अपने स्वामी से कहा—हे महाराज ! इस बढ़ी हुई आयु के द्वारा आप वृद्धि को प्राप्त हों ।।८।। प्रसन्न चित्त वाली मानिनी के सत्कृत वचन सुनकर भी राजा ने चिन्तित चित्त के कारण कुछ उत्तर नहीं दिया ।।९।। चिन्ता से नतमस्तक किये हुए राजा को देखकर मानिनी ने उनसे कहा—हे महाराज ! ऐसे आनन्द के समय भी आप प्रसन्न क्यों नहीं हैं ? ।।१०।। अब आप निरामय और स्थिर यौवन हो कर दश सहस्र वर्ष तक और जीवित रहेंगे फिर आप प्रसन्न क्यों नहीं हैं ? ।।११।। हे राजन् ! ऐसे आनन्द का समय आ गया है, तो भी आप चिन्ता से व्याकुल हैं, इसका क्या कारण है यह मुझे बताइये ।।१२।। राजा ने कहा—हे भद्रे ! मेरा कौन-सा भाग्योदय हुआ है ? तुम मेरा सत्कार सत्कार किस लिये कर रही हो ? सहस्रों दुःखों को प्राप्त होकर भी मैं किस आनन्द का उपभोग करूँगा ? ।।१३।। मैं एकाकी ही दश सहस्र वर्ष जीवित रहूँगा, परन्तु तुम जीवित नहीं रहोगी, फिर क्या तुम्हारे न रहने का मुझे दुःख नहीं होगा ।।१४।।

पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्चतथान्यान्निष्टबान्धवान् ।
पश्यतोमेमृतान्दुःखकिमल्पहिभविष्यति ।।१५
भृत्येषुचातिभक्तेषुमित्रवर्गेतथामृते ।
भद्रेदुःखमपारमेभविष्यतितुसन्ततम् ।।१६
यैर्मदर्थंतपस्तप्तंकृशैर्धमनिसन्ततैः ।
तेमरिष्यन्त्यहभोगीजीविष्यामीतिधिक्करम् ।।१७
सेयमापद्वरारोहेप्राप्तानाभ्युदयोमम ।
कथंवामन्यसेनत्वंयत्सभाजयसेऽद्यमाम् ।।१८
महाराजयथात्थत्वंतथैतन्नात्रसंशयः ।
मयापौरैश्चदोषोऽयंप्रीत्यानालोकितस्तव ।।१९
एवंगतेऽत्रकिंकार्यंनरनाथविचिन्त्यताम् ।
नान्यथाभावियत्प्राहप्रसन्नोभगवान्रविः ।।२०
उपकारःकृतःपौरैःप्रीत्याभृत्यैश्चयोमम
यद्भोक्ष्याम्यहंभोगान्कृत्वातेषामनिर

पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, तथा प्रिय बान्धवादि को मरते हुए देख कर क्या मुझे कुछ कम दु.ख होगा ? ॥१५॥ हे भद्रे ! अत्यन्त भक्ति वाले भृत्यों और मित्रों की मृत्यु होने पर मुझे सदा ही महान् दु ख भोगना पडेगा ॥१६॥ जिन्होंने मेरी आयु के निमित्त अपने तन को सुखा कर तप किया है, वे भी मर जायेंगे, परन्तु मैं जीवित रह कर सुख भोगूँगा, क्या मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार नही है ? ॥१७॥ मेरी यह दस सहस्र वर्ष की परमायु वृद्धि क्या हुई, यह तो मेरे लिये विपत्ति बन गयी है, यह भाग्योदय नही हुआ, सब बातों का विचार किये बिना ही तुम मुझे हर्षित करना चाहती हो ॥१८॥ मनिनी ने कहा—हे महाराज ! यथार्थ ही यह इतना दु.ख कर होगा, इस बात पर मैंने पुरवासियो ने आपकी प्रीति के कारण ध्यान नही दिया था ॥१९॥ अब, ऐसा हो गया है, तो क्या करना चाहिये, इस पर विचार कीजिये, भगवान् सूर्य ने जो कुछ कहा है, वह कदापि मिथ्या नही हो सकता ॥२०॥ राजा ने कहा—पुरवासियो और भृत्यों ने मेरा जो उपकार किया है, उसके विपरीत परिणाम को रोक कर किस प्रकार सुख को भोगूँ ? ॥२१॥

सोऽहमद्यप्रभृत्यद्रिगत्वानियतमानस ।
(पौरलोकहितार्थंचतोपयिष्यामिभास्करम् ।
यथापौराममक्रतेवान्धवाश्चसमन्तत ।
आराधनाण्देवेशतथाहमपिसाप्रतम्) ।
तपस्तप्स्येनिराहारोभानोराराधनोद्यत· ॥२२
दशवर्षसहस्राणियथाहस्थिरयौवन· ।
तस्यप्रसादाद्वस्यजीविष्यामिनिरामय. ॥२३
तथायदिप्रजा.सर्वाभृत्यास्त्ववसुताश्चमे ।
पुत्रा पौत्रा प्रपौत्राश्चसुहृदश्चवरानने ॥२४
जीवन्त्येतप्रसादंचकरोतिभगवाश्रवि. ।
ततोऽहमविताराज्येभोक्ष्येभोगास्तथामुदा ॥२५
नचेदेवकरोत्यर्कस्तदाद्रौतत्रमानिनि ।
तपस्तप्स्येनिराहारयावज्जीवितसक्षय. ॥२६

फिर मानिनी ने प्रसन्नचित्त होकर अपने स्वामी से कहा—हे महाराज ! इस बढी हुई आयु के द्वारा आप वृद्धि को प्राप्त हो ।।८।। प्रसन्न चित्त वाली मानिनी के सत्कृत वचन सुनकर भी राजा ने चिन्तित चित्त के कारण कुछ उत्तर नहीं दिया ।।९।। चिन्ता से नतमस्तक किये हुए राजा को देखकर मानिनी ने उनसे कहा—हे महाराज ! ऐसे आनन्द के समय भी आप प्रसन्न क्यो नही हैं ? ।।१०।। अब आप निरामय और स्थिर यौवन हो कर दश सहस्र वर्ष तक और जीवित रहेगे फिर आप प्रसन्न क्यो नही हैं ? ।।११।। हे राजन् ! ऐसे आनन्द का समय आ गया है, तो भी आप चिन्ता से व्याकुल हैं, इसका क्या कारण है यह मुझे बताइये ।।१२।। राजा ने कहा—हे भद्रे ! मेरा कौन-सा भाग्योदय हुआ है ? तुम मेरा सत्कार सत्कार किस लिये कर रही हो ? सहस्रो दु खो को प्राप्त होकर भी मैं किस आनन्द का उपभोग करूँगा ? ।।१३।। मैं एकाकी ही दश सहस्र वर्ष जीवित रहूगा, परन्तु तुम जीवित नही रहोगी, फिर क्या तुम्हारे न रहने पर मुझे दु ख नही होगा ।।१४।।

पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्राश्चतथान्यान्निष्टबान्धवान् ।
पश्यतोमेमृतान्दु खकिमल्पहिभविष्यति ।।१५
भृत्येषुचातिभक्तेषुमित्रवर्गेतथामृने ।
भद्रेदु खमपारमेभविष्यतितुसन्ततम् ।।१६
येमंदर्थंतपस्तप्त कृशंर्धमनिसन्ततं ।
तेमरिष्यन्त्यहभोगीजीविष्यामीतिधिक्करम् ।।१७
सेयमापद्वरारोहेप्राप्तानाभ्युदयोमम ।
कथवामन्यसेनत्वयत्सभाजयसेऽद्यमाम् ।।१८
महाराजयथात्यत्वतथैतन्नात्रसशय ।
मयापौरैश्चदापोऽयप्रीत्यानालोकितस्तव ।।१९
एवगतेऽत्रकिकार्य्यनरनाथविचिन्त्यताम् ।
नान्यथाभावियत्प्राहप्रसन्नोभगवान्रवि ।।२०
उपकारःकृत.पौरै प्रीत्याभृत्यैश्चयोमम ।
कथभोक्ष्याम्यहभोगान्गत्वातेषामनिष्कृतिम् । २१

पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, तथा प्रिय बान्धवादि को मरते हुए देख कर क्या मुझे कुछ कम दुःख होगा ? ॥१५॥ हे भद्रे ! अत्यन्त भक्ति वाले भृत्यों और मित्रों की मृत्यु होने पर मुझे सदा ही महान् दुःख भोगना पड़ेगा ॥१६॥ जिन्होंने मेरी आयु के निमित्त अपने तन को सुखा कर तप किया है, वे भी मर जायेंगे, परन्तु मैं जीवित रह कर सुख भोगूँगा, क्या मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार नहीं है ? ॥१७॥ मेरी यह दश सहस्र वर्ष की परमायु वृद्धि क्या हुई, यह तो मेरे लिये विपत्ति बन गयी है, यह भाग्योदय नहीं हुआ, सब बातों का विचार किये बिना ही तुम मुझे हर्षित करना चाहती हो ॥१८॥ मनिनी ने कहा—हे महाराज ! यथार्थ ही यह इतना दुःख कर होगा, इस बात पर मैंने पुरवासियों ने आपकी प्रीति के कारण ध्यान नहीं दिया था ॥१९॥ अब, ऐसा हो गया है, तो क्या करना चाहिये, इस पर विचार कीजिये, भगवान् सूर्य ने जो कुछ कहा है, वह कदापि मिथ्या नहीं हो सकता ॥२०॥ राजा ने कहा—पुरवासियों और भृत्यों ने मेरा जो उपकार किया है, उसके विपरीत परिणाम को रोक कर किस प्रकार सुख का भागूँ ? ॥२१॥

सोऽहमद्यप्रभृत्युद्विग्नत्वानियतमानस ।
(पौरलोकहितार्थंचतोषयिष्यामिभास्करम् ।
यथापौराममकृतेबान्धवाश्चसमन्ततः ।
आराधनाय्देवेशतथाहमपिसाप्रतम्) ।
तपस्तप्स्येनिराहारोभानोराराधनोद्यत ॥२२
दशवर्षसहस्राणियथाहस्थिरयौवन ।
तस्यप्रसादाद्वत्स्यजीविष्यामिनिरामय ॥२३
तथायदिप्रजा सर्वाभृत्यास्त्वचनुताश्चमे ।
पुत्रा पौत्रा प्रपौत्राश्चसुहृदश्चवरानने ॥२४
जीवन्त्येतत्प्रसाद चकरोतिभगवान्रवि ।
ततोऽहमविलाराज्येभोक्ष्येभोगास्तथामुदा ॥२५
नचेदेवकरोत्यर्कस्तदाद्रौतत्रभामिनि ।
तपस्तप्स्येनिराहारयावज्जीवितसंचय ॥२६

इत्युक्तासातदातेनतथेत्याहनराधिपम् ।
जगामतेनचसमसाऽपितधरणीधरम् ॥२७
सतदायतनगत्वाभार्ययासहपार्थिवः ।
भानोराराधनचक्रेशुश्रूषानिरतोद्विज ॥२८

इससे तो यही उचित है कि मैं अब प्रभृति पर्वत पर जाकर पुरवासियों के लिये घोर तप करूँ, जिस प्रकार उन्होने मेरे हितार्थ आराधन किया है, उसी प्रकार मैं भी उनके हितार्थ भगवान् सूर्य की आराधना के उद्देश्य से निराहार रह कर तपस्या करूँगा ॥२२॥ जैसे उनकी कृपा से मैं स्थिर यौवन और रोग रहित होकर दश सहस्र वर्ष तक जीवित रहूँगा, वैसे ही मेरी सम्पूर्ण प्रजा, भृत्य, तुम, पुत्री, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और सभी सुहृदगणादि जीवित रहें, यदि भगवान् भास्कर मुझ पर कृपा करेंगे तभी मैं प्रसन्न चित्त पूर्वक राज्य का भार वहन करता हुआ सुख-भोग करूँगा ॥२३-२५॥ परन्तु, यदि भगवान् सूर्य ने ऐसी कृपा नही की तो, जब तक मेरा यह जीवन रहेगा, तब तक निराहार कर उसी पर्वत मे तप करता रहूगा ॥२६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—महाराज की बात सुन कर राजमहिषी भामिनी ने उनका अनुमोदन किया और वह अपने पति के साथ उसी पर्वत मे चली गई ॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! अपनी पत्नी सहित राजा उसी मंदिर मे पहुचे और तपस्या पूर्वक भगवान् सूर्य की उत्कट आराधना मे तत्पर हुए ॥२८॥

निराहाराकृशासाचयथासौपृथिवीपतिः ।
तेपेतपस्तथैवोग्र शीतवातातपक्षमा ॥२९
तस्यपूजयतोभानु तप्यतश्चतपोमहत् ।
साग्रेसवत्सरेयातेतत्त प्रीतोदिवाकरः ॥३०
समस्तभृत्यपौरादिपुत्रार्थाचकृतेद्विज ।
ददौयथाभिलषितवरद्विजवरोत्तम ॥३१
लब्ध्वावरसनृपति समभ्येत्यात्मन पुरम् ।
चकारमुदितोराज्यप्रजाधर्मेसपालयन् ॥३२

ईजेयज्ञान्सचवहुन्ददौदानान्यहर्निशम् ।
मानिन्यासहितोभोगान्बुभुजेचमवर्मवित् ॥३३
दशवर्षसहस्राणिपुत्रपौत्रादिभिःसह ।
भृत्यैःपौत्रैःप्रमुदितःसोऽभवत्स्थिरयौवनः ॥३४
तस्येतिचरितंदृष्ट्वाप्रमतिर्नामभार्गवः ।
विस्मयाकृष्टहृदयोगाथामेतामगायत ॥ ५

जैसे निराहार रहने के कारण राजा दिनो दिन कृश होते जा रहे थे, वैसे ही रानी भी शीत, वायु, उष्णनादि के कष्टो को सहती हुई क्षीण देह होने लगी और तपस्या मे लगी रही ॥२६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जब उन्होंने इस प्रकार भगवान् सूर्य की उपासना मे एक वर्ष से अधिक काल व्यतीत कर दिया, तब भगवान् ने प्रसन्न होकर ॥३०॥ समस्त भृत्य, पुरजन और पुत्रादि के सहित वाला मनोवाछित वर उन्हें प्रदान किया ॥३१॥ वर प्राप्त करके राजा पत्नी के सहित अपने घर को लौटे और प्रसन्नचित्त से धर्मपूर्वक प्रजा का पालनादि करते हुए राज्य करने लगे ॥३२॥ वह धर्मात्मा महाराज अपनी राजमहिषी के सहित अनेक यज्ञानुष्ठान करते और सत्पात्रो को दान देते हुए सुख भोगने लगे ॥३३॥ इस प्रकार उन्होंने अपने पुत्र, पौत्र, भृत्य, पुरवासी आदि के सहित स्थिर यौवन और प्रसन्न चित्तता लाभ करके दस सहस्र वर्ष व्यतीत किये ॥३४॥ उस समय भृगुवशी महर्षि प्रमति ने उनका ऐसा चरित्र देख कर विस्मय युक्त होकर इस प्रकार गाथा कीर्तन की थी ॥३५॥

भानुभक्तेरहोशक्तिर्यद्राजाराज्यवर्द्धनः ।
आयुषोवर्द्धनेजातःस्वजनस्यतथात्मनः ॥३६
इतितेकथितंविप्रयत्पृष्टोऽहंत्वयोदितः ।
आदिदेवस्यमाहात्म्यमादित्यस्यविवस्वतः ॥३७
विप्रैतदखिलश्रुत्वाभानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
पठञ्चमुच्यतेपापैःसप्तरात्रकृतैर्नरः ॥३८
अरोगोधनवानाढ्यःकुलेमहतिधीमताम् ।
जायतेचमहाप्राज्ञोयश्चैतद्धारयेद्बुधः ॥३९

(यजतेचमहायज्ञं :समाप्तवरदक्षिणैः ।
श्रुत्वाचरितमेतद्धिसमानलभतेफलम् ॥)
मन्त्राश्चयेऽत्राभिहिताभास्वतोमुनिसत्तम ।
जप:प्रत्येकमेतेपात्रिसंध्यपातकापहः ॥४०
समस्तमेतन्माहात्म्ययत्रचायतनेरवे ।
पठचतेतत्रभगवान्सान्निध्यनविमुचति ॥४१
तस्मादेतत्त्वयाब्रह्मन्भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
धार्य्यमनसिजाप्यचमहत्पुण्यमभीप्सता ॥४२
सुवर्णश्रृङ्गीमतिशोभनाङ्गीपयस्विनीगाप्रददातियोहि ।
श्रृणोतिचैतत्स्यहमात्मवान्नर समतयोःपुण्यफलद्विजग्नय ॥४३

भगवान् भास्कर की कितनी आश्चर्यमय शक्ति है, जिसके प्रभाव से राजा राज्यवर्द्धन ने अपनी और अपने आत्मीयजनों की आयु वृद्धि की ॥३६॥ हे ब्रह्मन् ! तुमने आदि देव सूर्य के जिस माहात्म्य के विषय में प्रश्न किया था वह तुम्हारे प्रति कहा गया ॥३७॥ सूर्य के इस उत्तम माहात्म्य को ब्राह्मण के मुख से सुनने और पाठ करने वाले मनुष्य सप्तरात्र के किये हुए पापों से मुक्त होते हैं ॥३८॥ उन सूर्य के माहात्म्य को जो बुद्धि पूर्वक रखते हैं, वह धनी, नीरोग और महान् विद्वान् होकर जन्म लेते है ॥३९॥ तथा महान् दक्षिणा वाले यज्ञों के अनुष्ठाता होते और इस चरित्र को सुन कर समान फल को प्राप्त करते हैं, मूर्ख व्यक्ति, पाप कर्म करके भी यदि सूर्य के इस माहात्म्य का जप करते हैं, उनके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४०॥ जिस देव-मन्दिर में सूर्य के इस माहात्म्य का पाठ होता है, उसके सामीप्य से भगवान् नहीं हटते ॥४१॥ इसलिये, हे ब्रह्मन् ! तुम भी महान् पुण्य की कामना से सूर्य के इस माहात्म्य को हृदय में धारण कर जप करो ॥४२॥ जो मनुष्य सोने से सींगों को मढ़ाकर दूध वाली गौ का दान करते और जो संयत चित्त से तीन दिन तक इस माहात्म्य को सुनते हैं उन दोनों को समान फल की प्राप्ति होती है ॥४३॥

६६—सूर्य वंशानुक्रम

एवप्रभावोभगवाननादिनिधनोरवि ।
यस्यत्वंक्रौष्टुकेभक्त्यामाहात्म्यपरिपृच्छसि ॥१
परमात्मासयोगिनायु जताचेतसालयम् ।
क्षेत्रज्ञ सांख्ययोगानायज्ञे शोयज्विनामपि ॥२
सूर्याधिकारवहनोविष्णोरीशस्यवेवम ।
मनुस्तम्याभवत्पुनश्छिन्नसर्वार्थसशयः ॥३
मन्वन्तराधिपोविप्रयस्यसप्तममन्तरम् ।
इक्ष्वाकुर्नाभगोरिष्टोमहाबलपराक्रम ॥४
नरिष्यन्तोऽथनाभाग पृषध्रोधृष्टएवच ।
एतेपुनामनोस्तस्यपृथग्राज्यस्यपालका ॥५
विख्यातकीर्त्तय सर्वेसर्वेशास्त्रास्त्रपारगाः ।
विशिष्टतरमन्विच्छन्मनु पुत्र नयापुन ॥६
मित्रावरुणयोरिष्टिचकारप्रतिनावर ।
यत्रचापह्नुतेहोतुरपचारान्महामुने ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे क्रौष्टुकि ! तुमने जिन भगवान् भास्कर का माहात्म्य भक्ति सहित पूछा था, वह भगवान् ऐसे प्रभाव वाले हैं ॥१॥ वह सयतचित्त योगियों के ईश्वर, सांख्य योग वालों के क्षेत्रज्ञ और याज्ञिकों के यज्ञेश्वर हैं ॥२॥ ब्रह्मा विष्णु, शिव स्वरूप सूर्याधिकार के वहन करने वाले उन भगवान् भास्कर के संशय रहित एक पुत्र मनु' नाम से हुआ ॥३॥ जिस मनु का सातवाँ मन्वन्तर इस समय चल रहा है, महाबली एवं पराक्रमी इक्ष्वाकु नाभाग, रिष्ट ॥४॥ नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और धृष्ट नामक यह सभी मनु-पुत्र पृथक् पृथक् राज्यों के परिपालन करने ॥५॥ सभी प्रसिद्ध यश वाले शास्त्रों में पारंगत और शस्त्र विद्या के ज्ञाता हुए, इन मनु ने उसके पश्चात् अत्यन्त विशिष्ट पुत्र की अभिलाषा में ॥६॥ मित्रावरुण का यजन किया, परन्तु वह यज्ञ होता के अपचार से फलहीन हो गया ॥७॥

इलानामसमुत्पन्नामनो कन्यासुमध्यमा ।
तादृष्ट्वाकन्यकातत्रसमुत्पन्नातनोमनु ॥८
तुष्टावमित्रावरुणौवाक्यचेदमुवाचह ।
भवत्प्रसादात्तनयोविशिष्टोमेभवेदिति ॥६
कृतेमखेसमुत्पन्नातनयाममधीमत. ।
यदिप्रसन्नौवरदौतदियत्तनयामम ॥१०
प्रसादाद्भवतो पुत्रोभवत्वतिगुणान्वितः ।
तथेतिचाभ्यामुक्तेसुदेवाभ्यासैवकन्यका ॥११
इलासमभवत्सद्य सुद्युम्नइतिविश्रुत ।
पुनश्चेश्वरकोपेनमृगयामटतावने ॥१२

इस कारण इला नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई, उस यज्ञ से उत्पन्न हुई कन्या को देख कर ॥८॥ मनु ने मित्रावरुण की स्तुति की और उनसे निवेदन किया कि आपकी कृपा से मुझे एक असाधारण पुत्र की प्राप्ति ॥६॥ इसी कामना से मैंने यह यज्ञ किया, जिससे इस कन्या की प्राप्ति हुई है, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, तो आपकी कृपा से मेरी यह कन्या ही ॥१०॥ अत्यन्त गुण सम्पन्न पुत्र हो जाय, इस पर दोनो देवताओ ने 'ऐसा ही हो' कहा और वह कन्या ॥११॥ उसी समय पुत्र होगई, जिसका नाम सुद्युम्न हुआ, यह मेधावी मनु पुन एक दिन वन मे आखेट के लिये गये और ईश्वर के क्रोधित होने से यह पुन स्त्री हो गये ॥१२॥

स्त्रीत्वमासादिततेनमनुपुत्रेणधीमता ।
पुरूरवसनामानचक्रवर्तिनमूर्जिम् ॥१३
जनयामासतनयत्रसोमसुताबुधः ।
जातेसुतेपुन.क्रत्वासोऽश्वमेधमहाक्रतुम् ॥१४
पुरुषत्वमनुप्राप्त सुद्युम्न पार्थिवोऽभवत् ।
सुद्युम्नस्यत्रयःपुत्राउत्कलोविनियोगय ॥१५
पुरुषत्वेमहावीर्य्याधिज्विन पृथुलौजस. ।
पुरुषत्वेतुयेजातास्तस्यराज्ञस्त्रय सुता ॥१६

बुभुजुस्तेमहीमेतांधर्मेनियतचेतसः ।
स्त्रीभूतस्यतुयोजातस्यराज्ञःपुरूरवा ॥१७
नसलेभेमहीभागयतोबुधसुतोहिसः ।
ततोवसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानपुरोत्तमम् ।
तस्मैदत्त सराजाभूत्तनातीवमनोहरे ॥१८

ऐसा होते ही चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न किया जो पुरूरवा नामक चक्रवर्ती राजा हुआ, उस पुत्र के उत्पन्न होने के पश्चात् अश्वमेध का अनुष्ठान करने से ॥१३-१४॥ उन सुद्युम्न को पुरुषत्व की प्राप्ति हुई, जब वे पुरुष राजा हुए तब उनके उत्कल, विनय और गय नामक ॥१५॥ तीन अत्यन्त वीर, यज्ञ करने वाले और विपुल तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए, वे तीनो पुत्र ॥१६॥ राज्य को प्राप्त करके धर्म पूर्वक पृथिवी का पालन करने लगे और राजा जब स्त्री हुए थे, तब उनके जो पुरूरवा नामक पुत्र हुए थे ॥१७॥ वह बुध के पुत्र होने के कारण भू भाग प्राप्त नही कर सके, परन्तु वसिष्ठ ऋषि की आज्ञा से उन्हे प्रतिष्ठान नामक एक श्रेष्ठ नगर दिया गया, जहाँ के वह राजा हुए ॥१८॥

१००—पृषध्रोपाख्यान

पृषध्रारयोमनो.पुत्रोमृगयामगमद्वनम् ।
तत्रचक्रममाणोऽसौविपिनेनिर्जनेवने ॥१
नाससादमृगकश्चिद्भ्रानुदोधिलितापित. ।
क्षुत्तृट्तापपरीताङ्गइतश्चेतश्चचक्रमन् ॥२
सददर्शतदातत्रहोमधेनु मनोहराम् ।
लतान्तर्देहच्छिन्नार्धाब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥३
समन्यमानोगवयमिपृणातामताडयत् ।
पपातसापितद्बाणविभिन्नरहृदयाभुवि ॥४

सोऽपिराज्ञोविनाशाय कोपचक्रे द्विजोत्तम ।
तमभ्येत्यत्वरायुक्तोवारयामासवैपिता ॥१२
वत्सालमलमत्यर्थंकोपेनातीववैरिणा ।
ऐहिकामुष्मिकहित शमएवद्विजन्मनाम् ॥१२
कोपस्तपोनाशयतिक्रुद्धोभ्रश्यत्यथायुषः ।
क्रुद्धस्यगलतेज्ञानक्रुद्धश्चार्थान्नहीयते ॥१४
नधर्म क्रोधशीलस्यनार्थचाप्नोतिरोषरण. ।
नालसुखायकामासि कोपेनाविष्टचेतसाम् ॥१५

राजा के मुख से अपने लिये ऐसे भर्त्सनायुक्त वाक्य सुनकर वे 'मौलि' नायक ऋषि के पुत्र रोष मे आगये और शाप दिया कि तुम 'शूद्र ही हो जाओगे और गाय का वध करने के कारण तुम्हारी पढी हुई समस्त विद्या नष्ट हो जायगी ॥९-१०॥ इस शाप को सुनकर राजा भी बडा दुखी और कापित हुआ और ऋषि-बालक को प्रतिशाप देन के उद्देश्य से हाथ मे जल लिया ।११। इस पर 'बाभ्रव्य' और भी क्रोध मे आ गया और राजा को नष्ट करने के लिये दूसरा शाप देने को उद्यत हुआ । पर उसी समय उसके पिता वहाँ आ पहुँचे और उसे रोकते हुए समझाने लगे—पुत्र ! इस प्रकार का क्रोध अन्त मे अपने लिये ही अहितकारी होता है । ब्राह्मण का धर्म तो शान्ति ही है और उसी से लोक तथा परलोक मे उसका कल्याण होता है ॥१२-१३ यह क्रोध हर प्रकार से अनुचित है । इससे तपस्या का नाश, आयु का क्षय, ज्ञान का लोप, औ धन का नाश होना है । क्रोध के वशीभूत होने वाला धर्म, अर्थ, काम सबसे वचित हो जाता है और बहुत दुख पाता है ॥१४-१५॥

यदिराज्ञाहताधेनुरियनिज्ञानिनासता ।
युक्तमनदयाकर्तुमात्मनोहितबोधिना ॥१६
अथवाऽजानताप्येनुरियव्यापादितामम ।
नरकयशापर्यायोऽयदुष्ट नास्यमनोयतः ॥१७
आत्मनोहितमन्विच्छन्यायतेयोऽपरनरः ।
मर्नव्यामूढविज्ञानेदयातत्रदयालुभि. ॥१८

अज्ञानत कृतेदण्डपातयन्तिबुधायदि ।
बुधेभ्यस्समहमन्येवरमज्ञानिभोनरा ॥१९
नाद्यशापस्त्वयादेय पार्थिवस्यास्यपुत्रक ।
स्वकर्मणैवपतितागौरेषादु खमृत्युना ॥२०
पृपध्रोऽपिमुने पुत्रप्रणम्यानम्रकन्धर ।
प्रसीदेतिजगादोच्चै रज्ञानाद्धातितेतिच ॥२१
भयागवयबुद्धयागौरवध्याघातितामुने ।
अज्ञानाद्धोमधेनुस्तेप्रसीदत्वचनोमुने ॥२२

ऋषि ने फिर कहा—हे पुत्र अगर राजा ने गाय का बध जान कर किया है अपना हित चाहने वाले को इन पर दया ही करनी चाहिये। यदि यह कार्य अनजान मे भूलवश हो गया तो शाप देने का कोई कारण हो ही नहीं सकता,क्योकि मन म किसी प्रकार पाप की भावना नही होती ॥१६-१७॥ दयालु पुरुष तो उन व्यक्तियो का भी अहित नही करते जो जान बूझकर उनके दु ख का कारण होते हैं, फिर भूल से होने वाले अपराध पर दण्ड देना तो अज्ञानियों के लिये भी अनुचित है ॥१८-१६॥ मैं जानता हूँ कि अपने भाग्य-वश ही इस दुर्घटना मे ग्रस्त हुई है, उसके लिये राजा को शाप देना उचित नही ॥२०॥ राजा न भी ऋषि पुत्र के सम्मुख मस्तक झुका कर प्रार्थना की—हे मुनि श्रेष्ठ ! प्रसन्न होइये, मैंने भूल से ही इस धेनु पर बाण चलाया था। मैं ने इसे जगली गवय ही अनुमान किया था, अतएव आप क्रोध को त्याग कर मुझे क्षमा करें ॥२१-२२॥

आजन्मनोमहीपालनमयाव्याहृतमृषा ।
क्रोधश्चाद्यमहाभागनान्ययामिकदाचन ॥२३
तस्माहमेमरायनोमिशापकतु नृपान्यथा ।
यस्तेसमुद्यत नापोद्वितीय सनिवर्तित ॥२४
इत्युक्तवन्ततबालमादायसपितातत ।
जगामस्वाश्रमसोऽपिपृपध्र शूद्रतामगात् ॥२५

ऋषि ने कहा—राजन् ! मैंने आज तक कभी मिथ्याभाषण नहीं किया इसलिये मेरे मुख से जो वचन निकल चुका वह अब मिट नहीं सकता। पर मैं आपको जो दूसरा शाप देने वाला था उससे अब विरत होता हूँ। ऋषि पुत्र का यह कथन सुनकर मुनि उसे आश्रम के भीतर लिवा ले गये और पृषध्र भी शूद्रत्व को प्राप्त हो गया ॥२३-२४॥

१०१—नाभागोपाख्यान (१)

कारुषा क्षत्रिया शूरा करुपस्याभवन्सुता ।
तेतुमप्तशतवीरास्तेभ्यश्चान्येसहस्रश ॥१
दिष्टपुत्रस्तुनाभाग स्थित प्रथमयौवने ।
ददर्शवैश्यतनयामतीवसुमनोहराम् ॥२
तस्यासहष्टमानायामदनाक्षिप्तमानस ।
बभूवभूपतनयोनि श्वासाक्षेपतत्पर ॥३
तस्या.सगत्वाजनकवव्रे तावैश्यकन्यकाम् ।
ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिनृपात्मजम् ॥४
तचाहसपितातस्याराजपुत्र कृताजलिः ।
विम्यत्तस्यपितुर्विप्रप्रश्रयावनतवच ॥५
भवन्तोभूभुजोभृत्यावयव.करदायका. ।
कथसम्बन्धमसमंरस्माभिरभिवाञ्छसि ॥६

मार्कण्डेयजी ने वर्णन किया कि करुष नामक राजा के दशज कारुष क्षत्रिय हुए जिनकी सख्या पहले सात सौ थी फिर उनसे अन्य हजारो वीर उत्पन्न हुए। इसी वश मे दिष्ट नामक राजा के पुत्र 'नाभाग' ने युवावस्था मे किसी समय एक परम सुन्दरी वैश्य कन्या को देखा। वह उसे देखते ही मोहासक्त होगया और वैश्य से कन्या का विवाह अपने साथ कर देने की प्रार्थना

करने लगा। इस पर वैश्य ने राजभय से भयभीत होकर हाथ जोड कर कहा कि आप राजा हैं और हम सेवक की भाँति आपकी प्रजा हैं, इसलिये आप ऐसे असमान सम्बन्ध का प्रस्ताव क्यों करते हैं ? ॥१-६॥

साम्यमानुपदेहस्यकाममोहादिभि कृतम् ।
तथापिकालेतौरैवयोज्यतेमानुपवपु ॥७
तथैवचोपकारायजायन्तेतस्यतान्यपि ।
अन्यानिचान्येजीवन्तिभिन्नजातिमतासताम् ॥८
तथान्यान्यप्ययोग्यानियोग्यतायान्तिकालत ।
योग्यान्ययोग्यतायान्तिकालवश्याहियोग्यता ॥९
आप्याय्यतेयच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितै ।
कालज्ञात्वानथाभुक्त तदेवपरिशिष्यते ॥१०
इत्थममैपाभिमतातनयादीयतात्वया ।
अन्यथामच्छरीरस्याविपत्तिरुपलक्ष्यते ॥११
परतन्त्रावयत्वचपरतन्त्रोमहीभुज ।
पितातेनाभ्यनुज्ञातस्त्वगृहाणददाम्यहम् ॥१२

राजपुत्र 'नाभाग' ने कहा कि सभी मनुष्यो के भीतर काम, क्रोध आदि ब्रह्माजी ने ही उत्पन्न किय हैं। पर ये काम, क्रोध सदैव बने रहते हो ऐसी बात नही है, किसी समय सयोगवश वे उत्पन्न हो जाते हैं। ये काम, क्रोध विभिन्न जाति के व्यक्तियो मे विभिन्न प्रकार के भावो म प्रकट होते हैं, पर उनका अभाव किसी में नही होता और वे किसी परिस्थिति मे उचित और किसी मे अनुचित बन जाते हैं। उनका बुरा या अच्छा कहा जाना काल के ही अधीन है। जिस प्रकार भोजन द्वारा शरीर की पुष्टि होती है, पर यदि उसको असमय मे ग्रहण किया जाता है तो वह उल्टा हानिकारक हो जाता है।७-१०। इसलिये सयोगवश तुम्हारी कन्या क लिय मेरी अभिलाषा हुई है तो तुम उसे मुझे दे दो, अन्यथा मरा अन्त हो जायगा। इस पर वैश्य ने कहा कि मुझे राज्य के अधीन रहना पडता है और आपको भी महाराज के अनुकूल रहना है, इसलिये आप उनकी आज्ञा ले लें, मैं कन्या का विवाह कर दूँगा ॥११-१२॥

प्रष्टव्या.सर्वकार्य्येषुगुरवोगुरुवर्तिभि ।
नत्वीदृशेष्वकार्य्येषुगुरुणावाक्यगोचर ॥१३
क्वमन्मयकथालापोगुरुणाश्रवणक्वच ।
विरुद्धमेतदन्यत्रप्रष्टव्यागुरवोनृभि. ॥१४
एवमेतत्स्मरालापस्तवायपृच्छ्यमागुरुम् ।
अहपृच्छामितेनालापोममकामकथाश्रय ॥१५
इत्युक्त सोऽभवन्मौनीराजपुत्र.सचापितत् ।
तत्पित्रेसर्वमाचष्टराजपुत्रस्ययन्मतम् ॥१६
ततस्तस्यपिताविप्रानृचीकादीन्द्विजोत्तमान् ।
प्रवेदयराजपुत्र चयथाख्यानन्यवेदयत् ॥१७
निवेद्यचतत प्राहमुनीनेवव्यवस्थिते ।
यत्कर्तव्यतदादेष्टु मर्हन्तिद्विजसत्तमा ॥१८
राजपुत्रानुरागस्तैयद्यस्यावैश्यसन्ततौ ।
तदस्तुधर्मएवंपकिन्तुन्यायक्रमेणस: ॥१९
मूर्धाभिपिक्तनयापाणिग्रहोत्सव.पुरा ।
भवत्वनन्तरचेयतवभार्याभविष्यति ॥२०
एवनदोपोभवतितथेमामुपभुञ्जत. ।
अन्यथाऽन्येतितेजातिरुत्कृष्टावालकानयात् ॥२१

राजपुत्र ने कहा कि यद्यपि मनुष्यों को गुरुजनों की इच्छानुसार चलना चाहिये और सभी विषयों में उनकी आज्ञा लेनी चाहिये, पर यह विषय ऐसा है जिसे उनके सम्मुख प्रकट नहीं किया जा सकता। कहाँ तो गुरुजनों का पद और महत्व और कहाँ यह काम कथा का वर्णन, इन दोनों बातों में कोई मेल नहीं, इसलिये इस बात को उनके सामने नहीं कह सकता। वैश्य ने कहा—ठीक है, इस सम्बन्ध में गुरुजनों की आज्ञा लेना काम कथा होगी, पर यदि मैं इस सम्बन्ध में चर्चा करूँ तो वह काम-कथा नहीं मानी जायगी ॥१३-१५॥ इस बात पर राजकुमार निरुत्तर होगया और वैश्य ने सब वृत्तान्त राजा के समक्ष जाकर निवेदन किया। राजा ने अपने पुत्र तथा ऋचीक आदि धर्मतत्व

वेत्ताओं को सामने बुलाकर समस्त हाल कह सुनाया और पूछा कि इस विषय मे आप क्या निर्णय करते हैं ? ऋषियों ने कहा—राजकुमार ! यदि आप वैश्य कन्या पर आसक्त होगये हैं तो इसमे कोई बड़ा अधर्म नही है, पर इसका न्यायोचित मार्ग यह है कि पहले आप किसी स्वजातीय कन्या का पाणिग्रहण करलें, जो राजमहिषी के पद पर अभिषिक्त हो सके, उसके पश्चात् इस वैश्य कन्या को भी अपनी पत्नी बनावें। इस प्रकार वैश्य-कन्या से विवाह करने से किसी प्रकार का दोष नही होगा। अन्यथा हीन वर्ग की कन्या से सम्बन्ध हो जाने पर आपको भी उसी हीन जाति का होजाना पड़ेगा ॥१९-२१॥

इत्युक्तस्तदपास्यैववचस्तेषामहात्मनाम् ।
विनिष्क्रम्यगृहीत्वातामुद्यतासिरथाब्रवीत् ॥२२
राक्षसेनविवाहेनमयावैश्यसुताहृता ।
यस्यसामर्थ्यमस्त्रास्तिसएतामोचयत्विति ॥२३
तत सर्वैश्यस्ताद्दृष्ट्वागृहीतातनयाद्रुतम् ।
आह्वीतिपितरतस्यप्रययौशरणद्विज ॥२४
ततस्तस्यपिताक्रुद्धग्रादिदेशबलमहत् ।
हन्यताहन्यतादुष्टोनाभागोधर्मदूषक ॥२५
ततस्तद्युधेसैन्यतेनभूभृत्सुतेनवै ।
कृतास्त्रेणतदास्त्रेणतत्प्राचुर्य्येणपातितम् ॥२६
सश्रुत्वानिहतसैन्यराजपुत्रेणभूपति ।
स्वयमेवययौयोद्धु स्वसैन्यपरिवारित ॥२७
ततोयुद्धमभूत्तस्यभूभुज स्वसुतेनवत् ।
राजपुत्रेणतास्त्रास्त्रै स्तत्रातिशयित पिता ॥२८
ततोऽन्तरिक्षादागत्यपरिव्राट्सहसामुनि ।
प्रत्युवाचमहीपालविरमस्वेतिसयुगात् ॥२९
स्वत्पुत्रस्यमहाभागविधर्मोऽयमहात्मन ।
तवापिवैश्येनमहन्युद्ध धर्मधन्नृप ॥३०

यद्यपि इस प्रकार ऋषियों ने राजपुत्र को बहुत समझाया, पर यह मार्ग उसे पसन्द न आया और उसने बाहर आकर वैश्य-कन्या को पकड़ लिया और तलवार निकाल कर कहा कि—मैं इसके साथ बल पूर्वक राक्षस-विवाह करता हूं जिसकी सामर्थ्य हो वह इसे मुझसे छुडाले ।।२२-२३।।वैश्य यह देखकर भागा हुआ राजा के पास गया और 'रक्षा करो' यह कहकर पुकारने लगा । इस पर क्रोधित होकर राजा ने आज्ञा दी कि 'दस अधर्मी 'नाभाग' को शीघ्र ही मारो ।' राजा की आज्ञा पाकर सेना 'नाभाग' के साथ लडने लगी, पर उसने अस्त्र-शास्त्रों का प्रयोग करके शीघ्र ही उसे हरा दिया । सेना के पराभव का वृत्तान्त सुन कर राजा स्वयं उससे लडने आया और संघर्ष होने पर'नाभाग' को दबा दिया । पर उसी समय आकाश मार्ग से नारद मुनि का वहाँ पर आगमन हुआ और उन्होंने राजा द्दिष्ट से कहा—महाराज ! अब आप युद्ध बन्द कर दीजिये । आपका यह पुत्र अपने वर्ण से पतित होकर वैश्य होगया है,इसलिये उसके साथ आपका युद्ध करना धर्म संगत नहीं है ।।२४–३०।।

ब्राह्मण्याब्राह्मण पूर्वकुर्वन्दारपरिग्रहम् ।
ब्राह्मण्यात्सर्ववर्णोपुनर्हानिमुपगच्छति ।।३१
तथवक्षत्रियसुताक्षत्रिय.पूर्वमुद्वहन् ।
इतरेचतलोराजश्च्यवतेनस्वधर्मत ।।३२
पूर्वं वैश्यस्तयावैश्यापश्चाच्छूद्रकुलोद्भवाम् ।
नहीयतेवैश्यकुलादयन्याय क्रमोदित ।।३३
ब्राह्मणा क्षत्रियावैश्या सवर्णापाणिसग्रहम् ।
अकृत्वान्यभवापाणे पतन्तिनृपसग्रहात् ।।३४
यस्यायस्याहिहीनायाःकुरुतेपाणिसग्रहम् ।
अकृत्वावर्णसयोगसोऽपितद्वर्णभाग्भवेत् ।।३५
सोऽयवैश्यत्वमापन्नस्तवपुत्र सुमन्दधी ।
नास्याधिकारोयुद्धायक्षत्रियेणत्वयासह ।।३६
वयमेतन्नजानीम कारणनृपनन्दन ।
मयाभविष्यतीदचनिवर्त्तरणकर्मत ।।३७

नारदजी ने कहा—शास्त्र का यह विधान है कि यदि ब्राह्मण पहले ब्राह्मण-स्त्री से विवाह करके उसके पश्चात् तीनों वर्णों में से किसी भी वर्ण की स्त्री को ग्रहण करे तो उसका ब्राह्मणत्व नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार क्षत्रिय अगर पहले अपने वर्ण की कन्या का पाणिग्रहण करके फिर वैश्य-शूद्र आदि की कन्या से विवाह करे तो वह पतित नहीं होता। वैश्य भी अपने वर्ण की कन्या से विवाह करने के पश्चात् शूद्र कन्या से विवाह करले तो अपने वैश्य कुल से भ्रष्ट नहीं होता। पर किसी भी वर्ग का व्यक्ति यदि प्रथम अपने वर्ण की कन्या से विवाह किये बिना दूसरे वर्ण की कन्या से विवाह कर लेता है तो वह उसी हीन वर्ण का हो जाता है जिस वर्ण की वह कन्या होती है। एवं प्रथम सवर्ण कन्या से विवाह न करने के कारण वह पिता के उत्तराधिकार का पात्र भी नहीं माना जाता। इस नियम के अनुसार आपका यह मन्द बुद्धि पुत्र वैश्यत्व को प्राप्त होगया और आप क्षत्रिय हैं इससे आप दोनों का युद्ध उपयुक्त नहीं। आगे इसका क्या परिणाम होगा यह तो नहीं कहा जा सकता। पर अब आप युद्ध बन्द करदें ।।३१-३७।।

१०२—नाभागोपाख्यान (२)

निवृत्तोसौनतोभूप सङ्ग्रामात्स्वसुतेनवै ।
उपयमेचतावैश्यतनयासोऽपितत्सुत ।।१
ततःसर्ववैश्यतांप्राप्तमुपेत्याहपार्थिवम् ।
भूपालयन्मयाकार्य्यंतत्समादिश्यतामम ।।२
धर्माधिकरणयुक्तावाभ्रव्ययास्तपस्विन ।
यदस्यकर्मधर्मायतद्वदतुतथाचर ।।३
ततस्तेमुनयस्तस्यपार्श्वपार्थिवतथाकृषिम् ।
वाणिज्यवपरधर्ममाचचरगुसभासद ।।४
तथैवचक्रे समुनस्तस्यराज्ञोयथोदितम् ।
तैर्धर्मवादिभिर्धर्मच्युतस्यनिजधर्मत ।।५

तस्यपुत्रस्ततोजातोनाम्नाख्यातोभलन्दन. ।
समानाप्रहितोगच्छद्गोपालोभवपुत्रक ॥६
मात्रातथानियुक्तोऽथप्रणिपत्यस्वमातरम् ।
राजर्षिमगमन्नीपहिमवत्पर्वताश्रयम् ॥७

इस प्रकार नारदजी के समझाने पर राजा ने युद्ध बन्द कर दिया और नाभाग भी वैश्य-कन्या से विवाह करके वैश्यत्व को प्राप्त होगया । फिर वह राजा के पास गया और पूछा—"महाराज ! अब मैं क्या काम करके जीवन-निर्वाह करूँ उसका आदेश दें ।" राजा ने कहा कि बाभ्रव्य आदि जो ऋषिगण धर्माधिकरण का निर्णय करते हैं, उनसे पूछ कर जैसा वह बतलावें तदनुसार आचरण करो । तब उन धर्माधिकारी मुनियों ने कहा कि—खेती, पशु-पालन और व्यापार ही वैश्य के लिये निश्चित धर्म है । राजपुत्र नाभाग ने इस निर्णय को स्वीकार किया और वैश्य कर्मों का आचरण करके निर्वाह करने लगा ॥१-५॥ यथा समय उसके भलन्दन नामक पुत्र हुआ । उसके बड़े होने पर माता ने आदेश दिया 'पुत्र ! गोपाल होओ' अर्थात् गौ पालने का कार्य करो । पर 'गौ' का अर्थ पृथ्वी भी होता है और भलन्दन ने उसी अर्थ को ग्रहण किया । वह हिमालय निवासी नीप नाम राजर्षि की सेवा में उपस्थित हुआ ॥६-७॥

तसमेत्यचजग्राहतस्यपादौयथाविधि ।
प्रणिपत्याहचैवैनराजर्षिभलन्दन ॥८
आदिष्टोभगवन्मात्रागोपालस्त्वभवेतिवै ।
मयाचपालनीयाक्ष्मातस्या स्वीकरणक्रयम् ॥९
मयाहिगौपालनीयासायदास्वीकृताभवेत् ।
आक्रान्तावन्धवद्भि मादायादैं पृथिवीमम ॥१०
तायथाप्राप्नुयांपृथ्वीत्वत्प्रसादादहविभो ।
तथादिशत्वरिप्यामित्वाज्ञांप्रणतोऽस्मिते ॥११
तत.मनोपोराजर्षिस्तस्मैनिस्वशेगत ।
भलन्दायददौब्रह्मन्तस्त्रग्राममहात्मने ॥१२

प्राप्तास्त्रविद्य सययौपितृव्यतनयान्द्विज ।
वसुरातादिकान्पुत्रानादिष्ट.समहात्मना ॥१३
अयाचतसराज्यार्धपितृपैतामहोचितद् ।
तेचोचुर्वैश्यपुत्रस्त्वकथभोक्ष्यसिमेदिनीम् ॥१४

भलन्दन ने राजर्षि नीप की यथा-विधि वन्दना की और कहा कि मेरी माता ने मुझे 'गोपाल' होने का आदेश दिया है, इसलिये पृथ्वी पालन मेरा कर्तव्य है। पर इस समय पृथ्वी पर मेरे अन्य कुटुम्बियों ने अधिकार कर रखा है। इसलिये आप मेरा इस प्रकार मार्ग दर्शन करें जिससे मैं पृथ्वी को प्राप्त करके उस कर्तव्य को पूर्ण कर सकूँ। राजर्षि नीप उसकी शालीनता से सन्तुष्ट हुए और उन्होने उसे सम्पूर्ण अस्त्र विद्या की शिक्षा दी। इस प्रकार अस्त्र-विद्या द्वारा शक्तिशाली बन कर अपने पितव्य-पुत्र वसुरात् के पास गये और उनसे राज्य का आधा भाग देने को कहा। उन्होने उत्तर दिया कि "तुम वैश्य सन्तान हो इससे राज्य-शासन का अधिकार नही है।" ॥८-१४॥

ततस्तैर्युद्धमभवद्भलन्दस्यात्मवशर्ज. ।
वसुरातादिभि क्रुद्धै कृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभि ॥१५
सजित्वातानशेषास्तुशस्त्रविक्षतसैनिकान् ।
जहारपृथिवीतेपायमयुद्धे नघर्मवित् ॥१६
सनिर्जितारि सकलापृथ्वीराज्यतथापितु ।
निवेदयामासगतनस्तत्पिताजागृहेनच ।
प्रत्युवाचगतपुत्रभार्य्यायाःपुरतस्तदा ॥१७
भलन्दराज्यमेतत्तक्रियतापूर्वजं एतम् ॥१८
घटनस्तवाप्राज्यनामामर्थ्यंयुत.पुरा ।
यदयनातुपुरस्कृत्यतथैवाशाकर पितु ॥१९
शृत्वाऽप्योनिपितुरदर्यदरवच्यापरिग्रहात् ।
नपुण्यसावर्भाप्राजायाबदाभूतगत्नयम् ॥२०
उल्लघ्याज्ञामगुनस्तस्यपालयामिमहीयदि ।
नाग्निमोक्षलतोनूनममकरायतेरपि ॥२१

नचापियुक्त त्वद्वाहुनिर्जितममानिन ।
राज्यभोक्तुमनीहम्यदुर्वलस्येवकस्यचित् ॥२२
राज्यकुरुस्वयपुत्रदायादेभ्योविमु चवा ।
ममाज्ञापालनशस्त पितुर्नक्षितिपालनम् ॥२३

इस पर भलन्दन ने उनका युद्ध के लिय आह्वान किया और अस्त्रो के प्रयोग से उनकी सब सेना को घायल करके राज्य पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार भलन्दन के समस्त राज्य जीत कर पिता के चरणों मे अर्पण किया, पर पिता उसे ग्रहण करने को तत्पर नहीं हुए। उन्होंन कहा—हे पुत्र! पूर्वजों द्वारा शासित इस राज्य का उपभोग तुम्हीं करा। मैं राज्य नहीं कर सकता ऐसी बात नही है, पर मैंन पिता की आज्ञा को अस्वीकार करके वैश्य कन्या से विवाह किया और इसके लिये राज्य अधिकार को त्याग दिया। अगर अब मैं उस राज्य का पुन अधिकार ग्रहण करूँगा तो यह पिता की आज्ञा का उल्लंघन होगा। इस मिथ्या व्यवहार के कारण मैं और मेरे पिता प्रलय काल पर्यन्त मुक्ति लाभ नही कर सकेंगे ॥१५–२१॥ वैसे भी मेरे जैसे निराकाक्षी व्यक्ति का तुम्हारे बाहुबल से जीता राज्य उपभोग करना उचित नहीं है। इसे तुम्हीं भोगो या कुटुम्बियो को ही वापस कर दो। मरे लिय पिता की आज्ञा पालन करना ही हितकारी है ॥२२-२३॥

तत प्रहस्यतद्भार्य्यासुप्रभानामभामिनी ।
प्रत्युवाचपतिभूपगृह्यताराज्यमूर्जितम् ॥२४
नत्ववैश्यानचैवाहजातावैश्यकुलेनृप ।
क्षत्रियस्त्वतथैवाहक्षत्रियाणाकुलोद्भवा ॥२५
पूर्वमासीन्महीपाल सुदेवइतिविश्रुत ।
तस्याभूच्चसखाराज्ञोधूम्राश्वस्यसुतोनलः ॥२५
सतेनसख्यासहितोजगामाग्रवननम् ।
पत्नीभि ससमरन्तु माधवेमासिपार्थिव ॥२७
तत पानान्यनेकानिभक्ष्याणिनुभुजेतदा ।
भार्य्याभि सहन्म्याभिस्तेनसख्यासमन्वितः ॥२८

तत पुष्करिणीतीरेददर्शातिमनोरमाम् ।
पत्नीच्यवनपुत्रस्य प्रमते पार्थिवात्मजाम् ।।२९
सखातस्यनलोमत्तोजगृहेताचदुर्मति· ।
पश्यतस्तस्यराज्ञश्चताततातेतिवादिनीम् ।।३०

इस वार्तालाप को सुनकर नाभाग की पत्नी सुप्रभा ने हँसते हुए कहा कि वास्तव में आप वैश्य नहीं हैं और मैं भी वैश्य नहीं हू, मेरा जन्म क्षत्रिय वंश में ही हुआ है । इसलिये आप खुशी से इस राज्य को ग्रहण कर सकते हैं। इसका रहस्य यह है कि मेरे पिता पूर्वकाल में सुदेव नाम के राजा थे और उनके मित्र राजा धूम्राश्व के पुत्र नल नाम के राजा थे । एक दिन राजा और उनके मित्र अपनी पत्नियों सहित आमो के वन में विहार करने गये । वहाँ वे भाँति-भाँति के खान-पीन की वस्तुएँ उपभोग करने लगे । इसके पश्चात् नल ने सरोवर के किनारे च्यवन पुत्र प्रमति की सुन्दरी पत्नी को देखा, जो किसी राजा की पुत्री थी । दुष्टमति नल ने उस रमणी को जाकर पकड लिया । इस पर वह 'रक्षा करो' 'रक्षा करो' कहकर राजा के सम्मुख रोने लगी ।।२४-३०।।

आक्रन्दित निशम्यैवमस्या प्रमति पतिः ।
आजगामत्वरायुक्त किमेतदितिवैवदन् ।।३१
ततोददर्शराजानसुदेवतनयस्थितम् ।
गृहीताचतथापत्नीतेनसुदुरात्मना ।।३२
तत सुदेवप्रमति प्राहायचाम्यतामिति ।
त्वचनाम्नाभवद्राज्यदुष्टश्चापलतोनृप ।।३३
तस्यानंदयवतःस्वयगुदेवोनागीरवात् ।
प्राहवैश्योऽभिगच्छाग्यश्च स्वचनागारागार् ।।३४
तत सप्रमति स्रुद्धाऽस्मोगस्मानिरहन्निव ।
प्रत्युत्पादप्रजानवैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम् ।।३५
एवमुक्त्वास्त्रीयाद्वय क्षत्रिय शलरक्षणात् ।
शर्विर्योषध्यैतिशरवनाशनसदशोऽस्वैदिति ।
सम्पन्नाशविप्राभार्याभिःरण्वानुनापस ।।३६

उधर से महर्षि प्रमति भी 'क्या हुआ ?' कहते हुए शीघ्रता पूर्वक वहाँ आये। प्रमति ने सुदेव से कहा कि आप इसे रोकिये क्योंकि आप ही यहाँ के शासक हैं और ऐसे कार्य को रोकना आपका कर्तव्य है। प्रमति के इस प्रकार के विनीत वचन सुनकर राजा सुदेव अपने मित्र की सम्मान रक्षा के विचार से बोले—"मैं तो वैश्य हूँ आप किसी क्षत्रिय के सम्मुख जाकर रक्षा की प्रार्थना कीजिये।" सुदेव की इस तरह की बात सुनकर प्रमति को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कहा—"तथास्तु, तुम सचमुच वैश्य हो जाओगे, क्योंकि क्षत्रियों की उत्पत्ति तो अन्याय-पीड़ितों की रक्षा के लिये ही की गई है। क्षत्रिय इसी लिये शस्त्र धारण करते हैं कि कोई व्यक्ति अन्याय से पीड़ित न हो। इस धर्म का पालन न करने से तुम क्षत्रिय नहीं रह सकते और वैश्य ही होगे।" ॥३१–३६॥

१०३ कृपावती उपाख्यान

तस्मैदत्त्वातत शापनलक्रुद्धोऽब्रवीद्द्विज ।
प्रमतिर्भार्गव कोपात्त्रैलोक्यनिर्दहन्निव ॥१
मदोन्मत्तोयनोभार्य्यामिवाननममाश्रमे ।
बलाद्गृह्णातिमस्मात्वतस्माद्भजतुमाचिरम् ॥२
तेनोदाहृतमात्रेचवाक्येतस्मिंस्तदानल ॥
देहजेनाग्निनामद्योभस्मपुञ्जस्तदाऽभवद् ॥३
दृष्ट्वाप्रभावतन्त्वसुदेवोविस्मितस्तत ।
प्रणाममस्त्र प्राहेदक्षम्यताक्षम्यतामिति ॥४
यदुक्तवान्स्त्वानगवन्मुग्धपानमदाकुलम् ।
तत्क्षम्यताम्प्रसीदत्वंशापोऽत्रविनिवर्त्यताम् ॥५
एवंप्रसादितस्तेनप्रमतिः प्राहभार्गव. ।
गतरोषानलेदग्धेतानीनेनचनमा ॥६

नान्यथाभाविनद्वाक्यंयेन्मयासमुदीरितम् ।
तथापिलेकरिष्यामिप्रसन्नोऽनुग्रहपरम् ।।७

इस प्रकार सुदेव को शाप देकर प्रमति ने अत्यन्त क्रोधित होकर नल से कहा—कि "जब तूने उन्मत्त होकर मेरे आश्रम में ही मेरी पत्नी को जबर्दस्ती पकड लिया तो तू तुरन्त भस्म होजा। यह वचन मुँह से निकलते ही नल के देह मे भयङ्कर ज्वाला प्रकट हुई और वह तुरन्त भस्म हो गया। प्रमति का ऐसा प्रभाव देख कर सुदेव की मत्तता दूर भाग गई और वह बार-बार प्रणाम करके कहने लगे 'भगवान्! क्षमा करो। मद्यपान के दूषित प्रभाव के कारण मैंने जो बक-झक की उसके लिये क्षमा प्रदान करें और शाप से मुझे मुक्त करें। राजा के इस प्रकार विनय करने और नल के नष्ट हो जाने से प्रमति का क्रोध शान्त हुआ और उन्होने कहा—जो वाक्य मेरे मुख से निकल चुके वे अब मिट नही सकते, तो आपकी प्रार्थना पर कुछ अनुग्रह कर सकता हूँ ।।१-७।।

भवितावंश्यजातोयोभवानास्त्यत्रसशय ।
भविनाशस्त्रियोवश्यम्तस्मिन्नेवाशुजन्मनि ।।८
अग्नीष्यतिस्त्वात्वन्यायदातेश्वमम्भव ।
तदात्वशस्त्रियोवंश्यस्वगृहीतोभविष्यसि ।।९
एवसवंश्योभूपालसुदेवोऽस्मत्पिताभवत् ।
अहचयामहाभागतस्सवंश्रूयता त्वया ।।१०
मुरलोनामगर्जपि प्रागासीगद्न्यमादने ।
तपस्वीनियताहारस्त्यवनसन्द्रावनाश्रय ।।११
तत स्येनमुखभ्रष्टाहृष्ट्वाशारिषाभुवि ।
गृपान्भुजनितामूर्च्छानिथातस्यमहात्मन. ।।१२
ताोमूर्च्छास्मानेनस्यन्म्योत्स्मानारीग्त ।
ममादृष्ट्वाजप्राहरिनाजमानेनचेतसा ।।१३

यस्मात्कृपाभिभूतस्यममजातेयमात्मजा ।
तस्मात्कृपावतीनाम्नाभविष्यत्याहसप्रभो ॥१४

प्रमति ने कहा—आपको कुछ काल के लिये वैश्य तो अवश्य होना पड़ेगा पर जब कोई क्षत्रिय राजकुमार आपकी कन्या को बल पूर्वक पत्नी बनायेगा तो आप इसी जन्म मे पुन क्षत्रिय हो जावेंगे। इस प्रकार घटनावश मेरे पिता को वैश्य होना पडा था। मैं भी ऐसी ही अन्य घटना वश वैश्य के घर उत्पन्न हुई थी। कुछ काल पूर्व गन्धमादन पर्वत के समीप सुरथ नाम के राजवन म रह कर तपस्या करत थे। एक दिन उन्होंने बाज क मुख पर पृथ्वी पर गिरी सारिका छटपटाते देखा तो वे दुख के मारे मूर्छित हो गये। मूर्छा दूर होने पर मैं उन्ही के शरीर से उत्पन्न हुई। उन्होने मुझे देख कर बडा स्नेह किया और कहा कि—इस कन्या का आविर्भाव मेरे कृपाभिभूत होने स हुआ है, इस कारण इसका नाम 'कृपावती' ही होगा ॥८-१४॥

ततोऽहमाश्रमे तस्यवर्धमानदिवानिशम् ।
सखीभि सहतुल्याभिर्विचरामिवनानिच ॥१५
ततोमुनेरगस्त्यस्य भ्रातागस्त्यइतिश्रुत ।
सचिन्वन्काननेवन्यसखीभिकोपितोऽशपत् ॥१६
यस्मान्मावैश्यइत्याहभवतीतेनतेशपे ।
वैश्याभविष्यसीत्युक्तेप्रसाद्योक्तोमयामुनि ।
नापराधकृतवतीतवाहद्विजसत्तम ।
अन्यासामपराधेनकिमर्थंशप्तवानसि ॥१७
दुष्टादुष्टससर्गाद्दुष्टत्वमपिगच्छति ।
सुराविंदुनिपातेनपञ्चगव्यघटायथा ॥१८
प्रणिपत्यह्यनिष्टापियत्त्वयाहप्रसादित ।
तस्मादनुग्रहबालेश्रृणुष्वचवदोम्यहम् ॥१९
वैश्ययोनौयदाजातात्वपुत्रबोधयिष्यसि ।
राज्यायजातिस्मरतातदात्वसमवाप्स्यसि ॥२०

ततोभूय क्षत्रजातिप्राप्तास्यपतिनासह ।
दिव्यानवाप्स्यसेभागान्गच्छभीतिरपैतुते ॥२१
एवशप्तास्मिराजेन्द्रतेनपूर्वमहर्षिणा ।
पिताचमेपूर्वमेवशप्तःप्रमतिनाऽभवत् ॥२२
एववैश्योनराजस्त्वनचवैश्य पितामम ।
नत्वहिमयिससर्गादिदुष्टोदुष्यसेक्षयम् ॥२३

सुप्रभा ने कहा—' मैं उन्ही राजर्षि के आश्रम म रह कर पलने लगी और बडी होने पर समान वय की सखियो के साथ विचरण करने लगी। वहाँ एक दिन अगस्त्य मुनि के भ्राता पुष्प बीन रहे थे। उन्हें देख कर मेरी सखियो ने उन्हें चिढाया, जिस पर क्रोधित होकर उन्होने मुझे शाप दिया है कि "तुमने मुझको वैश्य कह कर चिढाया है, इस लिये तू वैश्य की ही कन्या हो जायगी। ' इस शाप को सुन कर व्यथित होकर मैंने कहा—" हे महामुने ! मैंने तो आपसे कुछ भी बुरा नहीं कहा, अन्य सखियो के दोप के कारण मुझे शाप क्यों देते हैं। " ऋषि ने कहा—जिस प्रकार पचगव्य से पूर्ण पवित्र घट मे एक बूँद सुरा के पड जाने से दूषित हो जाता है उसी प्रकार निर्दोष व्यक्ति भी दुष्टो के सग मे रहने से दूषित हो जाता है। पर अब तेरी विनय सुन कर मैं तुझ पर यह अनुग्रह करता हूँ कि वैश्य वर्ण मे उत्पन्न होने के पश्चात् जब तू अपने पुत्र को राज्य ग्रहण करने का उपदेश देगी तो तुझे अपनी पूव जाति का स्मरण हो जायगा और पति के सग क्षत्रियत्त्व को प्राप्त कर के दिव्य भोगो की अधिकारिणी होगी। इसलिय अब तू भय त्याग कर अपने आश्रम मे निवास कर ॥१५।२१॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार ऋषि के शाप के कारण मैं वैश्य योनि को प्राप्त हुई थी और मेरे पिता भी महर्षि प्रमति के शाप वश वैश्य हो गये थे। वस्तुत आप व मेरे पिता कोई वैश्य नहीं हैं और इस कारण मेरे साथ सम्पर्क होने से आपका वैश्य होना भी निराधार है। ॥१५-२३॥

१०३—भलन्दन वत्सप्रीति चरित्र

इतितस्यावच.श्रुत्वापुत्रस्यसचपार्थिव. ।
पुन:प्रोवाचधर्मज्ञस्तापत्नीतमयतथा ॥१
यन्मयापितुरादेशात्यक्त राज्यनतत्पुन. ।
ग्रहीष्यामिवृथोक्तेनकिमात्मक्लिश्ययेत्वया ॥२
अहतेसम्प्रदास्यामिकरवैश्यव्रतेस्थित. ।
भुङ्क्ष्वराज्यनशेषत्वमिच्छयावापरित्यज ॥३
इत्युक्त:सतदापित्राराजपुत्रोभलन्दन ।
चकारराज्यधर्मेणतद्दारपरिग्रहम् ॥४
अव्याहततस्यचक्रंपृथिव्यामभवद्द्विज ।
नचाधर्ममनोभूपास्तस्यसर्वेऽभवन्वशे ॥५
तेनेष्टोविविधैर्यज्ञै सम्यक्पालिवसुन्धराम् ।
सएवंकोऽभवद्भर्त्तापृथिव्यामरिशासनः ॥६

पत्नी और पुत्र की बात सुन कर नाभाग ने उत्तर दिया कि चाहे जो कुछ हो, पर जिस राज्य को मैंने पिता की आज्ञानुसार एक बार त्याग दिया, तो अब उसे फिर ग्रहण करके अपनी प्रतिज्ञा को भग नहीं कर सकता। अब तुम्ही इस राज्य के अधिकारी बनो और चाहो तो दूसरो के लिये छोड दो, मैं तो वैश्य वृत्ति मे रहकर राजा का कर देता रहूगा। इस प्रकार पिता की आज्ञा पाकर भलन्दन राज्य शासन करने लगे और यथा समय विवाह करके गृहस्थ बने। राजा भलन्दन बडे प्रतापी थे और उनका रथ पृथ्वी पर सर्वत्र भ्रमण करता था, वे कभी अधर्ममार्ग पर अग्रसर नही हुए, इसलिये सब राजा उनके अनुगामी बन गये। वे राज्य धर्मानुसार यज्ञानुष्ठान करते और प्रजा का पूर्ण कर्तव्य परायणता से पालन करते थे और उन्हें सर्वत्र एक अद्वितीय शासक माना गया ॥१—६॥

अजायतसुतस्तस्यवत्सप्रीतिस्तुनामतः ।
पितातिशयितोयेनगुणौघेनमहात्मना ॥७

तस्यापिभार्य्यासौनन्दाविदूरथसुताऽभवत् ।
पतिव्रतामहाभागासाप्राप्तातेनशौर्य्यत ।
हत्वापुरन्दररिपु कुजृभंदितिजेश्वरम् ॥८
भगवस्तेनसप्राप्ताकुजृ भनिधनात्कथम् ॥
एतदाख्यानमाख्याहिप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥९
विदूरथोनामनृप ख्यातकीर्तिरभूद्भुवि ।
तस्यपुत्रद्वयजातसुनीति सुमतिस्तथा ॥१०
एकदातुवनयातोमृगयाँसविदूरथ ।
ददर्शगर्तंसुमहद्भू मेर्मु खमिवोद्गतम् ॥११
तद्दृष्ट्वाचिन्तयामासकिमेतदितिभैरवम् ।
पातालविवरमन्येनैतद्भू मेश्चिरन्तनम् ॥१२
चिन्तयन्नितित नासौददर्शविजनेवने ।
ब्राह्मणसुव्रतनामतपस्विनमुपागतम् ॥१३

मार्कण्डेयजी कहने लगे—महाराज भलन्दन के पुत्र वत्सप्रीति हुए जिन्होंने अपने गुणों से पिता की कीर्ति को और भी बढाया। वत्सप्रीति का विवाह विदूरथ की कन्या 'सौनका' से हुआ था और उन्होंने इन्द्र के शत्रु 'कुजृम्भ' नामक दैत्य पति को मार कर उसे प्राप्त किया था। यह सुन कर कौष्टुकी ने पूछा—"भगवन् ! वत्सप्रीति का आख्यान बतलाइये कि उसके किस प्रकार कुजृम्भ से सौनन्दा को छुडाया।" मार्कण्डेय जी ने कहा—विदूरथ एक बडे प्रतापशाली और प्रसिद्ध नरेश थे। उनके सुनीति और सुमति नामक दो पुत्र थे। एक दिन राजा ने वन में शिकार के लिये भ्रमण करते हुए एक अथाह गढा देखा। उन्होंने विचार किया कि यह कैसे उत्पन्न हो गया। सम्भवत यह पाताल लोक का मार्ग है। उसी समय वहाँ उनको सुव्रत नाम के एक तपस्वी ब्राह्मण दिखाई दिये ॥७–१३॥

सतपप्रच्छचनृप किमेतदितिविस्मित ।
अतिम्भीरमवनेर्दशितातर्गतदरम् ॥१४

किन्नवेत्सिमहीपालवागर्थस्त्वहिमेमतः ।
ज्ञेयसर्वनरेन्द्रेणवर्त्ततेयन्महीतले ॥१५
दानवःसुमहावीर्य्योवसत्युग्रोरसातले ।
सजृम्भयतिपृथ्वीकुजृम्भःप्रोच्यतेततः ॥१६
क्रियतेतेनयत्किञ्चिद्रत्नभूतमहीतले ।
त्रिदिवेवानरपपेर्तकथवेत्तिनोभवान् ॥१७
सुनन्दंनाममुशलत्वष्टायन्निर्मितपुरा ।
तज्जहारसदुष्टात्मातेनहन्तिरणेरिपून् ॥१८
पातालान्तर्गतस्तेनभिनत्तिवसुधामिमाम् ।
ततोऽसुराणांसर्वेपाद्वाराणिकुरुतेऽसुरः ॥१९
तेनभित्त्वात्रवसुधासुनन्दमुशलेनतु ।
भोक्ष्यतेत्रसुधामेतातमजित्वकथभवान् ॥२०
यज्ञान्विध्वंसयत्युग्रोदेवानामुपरोधक ।
आप्याययतिदैतेयान्सवलीमुशलायुध. ॥२१

राजा ने उनको वह गढा दिखा कर पूछा कि यह क्या है ? तपस्वी ने कहा कि क्या आप इसे नहीं जानते ? राजा को तो ऐसी विशेष बातों का पता अवश्य रखना चाहिये । अब मैं आपको इसका सब वृतान्त बतलाता हू । रसातल मे एक बहुत बलवान् दैत्य रहता है। जिसको 'कुजृम्भ' कहते हैं, क्यों कि वह समस्त पृथ्वी को जभाई लिवाता है । पृथ्वी और स्वर्ग के प्राणी-मात्र, जँभाई लेना उसी के कारण होता है । प्राचीन समय मे विश्वकर्मा ने 'सुनन्द नाम का जो 'मूसल' (अस्त्र) बनाया था। यह दुष्ट राक्षस उसी को लेकर युद्ध मे शत्रुओं को मारता है ओर पृथ्वी को भेद कर रसातल का मार्ग भी बना देता है । जिससे अन्य दानव भीतर जा सकें । उस सुनन्द मूसल से ही उसने यह विवर बना दिया है । वह शक्तिशाली दैत्य उस 'मूसल' के द्वारा अजेय बन कर यज्ञ और देवताओं को नष्ट करता रहता है और दैत्यों की मनोवाञ्छा पूर्ण करता है ॥१४–२१॥

तस्यापिभार्य्यासौनन्दाविदूरथसुताऽभवत् ।
पतिव्रतामहाभागासाप्राप्तातेनशौर्य्यत. ।
हत्वापुरन्दररिपु कुजृम्भदितिजेश्वरम् ॥८
भगवस्तेनसप्राप्ताकुजृंभनिधनात्कथम् ॥
एतदाख्यानमाख्याहिप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥९
विदूरथोनामनृपःख्यातकीर्तिरभूद्भुवि ।
तस्यपुत्रद्वयंजातसुनीति सुमतिस्तथा ॥१०
एकदातुवनयातोमृगयाँसविदूरथः ।
ददर्शगर्तसुमहद्भूमेर्मुखमिवोद्गतम् ॥११
तद्दृष्ट्वाचिन्तयामासकिमेतदितिभैरवम् ।
पातालविवरमन्येनैतद्भूमेश्चिरन्तनम् ॥१२
चिन्तयन्निति तत्रासौददर्श विजनेवने ।
ब्राह्मणंसुव्रतनामतपस्विनमुपागतम् ॥१३

मार्कण्डेयजी कहने लगे–महाराज भलन्दन के पुत्र वत्सप्रीति हुए जिन्होंने अपने गुणों से पिता की कीर्ति को और भी बढाया। वत्सप्रीति का विवाह विदूरथ की कन्या 'सौनका' से हुआ था और उन्होंने इन्द्र के शत्रु 'कुजृम्भ' नामक दैत्य पति को मार कर उसे प्राप्त किया था। यह सुन कर क्रौष्टुकी ने

तमन्त्र क्रियमाणन्तुमन्त्रिभिस्तेनभूभृता ।
तत्पार्श्ववर्तिनीकन्याशुश्रावाथमुदावती ॥३०
तत कतिपयाहेतुताकन्यावयसाविताम् ।
जहारोपवनाद्दैत्य कुजृम्भ मसखीवृताम् ॥३१
तच्छ्रुत्वासमहीपाल क्रोधपर्य्याकुलेक्षणा ।
पुत्रावुवाचत्वरितगच्छतवनकोविदौ ॥३२
निर्विन्ध्यायास्तटेगतस्तेनगत्वारसातलम् ।
सहन्यतायोऽपहृतांमुदावत्या सुदुर्मति ॥३३
ततस्तौतत्सुतौप्राप्यतगर्त्त तत्पदानुगौ ।
युयुधातकुजृम्भेणस्त्रसैन्येनातिकापितौ ॥३४
तत परिघनिर्स्त्रिंशशक्तिशूलपरश्वधै ।
वाणैश्चाविरतयुद्ध तेपामासीत्सुदारुणम् ॥३५
ततामायाबलवतातेनदैत्येनतावुभौ ।
राजपुत्रौरणेबद्धौनिहताशेषसैनिकौ ॥३६

जब ऋषि इस प्रकार राजा को सब बातें बतलाकर चले गये तो राजा अपने नगर मे वापस आये और वहाँ अपने मन्त्रियो से इस विषय म सलाह करने लगे। उन्होने मूसल के प्रभाव तथा उसकी शक्ति नष्ट होने की बात मन्त्रियो को बतलाई। उस समय उनकी कन्या मुदावती भी वही पर बैठी सब बातें सुन रही थी। इस घटना से कुछ ही समय पीछे शीघ्र ही एक दिन जब मुदावती अपनी सखियो के साथ उपवन मे गई थी कुजृम्भ दानव वहाँ आकर उसे पकड कर ले गया। जब यह खबर राजा को मिली तो वे बडे क्रोधित हुए और अपने दोनो पुत्रो को बुला कर कहा कि तुम दोनो वन प्रदेश का हाल जानते ही हो इसलिए वहाँ जाकर निर्विन्ध्या नदी के तटवर्ती पाताल विवर म होकर कुजम्भ दानव को मारो क्योकि वह तुम्हारी बहिन को हर कर ले गया है। राजा के आदेशानुसार दोनो राजपुत्र उस विवर पर पहुचे और वहाँ दानव के पैरो के चिह्न देखते हुए कुजृम्भ के निवास स्थान पर आ गये। तब राजपुत्रो की सेना का दानव की सेना के साथ घोर

तमन्त्रं क्रियमाणन्तुमन्त्रिभिस्तेनभूभृता ।
तत्पार्श्ववर्तिनीकन्याशुश्रावाथमृदावती ॥३०
तत कतिपयाहेतुताकन्यावयसान्विताम् ।
जहारोपवनाद्दैत्य.कुजृम्भ ससखीवृताम् ॥३१
तच्छ्रुत्वासमहीपाल क्रोधपर्य्याकुलेक्षणः ।
पुनाबुयाचत्वरितगच्छतवनकोविदौ ॥३२
निर्विन्ध्यायास्तटेगर्तस्तेनगत्वारसातलम् ।
सहन्यतायोऽपहर्तांमुदावत्या सुदुर्मति ॥३३
तनस्तौतत्सुतौप्राप्यतंगर्त्तं तत्पदानुगौ ।
युयुधातेकुजृम्भेणस्वसैन्येनातिकोपितौ ॥३४
तत परिघनिर्स्त्रिंशशक्तिशूलपरश्वधैः ।
वाणैश्चाविरतयुद्ध तेषामासीत्सुदारुणम् ॥३५
ततोमायाबलवतातेनदैत्येनतावुभौ ।
राजपुत्रौरणेबद्धौनिहताशेपसैनिकौ ॥३६

जब ऋषि इस प्रकार राजा को सब बातें बतलाकर चले गये तो राजा अपने नगर मे वापस आये और वहाँ अपने मन्त्रियो से इस विषय मे सलाह करने लगे। उन्होंने मूसल के प्रभाव तथा उसकी शक्ति नष्ट होने की बात मन्त्रियो को बतलाई। उस समय उनकी कन्या मुदावती भी वही पर बैठी सब बातें सुन रही थी। इस घटना से कुछ ही समय पीछे शीघ्र ही एक दिन जब मुदावती अपनी सखियों के साथ उपवन मे गई थी कुजृम्भ दानव वहाँ आकर उसे पकड कर ले गया। जब यह खबर राजा को मिली तो वे बडे क्रोधित हुए और अपने दोनो पुत्रो को बुला कर कहा कि तुम दोनो वन-प्रदेश का हाल जानते ही हो इसलिए वहाँ जाकर निर्विन्ध्या नदी के तटवर्ती पाताल विवर मे होकर कुजृम्भ दानव को मारो, क्योंकि वह तुम्हारी बहिन को हर कर ले गया है। राजा के आदेशानुसार दोनो राजपुत्र उस विवर पर पहुंचे और वहाँ दानव के पैरो के चिन्ह देखते हुए कुजृम्भ के निवास स्थान पर आ गये। तब राजपुत्रो की सेना का दानव की सना के साथ घोर

स्थानेस्थास्यतिमेवत्सोयद्येवकुरुतेविधिम् ।
यत्सतक्रियतामाशुयद्युत्साहिमनस्तव ॥४४
तत सखड्ग सधनुर्बद्धगोधाङ्ग लित्राणवान् ।
जगामवीर.पातालतेनगर्तेनसत्वर: ॥४५
तजोज्यास्वनमत्युग्र सचक्रे पार्थिवात्मज: ।
येनपातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ॥४६
ततोज्यास्वनमाकर्ण्यकुजृम्भोदानवेश्वर: ।
आजगामातिकोपेनस्वसैन्यपरिवारित: ॥४७
ततोयुद्धमभूत्तस्यतेनपार्थिवसूनुना ।
ससैन्यम्यमसैन्येनबलिनोबलशालिन ॥४८
दिनानित्रीणिसयदायौधियस्तेनदानव ।
तत कोपपरीतात्मामुमलाम्यधावत ॥४९

महाराज विदूरथ ने मित्रपुत्र वत्सप्री का हार्दिक स्वागत करते हुए—"हे वत्स ! यदि तुम इस कार्य को कर सकोगे तो मैं तुम्हारा मित्र पुत्र होना सार्थक समझूँगा । अतएव यदि तुम्हारे मन में इसके लिये पूर्ण उत्साह हो तो शीघ्रातिशीघ्र इसे पूरा करने का प्रयत्न करो । तदनन्तर महावीर वत्सप्री खड्ग, धनुष, गोधा और अ गुलीत्राण धारण करके शीघ्रतापूर्वक उस विविर में घुस और वहाँ पहुंच कर अपने शक्तिशाली धनुष की प्रत्यचा की टङ्कार भरी जिमसे वह समस्त विवर महाशब्द से परिपूर्ण हो गया । उस टङ्कार के घोर रव को सुन कर दानव श्रेष्ठ कुजम्भ क्रोध से भर गया और अपनी सेना को लेकर लडने के लिये तैयार हो गया । राज कुमार वत्सप्री और कुजृम्भ का युद्ध तीन दिन तक होता रहा, पर तब भी वह वत्सप्री को जीत न सका । तब वह मूसल को लेने के लिए अपने महल में गया ॥४३–४९॥

गन्धैर्माल्यैस्तथाधूपै:पूज्मान मतिष्ठति ।
अन्त पुरेमहाभागप्रजापतिविर्निर्मित: ॥५०
ततोविज्ञानमुशलप्रभावामामुदावती ।
पस्पर्शमुशलश्रेष्ठम तनम्रगिरोधरा ॥५१

पुनर्यावत्सगृह्णातिमुशलतमहासुर ।
तावत्सावन्दनव्याजात्पस्पर्शानिकश शुभा ॥५२
तत सगत्वायुयुधेमुशलेनासुरेश्वरः ।
व्यर्थामुशलपातास्तेसजग्मुस्तेपुशत्रुपु ॥५३
परमास्त्र तुनिर्वीर्यंसौनन्देमुशलेमुने ।
अस्त्रं .शस्त्रं श्चदं सेय सोयुध्यतरणेऽरिणा ॥५४
शस्त्रास्त्रं र्नसमम्तस्यराजपुत्रस्यमोऽसुर ।
मुशलेनवलन्तस्यलच्चतन्व्यानिराकृतम् ॥५५

राजाविदूरथ की कन्या मुदावती जो दानव के महल मे कैद थी इस मूसल के विषय म सब रहस्य अपने पिता से सुन चुकी थी। इसलिये, उसने उस मूसल को प्रणाम करके उसे छू लिया। जब कुजृम्भ उस मूसल को ले जाने लगा तब तक मुदावती ने पूजा के बहाने उसे बार-बार छुआ जब दानव-पति उस मूसल को लेकर युद्ध क्षेत्र मे लडने लगा तो उसका प्रहार बार-बार असफल होने लगा, क्योंकि उसकी शक्ति स्त्री के स्पर्श के कारण नष्ट हो चुकी थी। यह देख कर दानव अस्त्र शस्त्र द्वारा युद्ध करने लगा। पर अस्त्र युद्ध मे वत्सप्री दानव की अपेक्षा अधिक निपुण था। उसको जिस मूसल का भरोसा था वह अब चतुराई से व्यर्थ कर दिया गया था ॥५०–५५॥

तत पराजित्यसभूपसूनुरस्त्राणिशस्त्राणिचदानवस्य ।
चकारसद्योविरथततश्चमचर्मखङ्ग पुनरप्यधावत् ॥५६
तमापन्तरभसाऽभ्युदीर्णविस्पष्टकोपनिदशेन्द्रशत्रुम् ।
शस्त्रेणवक्षं भुं विराजपुत्राजघानकालानलसप्रभेण ॥५७
सपावकास्त्रेणदृद्विक्षतोभृशतत्याजदेहत्रिदशारिरात्मन ।
वभूवमद्यश्चमहोरगाणारसातलान्तेपुमहानथोत्सव ॥५८
ततोप्तत्पुष्पवृष्टिर्महीपालसुतापरि ।
जगुर्गन्धर्वगतयादेववाद्यानिसस्वनु ॥५९
सचापिराजपुत्रस्तहत्वातौनृपतेसुतौ ।
मोचयामास न्वङ्गीनाश्वरन्यामुदावतीम् ॥६०

तत्रापिमुशलतस्मिन्कुजृम्भेविनिपातिते ।
जग्राहनागाधिपतिरनन्त शेषमञ्जिन ॥६१
तस्याश्चपरितुष्टोऽमोगेप सर्वोरगेश्वर ।
मुदावत्यामुदाघ्यातमनोवृत्तिस्तपोधन ॥६२
सुनन्दमुशलस्पर्शयश्चकारपुन पुन ।
यापित्करतलस्पर्शप्रभावज्ञानिशोभना ॥६३
मुदावत्याम्ततोनामनागराजम्तदाकरोत् ।
सुनन्दामितिमानन्द सौनन्दगुणजद्विज ॥६४

जब वत्सश्री ने दानवराज के सब अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ करके उसके रथ को भी नष्ट कर दिया तो वह तलवार, ढाल लेकर वत्सश्री से युद्ध करने के लिये बड़े वेग से दौड़ा। पर वत्सश्री ने उसे बीच में ही कालाग्नि के समान सुप्रकाशित आग्नेयास्त्र से मार दिया ॥५६–५७॥ यह कुजृम्भ देवताओं तथा पातालवासी नागों के लिये बड़ा कष्टकारक थी, इससे उसके मरते ही नागगण महान् उत्सव करने लगे। उस समय चारों ओर से राजपुत्र वत्सश्री पर पुष्पवर्षा होने लगी, गन्धर्व गायन करने लगे और देवगण तरह तरह के वाद्य बजाने लगे। वत्सश्री ने दानव की कैद से राजा विदूरथ के दोनों पुत्र सुनीति तथा सुमति और कन्या मुदावती को छुड़ाया। कुजृम्भ का अन्त हो जाने पर उसके मूसल नागराज अनन्त ने ग्रहण किया और वे राजकन्या मुदावती की चतुराई को जान कर बड़े प्रसन्न हुए। उसी मूसल को बार-बार छूकर उसकी शक्ति को मिटा दिया था और इस प्रकार कुजृम्भ का नाश कराया था। उस मूसल का नाम सौनन्द होने से नागराज ने मुदावती का नाम 'सुनन्दा' रख दिया ॥५८–६४॥

सचापिराजपुत्रस्ताभ्रातृभ्यासहितापितु ।
समीपमानिनायाशुर्बाणपरयाहचेवतम् ॥६५
आनीतौतनयौनाततयँवेयमुदावती ।
तवाज्ञयामयान्यद्यत्कर्तव्यतत्समादिश ॥६६

तत प्रहर्षसपूर्णहृदय समहीपतिः ।
साधुमाध्वित्ययाहोच्चैर्वत्सवत्सेतिशोभनम् ॥६७
सभाजितोऽस्मित्रिदशैर्वत्साहकारणं स्त्रिभि. ।
त्वजामाताचयत्प्राप्तोयच्चारिर्विनिपातितः ।
आगताः क्षताव्यच्चापयानिमेदुन ।
तद्गृहाणाद्यशस्तेऽह्निपाणिमस्यामयोदितम् ॥६९
त्वराजपुत्रचार्वङ्ग्या कन्यायादुहितुर्मम ।
मुदावत्यामुदायुक्तःसत्यवाक्यकुरुष्वमाम् ॥७०

तत्पश्चात् राजकुमार वत्सप्री ने दोनों राजकुमारों तथा कन्या को अपने साथ लाकर राजा विदूरथ की सेवा मे उपस्थित किया और उनको प्रणाम करके निवेदन किया—"महाराज, आपकी आज्ञानुसार आपके दोनों पुत्रों तथा कन्या मुदावती को कुजृम्भ को मार कर छुडा लाया हू । अब जो अन्य कोई कार्य हो तो वैसी आज्ञा दें ॥६५–६६॥ यह सुन कर राजा बडे प्रसन्न और सतुष्ट हुए और बारम्बार वत्सप्री की सराहना करके उसे धन्यवाद देने लगे । उन्होंने कहा—आज मेरे लिये बडी प्रसन्नता का दिन है क्योकि तीन कारणों से मैं देवताओं द्वारा भी प्रशसा का अधिकारी बन गया हूँ । प्रथम तो तुम को जमाता के रूप मे प्राप्त किया, दूसरे ऐसा दुर्धर्ष शत्रु मारा गया और तीसरे मेरे पुत्र और कन्या सकुशल मुझे प्राप्त हो गये । इसलिये अब मे अपनी प्रतिज्ञानुसार अपनी कन्या को तुम्हें देता हूं । तुम उसका पाणिग्रहण करो ॥६७–७०॥

तातस्याज्ञामयाकार्यायदब्रवीषिकरोमितत् ।
त्वमेवतातजानीषेनैवाधिकृतावयम् ॥७१
ततस्तयो मराजेन्द्रश्चक्रे वैवाहिकक्रमम् ।
मुदावत्याश्चदुहितुर्भलन्दनसुतस्यवै ॥७२
तत महतयारेमेवत्सप्रीर्नवयौवन ।
रम्यगीयेषुदेशेषुप्रासादशिखरेषु च ॥७३
कालेनगच्छताचवृद्ध पितातस्यभलन्दन ।
मन ज्ञगामवनमसौ सवभूवमहीपति. ॥७४

इयाजयक्षान्सततंप्रजाधर्मेणपालयत् ।
पुत्रवत्पाल्यमानास्तुप्रजास्तेनमहात्मना ॥७५
ववृधुर्विपर्येतस्यनचाभूद्वर्णसङ्कर ।
नदस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीन्नकस्यचित् ।
नोपसर्गभयञ्चैवतस्मिन्छासतिभूपतौ ॥७६

राजपुत्र वत्सप्री ने कहा—महाराज ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । आप जानते ही है कि मैं गुरुजनो की आज्ञा पालन को सदैव तत्पर रहा हू । तब राजा विदूरथ ने वत्सप्री तथा मुदावती का विवाह सस्कार बडी धूमधाम से सम्पन्न किया । ये दोनो नवयुवा पति-पत्नी रमणीय स्थानों और महलो मे प्रेमपूर्वक विहार करने लगे । कुछ समय पश्चात् वत्सप्री के पिता भलन्दन अधिक वृद्ध हो जाने से पुत्र को राज्य देकर बन को चले गये । वत्सप्री ने राज्य का सचालन और प्रजा का पालन वडी योग्यता से किया जिससे समस्त प्रजाजन निरन्तर समृद्धिशाली और सुखी होने लगे । उनके राज्य मे कोई वर्णसकर नही होते थे और हिंसक जन्तु, दुष्ट लोगो, ठग, धूर्त आदि का भय जाता रहा ॥७१–७६॥

१०४—खनित्र चरित्र (१)

तस्यतस्यासुनन्दायापुत्राद्वादशजज्ञिरे ।
प्राशु प्रवीर शूरश्चसुचक्रोविक्रम क्रम ॥१
वलीवलाकश्चण्डश्चप्रचण्डश्चसुविक्रम ।
सुनयश्चमहाभागा सर्वेसग्रामजित्तमा ॥२
तेपाज्येष्ठोमहावीर्य्य प्राशुरासीन्नराधिप ।
इतरेभृत्यवत्तस्यबभूवुर्वशवर्त्तिन ॥३
तस्ययज्ञद्विजत्यक्तै रनेकैर्द्रव्यराशिभि ।
न्यूनवर्णविसृष्टैश्चमत्यनामावसुन्धरा ॥४

सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजा पुत्रानिवौरसान् ।
योऽभूद्धनचय कोशेतेननिष्पादितास्तुये ॥५
क्रतव शतसहस्रास्तेतेषासख्यानविद्यते ।
अयुताद्यै नकोटीभिर्नचपद्मादिभिर्मु ने ॥६

मार्कण्डेय जी ने कहा—सूर्यवशोत्पन्न महाराज वत्सप्री के बारह पुत्र हुए थे, जिनके नाम प्राशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम, बलाक, चण्ड, *प्रचण्ड, सुविक्रम और सुनय हुए, यह सब अत्यन्त भाग्यशाली और युद्ध मे* विजय प्राप्त करने वाले थे ॥१–२॥ उनमे सबसे प्राशु राजा हुए और अन्य ग्यारह भाई उनके अधीन भृत्य के समान रहने लगे ॥३॥ उनके यज्ञ करने के *समय मे ब्राह्मणो तथा अन्य जाति के मनुष्यो ने भी धन का त्याग किया था,* इसीलिये पृथिवी का नाम वसुन्धरा पडा ॥४॥ उन्होन अपने पुत्र के समान ही प्रजा का पालन किया तथा उनके राज-कोष मे जो धन एकत्र होता था, उसी धन के द्वारा सभी असख्य यज्ञानुष्ठान सम्पन्न हुए थे। उन यज्ञो की प्रयुत, *करोड अथवा पद्म आदि सख्या मे गणना सम्भव नही है ॥५-६॥*

प्रजातिस्तस्यपुत्रोऽभूद्यस्ययज्ञेशतक्रतु ।
अवाप्यतृप्तिमतुलायज्ञभागै सुरै सह ॥७
दानवानासुवीर्य्याणाजघाननवतीर्नव ।
बलचबलिनाश्रेष्ठोजम्भचासुरसत्तमम् ॥८
अन्याश्चसुमहावीर्य्यानाजघानामरद्विष ।
प्रजातेस्तनया पचखनित्रप्रमुखामुने ॥९
तेषाखनित्रोराजाभूत्प्रख्यातोनिजविक्रमै ।
सशान्त सत्यवाक्छूर सर्वप्राणिहितेरतः ॥१०
स्वधर्माभिरतोनित्यवृद्धसेवीबहुश्रुतः ।
वाग्मीविनयसपन्न कृतास्त्रोऽप्यविकत्थन ॥११
सर्वलोकप्रियोनित्यमुवाचैतदहर्निशम् ।
नन्दन्तुसर्वभूतानिस्निह्यन्तुविजनेष्वपि ॥१२

स्वस्त्यस्तुसर्वभूतेपुनिरातङ्कानिसन्तुच ।
माव्याधिरस्तुभूतानामायथोनभवन्तुच ।।१३

उन राजा प्रांशु के प्रजाति नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उनके यज्ञ में देवताओं के सहित इन्द्र यज्ञ भाग प्राप्त कर तृप्त हुए थे और उन्होंने अत्यन्त पराक्रमी वत्र और जम्भ नामक दैत्यों तथा अन्य देव-शत्रु असुरों का वध किया था, उस राजा प्रजाति के खनित्र इत्यादि नाम वाले पांच पुत्र हुए थे ।।७ ६।। उन पाचों में खनित्र ही अपने बल, वीर्य से प्रसिद्ध राजा हुए, यह शान्त सत्य-वक्ता, वीर, सब जीवों का हित चिन्तन करने वाले ।।१०।। अपने धर्म में परा-यण, वृद्धजनों की सेवा करने वाले, अनेक शास्त्रों के देखने वाले, वाग्मी, अस्त्र शस्त्र के ज्ञाता, विनयशील, अहङ्कार हीन ।।११।। तथा सर्व लोकप्रिय थे, वह सदैव कहते रहते—सभी जीव आनन्दित रहें, विजन स्थान में स्नेह युक्त हों, सभी जीवों का कल्याण हो, सब निर्भय हों, सब की पीडा नष्ट हो और मनोव्यथा किसी को भी न हो ।।१२–१३।।

मैत्रीमशेषभूतानिपुष्यन्तुसकलेजने ।
शिवमस्तुद्विजातीनाप्रीतिरस्तुपरस्परम् ।।१४
समृद्धि सर्ववर्णानासिद्धिरस्तुचकर्मणाम् ।
भोलोका सर्वभूतेपुशिवावोऽस्तुसदामति ।।१५
यथात्मनियथापुत्रेहितमिच्छथसर्वदा ।
तथासमस्तभूतेपुवर्त्तध्वहितबुद्धय ।।१६
एतद्वोहितमत्यन्तकोवाकस्यापराध्यते ।
यत्करोत्यहितंकिंचित्कस्यचिन्मूढमानस ।।१७
तसमन्येतितन्यूनकर्तृ गामिफलयत ।
इतिमत्वासमस्तेपुभोलोकाहितबुद्धय ।।१८
सन्तुमालौकिकपापलोका प्राप्स्यथ-वैबुधा ।
योमऽद्यस्निह्यतेतस्यशिवमस्तुसदाभुवि ।।१९

सभी प्राणी सबसे मित्रता प्रकट करें, ब्राह्मणों का कल्याण, पार-स्परिक स्नेह ।।१४।। सभी वर्णों की समृद्धि और सभी कर्मों की

हे मनुष्यो ! तुम्हारी मङ्गलमयी बुद्धि सदैव सब प्राणियों के हित मे लगी रहे ॥१५॥ जैसे तुम अपनी और अपने पुत्र की शुभ कामना सदा किया करते हो, वैसे ही समस्त प्राणियो के हित की कामना करो ॥१६॥ इसी मे तुम्हारा अत्यन्त हित निहित है, कौन किसके प्रति अपराधी है ? जो मन्द बुद्धि मनुष्य किसी का अहित करता है ॥१७॥ उससे उसी का अहित होता है क्योंकि कर्म के फल का भोगने वाला कर्मकर्त्ता ही है, ऐसा विचार करके सभी प्राणियों के हित मे अपनी बुद्धि को रखो ॥१८॥ हे ज्ञानियो ! लौकिक पाप मे प्रवृत्त मत होना, इसीसे तुम्ह पुण्यलोक प्राप्त हो सकते है, मुझमे स्नेह रखने वाले मनुष्य का भूमण्डल मे सर्वत्र ही कल्याण हो और जो मेरे प्रति द्वेष करे, उसका भी कल्याण हो ॥१६॥

यश्चमाद्वेष्टिलोकेऽस्मिन्सोऽपिभद्राणिपश्यतु ।
एवस्वरूप पुत्रोऽभूत्खनित्रस्तस्यभूपते ॥२०
समस्तगुणसम्पन्न श्रीमानब्जदलेक्षण ।
तेनतेभ्रातर प्रीत्यापृथग्राज्येपुयोजिता ॥२१
स्वयचपृथिवीमेताबभुजेसागराम्बराम् ।
प्राच्यातेनकृत शौरिदक्षिणस्यामुदावसु ॥२२
दिशिप्रतीच्यामुनयउत्तरस्यामहारथा ।
तेषातस्यचभूपस्यपृथग्गाना पुरोहिता ॥२३
बभूवुर्नयश्चं बमन्त्रिवशक्रमागता ।
शौरेरत्रिकुलोद्भूत सुहोत्रानामवोद्विज ॥२४
उदावसो कुशावर्त्तोगौतमान्वयजोऽभवत् ।
काश्यप प्रमतिर्नामसुनयस्यपुरोहित ॥२५
महारथस्यवासिष्ट पुरोधाऽभून्महीभृत ।
बुभुजुस्तेग्रराज्यानिचत्वारोऽपिनराधिपाः ॥२६
खनित्रश्चाधिपस्तेषामशेषवसुधाधिप ।
तेषुभ्रातृष्वशेषेपुखनित्र ममतोपति ॥२७

प्रजासुचसमस्तासुपुत्रेष्विवसदाहित ।
एकदामन्त्रिणाशौरि सप्रोक्तो विश्ववेदिना ॥२८

वे राजपुत्र खनित्र इस प्रकार की कामना वाले थे, उन्होंने अपने सब भाइयों को पृथक् पृथक् राज्य देकर ॥२०-२१॥ स्वय भी समुद्र तक इस पृथिवी का पालन करते रह, शौरि को पूर्व प्रदश म, उदावमु को दक्षिण म ॥२२॥ सुनय को पश्चिम मे और महारथ को उत्तर प्रदेश म बसाया और पृथक् राजा के पृथक् गोत्र के पुरोहित हुए ॥२३॥ खनित्र और उनके भाइयों के मन्त्रिवश के क्रम स उपलब्ध पृथक् गोत्र वाल जो पुरोहित थे, उसी के अनुसार शौरि के अत्रि वशोत्पन्न सुहोत्र ऋषि, उदावसु के गौतम वशोत्पन्न कुशावर्त्त, सुनय के कश्यप गोत्रीय प्रमति तथा महारथ के वसिष्ठजी पुरोहित थे, इस प्रकार चारो भाई राजा होकर राज्य करते थे ॥२४-२६॥ सम्पूर्ण पृथिवी के स्वामी खनित्र उनके अधीश्वर हुए, राजा खनित्र सभी भाइयों और प्रजा के प्रति पुत्र के समान व्यवहार करते थे, एक दिन राजा शौरि स उनके मन्त्री विश्ववेदी ने कहा ॥२७-२८॥

विविक्तेपृथिवीपालकिंचिद्वक्तव्यमस्तिन ।
यस्येयपृथिवीकृत्स्नायस्यभूपावशानुगाः ॥२६
सराजातस्यपुत्रश्चतत्पौत्राश्चान्वयस्तत ।
इतरेभ्रातरस्तस्यप्राक्स्वल्पविषयाधिपा ॥३०
तत्पुनाश्चाल्पकास्तस्मात्तत्पौत्राश्चाल्पकाल्पका ।
कालेनह्रासमासाद्यपुरुषात्पुरुषान्तरम् ॥३१
कृष्योपजीविनोभूपभवन्तीतितदन्वयाः ।
नोद्धारकुरुतेभ्राताभ्रातुस्नेहबलार्पण ॥३२
स्नेह क पृथिवीपालपरयोर्भ्रातृपुनयो ।
तत्पुनयो परतरामतिर्भवतिपार्थिव ॥३३
तत्पुन केनेकार्य्येणप्रीतियुक्तोभविष्यति ।
अथवायेनतेनैवसतोपकुरुतेनृप ॥३४

क्रियतेतत्किमर्थन्तुभूपैर्मन्त्रिपरिग्रहः ।
भुज्यतेसकलराज्यमयातेमन्त्रिणासता ॥३५

हे राजन् ! मुझे इस एकान्त के समय मे कुछ निवेदन करना है, यह सब पृथिवी और राजागण जिनके अधीन हैं ॥२६॥ वह तथा उन्ही के वंशधर राजा होते है, उनके अन्य भाई पहिले थोडे से राज्य के अधिकारी होते हैं ।३०। फिर उनके पुत्र उनसे भी थोडे और पौत्र तो पुत्रों की अपेक्षा भी अत्यल्प राज्य के अधिकारी होते हैं, समय पाकर क्रमान्तर से पीढी प्रति पीढी राज्य के घटते-घटते अन्त मे ॥३१॥ उस वश के लोग कृषि कर्म से जीविका चलाते हैं, हे राजन् ! भाई के स्नेह मे बँधा हुआ भाई कभी भी अपने भाई का उद्धार नही करता ॥३२॥ फिर दोनो भाइयो की सन्तान भी एक दूसरे को पराया ही मानने लगती है, उनके भी जब सन्तान होती हैं, तो वे और भी दूर होती जाती हैं ॥३३॥ उनके मन मे अपनी सन्तति के सुख की ही चिन्ता रहती है, यदि राजागण सतोष का ही अवलम्बन करें ॥३४॥ तो मन्त्रियो की नियुक्ति क्यो करे ? मेरे जैसे मन्त्री के होते हुए आप सम्पूर्ण राज्य का सुख भोग सकते हैं ॥३५॥

तत्किमुधाधारयसेसतोषकुरुतेयदि ।
कार्यनिष्पादकराज्यकरणकर्तुरिष्यते ॥३६
राज्यलब्धुश्चतेकार्यंत्वकर्त्ताकरणवयम् ।
सोऽस्माभि करणैराज्यपितृपैतामहकुरु ।
फलप्रदाभविष्याम.परलोकेनलेवयम् ॥३७
ज्येष्ठोभ्रातामहीपालोवयंतस्यानुजायतः ।
तत सभुंक्तेपृथिवीवयचाल्पवसुधराम् ॥३८
वयन्तुभ्रातर.पचपृथ्वीवैकामहामते ।
अतोऽस्या पृथगैश्वर्यकथकृत्स्नभविष्यति ॥३९
एवमेतद्भ्रवत्वत्रयद्यकावसुधानृप ।
तांत्वमेवाभिपद्यस्वज्येष्ठ शास्तुयथाभवान् ॥४०

सर्वाधिपत्य सर्वेभ्योभवत्वमखिलेश्वर ।
यतन्तेचयथाहतेनेपामपिहिमन्त्रिणः ॥४१

मैं चेष्टा करने को प्रस्तुत हू तो आप सतोष को व्यर्थ ही क्यो धारण किये हुए हैं ? राज्य को निष्पादन कर देना मन्त्री का कर्त्तव्य है ॥३६॥ परन्तु उस राज्य प्राप्ति के कार्य म मैं कारण हूंगा और आप कर्त्ता होंगे, इसलिये कारण के द्वारा अपने पैतृक राज्य पर अधिकार करिये, हम तो इसी लोक मे आपके लिय फल देने वाले हैं, परलोक मे नहीं। ३७॥ राजा बोले—पृथिवी का पालन करने वाले राजा हमारे बडे भाई हैं, इसीलिये वे समस्त पृथिवी का राज्य करते हैं और हम थोडी पृथिवी को भोगते हैं ॥३८॥ हम पाँच भाई हैं और पृथिवी एक ही है इसलिए पृथिवी के सम्पूर्ण ऐश्वर्य को हम सब पृथक् रूप से किस प्रकार भोग सकते हैं ? ॥३९॥ इस पर विश्ववेदी ने कहा—हे राजन् ! आपका वचन सत्य है परन्तु यदि पृथिवी एक ही है तो इस पर आप ही अधिकार करिये और सबके अधीश्वर होकर इस पृथिवी को भोगिये ॥४०॥ सम्पूर्ण आधिपत्य को प्राप्त होकर सब भाइयो म आप ही सबके स्वामी बनिये, मेरे द्वारा नियुक्त अन्य मन्त्रिगण भी ऐसी ही चेष्टा कर रहे हैं ॥४१॥

ज्येष्ठोराजायथाप्रीत्याभजतेऽस्मान्सुतानिव ।
कथ तस्यकरिष्यामिममत्व जगतीगतम् ॥४२
राज्येस्थित पूजयेथाज्येष्ठ भूपार्हणैर्धनैः ।
कनिष्ठज्येष्ठताकेयराज्यप्रार्थयतानृणाम् ॥४३
तथेतिचप्रतिज्ञातेभूभुजातनसत्तम ।
विश्ववेदीततोमन्त्रीतद्भ्रातृननयद्वशम् ॥४४
तेपापुरोहिताश्चैवमात्मन शातिकादिपु ।
नियोजयामासतत खनित्रस्याभिचारके ॥४५
विभेदतस्यनिभृतान्सामदानादिभिस्तथा ।
चक्रेचपरमोद्योगनिजदडप्रभावने ॥४६

राजा बोले—बडे भाई पुत्र के समान सबका परिपालन कर रहे हैं, फिर उनके राज्याधिकार म मुझे ममत्व क्यो करना चाहिये ? ॥४२॥ विश्ववेदी

ने कहा—फिर तो आप राज्याधिकार पूर्वक विभिन्न प्रकार के सत्कारों द्वारा उनका पूजन करिये, वैसे राज्य की कामना वाले पुरुष के लिए छोटे बडे का विचार करना व्यर्थ ही है ।।४३।। मार्कण्डेय जी ने कहा—राजा द्वारा विश्व वेदी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने पर विश्ववेदी ने उनके अन्य भाइयों को अपने वश मे किया ।।४४।। तथा उनके पुरोहितो को अपने लिये शान्ति कर्म और खनित्र के प्रति आभिचारिक कर्म करने के लिये नियुक्त किया ।।४५।। तथा खनित्र के विश्वासपात्र भृत्यो को भी सामदानादि की नीति से अपने वश मे करने का यत्न करने लगा ।।४६।।

आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनिकुर्वताम् ।
पुरेऽधसाचतुर्णाचजज्ञेकृत्याचतुष्टयम् ।।४७
विकरालमहावक्त्रमतिभीषणदर्शनम् ।
समुद्यतमहाशूलप्रभूतमतिदारुणम् ।।४८
तयस्तदागतन्तत्रखनित्रोयत्रपार्थिवः ।
निरस्तचाप्यदुष्टस्यतस्यपुण्यचयेनतत् ।।४९
कृत्याचतुष्टयन्तपुनिपपातदुरात्मसु ।
पुरोहितेपुभूपानातथागैविश्ववेदिनि ।।५०
ततानिहन्त्यानिर्दग्धा कृत्ययातेपुरोहिता ।
विश्ववेदीतयामन्त्रीसशोरेर्दुष्टमन्त्रद ।।५१

जब पुरोहितो ने अत्यन्त उग्र अभिचार कर्म किया, तब चार कृत्यायें उत्पन्न होगई ।।४७।। वह सभी विकराल शरीर वाली अत्यन्त भयानक प्रतीत होती थी, उनके हाथो मे महाशूल स्थित थे और वे अत्यन्त विशाल तथा दारुण थी ।।४८।। इसके पश्चात् वे चारों कृत्यायें राजा खनित्र के पास पहुँची, परन्तु पाप-रहित राजा के पुण्य प्रभाव से तेजहीन होकर ।।४९।। उन दुरात्मा पुरोहितों और विश्ववेदी के पास ही लौटकर आगई ।।५०।। देने वाला वह दुष्ट मन्त्री विश्ववेदी, यह सभी उन लौटी कृत्याओं के द्वारा मारे जाकर भस्मीभूत होगये ।।५१।।

१०५—खनित्र चरित्र (२)

तत समस्तलोकस्यविस्मय सोऽभवन्महान् ।
यदेककालनेशुस्तेपृथक्पुरनिवासिन. ॥१
तत शुश्रावनिधनयातान्भ्रातृपुरोहितान् ।
मन्त्रिण-श्चतथाभ्रातुर्दग्धत विश्वेदिनम् ॥२
किमेतदितिसोऽतीवविस्मितोमुनिसत्तम ।
खनित्रोऽभून्महाराजोनाजानात्तच्चकारणम् ॥३
ततोवसिष्ठ पप्रच्छसराजागृहमागतम् ।
यत्कारणविनेशुस्तेभ्रातृमन्त्रिपुरोहिता ॥४
तेनपृष्टस्तदाप्राहयथावृत्तमहामुनि ।
यच्छौरिमन्त्रिणाप्रोक्त यच्चशौरिरुवाचतम् ॥५
यथाचानुष्ठितन्तेनभ्रातृणाभेदकारिणे ।
मन्त्रिणातेनदुष्टेनयच्चक्रुश्चपुरोहिता ॥६
यन्निमित्तविनेशुस्तेऽपापस्यापकारिण ।
पुरोहितास्तस्यराज्ञ शत्रावपिदयावतः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—उस समय सभी को यह विस्मय हुआ कि यह पृथक् पृथक् नगर में निवास करने वाले होकर भी एक ही समय में किस प्रकार नष्ट होगये ? ॥१॥ हे मुनिवर ! तदुपरान्त राजा खनित्र न अपने भाई के पुरोहित और मन्त्री विश्ववेदी का मृत्यु समाचार सुना तो ॥२॥ इसका कारण न समझ कर 'ऐसा क्यों हुआ' इस प्रकार विस्मय युक्त विचार करने लगे ॥३॥ फिर जब वसिष्ठजी घर पर आये तब उनसे राजा ने अपने भाई के मन्त्री और पुरोहितों के इस प्रकार मरने का कारण पूछा ॥४॥ महामुनि वसिष्ठ से पूछने पर उन्होंने शौरि और उनके मन्त्री के मध्य जो वार्ता हुई थी ॥५॥ तथा उस दुष्ट मन्त्री ने भाइयों में फूट डालने के लिए जो कार्य किये थे और पुरोहितों ने जिस कर्म का अनुष्ठान किया था ॥६॥ तथा शत्रुओं पर भी दया करने वाले

यह पुरोहित निरपराध के अपकार मे तत्पर होकर स्वय ही नाश को प्राप्त होगये थे, वह सब वृत्तान्त आद्योपान्त राजा खनित्र को सुना दिया ।।७।।

सतच्छ्रुत्वाततोराजाहाहतोऽस्मीतिवैवदन् ।
निनिन्दात्मानमत्यर्थवसिष्ठस्याग्रतोद्विज ।।८
धिङ्मामपुण्यसस्थानमल्पभाग्यमशोभनम् ।
दैवदोषकृतपापसर्वलोकविगर्हितम् ।।६
मन्निमित्तविनष्ट तत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ।
मत्त कोऽन्य पापतरोभविष्यतिपुमान्भुवि ।।१०
नाभविष्यद्यदिपुमानहमत्रमहीतले ।
ततस्तेनविनश्येयुर्ममभ्रातृपुरोहिता ।।११
धिग्राज्यधिक्चमेजन्मभूभुजामहताकुले ।
कारणत्वगतोयोऽहविनाशस्यद्विजन्मनाम् ।
कुर्वन्त स्वामिनातेऽथभ्रातृणाममयाजका ।
नाशययुर्नदुष्टास्तेदुष्टोऽहनाशकारणे ।।१३
किंकरोमिक्वगच्छामिनान्योमत्तोहिपापकृत् ।
पृथिव्यामस्तिहेतुत्वद्विजनाशस्ययोगत ।।१४

यह वृत्तान्त सुनकर राजा अत्यन्त दु खित होकर वसिष्ठजी के समक्ष ही अपने को धिक्कारने लगे ।।८।। राजा ने कहा—मैं कितना मद भाग्य असचित पुण्य वाला तथा शोभा रहित हूँ कि दैव भी मेरे अनुकूल नही है, मैं लोक मे निन्दा का पात्र और पापी हूँ, इसलिये मुझे धिक्कार है ।।६।। क्योकि मेरे ही कारण चार ब्राह्मणो की मृत्यु हुई है, इसलिये इस पृथिवी पर मुझसे बढकर अन्य कौन पापी हो सकता है ? ।।१०।। यदि मैं इस पृथिवी पर पुरुष के शरीर मे उत्पन्न न हुआ होता तो मेरे भाइयो के पुरोहित नाश को प्राप्त न हुए होते ।।११।। उन ब्राह्मणो के नाश का कारण मैं ही हूँ इसलिये मेरे इस राज्य को और महान् राज-वश मे जन्म लेने को धिक्कार है ।।१२।। मेरे भाइयो की प्रयोजन सिद्धि के लिय कर्म करके जो याजकगण नाश को प्राप्त हुए हैं, उनमे वे स्वय दोषी नही थे, उनके नष्ट होने का कारण मैं ही था, इसलिये

दोषी भी मैं ही हुआ ॥१३॥ अब मेरा क्या कर्त्तव्य है, मुझे कहाँ जाना चाहिये? ब्रह्महत्या का कारण होने से मेरे समान पापी इस भूमण्डल पर अन्य कोई नहीं है ॥१४॥

इत्यमुद्विग्नहृदय खनिन पृथिवीपति ।
वनयियासु पुत्रस्यकृतवानभिषेचनम् ॥१५
अभिषिच्यसुतराज्येक्षुपसज्ञमहीपति ।
भार्य्याभिस्तिसृभि सार्धतपसेसवनययौ ॥१६
तत्रागत्वातपस्तेपेवानप्रस्थविधानवित् ।
शतानित्रीणिवर्षाणासार्द्धानिनृपसत्तम ॥१७
तपसाक्षीणदेहस्तुराजवर्य्योद्विजोत्तम ।
निगृह्यसर्वस्रोतासितथाजासून्वनेचर ॥१८
तत पुण्यान्ययौलोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ।
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरवाप्यायेनराधिपैं ॥१९
भार्य्याश्चतस्यतास्तिस्र समन्तेनैवतत्युजु ।
प्राणानवापु सालोक्यतेनैवसुमहात्मना ॥२०
एतत्खनित्रचरितंश्रुतकल्मपनाशनम् ।
पठता-च्चमहाभागक्षुपस्यातोनिशामय ॥२१

राजा खनित्र ने इस प्रकार उद्विग्न चित्त से वनवासी होने की इच्छा करके अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया ॥१५॥ क्षुप नामक पुत्र को राज्य देकर स्वयं अपनी तीन पत्नियों को साथ लेकर तप करने के लिये वन में गये ॥१६॥ और वन में वास करते हुए वानप्रस्थी रहकर साढ़े तीन सौ वर्ष तक उन्होंने तप किया ॥१७॥ फिर हे द्विज श्रेष्ठ ! उन वनवासी राजा ने तप के द्वारा कृश शरीर होने पर सब स्रोतों के निरोध पूर्वक प्राण का परित्याग कर दिया ॥१८॥ अन्यान्य राजागण सैंकड़ो अश्वमेध यज्ञों को करके भी जिस लोक को नहीं पा सकते उस सर्व अभीष्ट देने वाले अक्षय पुण्य लोक को राजा खनित्र ने प्राप्त किया ॥१९॥ उनकी तीनों पत्नियाँ भी उनका अनुगमन करके उन्हीं के साथ समान गति को प्राप्त हुईं हे महाभाग ! इस प्रकार खनित्र के चरित्र को

तुम्हारे प्रति कहा है, इसके पढने या सुनने से पापों का नाश होता है, अब क्षुप का चरित्र कहता हूं उसे श्रवण करो ॥२१॥

१०६—विविंश चरित्र

क्षुप खनित्रपुत्रस्तुप्राप्यराज्ययथापिता ।
तथैवपालयामासप्रजाधर्मेणरञ्जयन् ॥१
सदानशीलोयष्टाचयज्ञानामवनीपति ।
समःशत्रौचमित्रेचव्यवहारादिवर्त्मनि ॥२
एकदासमहीपालानिजस्थानगतोमुने ।
सूतरुक्तौयथापूर्वंक्षुपोराजातथाऽभवत् ॥३
ब्रह्मणस्तनय पूर्वंक्षुपोऽभूत्पृथिवीपतिः ।
यादृक्चरितमस्यासीत्तादृक्तस्य वचेष्टितम् ॥४
श्रोतुमिच्छामिचरितक्षुपस्यसुमहात्मन ।
यदितादृङ्मयाशक्य चेष्टितु तत्करोम्यहम् ॥५
सचकाराकरान्भूपराजागोब्राह्मणान्पुरा ।
पष्ठाशेनकृताचोर्व्यामिष्टिस्तेनमहात्मना ॥६
तेपामहार नाराज्ञाकोऽनुयास्यतिमद्विध ।
तथाप्युत्कृष्टचेतानाचेष्टासूद्यमवान्भवेत् ॥७
मार्कण्डेय जी ने कहा—राज्य में अभिषिक्त हुए खनित्र पुत्र क्षुप प्रजा

ही सब बातें आपमें हैं ॥४॥ राजा बोले—मैं उन महात्मा का क्षुप का चरित्र सुनना चाहता हूं यदि मैं भी उनके जैसा ही आचरण कर सकूँ तो वैसा ही प्रयत्न करूँगा ॥५॥ सूत बोले—हे महाराज ! वह राजा क्षुप गौ-ब्राह्मण से कर प्राप्त नहीं करते थे तथा छटे अंश से यज्ञों का अनुष्ठान करते थे ॥६॥ राजा बोले—मेरा जैसा मनुष्य उनके कार्यों का अनुकरण कैसे कर सकता है ? फिर भी ऐसे महात्माओं के उत्कृष्ट आचरण पर चलने का प्रयत्न करना चाहिये ॥७॥

तच्छ्रूयताप्रतिज्ञायासाम्प्रतंक्रियतेमया ।
क्षुपस्यानुकरिष्यामिमहाराजस्यचेष्टितम् ॥८
त्रीस्त्रीन्यज्ञान्करिष्यामिसस्यापातेगतागते ।
पृथिव्याचतुरन्तायाप्रतिज्ञेयं कृतामया ॥९
यद्वर्गैर्ब्राह्मणा पूर्वमददन्भूभृतेकरम् ।
तमेवप्रतिदास्यामिब्राह्मणानातथागवाम् ॥१०
इतिप्रतिज्ञायवच क्षुपस्तत्कृतवान्तथा ।
सस्यापातेसयज्ञांस्त्रीनयजद्यजतांवरः ॥११
गोब्राह्मणा पुराराज्ञामददन्य चवैकरम् ।
तावत्सत्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणायसः ॥१२
तस्यपुत्रोऽभवद्वीर प्रमथायामनिन्दित ।
यस्यप्रतापशौर्याभ्याक्रान्तावश्यामहीभृतः ॥१३
तस्यापिनन्दिनीनामवैदर्भीदयिताऽभवत् ।
विविंशतनय तस्याजनयामासमप्रभु ॥१४

इसलिये मैं इस समय प्रण करता हू उसे श्रवण करो; मैं उन महाराज क्षुप के कार्य का आज से अनुकरण करूँगा ॥८॥ मैं चारों वर्ण और पृथिवी के प्रति यह प्रतिज्ञा करता हू कि कृषि आने वाले, वर्तमान और व्यतीत होने वाले समय में तीन-तीन यज्ञों का अनुष्ठान करूँगा ॥९॥ तथा पहिले जिस-जिस समय में राजाओं ने ब्राह्मणों से जो कर लिया है, उसे मैं उनको लौटा दूंगा ॥१०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यज्ञकर्त्ताओं में श्रेष्ठ राजा क्षुप ने ऐसी प्रतिज्ञा करके उसकी रक्षा की अर्थात् कृषि की उपस्थिति के समय तीन यज्ञानुष्ठान

किये ॥११॥ तथा पहिले राजाओं को गौ और ब्राह्मणों ने जितना कर दिया था, उतना धन उनको दे दिया ॥१२॥ इनकी प्रमथा नाम की भार्या हुई, उसके गर्भ से एक अत्यन्त सुन्दर और बलवान् पुत्र की उत्पत्ति हुई, उस पुत्र ने अपनी शूरता और पराक्रम से सभी राजाओं को अपने अधीन कर लिया था ॥१३॥ उनकी भार्या विदर्भ देश के राजा की पुत्री नन्दिनी हुई, उसके गर्भ से विविंश नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१४॥

विविंशेशासतिमहीमहीपालेमहौजसि ।
महीतलमभून्व्याप्तनिरन्तरतयानरै ॥१५
ववर्षकालेपर्जन्योमहीसस्यवतीतथा ।
सुफलानिचसस्यानिरसवन्तिफलानिच ॥१६
रसा पुष्टिकराश्चासन्नपुष्टिर्नोन्मादकारिणी ।
नवित्तनिचयान्नृणाप्रभूतामदहेतव ॥१७
तत्प्रतापेनरिपवोभयमापुर्महामुने ।
स्वास्थ्य जन सुहृद्वर्गोमुदमापसुपूजितः ॥१८
इष्ट्वासयज्ञान्सुबहून्सम्यक्सम्पाल्यमेदिनीम् ।
सग्रामेनिधनप्राप्यशक्रलोकमितोगत ॥१९

राजा विविंश के राज्यकाल मे पृथिवी पर इतनी प्रजा थी कि कही भी स्थान शेष नही था ॥१५॥ उस काल मे मेघ यथा समय वृष्टि करते थे और पृथिवी भी अन्न से परिपूर्ण रहती थी, सभी अनाज फल से युक्त और सभी फल रस से युक्त थे ॥१६॥ रस मे पोषक तत्व होते थे, उससे होने वाली पुष्टि से मनुष्य उन्मत्त नही होता था, बहुत धनवान् होकर भी मनुष्यों मे मिथ्यामद नही था ॥१७॥ शत्रु उनके बल से सदा भयभीत तथा अस्वस्थ रहते थे, सुहृदो को सदा सन्तोष रहता था ॥१८॥ इस प्रकार उस राजा विविंश ने अनेकानेक यज्ञ किये और भले प्रकार प्रजा का परिपालन किया, अन्त मे युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त होकर स्वर्गलोक को गये थे ॥१९॥

१०७—खनित्र चरित्र (३)

तस्यपुत्र खनीनेत्रोमहाबलपराक्रम ।
यस्ययज्ञे प्वगायन्गन्धर्वाविस्मयान्विता ॥१
खनीनेनसमोनान्योभुवियज्वाभविष्यति ।
तेनयज्ञायुतेपूर्णेदत्तापृथ्वीससागरा ॥२
दत्त्वाचसकलापृथ्वींब्राह्मणानामहात्मनाम् ।
तपमाद्रव्यमासाद्यमोदयन्साधितेनय ॥३
यतश्चप्राप्यवित्तर्द्धिमतुलादातृमत्तमात् ।
जगृहुर्ब्राह्मणाविप्रनान्यराज्ञ प्रतिग्रहम् ॥४
सप्तषष्टिमहस्राणिसप्तषष्टिशतानिच ।
सप्तषष्टिचयोयज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान् ॥५
अपुत्र.समहीपालोमृगयामुपचक्रमे ।
पुनार्थपितृयज्ञायमासकामोमहामुने ॥५
अश्वारूढाविनासैन्यमेकएवमहावने ।
बद्धगाधाङ्गुलित्राणोबाणखड्गधनुर्धर ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा विविंश के पुत्र खनी नेत्र हुए, वे महाबली और पराक्रमी थे, उनके यज्ञानुष्ठान को देखकर विस्मय का प्राप्त हुए गन्धर्वों ने उनकी गाथा का इस प्रकार कीर्तन किया था ॥१॥ इस पृथिवी पर खनी नेत्र के समान कोई यज्ञकर्त्ता नहीं होगा क्योंकि उन्होंने दश सहस्त्र यज्ञों का अनुष्ठान किया और समुद्र पर्यंत सम्पूर्ण पृथिवी का दान कर दिया ॥२॥ उन राजा खनीनेत्र ने ब्राह्मणो को सब पृथ्वी दे दी थी और फिर तप क द्वारा धन लाभ करक उस पृथ्वी को छुड़ा लिया था ॥३॥ हे ब्रह्मन् ! उन दानियों मे श्रेष्ठ राजा खनीनेत्र से ब्राह्मणो ने विपुल द्रव्य प्राप्त करके, पुन अन्य किसी से दान ग्रहण नहीं किया था ॥४॥ उन्होंने निहत्तर हजार सरसठ यज्ञो का अनुष्ठान किया और सभी यज्ञो म विपुल धन की दक्षिणा दी ॥५॥ एक समय की बात है कि खनी नेत्र ने पुत्र की कामना से पितृ-यज्ञ के अनुष्ठान की इच्छा की, उस

समय अनुष्ठान के निमित्त मृग के लिये धनुष बाण आदि धारण कर और अश्वारूढ होकर वन मे आखेट के लिये गये ।।६-७।।

तवाह्यन्ततुरगमन्यतोगहनाद्वनात् ।
विनिष्क्रम्यमृग प्राहमाहत्वाभिमतकुरु ।।८
अन्येमृगाःपलायन्तेमहाभीत्याविलोक्यमाम् ।
कथमात्मप्रदानत्वमृत्यवेकर्तु मिच्छसि ।।९
अपुत्रोऽहममहाराजवृथाजन्मप्रयोजनम् ।
विचारयन्नपश्यामिप्राणानामिहधारणम् ।।१०
अथाम्येत्यमृग प्राहतमन्योवसुधाधिपम् ।
मृगस्यतस्यप्रत्यक्षमलमेतेनपार्थिव ।।११
घातयस्वेतिमामासैर्ममकर्मसमाचर ।
यथाकृतार्थ तातेस्यान्ममचाप्युपकारितत ।।१२
पुत्रार्थं त्वमहाराजस्वपितृन्यष्टुमिच्छसि ।
अपुत्रस्यास्यमासेनलप्स्यसेवाच्छितकथम् ।।१३
याद्दक्कर्मविनिष्पाद्य ताद्दग्द्रव्यमुपाहरेत् ।
दुर्गन्धैर्नसुगन्धानागन्धज्ञानविनिर्णय ।।१४

जब उन्होंने एक वन से दूसरे वन मे जाने के लिये अपने अश्व को दौडाया, तभी एक मृग ने एक ओर से निकल कर उनसे कहा—हे राजन् ! मेरा वध करके अपना इच्छित कार्य करिये ।।८।। राजा बोले—और सभी मृग तो मुझे देखते ही भाग जाते हैं, परन्तु तुम मरने के लिये क्यो इच्छा कर रहे हो ? ।।९।। मृग ने कहा—हे राजन् ! मैं पुत्रहीन हू, इसलिये जीवित रहना व्यर्थ समझता हूँ ।।१०।। मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी एक अन्य मृग वहाँ आकर पहिले मृग के ही सामने राजा से बोला—हे राजन् ! इस मृग का आप क्या करेंगे ? ।।११।। आप मेरा वध करके अपने कार्य का सम्पादन करेंगे तो आपका अभीष्ट सिद्ध होगा और मेरा भी उपकार होगा ।।१२।। हे राजन् ! आप पुत्र की कामना से जो पितृ यज्ञ करना चाहते हैं उसकी सिद्धि इस पुत्रहीन के मास से कैसे हो सकेगी ? ।।१३।। जो कर्म जिस प्रकार का हो, उसके

लिये वैसा ही द्रव्य ग्रहण करना चाहिये, भला कभी दुर्गन्ध से सुगन्ध की पूर्ति हो सकती है ? ।।१४।।

वैराग्यकारणप्रोक्तमनेनापुत्रतामम ।
कथ्यताप्राणमत्यागेयत्तेवैराग्यकारणम् ।।१५
बहवोमेसुताभूपवह्वचोदुहितरस्तथा ।
यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्येवसाम्यहम् ।।१६
सर्वसाध्यानरेन्द्रेयमृगजाति सुकातरा ।
तेष्वपत्येपुमेचातिममत्वतेनदुःखित ।।१७
मनुष्यसिंहशार्दूलवृकादिभ्योविभेम्यहम् ।
विहीनात्मर्वसत्त्वेभ्य.श्वश्रृगालादपिप्रभो ।।१८
सोऽहनिमित्तबन्धूनामिमाशून्यावसुन्धराम् ।
नृसिंहादिभयात्मर्वामिच्छामिसुनृशसकृत् ।।१९
तृणान्यन्येऽपिखादन्तिगोऽजावितुरगादिका. ।
तास्तेपापोपरणायाहमिच्छामिनिधनगतान् ।।२०
निष्क्रान्तेपुततस्तेपुममापत्येपुदैपृथक् ।
भवन्तिचिन्ता.शतशोममत्वावृतचेतसः ।।२१

राजा बोले—उस प्रथम मृग ने पुत्रहीनता को ही अपने वैराग्य का कारण बताया है, परन्तु तुमको वैराग्य किसलिये हुआ है, जो अपना प्राण देने को तत्पर हुए हो ? ।।१५।। मृग ने कहा—हे राजन् ! मेरे पुत्र पुत्रियो की अधिकता है, उन्ही की चिन्ता से मैं दुःखरूपी अग्नि मे जलता रहता हूँ ।।१६।। यह मृग जाति सभी के वश मे हो जाती है, मुझे अपनी सतान के प्रति अत्यन्त मोह है, इसीलिये मैं सदा ही दुःखित रहता हूँ ।।१७।। हे राजन् ! मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, वृक तथा सभी प्राणियो मे अत्यन्त हीन श्वान और गीदड आदि से भी भयभीत रहता हू ।।१८।। मैं सदा यही कामना करता हूँ कि इन मनुष्य सिंहादि के डर से,यह पृथिवी मुक्त हो जाय और मैं भी विघ्न रहित हो जाऊँ ।।१९।। गौ, बकरी, अश्व आदि पशु जब इस पृथिवी के सम्पूर्ण तृण को खा जायेंगे तब मेरे पुत्र–पुत्री आदि क्या खाकर जीवन धारण करेंगे, इसीलिये मुझे अपनी

सतान के पोषणार्थ में तृण खाने वाले जीवो के मरने की कामना करता रहता हूँ ॥२०॥ जब मेरे पुत्र पुत्री पृथक् पृथक् रूप से गमन करते हैं तब उनके स्नेह के कारण मेरे हृदय मे सैकडो चिन्ताएँ उपस्थित हो जाती हैं ॥२१॥

किंकूटपाशर्किवज्र वा,गुरांकिंसुतोमम ।
प्राप्तश्चरन्वनेकिंवार्नृसिंहादिवशगत ॥२२
प्राप्तोऽप्येक,सप्राप्तास्तेवस्थाकीदृशीमम ।
साम्प्रततेचिरायतेमेगता सुमहावनम् ॥२३
दृष्ट्वाप्राप्तान्ममाभ्याशमहन्तानात्मजान्नृप ।
ईषदुच्छ्वसित क्षेममिच्छामिरजनीपुन ॥२४
प्रभातेदिवसक्षेममस्तगेऽर्केनिशामपि ।
वाछाम्यहकदाक्षेमसर्वकालभविष्यति ॥२५
एततेकथितभूपमहोद्वेगस्यकारणम् ।
अत प्रसादकुरुमेबाणोऽयपात्यतामयि ॥२६
इतिदु खशताविष्ट प्राणान्नहंत्यजामियत ।
तत्कारणनिबोधत्वश्रु वतोममपार्थिव ॥२७
असूर्यानामतेलोकायान्गच्छन्त्यात्मघातका ।
यज्ञोपयुक्ता पशव सम्प्रयान्त्युच्छ्रिती प्रभो ॥२८

कभी कभी लगता है कि कोई पुत्र किसी कठोर पाश मे बँधा है अथवा वज्र या सिंहादि के द्वारा मारा गया है ॥२२॥ यदि एक आजाता है तो दूसरे की चिन्ता रहती है, जो वन मे चरने के लिये गये हैं, वह वहाँ कैसी दशा में होगे यह मुझे ज्ञात नही है ॥२३॥ हे राजन् ! जब वह सब मेरे पास आ जाते हैं, तब उन्हे देखकर कुछ सतोष होता है, परन्तु उस समय भी समस्त रात्रि मगल पूर्वक व्यतीत हो, यही चिन्ता करता रहता हूँ ॥२४॥ प्रात काल होने पर दिन भर की मगल कामना और सूर्यास्त होने पर रात्रि के मगल पूर्वक व्यतीत होने की चिन्ता करता हुआ यही सोचता रहता हूँ कि यह हर समय निरापद अवस्था म रहे ॥२५॥ हे राजन् ! मेरे उद्वेग का यही कारण है जो मैंने आपसे कहा है अब आप कृपा करके मुझ पर बाण चलादये ॥२६॥ हे

राजन् ! मैं जिस लिये सैकड़ों दुःखों से दुःखित हृदय हुआ अपने प्राण त्याग की कामना कर रहा हूँ उसे आप यथार्थ समझिये ॥२७॥ हे प्रभो ! आत्मघात करने वालों को असूर्य नामक नरक की प्राप्ति होती है और यज्ञ के लिये प्रयुक्त हुए पशुओं को सद्गति की प्राप्ति होती है ॥२८॥

अग्निः पशुरभत्पूर्वपशुरासीज्जलाधिप ।
भास्वानयोच्छ्रिती प्राप्तायज्ञेनिष्ठामुपागताः ॥२६
तन्ममेताक्कृपाकृत्वानयमामुच्छ्रितिनृप ।
आत्मनश्चेप्सितकामपुत्रलाभादवाप्स्यसि ॥३०
राजेन्द्रनैपहन्तव्योधन्योऽप्यसुकृतीमृगः ।
वहवस्तनयाह्यस्यहन्तव्योऽहममन्तति ॥३१
एकदेहभवंयस्यदुःखयन्य सर्वभवान् ।
वहूनियस्यदेहानितस्यदुःखान्यनेकधा ॥३२
एकोयदाहमासतुप्राक्तदादेहजमम ।
दुःखमासीन्ममत्वेतुभार्य्यायास्तदभूद्द्विधा ॥३३
यदाजातान्यपत्यानितदायादन्तितानिवै ।
तावच्छरीरभूमीनिममदुःखान्यथाभवन् ॥३४
नक्रनार्योभवाम्यस्यनातिदुःखायसम्भव. ।
इहदुःखायमत्सूति परत्रचविरोधिनी ॥४५
यतोरक्षणपोषार्थमपत्यानाकरोमितत् ।
चिन्तयामिचसभूतिस्तेनमेनरकेध्रुवम् ॥३६

पुराकाल में अग्नि, वरुण और सूर्य भी पशु होकर यज्ञार्थ वियुक्त हुए थे, इसीलिये उनको सद्गति की प्राप्ति हुई थी ॥२६॥ हे राजन् ! इसीलिये मुझ पर कृपा करके आप मुझे सद्गति को प्राप्त कराइये, ऐसा करके आप अपने इच्छित पुत्र को प्राप्त करेंगे ॥३०॥ प्रथम मृग ने कहा—हे राजन् ! यह मृग अधिक सन्तान वाला तो स्वयं ही सुकर्मवान् हुआ है, इसलिये मुझ पुत्रहीन का ही वध करिये ॥३१॥ इस पर दूसरे मृग ने कहा—एक शरीर वाले को एक ही दुःख होता है वह तुम्हारे समान धन्य ही है, परन्तु अधिक देह वाले को

अनेकानेक दु खो की प्राप्ति होती है ॥३२॥ जब मैं भी एक था, तब मुझे भी एक देह का ही दु ख था, परन्तु जब पत्नी हुई, तब स्नेह के कारण इसकी दो भागो मे विभक्ति हुई ॥३३॥ फिर जितनी सतान होती गई, उतने ही भागों में दु ख बढता गया, इस प्रकार मुझे अनेक देहो के कारण अनेक दु खो की प्राप्ति हुई है ॥३४॥ जब तुम्हे अधिक दु ख नही है तब क्यों तुम धन्य नही हो ? मुझे तो मेरी यह सतान इस लोक म दुख का कारण और परलोक में भी अहितकर है ॥३५॥ मैं अपनी सतति के पोषण और रक्षार्थ जो प्रयत्न अथवा चिन्ता करता हूँ, वह सभी मेरी नरक प्राप्ति का साधन रूप ही है ॥३६॥

नवेद्मिकिंसन्ततिमान्धन्योऽपुत्रोऽथकिंमृग ।
पुत्रार्थआयमारम्भोममदालायतेमन. ॥३७
दु खायसन्तति सत्यमैहिकामुष्मिकायतत् ।
तथाप्यतनयान्यान्तिऋणानीतिश्रु तमया ॥३८
सोऽहयतिष्येपुत्रार्थ मृतेप्राणिवध मृग ।
तपसैवप्रचण्डेनयथापूर्वमहीपति ॥३९

राजा बोले—हे मृग ! पुत्रहीन और पुत्रवान् इन दोनो मे किसका जीवन सफल है, यह मुझे ज्ञात नही है, मैं पुत्र प्राप्ति के कार्य मे प्रयत्नवान् हूँ, परन्तु मेरा मन अत्यन्त चचलता को प्राप्त हो रहा है ॥३७॥ यद्यपि इहलोक और परलोक मे सतान के कारण ही दु खो की प्राप्ति होती है, परन्तु ऐसा सुना जाता है कि पुत्रहीन पुरुष ऋण-मुक्त नही होता ॥३८॥ इसलिये हे मृग ! मैं जीवहत्या किये बिना ही, पूर्वकालीन भूपालो के समान घोर तप करके ही पुत्र लाभ का प्रयत्न करूँगा। ३९॥

१०८—करन्धम चरित्र

तत सनृपतिर्गत्वागोमतीपापनाशिनीम् ।
तत्रतुष्टाव नियतोभूत्वादेवपुरन्दरम् ॥१

तप्यमानस्तपश्चोग्र यतवाक्कायमानस ।
तुष्टावप्रयत शक्रमपत्यार्थमहीपति ॥२
तस्यस्तोत्रेणतपसाभक्त्याचापिसुरेश्वर ।
तुतोपभगवानिन्द्र प्राहचैनमहामुने ॥३
अनेनतपसाभक्त्यास्तोत्रेणोच्चारितेनच ।
परितुष्टोऽस्मितेभूपव्रियताभवतावर ॥४
अपुत्रस्यसुतोमेऽस्तुसर्वशस्त्रभृतावर ।
सदाचाव्याहतैश्वर्योधर्मकृद्धमवित्कृती ॥५
तथेतिचोक्त शक्रेणराजाप्राप्तमनोरथः ।
प्रजा पालयितु भूपश्राजगाममनिजपुरम् ॥६
तत्रास्यकुर्वतोयज्ञ सम्यक्पालयत प्रजा ।
अजायतसुतोविप्रतदाशक्रप्रसादतः ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—तदनन्तर राजा खनीनेत्र ने पापो को नष्ट करने वाली गोमती के किनारे पहुँच कर जितेन्द्रिय रहते हुए पुरन्दरदेव का स्तवन किया ॥१॥ हे मुने ! राजा ने जब देह, मन और वचन से सयत होकर पुत्र की इच्छा से देवेन्द्र की स्तुति की, तब भगवान् पुरन्दर ने उनकी भक्ति और स्तुति से प्रसन्न होकर कहा ॥२-३॥ हे राजन् ! तुम्हारी तपस्या, भक्ति और स्तुति से मैं अत्यन्त सतुष्ट हुआ हूँ, इसलिये तुम मुझसे वर मांगो ॥४॥ राजा बोले—हे प्रभो ! मैं पुत्रहीन हूँ, मेरे सभी शस्त्रधारियो से बढकर, बाधा रहित और ऐश्वर्यवान् धर्म के जानने वाला एक पुत्र हो ॥५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इन्द्र ने 'ऐसा ही हो' कहकर जब राजा की प्रार्थना स्वीकार की, तब राजा अपने नगर मे लौट आये ॥६॥ वहाँ प्रजा पालन मे तत्परता पूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान करने पर इन्द्र की कृपा से उन्हे एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥७॥

तस्यनामपिताचक्रेबलाश्वइतिभूपति ।
अस्त्रग्राममशेषचग्राहयामासतसुतम् ॥८
पितर्युपरतेविप्रसोऽधिराज्येस्थितोनृप ।
सबलाश्वोवशानिन्येभुविमर्वमहीक्षितः ॥९

करचदापयामाससारग्रहणपूर्वकम् ।
ससर्वभूमिपान्राजापालयामासचप्रजा. ॥१०
अथाखिलनरेन्द्रास्तेदायादास्तस्यदुर्मदा ।
नचाम्युत्थायमतततेचास्मैप्रददु करान् ॥११
व्युत्थिता स्वेपुराष्ट्रेपुनसन्तोपपरास्तत ।
भुवतस्यनरेन्द्रस्यजगृहुस्तेनराधिपा ॥१२
सगृहीत्वास्वकराज्यपृथिवीशोबलान्मुने ।
तस्थौस्वनगरेभूर्पैविरोधोवहुभि कृत ॥१३
समेत्यसुमहावीर्या ससाधनधनास्तत ।
रुरुधुस्तमहीपालपुरेतत्रनरेश्वरा ॥१४

पिता ने उसका नाम 'बलाश्व' रखा और उसे सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र की शिक्षा दी ॥८॥ हे ब्रह्मन् ! वह बलाश्व अपने पिता के मरणोपरान्त, पृथिवी के सब राजाओं को जीतकर सम्राट् बन गये ॥६॥ वह उन राजाओं से सार रूप कर को लेकर भले प्रकार प्रजा का पालन करने लगे ॥१०॥ फिर समय प्राप्त कर उन राजाओं और जाति वालो ने राजा का अम्युत्थान न होने देने के निमित्त कर देना रोक दिया ॥११॥ तब वह राजागण बलाश्व के अधीनता से मुक्त होकर ही सतुष्ट न हुए वरन् उन्होने राजा बलाश्व की भूमि भी छीन ली ॥१२॥ राजा बलाश्व अपने शत्रुओं से युद्ध करते-करते इतने बलहीन होगये कि उनके पास अपना राज्य मात्र ही रह गया और वह अपनी राजधानी में ही रहने लगे ॥१३॥ इसके पश्चात् उन धन साधन सम्पन्न राजाओं ने इन राजा बलाश्व को उनके नगर में ही घेर लिया ॥१४॥

पुररोधेनतेनाथकुपित समहीपति ।
स्वल्पकोशोल्पदण्डश्चवैवनव्यपरमगत ॥१५
अपश्यमान शरणमत्रोद्विजगत्तम ।
करौमुखाग्रकृत्वानिश्वासार्तमानस ॥१६
ततोऽस्यहस्तारिवान्मुखानिलसमाहृता ।
निर्जग्मु शतशोयोपारवनागतुरङ्गमा ॥१७

ततःक्षणेनतत्सर्वंनगरंतस्यभूपते ।
व्याप्तमासीद्बलौघेनसारेणातिबलान्मुने ॥१८
अथसोऽतिबलौघेनमहतातेनसंवृतः ।
निर्मथ्यनगरात्तस्मात्तान्विजिग्येनराधिप ॥१९
जित्वाचवशमानीयचकारकरदान्पुनः ।
यथापूर्वंमहाभागमहाभाग्योनरेश्वर ॥२०
धुतयोः करयोर्जज्ञे यतस्तस्यारिदाहदम् ।
बलंकरन्धमस्तस्मात्सबलाश्वोऽभिधीयते ॥२१
सधर्मात्मामहात्माचसमैत्रः सर्वजन्तुषु ।
करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥२२
सम्प्राप्तस्यपरामार्त्तिददावरिविनाशनम् ।
बलन्धर्मेणचाक्षिप्तमभ्युपेत्यस्वयंनृपम् ॥२३

नगर के घिर जाने से बलाश्व को बडा क्रोध हुआ, परन्तु वह अल्पकोष और अल्प दण्ड व्यवस्था वाले होने के कारण ॥१५॥ रक्षा का कोई अन्य उपाय न देखकर अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक मुख को दोनो हाथो से ढक कर दीर्घ निःश्वास छोडने लगे ॥१६॥ ऐसा करने से उनके मुख की वायु के साथ ही सैंकडो योद्धा, रथ, हाथी और अश्व निकल पडे ॥१७॥ हे मुने ! क्षण भर म ही इस प्रकार अत्यन्त बल युक्त सेनाओ के द्वारा राजा बलाश्व का सम्पूर्ण नगर व्याप्त होगया ॥१८॥ तब उन राजा बलाश्व ने अपनी उस महान् सेना के सहित नगर से बाहर आकर युद्ध किया और शत्रुओ पर विजय प्राप्त की ॥१९॥ और उन सबको अपने अधीन करके उन्हें पुनः करदाता बनाया, इस प्रकार वह पुनः सौभाग्यशाली हुए ॥२०॥ बलाश्व के काँपते हाथों से जो सेना उत्पन्न हुई उसके कारण राजा बलाश्व की प्रसिद्धि 'करन्धम' नाम से हुई ।२१। करन्धम त्रैलोक्य मे प्रसिद्ध, धर्मात्मा तथा सब प्राणियो के प्रति सख्य भाव वाले थे ॥२२॥ वह राजा स्वयं बल प्राप्त करके परम आर्त्त हुए प्राणियो के शत्रुओ या दुःखो का नाश करने वाले हुए ॥२३॥

१०६—अवीक्षित चरित्र (१)

वीर्य्यचन्द्रसुतासुभ्रूर्वीरानामशुभव्रता ।
स्वयम्वरेसाजगृहेमहाराजकरन्धमम् ॥१
तस्यापुत्रसराजेन्द्रोजनयामासवीर्यवान् ।
अविक्षितमितिख्यातिमुपेतजगतीतले ॥२
जातेतस्मिन्सुतेराजासदैवज्ञानपृच्छत ।
कच्चित्प्रशस्तनक्षत्रेशस्तलग्नेसुतोमम ॥३
कच्चिच्चालोकितजन्ममपुत्रस्यशोभनै ।
ग्रहै कच्चिन्नदुष्टानाग्रहाणाद्दक्पथगतम् ॥४
इत्युक्तास्तेनदैवज्ञास्तमूचुर्नृपतितत ।
शस्तेमुहूर्तेनक्षत्रेलग्नेचैवसुतस्तव ॥५
समुत्पन्नोमहावीर्योमहाभागोमहाबल ।
भविष्यतिमहाराजमहाराजस्तवात्मज ॥६
अवैक्षतेमदेवानागुरु शुक्रश्चसप्तम ।
सोमश्चतुर्थ स्तनयतवैनसमवैक्षत ॥७
उपान्तसस्थितश्चैवसोमपुत्रोप्यवैक्षत ।
नावैक्षतेमसवितानभौमोनशनैश्चर ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—महाराज करन्धम ने स्वयवर मे वीर्यचन्द्र नरेश की कन्या शुभव्रता वीरा का पाणिग्रहण किया था। वीरा के गर्भ से महाराज करन्धम के एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ जिसका अवीक्षित नाम लोक में प्रसिद्ध है। उसके जन्म लेने पर राजा ने ज्योतिषियो को बुलाकर कहा कि मेरे पुत्र ने प्रशस्त लग्न और शुभ नक्षत्र मे तो जन्म लिया है ? इसके लग्न स्थान मे शुभ ग्रहों की दृष्टि है ? किसी दुष्ट ग्रह की दृष्टि तो नही पडी ? राजा के प्रश्न सुनकर ज्योतिषियो ने गणना करके बतलाया कि 'महाराज उत्तम मुहूर्त, शुभ नक्षत्र और श्रेष्ठ लग्न मे उत्पन्न हुआ है। इसलिये बडे भाग्यशाली, बडे पराक्रमी, असीम शक्तिशाली नृपति होंगे। इनकी कुण्डली मे बृहस्पति तथा शुक्र सप्तम

हैं और सातम घर पर देखते हैं। चौथे घर को चन्द्रमा देख रहा है और ग्यारहवें पर बुध की दृष्टि है। रवि मंगल तथा शनिश्चर जैसे क्रूर ग्रहों की दृष्टि नहीं है ॥१-८॥

तवपुत्रमहाराजधन्योऽयतनयस्तव ।
सर्वकल्याणसम्पत्तिसमवेतोभविष्यति ॥६
इतिदेवज्ञवचननिशम्यवसुधाधिप. ।
हर्षपूर्णमना प्राहनिजस्थानगतस्तदा ॥१०
अवेक्षतेमदेवानागुरु:सोम सितोबुध ।
नावेक्षतैनमादित्योनार्कसूनुर्नभूमिज ॥११
अवेक्षतेतियत्प्रोक्त भवद्भिर्बहुशोवच· ।
अविक्षितेतितेनास्यख्यातनामभविष्यति ॥१२
अविक्षित सुतस्तस्यवेदवेदाङ्गपारग ।
अस्त्रग्राममशेषंसकरणपुत्रादथाग्रहीत् ॥१३
सरूपेणातिभिषजौदेवानापार्थिवात्मज. ।
बुद्धयावाचस्पतिकान्त्याशशाङ्कं तेजसारविम् ॥१४
धैर्येणाब्धितथोर्वीचसहिष्णुत्वेनवीर्यवान् ।
शौर्येणनसमस्तस्यकश्चिदासीन्महात्मन: ॥१५

इसलिये महाराज ! आपके पुत्र बड़े मान्य, भाग्यवान् और वैभवशाली होंगे। यह सुनकर राजा प्रसन्न होकर कहने लगे कि आपके कथनानुसार 'बृहस्पति और बुध पुत्र को अवलोकन करते हैं, पर रवि मंगल, शनि की इस पर दृष्टि नहीं है।' आपने बार-बार 'अवेक्षत' शब्द कहा है, इसलिये इसका नाम अवीक्षित रख दिया जाय। मार्कण्डेय जी बोले—बड़ा होने पर राजकुमार अवीक्षित ने वेद-वेदांग की शिक्षा प्राप्त करके कण्वपुत्र से अस्त्र विद्या का पूर्ण रूप से अभ्यास किया। यह राजपुर परम रूपवान्, बुद्धिमान्, कान्तिमान् और तेजस्वी था। वह समुद्र के समान धैर्यशाली और पृथ्वी के समान सहिष्णु भी था। उस समय उसकी तुलना का कोई और व्यक्ति नहीं मिलता था ॥६-१५॥

स्वयवरेतजगृहेहेमधर्मात्मजावरा ।
सुदेवतनयागौरीसुभद्रावलिन.सुता ॥१६
लीलावती ीरसुतावीरभद्रसुतानिभा ।
भीमात्मजामान्यवतीदम्भपुत्रीकुमुद्वती ॥१७
याश्र्चनाभिनन्दन्तिस्वयवरकृतक्षरा ।
ताश्चापिसबलाद्वीरोजग्राहनृपते सुत ॥१८
निराकृत्यनृपान्सर्वांस्तासापितृकुलानिच ।
स्वयहिवीर्यमाश्रित्यबलवान्सबलोद्धतः ॥१९
एकदातुविशालस्यविशालाधिपते सुताम् ।
वशालिनीससुदतीस्वयवरकृतक्षणाम् ॥२०
परिभूयाखिलान्भूपान्स्वेच्छयानवृतस्तया ।
वलाज्जग्राहविप्रर्षेयथान्याबलर्गावत ॥२१

धर्म की कन्या वरा, सुदेव की कन्या गौरी, बलि की पुत्री सुभद्रा, वीरभद्र की निभा, वीर–पुत्री लीलावती, भीम पुत्री मान्यवती ने उन्हे स्वयवर मे वरण किया था । और भी अनेक कन्याओं को, जिन्होंने उनको वरण नहीं किया था वह शक्ति से ग्रहण करके ले आये थे । एकबार विशाल राजा की कन्या सुदती न स्वयवर मे उनको वरण नहीं किया । इस पर उन्होने बल के गर्व से सब राजाओं को पराजित कर उस भी अन्य कन्याओ की भाँति बलपूर्वक ग्रहण किया ॥१६–२१॥

ततस्तेभूभृत सर्वेवहुशस्तेनमानिना ।
निराकृता.सुनिर्विण्णा प्रोचुरन्योन्यमाकुला ॥२२
क्षमतावचनामेनामेवस्माद्वलशालिनाम् ।
बहूनामेववर्णानाजन्मधिग्वोमहीभृताम् ॥२३
क्षत्रियोय क्षतात्त्राणवध्यमानस्यदुर्मदे ।
करोतितस्यतन्नामनूर्यवान्येहिविभ्रति ॥२४
आत्मनोपिक्षतत्राणदुष्टादस्मादकुर्वताम् ।
भवताक्षत्रियकुलेजातानाकीदृशीमति ॥२५

उच्चार्यं तैस्तुतिर्या वः सूतमागधवन्दिभिः ।
सामत्यामा वृथा वीरा भवत्वरिविनाशनात् ॥२६
चरतामातथैवं पा भूपाश्चारैर्दिगन्तरे ।
पौरुषाश्रयिण सर्वे विशिष्टकुलसम्भवा ॥२७
बिभेति कोनमरणात्कोयुद्धेनविनाऽमर ।
विचिन्त्यैतन्नहातव्यपौरुषशस्त्रवृत्तिभि ॥२८
एतन्निशम्यते भूपा विस्पष्टामर्षपूरिता ।
उचु परस्परसर्वेसमुत्तस्थुश्चनायुधाः ॥२९
केचिद्रथानारुरुहु केचिन्नागास्तथाहयान् ।
अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेता पदातय ॥३०

इस पर वे राजा बारम्बार पराजय होने से दुखी होकर परस्पर कहने लगे कि इतने राजाओ के इस स्थान पर एकत्रित होने पर भी इस अकेले ने बलपूर्वक इस कन्या को ग्रहण कर लिया और तुम सब देखते रह गये यह धिक्कारने योग्य बात है। दुर्मद मनुष्य के आघात करने पर भी अन्य की रक्षा रूप कर्तव्य पालन मे तत्पर रहता है वही वास्तविक क्षत्रिय है अन्यथा क्षत्रिय का नाम धारण करना व्यर्थ है। २२-२४॥ पर तुमतो दूसरे की क्या अपनी रक्षा का उद्योग भी नही कर पाते। क्षत्रिय कहलाने पर भी यह तुम्हारी कैसी बुद्धि है? सूत, मागध, वन्दीगण तुम्हारी शूर वीरता की जो प्रशसा करते हैं उसे असत्य सिद्ध मत करो वरन् शत्रु का पराभव करके उसे यथार्थ सिद्ध करके दिग्पालो। तुम ससार मे 'भूप' के नाम से प्रसिद्ध हो इसे वृथा मत होने दो। तुम सबने श्रेष्ठ कुलो में जन्म लिया है और तुम सभी वीरता और पराक्रम मे प्रसिद्ध हो ॥२५-२७॥ वीर पुरुष मृत्यु का भय कब करते हैं और युद्ध से विमुख होने वाला कौन अमर होता है? इन सब बातो पर विचार कर क्षत्रिय नामधारी को कभी पौरुष का त्याग नहीं करना चाहिये। ऐसे उत्तेजना पूर्ण वचनो को सुनकर राजागण क्रोध से भर गये और आपस मे उत्साहपूर्ण वार्तालाप करके हथियार लेकर तैयार होगये। कोई रथ पर, कोई हाथी पर, कोई घोडे पर सवार होगये और कोई पैदल ही अवीक्षित के समीप आये ॥२८-३०॥

११०—अवीक्षित चरित्र (२)

इतिसग्रामसज्जास्ते भूपाभूपसुनस्तथा ।
निराकृता सुबहुशस्तत्कालश्चाप्यविक्षिता ॥१
ततोबभूवसग्रामस्तस्यतै सहदारुण ।
एकस्यवहुभिर्भूपैभूपपुत्रवरैर्मुने ॥२
तेऽसिशक्तिगदाबाणपाणयस्तसुदुर्मदा ।
अभिघ्नन्तोयुयुधिरेतै समस्तैरसावपि ॥३
सताञ्छरशतैरुग्रै विभेदनृपनन्दन ।
कृतास्त्रोबलवान्बाणैस्तेचतविभिदु शितै ॥४
कस्यशिच्चिच्छिदेबाहुमन्यस्यचशिरोधराम् ।
रद्दविव्याधचैवान्यवक्षस्यताडयत् ॥५
करश्चिच्छेदकरिणस्तुरगस्यतथाशिर ।
रथस्येपान्तथैवाश्वाअथस्यान्यस्यसारथिम् ॥६
बाणानापततश्चकेद्विधाबाणैस्तथाद्विपाम् ।
चिच्छेदान्यस्गखड्गश्चधनुरन्यस्यलाघवात् ॥७
तनुत्रेपहृतेतेननताशान्योनृपात्मज ।
अविक्षिताहतश्चान्य पदाति प्रजहौरणम् ॥८

मार्कण्डेय जी कहने लगे—उस अवसर पर अवीक्षित द्वारा पराजित हुए वे कितने ही राजा एक साथ मिल कर भयकर सग्राम करने लगे। वे खड्ग, शक्ति, गदा, बाणो आदि से आघात करने लगे और अवीक्षित भी अकेला ही उनके साथ युद्ध करने लगा। प्रसिद्धवीर नन्दन ने सैकडो बाणो से अवीक्षित पर आघात किया और उसने तीक्ष्ण बाणो से उनको विद्ध दिया। अवीक्षित ने किसी की भुजा, किसी का मस्तक काट दिया और किसी का हृदय छेदकर छाती पर आघात किया। किसी के हाथी की सूँड काट डाली, किसी का घोडा मार दिया किसी के रथ के सारथी को मार दिया। उन्होने शत्रुओ के

दान-दात बाणों को बीच में ही दो खण्ड करके गिरादिया, किसी के खड्ग और किसी का धनुष काट डाला कोई वीर कवच के कट जाने से मारा गया और कोई पैदल युद्ध करने वाला घायल होकर युद्ध क्षेत्र से हट गया ॥१-८॥

इत्याकुलीकृतेनस्मिन्समग्रे राजमण्डले ।
तस्थु-सप्तशतवीरामरणोकृतनिश्चयाः ॥६
आभिजात्यवय शौर्यलज्जाभारसमन्विता ।
निर्जितेसकलेसैन्येपलायनपरायणे ॥१०
तं समेत्यमहीपालं सनुपुत्रोमहीभृत ।
युयुधेधर्मयुद्धेनतेनतनातिकोपित ॥११
विच्छिन्नयन्नकवचान्सतानपिमहाबल ।
कर्त्तुं व्यवस्थितस्तेचतत क्रुद्धा महामुने ॥१२
धर्ममुत्सृज्ययुयुधुर्ध्यमानेनवर्मत ।
नरेन्द्रपुत्रा प्रस्वेदजलविलन्नानना समम् ॥१३
विव्याधकश्चिद्बाणौघं कश्चिच्छेदकार्मुकम् ।
ध्वजमस्यापरोबाणैश्छित्त्वाभूमावपातयत् ॥१४
जघ्नुरन्येतथैवाश्वान्बभञ्जुश्चापरेरथम् ।
गदापातेनायचान्येबाणै पृष्ठमताडयन् ॥१५

जब प्रतीक्षित ने इस तरह समस्त राजाओं को व्याकुल कर दिया और उनकी सेना भाग ने लगी तो सात सौ वीर अपने वंश, कीर्ति और वीरता का विचार करके मरने का भय त्याग कर युद्ध में तत्पर हुए। प्रतीक्षित भी अत्यन्त क्रोधित हो उनके साथ धर्म युद्ध करने लगा। जब वह उनके अस्त्रों और कवच आदि काटने लगा, तब, व पसीने से लथपथ राजा गण धर्म विरुद्ध साथ मिलकर उन पर अस्त्रों का आघात करने लगे। किसी ने शरीर में बाण मारे, किसी ने धनुष को तोड़ दिया, किसी ने ध्वजा को काट डाला, किसी ने घोड़ों को मार दिया, किसी के रथ को तोड़ा किसी ने पीछे से शस्त्र का आघात किया ॥६-१५॥

छिन्नेधनुषिसक्रोध सतदानृपते सुत. ।
जग्राहासितथाचर्मनदप्यन्योन्यपातयत् ॥१६
च्छिन्नासिचर्माजग्राहसगदागदिनावर: ।
तामप्यन्य क्षुरप्रेणचिच्छेदकृतहस्तवत् ॥१७
अन्येशरसहस्र`णशतेनान्येनराधिपाः ।
विव्यधु कोष्टकीकृत्यधर्मयुद्धपराङ्मुखा. ॥१८
सविह्वल पपातोर्व्यामिकोबहुभिरर्दित. ।
राजपुत्रामहाभागाववन्धुस्तेचततत. ॥१६
तमधर्मेणतेसर्वेगृहीत्वानृपतेःसुतम् ।
विशालेनसमराज्ञावैदिशविविशु.पुरम् ॥२०
दृष्ट्वा प्रमुदिताबद्ध समादायनृपात्मजम् ।
स्वयवराचमाकन्यान्यस्तातेनतत पुरः ॥२१

धनुष के कट जाने पर क्रोधित होकर अवीक्षित ढाल तलवार लेकर युद्ध करने लगा, पर एक अन्य वीर ने उसे भी काट गिराया। इस पर गदा लेकर सग्राम मे प्रवृत्त हुआ तो एक अन्य ने गदा को भी काट दिया। इसके पश्चात् उन धर्म विमुख राजाओ ने उस शस्त्रहीन को घेर कर हजारो और सैकडो बाण मारे। उनसे विद्ध होकर जब वह व्याकुल होकर गिर गया तब सब ने मिल कर उसे बाध लिया और [illegible] विशाल राजा के नगर वैदिलपुर मे उपस्थित हुए और बन्धनयुक्त [illegible] अवीक्षित [illegible] विशाल नप के सामने खडा किया ॥१६—२१॥

इतिपृष्टोनरेन्द्रेणमदं वज्ञोविमृश्यतत् ।
दुर्मनाःप्राहविज्ञातपरमार्थोमहीपतिम् ॥२५
भविष्यन्त्यपराणीहदिनानिपृथिवीपते ।
प्रशस्तलग्नयुक्तानिशोभनान्यचिरेणवै ॥२६॥
करिष्यसिविवाहत्वतेपुप्राप्ते पुमानद ।
अलमेतेनयत्रायमहाविघ्नउपस्थितः ॥२७

तत्पश्चात् राजा और पुरोहितों ने उस स्वयवरा कन्या से कहा विवाह इन राजाओं में से जिसे उचित समझे वरण करे पर उसने किसी को भी वर रूप में स्वीकार नहीं किया। तब राजा ने इस सम्बन्ध में ज्योतिषियों की सम्मति मांगी। उन्होंने कहा कि आज तो स्वयंवर पर यह विघ्नकारी युद्ध उपस्थित होगया, इसमें अब आप विवाह का कोई अन्य शुभ मुहूर्त बतलावें। राजा के इस प्रकार पूछने पर ज्योतिषी उस सम्बन्ध में विचार करने लगे और कुछ देर बाद उन्होंने कहा—हे महाराज आपकी कन्या के विवाह के उपयुक्त अच्छी लग्न वाला और शुभ दिन शीघ्र ही आयेगा। उसी दिन आप विवाह की समुचित व्यवस्था करें आज तो इसमें जो यह महाविघ्न पड गया इसलिये इस कार्य को स्थगित कर देना ही उचित है ॥२२-२७॥

१११—अवीक्षित चरित्र (३)

ततःसुश्रावतवद्धंतनयमकरन्धमः ।
तस्यपत्नीतथावीराअन्येचापिमहीभृत ॥१
तमधर्मेणतनयंवद्धंश्रुत्वामहीपति ।
सामन्तैः पृथिवीपालैश्चिरन्दध्यौमहामुने । २
केचिदूचुर्महीपालावध्या सर्वेमहीभृतः ।
यैरेक.सयुगेवद्ध समस्तैस्तैरधर्मतः ॥३
युज्यतांवाहिनीशीघ्रमूचुरन्येकिमास्यते ।
विशालोवध्यतांदुष्टस्तथयेऽन्येसमागता ॥४

छिन्नेधनुषिसक्रोध सतदानृपते सुत ।
जग्राहासितथाचर्मतदप्यन्यान्यपातयत् ॥१६
च्छिन्नासिचर्माजग्राहसगदागदिनावर ।
तामप्यन्य क्षुरप्रेणचिच्छेदकृतहस्तवत् ॥१७
अन्येशरसहस्रेणशतेनान्येनराधिपा ।
विव्यधु कोष्टकीकृत्यधर्मयुद्धपराङ्मुखा ॥१८
सविह्वल पपातोर्व्यामिकोबहूभिरर्दित ।
राजपुत्रामहाभागावबन्धुस्तेचतत्तत ॥१६
तमधर्मेणतेसर्वेगृहीत्वानृपते सुतम् ।
विशालेनसमराजावैदिशविविशु पुरम् ॥२०
दृष्टा प्रमुदिताबद्ध समादायनृपात्मजम् ।
स्वयवराचमाकन्यान्यस्तातेनतत पुर ॥२१

धनुष के कट जाने पर क्रोधित होकर अवीक्षित ढाल तलवार लेकर युद्ध करने लगा, पर एक अन्य वीर ने उसे भी काट गिराया। इस पर गदा लेकर संग्राम मे प्रवृत्त हुआ तो एक अन्य ने गदा को भी काट दिया। इसके पश्चात् उन धर्म विमुख राजाओं ने उस शस्त्रहीन को घेर कर हजारो और सैकडा बाण मारे। उनसे विद्ध होकर जब वह व्याकुल होकर गिर गया तब सब ने मिल कर उसे बाँध दिया और उसे लेकर विशाल राजा के नगर वैदिशपुर म उपस्थित हुए और बन्धनयुक्त राजकुमार अवीक्षित को विशाल नृप के सामने खडा किया ॥१६-२१॥

पुन पुनश्चापत्नोक्तातथापिचपुरोधसा ।
आलम्ब्यता ंमितिवरायस्तेराजसुरोचते ॥२२
यदामामानिनीकश्चिन्नजग्राहवरमुने ।
तदापप्रच्छदैवज्ञ विवाहार्थनरेश्वर ॥२३
विशिष्टाऽमेतस्याविवाहायदिनवद ।
गद्यं तदीहृयसजातयुद्ध विघ्नोपपादकम् ॥२४

इतिपृष्टोनरेन्द्रे णसदं वज्ञोविमृश्यतत् ।
दुर्मनाःप्राहविज्ञातपरमार्थोमहीपतिम् ॥२५
भविष्यन्त्यपराणीहदिनानिपृथिवीपते ।
प्रशस्तलग्नयुक्तानिशोभनान्यचिरेणवै ॥२६॥
करिष्यसिविवाहत्वतेपुप्राप्ते पुमानद ।
अलमेतेनयत्रायमहाविघ्नउपस्थितः ॥२७

तत्पश्चात् राजा और पुरोहितो ने उस स्वयवरा कन्या से कहा विवाह इन राजाओ मे से जिसे उचित समझे वरण करे पर उसने किसी को भी वर रूप मे स्वीकार नही किया । तब राजा ने इस सम्बन्ध मे ज्योतिषियो की सम्मति मागी । उन्होंने कहा कि आज तो स्वयंवर पर यह विघ्नकारी युद्ध उपस्थित होगया, इससे अब आप विवाह का कोई अन्य शुभ मुहूर्त बतलावें । राजा के इस प्रकार पूछने पर ज्योतिषी उस सम्बन्ध मे विचार करने लगे और कुछ देर बाद उन्होने कहा—हे महाराज आपकी कन्या के विवाह के उपयुक्त अच्छी लग्न वाला और शुभ दिन शीघ्र ही आयेगा । उसी दिन आप विवाह की समुचित व्यवस्था करें आज तो इसमे जो यह महाविघ्न पड गया इसलिये इस कार्य को स्थगित कर देना ही उचित है ॥२२-२७॥

१११—अवीक्षित चरित्र (३)

ततःशुश्रावतद्बद्धं तनयसकरन्धमः ।
तस्यपत्नीतथावीराअन्येचापिमहीभृत ॥१
तमधर्मेणतनयंबद्धंश्रुत्वामहीपति ।
सागन्तं. पृथिवीपालैश्चिरन्दध्यौमहामुने । २
केचिद्ूचुर्महीपालावध्या.मर्वेमहीभृतः ।
यैरेक.सयुगेबद्ध समस्तैस्तैरधर्मत. ॥३
युज्यतावाहिनीशीघ्रमूचुरन्येकिमास्यते ।
विशालोवध्यतांदुष्टस्तनयेऽन्येसमागता. ॥४

अन्येतथोचुर्धर्मोऽनयमुक्त.पूर्वंमहीक्षिता ।
अन्यायेनबलाद्येनगृहीतातमवाञ्छनी ॥५
स्वयवरेष्वशेषेषुतेनराजसुतास्तदा ।
खिलीकृतास्तत.सर्वसमेत्यसवशीकृत. ॥६

मार्कण्डेयजी कहने लगे—जब राजकुमार अवीक्षित के बाँध लिये जाने का समाचार महाराज करन्धम और राजमहिषी वीरा को मिला तो वे बहुत चिन्तित होकर अपने सामन्तों और मन्त्रियों से सलाह करने लगे। किसी ने कहा कि जिन बहुत से राजाओं ने मिलकर अकेले वीर को अधर्म युद्ध में पराजित करके बाँध लिया है वे सब मार देने योग्य हैं। दूसरे ने सम्मति दी कि अब निश्चित क्यों बैठे हो, अब तुरन्त विशाल राज और वहाँ एकत्रित अन्य राजाओं पर आक्रमण करके उन सब को बाँध लेना चाहिये। किसी किसी ने यह भी कहा कि इस अवसर पर राजकुमार ने भी वरण करने को अनिच्छुक राज-कन्या को बलपूर्वक ग्रहण करके धर्म विरुद्ध कार्य किया है। उन्होंने पहले भी कई स्वयंवरों में ऐसा ही कार्य करके अन्य राजपुत्रों से शत्रुता मोल ले ली है और इसी कारण उन सब ने मिल कर इन्हें पराजित किया है ॥१–६॥

तेषामेतद्वच.श्रुत्वावीरावीरप्रजावती।
वीरगोत्रसमुद्भूतावीरपत्नीप्रहर्षिता ॥७
उवाचभर्त्तु प्रत्यक्षमन्येषाचमहीक्षिताम् ।
भद्र कृतभद्रभुजाममपुत्रेणपार्थिवा ॥८
गृहीतायद्बलात्कन्या जित्वासर्वमहीक्षित ।
तदर्थयुध्यमानोऽयवद्धएकोनधर्मतः ॥९
तदप्यस्मत्सुतस्याजौमन्येनापचयदप्रदम् ।
एतदेवहिपौरुष्ययदमर्षवशान्नर ॥१०
नीतिनगणयत्येवजिघांसुरिवकेसरी ।
स्वयवरायविन्यस्तामनपुत्रेणकन्यका ॥११
बह्वयोगृहीताभूपानापश्यतामतिमानिनाम् ।
क्षत्रियकुलेजन्मक्वयाञ्चाहीनसेविता ॥१२

बलादेवसमादत्तेक्षत्रियोबलिनांपुरः ।
लोहश्रृङ्खलबद्धावानवशयान्तिकातरा ॥१३
प्रसह्यकारिणोयान्तिराजानोधर्मशालिन ।
तदलन्दौर्मनस्येनश्लाघ्यमेवास्यबन्धनम् ॥१४

इस प्रकार की बात सुन कर अवीक्षित की माता वीर वशीय वीरा देवी बहुत प्रसन्न हो कर महाराज करन्धम तथा अन्य सामन्तों के सामने कहने लगी कि मेरे पुत्र ने यदि सब राजाओं को हरा कर कन्या को बल पूर्वक ग्रहण किया तो यह कार्य प्रशंसा योग्य ही है। इसके फलस्वरूप वह अधर्मयुद्ध में बाँध लिया गया तो इसमे भी मेरी सम्मति मे उसकी कोई हानि नहीं हुई। पुरुषार्थी का तो यही कर्त्तव्य है कि वह अधर्म से मार ने की इच्छा रखने वालों से भी भयभीत न हो और सिंह के समान सब का मुकाबला करता रहे। मगर मेरे पुत्र ने अनेक स्वयंवरो में सम्मानित राजागणों के सम्मुख कन्याओं को बलपूर्वक ग्रहण किया तो इसे भी मैं क्षत्रियोचित कार्य ही मानती हू। तुच्छ व्यक्तियों के समान किसी वस्तु को माँगने की अपेक्षा उसे और शक्ति प्रकट करके ग्रहण करना श्लाघनीय ही है। क्षत्रियों की शोभा तो इसी में है कि वह बलवानो के सम्मुख भी अपना पराक्रम दिखलाकर बल-पूर्वक ग्रहण करे इस प्रकार के कार्य मे अगर जंजीर से बाँध भी लिया जाय, तो भी वह भयभीत होकर किसी की वश्यता स्वीकार नहीं करता। यदि मनुष्य निडर हो कर पूर्ण दिखलाने के बाद बन्धन ग्रस्त भी हो जाय तो मैं इसमें कोई बुराई नही समझती, वरन् मैं तो ऐसी पराजय को भी प्रशंसा का कारण मानती हूँ ॥७–१४॥

युष्माकमपियेपूर्वंकृत्वारीणानिपातनम् ।
रक्षत्वंवपृथिवीशानापृच्वीपुत्रादिकवसु ॥१५
भार्य्यावीर्यनिमित्तानितत्तोयातातिगौरवम् ॥
तत्वय्यंतारणायायुस्यन्दनान्यधिरोहत ॥१६
सज्जीकुरुतनागाश्वमचिरेणससारथिम् ।
मन्यध्वंकिमहीपालैर्बहुभिःसहविग्रहम् ॥१७

प्रभूताएवतोपायश्रू स्याल्प गोक्रिया ।
कस्यनाल्पेपुसामर्थ्यंनरेन्द्रादिपुजायते ॥१८
येभ्योनविद्यतेभीतिर्विक्रातस्यापिशत्रुपु ।
व्यरोचतेनिशूरःसतमासीवदिवाकर ॥१९
दत्यमुद्धर्पितोराजाऽनयापत्न्याकरन्धमः ।
सकाग्सबलोद्योगहन्तुं पुत्राहितान्मुने ॥२०
ततस्तस्यसमभूपैविशालेनचसङ्गरः ।
बभूवबद्धपुत्रस्यतैरशेषैर्महामुने ॥२१

वीरा ने कहा कि आपके पूर्वजो ने भी इसी प्रकार शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर उनके राज्य, कोष और पुत्र आदि पर अधिकार किया था। राजा लोग पृथ्वी धन, भार्या आदि समानता वालो से ही छीन कर इकट्ठी करते हैं और उसके लिये पाघात सहना भी श्लाघनोय मानते है। इसलिये आप शीघ्र रथ, हाथी, घोडो को सजाकर युद्ध के लिये तैयार हो। वीरगण छोटे युद्ध में भी अपनी पूरी वीरता दिखला कर गौरव प्राप्त करते हैं। तो फिर ऐसे स मान्य राजाओ पर आक्रमण करने मे आप लोगो को क्या भय हो सकता है ? सूर्य जिस प्रकार समस्त दिशाओ के अन्धकार को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार जो शूरवीर हर प्रकार के शत्रु को पराजित करने के लिये तैयार रहता है, वही सच्चा बहादुर है। मार्कण्डेय जी ने कहा कि राज महिषी द्वारा इस प्रकार उत्साह और प्रेरणा दिलाये जाने पर महाराज करन्धम तुरन्त पुत्र के शत्रुओ पर आक्रमण करने को रवाना हो गये और शीघ्र ही विशाल राजा नगर के समीप पहुच कर वहाँ एकत्रित सब राजाओ से युद्ध करने लगे ॥१५–२१॥

दिनत्रयमभूद्युद्धं तेनराज्ञासमंतदा ।
करन्धमेनभूपानांविशालस्यानुकुर्वताम् ॥२२
यदापराजितप्रायतत्सर्वंभूपमण्डलम् ।
तदाविशालोऽर्घ्यकर करन्धमभुपस्थितः ॥२३

करघमोऽपिसप्रीत्यातेनराज्ञाभिपूजित ।
विमुक्तेतनयेतत्रनिशातासुखमावसत् ॥२४
ताचकन्यामुपादायविशालसमुपस्थितम् ।
अविक्षितप्राहविप्रर्षेविवाहार्थंपितु पुर ॥२५
नाहमेताग्रहीष्यामिनचान्यांयोपितनृप ।
परैर्यस्यानिरीक्षन्त्या सग्रामेऽहपराजित ॥२६
अन्यस्मैसप्रयच्छेमामियश्चान्यवृणोतुतम् ।
अखण्डितयशोवीर्य्योय परैर्नापमानित ॥२७

विशाल राजा तथा उसके साथी राजाओं से करन्धम का युद्ध तीन दिन तक चलता रहा और अन्त में वे सब पूर्णत पराजित होगये। तब विशालराज पूजा सामग्री लेकर करन्धम के सामने उपस्थित हुए। करन्धम ने इस पर शत्रु-भाव त्याग दिया और राजा द्वारा पूजित होकर तथा पुत्र को छुड़ा कर उस दिन वहीं ठहरे। जब विशालराज अपनी कन्या का विवाह अवीक्षित से करने को प्रस्तुत हुए तो उसने इसे अस्वीकार कर दिया और पिता के सामने ही कहा कि—हे महाराज! जिस कन्या के सामने मैं शत्रुओं से परास्त होगया उसको तो कभी ग्रहण कर ही नहीं सकता, साथ ही अब किसी अन्य कन्या से भी विवाह नहीं करूँगा। आप इसका विवाह किसी ऐसे वीर से कीजिये जो कभी शत्रुओं से पराजित न हुआ हो और जिसका यश अखडित बना हो ॥२२-२७॥

परैं पराजितोऽह्यस्कातरेययथाऽबला ।
किमत्रमानुपत्वमेनैतस्याममचान्तरम् ॥२८
स्वतन्त्रतामनुष्याणांपरतन्त्रामदाऽबला ।
नरोऽपिपरतन्त्रोयस्तस्यकीदृङ्मनुष्यता ॥२९
सोऽहमस्यामुखभूयोदृष्टदर्शयिताकथम् ।
योऽहमस्या पुरोभूमौपरैर्भूपै खिलीकृतः ॥३०
इत्युक्तेतेनतनयामुवाचजगतीपति ।
श्रुत्वेवचनवत्सैवदतोऽस्यमहात्मन ॥३१

वयवासप्रयच्छामोयस्मिरतस्मिस्तवाद्दति ।
एतयोंह्य यमातिष्ठमार्गयो रुचिराननें ॥३२
पराजितोऽयबहुभिनसम्यगसम्यगाचरन् ।
सग्रामेतद्यशोवीर्य्यहानिकारिनपार्थिव ॥३३
एकोबहूनांयुद्धायगजानामिवकेसरी ।
यत्सस्थितपरशोर्य्यतेनास्यप्रक्टीकृतम् ॥३४
नकेवलमयतुस्थौयुद्धे तेऽप्यखिलाजिताः ।
बहुशोऽनेनयत्नेनविक्रमोऽपिप्रकाशितः ॥३५
शौर्य्यविक्रमसयुक्तगिम्सर्वमहीक्षित ।
धर्म्मयुद्धमधर्मेणजितवन्तोऽनकानपा ॥३६

अवीक्षित ने कहा—हे राजन् ! जब मैं इसके सामने एक कातर अबला के सामने शत्रुओं द्वारा बन्धन ग्रस्त होगया तो मेरा पुरुषत्व ही क्या रहा ? अतएव अब मुझ में और इस कन्या में कोई भेद नहीं रहा। पुरुष का मुख्य लक्षण तो स्वाधीन होना है और नारियाँ सदैव पराधीन मानी गई हैं। इसलिये पुरुष होकर जो पराधीन होगया उसका पौरुष कहाँ रहा ? जिसके सामने मैं समस्त राजाओं से पराजित होगया हूँ उसको अपना मुँह किस साहस से दिखाऊँगा ? महीपाल विशाल ने अवीक्षित के वचन सुनकर कन्या से कहा कि तुमने राजकुमार की बात सुनली। अब तुम्हारी इच्छा हो तो किसी भी राजा को स्वेच्छा पूर्वक वरण करलो अन्यथा पिता के कर्तव्य का ध्यान रखता हुआ मैं जिसके योग्य समझूँ उसके साथ तुम्हारा पाणिग्रहण सस्कार कर दूँ। इन दोनों बातो म से तुमको जो स्वीकार हो वह कहो ॥२८–३२॥ कन्या ने कहा—पिताजी ! इन राजकुमार ने बहुत से वीरों के साथ सग्राम किया और फिर भी पूर्णत पराजित नहीं हो सके। इन्होने जो अकेले ही इतने, राजाओं के साथ घोर युद्ध किया इससे ही इनका सर्वोत्कृष्ट शौर्य प्रकट होगया। केवल युद्ध में निर्भीक भाव स स्थित ही नहीं रहे वरन् समस्त राजाओं को इन्होने अनेक बार हराया भी। फिर इन धर्म युद्ध के नियम का पालन, करने वाले को अनेक

राजाओं ने मिलकर प्रथम युद्ध में हराया, इसमें मुझे लज्जा की कोई बात नहीं जान पड़ती ॥३३-३६॥

नचापिरूपमात्रेऽह्लोभमस्यगतापित ।
शौर्य्यविक्रमधैर्य्याणिहरन्त्यस्यमनोमम ॥३७
तत्किमुक्तेनत्रहुनायाच्यतामत्कृतेनृप ।
स्वयामहानुभावोऽयनान्योमेभवितापति ॥३८
राजपुत्रसुताप्राहममैतच्छोभनवच ।
एवचवत्वयातुल्य कुमारोनमहीतले ॥३९
अविसवादितेशौर्य्यमतीवचपराक्रम ।
पावयास्मत्कुलवीरदुहितुर्मेपरिग्रहात् ॥४०
नाहमेताग्रहीष्यामिनचान्यायोषितनृप ।
आत्मन्येवहिमेवुद्धि स्त्रीमयीमनुजेश्वर ॥४१
ततःकरन्धम प्राहपुत्रेयगृह्यतात्वया ।
विशालतनयासुभ्रू स्त्वयिहार्दवतीदृढम् ॥४२
नाज्ञाभङ्ग कदाचित्तेकृत पूर्वमयाप्रभो ।
तथाऽऽज्ञापयमातातयथाज्ञाकरवाणिते ॥४३

कन्या ने कहा—मैं इनके रूप को देखकर ही विवाहोद्यत नहीं हुई हूँ वरन् इनके शौर्य तथा पराक्रम ने मेरे मन में घर कर लिया है। इसलिये पिताजी ! अब मैं निश्चय कर चुकी हूँ कि इनके अतिरिक्त मैं कभी अन्य किसी को वरण नहीं करूँगी। आप इनको ही मेरे लिये समझाइये। इस पर राजा विशाल ने अवीक्षित से कहा—राजकुमार ! मेरी कन्या ने जो कुछ कहा वह बिलकुल ठीक ही है। तुम्हारे समान राजकुमार मुझे कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। तुम्हारी वीरता में कुछ भी सन्देह नहीं और तुम्हारा पराक्रम भी प्रत्यक्ष ही है, इसलिये तुम्हारे द्वारा मेरी कन्या का पाणिग्रहण किये जाने से मेरा कुल पवित्र होगा। यह सुनकर अवीक्षित ने कहा—"राजन् ! अब मैं इस अथवा किसी भी अन्य स्त्री को ग्रहण नहीं करूँगा क्योंकि मैं अब अपने को स्त्री ही समझता हूँ।" तब महाराज करन्धम ने भी अपने पुत्र को समझाया कि तुम

इस कन्या का पाणिग्रहण करो, क्योंकि इसको तुम्हारे प्रति हार्दिक अनुराग उत्पन्न होगया है। अवीक्षित ने उत्तर दिया—पिताजी ! मैंने आज तक कभी आपकी आज्ञा का उल्लघन नहीं किया। इसलिये आप मुझे ऐसी कोई आज्ञा न दें जिसे पालन करने में समर्थ न होऊँ ॥३७-४३॥

अत्यन्तनिश्चितमतौतस्मिन्राजसुतेसुताम् ।
तामुवाचविशालोऽपिव्याकुलीकृतमानस ॥४४
निवर्त्यतामन पुत्रिएतस्मात्त्वप्रयोजनात् ।
अन्यवरयभर्त्तारसन्त्यनेकेनृपात्मजा ॥४५
वरवृणोम्यहतातमामेषयदिनेच्छति ।
तपसाऽन्योनमेभर्त्ताजन्मन्यस्मिन्भविष्यति ॥४६
तत करन्धमोराजाविशालेनसममुदा ।
स्थित्वादिनत्रयतत्रनिजमभ्याययौपुरम् ॥४७
अविक्षितोपितेनैवपित्रान्यैश्चनराधिपै ।
निदर्शनै पुरावृत्तै सान्त्वितोऽभ्यागमत्पुरम् ॥४८

जब विशाल राजा ने देखा कि अवीक्षित ने विवाह न करने का दृढ निश्चय कर लिया है तो उसने अपनी पुत्री से कहा कि जब इस राजपुत्र की ऐसी भावना होगई है तो अब तू इस विचार को त्याग कर किसी अन्य राजपुत्र का वरण करले। कन्या ने उत्तर दिया—पिताजी ! यदि ये राजपुत्र विवाहार्थी नही होते तो मेरा निश्चय भी यही है कि इस जन्म मे मेरा पति 'तपस्या' के अतिरिक्त और कोई न होगा। मार्कण्डेय जी कहने लगे—राजा करन्धम तीन दिन तक विशाल राजा के यहाँ अतिथि सत्कार ग्रहण करके अपनी राजधानी को वापस चले गये और उनके तथा अन्य सामन्तो के समझाने से अवीक्षित भी उनके साथ चले गये ॥४४-४८॥

सापिकन्यानन्नगत्वानिसृष्टानिजबान्धवै ।
तपस्तेपेनिराहारावैराग्यपरमास्थिता ॥४९
निराहारायदासातुमासत्रयमवस्थिता ।
सप्रापपरमामार्तिकृशाधमनिसन्तता ॥५०

मन्दोत्साहातितन्वङ्गीमुमूर्षु रपिबालिका ।
देहत्यागायमाचक्रे तदावृद्धिनृपात्मजा ॥५१
घात्मत्यागायतान्ज्ञात्वाकृनर्वृद्धिसुरान्तत ।
समेत्यप्रेषयामासुर्देवदूतन्तदन्तिकम् ॥५२
समुपेत्यसताप्राहदूतोऽहपार्थिवात्मजे ।
प्रेषितस्त्रिदशैस्तुभ्यमत्कार्यंतन्निनामय ॥५३
नभवत्यापरित्याज्यशरीरमतिदुर्लभम् ।
त्वभविष्यसिकन्याणिजननीचक्रवर्तिन ॥५४
पुत्रेणत्वमहाभागेभोक्तव्यानिहतारिणा ।
अव्याहताज्ञे नचिरसप्तद्वीपवतीमही ॥५५
हन्तव्यस्तेनतरुजिद्देवानापुरतोरिपु. ।
धय मकुस्तयाक्रू रोधर्मस्थाप्यास्तत प्रजा ॥५६
प रपालनीयमखिलचातुर्वर्ण्यस्वधर्मतः ।
हन्तव्यादस्यवोम्लेच्छायेचान्येयुष्टचेष्टिना ॥५७
यष्टव्यविविधैर्यज्ञै समाप्तवरदक्षिणै ।
वाजिमेधादिभिर्भद्रे पट्महस्त्र असम्ख्यया ॥५८

उधर वह विशाल राजा की कन्या भी परिवार वालों से विदा ले वन में निवास करती हुई बड़े सयम-नियम के साथ तपस्या करने लगी। इस प्रकार तीन महीने तक निराहार रहने से वह अत्यन्त दुर्बल होगई और उसके शरीर की नसें दिखलाई पड़ने लगीं। अपने शरीर की ऐसी दशा देखकर उस कन्या ने निराश हो प्राण त्याग का निश्चय किया। जब देवताओं ने उसको ऐसा कार्य करते देखा तो उन्होंने एक देवदूत उसके पास भेजा, जिसने उस तपोवन में आकर कहा—हे राजकुमारी! मैं देवताओं का दूत हूँ। उन्होंने कहलाया है कि यह दुर्लभ शरीर सहज में नहीं मिलता तुम प्राण त्याग मत करो, तुम आगे चलकर एक चक्रवर्ती राजा की जननी बनोगी। हे महाभागे! तुम्हारा पुत्र अपने बाहुबल से समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके अनेक वर्षों तक समस्त पृथ्वी का अधीश्वर बना रहेगा। वह देवताओं के शत्रु तरुजित् और

प्र शत्रु को भी मारकर उनका हितकारी होगा। वह प्रजा को धर्माचरण के लिए प्रेरित करेगा, चातुर्वर्ण्य धर्म को प्रतिष्ठित करेगा और म्लेच्छ, दस्यु आदि दुष्टों को नष्ट करके प्रजा को सुखी करेगा। वह बड़ी दक्षिणा वाले अश्वमेध और अन्य प्रकार के छः हजार यज्ञ करेगा ॥४६-५८॥

तद्दृष्ट्वासास्त्रीरक्षस्थदिव्यस्रगनुलेपनम् ।
देवदूतमुवाचेदराजपुत्रीततोमृदु ॥५९
सत्यत्वमागत स्वर्गाद्देवदूतोनसशय ।
किन्तुभर्त्राविनापुत्र सकथमेमविष्यति ॥६०
अविक्षितमृतेभर्त्तामिमनान्योऽत्रजन्मनि ।
भवितेतिप्रतिज्ञातमयैतत्सन्निधौपितु ॥६१
सचनेच्छतिमाप्रोक्तोमत्पित्राजनकेनच ।
करन्धमेनाथसम्यग्याचितश्चमयातथा ॥६२
विमनेनमहाभागेबहुनोक्तं नतेसुत ।
समुत्पत्स्यतिमात्याक्षीस्त्वमात्मानमधर्मत ॥६३
अत्रैवकाननेतिष्ठन्नु क्षीणाचपोषय ।
तप प्रभावादेतत्तेसर्वंसाधुभविष्यति ॥६३
इत्युक्त्वादेवदूतोऽसौयथागतमगच्छत ।
चकारानुदिनसुभ्रू साप्यात्मतनुपोषणम् ॥६५

मार्कण्डेय जी कहने लगे—वह राज्य कन्या उस दिव्य विभूति से युक्त देवदूत को आकाश में देखकर मीठी वाणी से कहने लगी—आप स्वर्ग के देवदूत हैं और इस कारण आपकी बातें असत्य नहीं हो सकतीं, पर पति के बिना मेरे पुत्र किस प्रकार होगा? मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि अवीक्षित के अतिरिक्त मैं किसी और को वरण नहीं करूँगी और उन्होंने मेरे पिता, अपने पिता तथा मेरे अनुरोध को भी स्पष्ट अस्वीकार करके विवाह न करने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया है। देवदूत ने कहा—देवगण का कथन अन्यथा नहीं हो सकता, निःसन्देह तुमको पुत्र उत्पन्न होगा। इसलिये तुम इस आत्म-हत्या रूपी पाप के विचार को त्याग कर इस वन में रहकर ही अपनी देह की रक्षा करो। तपस्या

के प्रभाव से तुम्हारे सभी मनोरथ अवश्य पूर्ण होंगे। इस प्रकार विशाल राजा की कन्या को समझा कर देवदूत अपने स्थान को चला गया और वह भी आहार ग्रहण करके शरीर का पोषण करने लगी ॥५६–६५॥

११२—अवीक्षित चरित्र (४)

अथसाऽविक्षितोमातावीरावीरप्रजावती ।
पुण्येऽह्निसमाहूयप्राहपुत्रमविक्षितम् ॥१
पुत्राहमभ्यनुज्ञातातवपित्रामहात्मना ।
उपवासकरिष्यामिदुष्करोऽयकिमिच्छकः ॥२
सचायत्तस्तवपितुस्त्वयासाध्योमयापिच ।
प्रतिज्ञातेत्वयापुत्रततस्तत्रयताम्यहम् ॥३
द्रव्यस्यार्द्धं महाकाशात्तवदास्याम्यहपितु ।
धनतेपितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मितेनच ॥४
क्लेशसाध्योमदायत्त सहिश्रेयोभविष्यति ।
साध्योभवेद्वायदितेकश्चिद्बलपराक्रमै ॥५
सनेऽसाध्योह्यन्यथावाद्दु खसाध्योभविष्यति ।
तन्वप्रतिज्ञाकुरुष्वेयदिपुत्राभ्यर्चवते ।
तदेतदहमावाप्स्येकध्यतायम्मतातव ॥६

मार्कण्डेय जी कहने लगे—किसी समय अवीक्षित की माता वीरादेवी ने अपने पुत्र को बुला कर कहा—बेटा ! मैं 'किमिच्छिक' नाम का दुष्कर व्रत करना चाहती हू और तुम्हारे पिता ने उसकी आज्ञा देदी है। यह व्रत तुम्हारे पिता, मेरे और तुम्हारे सहयोग से पूर्ण हो सकता है, इसलिये जब तुम उसकी प्रतिज्ञा कर लोगे तभी मैं उसे आरम्भ करूँगी। इस व्रत में मुझे राज्यकोष का आधा धन दान करना है और इसके लिये तुम्हारे पिता ने स्वीकृति देदी है। शरीर के कष्ट का सहन करना मेरा काम है, उसे मैं भली प्रकार सम्पन्न करूँगी

और बल तथा पराक्रम से होने वाला जितना कार्य है वह तुम्हारे अधीन है। वह कार्य सुसाध्य, दुःसाध्य और असाध्य भी हो सकता। इसलिये तुम समस्त कार्यों को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा करो तो मैं इस व्रत को आरम्भ करूँ। इसलिये तुम्हारा जैसा विचार हो वह स्पष्ट कहो ॥१-६॥

वित्तमेषि तु रायत्तमस्माभिस्तननब्रवे ।
यन्मच्छरीरनिष्पाद्य तत्करिष्येत्वयोदितम् ॥७
किमिच्छस व्रतमात निश्चिन्ता भव निर्म्मया ।
राज्ञापि नाभ्यनुज्ञातं यदि वित्तं धरेगुणे ॥८
अन गाराजमहिषीनद्व्रतमनुपोदिता ।
यथोक्त गाऽवरास्पूजाराजराजस्य गयना ॥९
निर्धानामस्यसेपाणां निधिपालगणस्य च ।
गहस्याक्षपरयाभक्त्यायनवाव राघमानगा ॥१०
विवित्ते तु गृहस्थोऽपि नमपराजावरन्धन ।
प्राचीनडल गविवर्नोत्रिशास्त्रविशारदे ॥११
राजरथ परिगनन्वधंनन्दासनोमहीम् ।

बड़े उत्साह पूर्वक उस व्रत को आरम्भ किया और उपवास रखकर काम, मन, वचन से पूर्ण संयम करते हुए शास्त्र विधि से निधि समूह, निधिपालगण और लक्ष्मी देवी का पूजन करने लगी। इस अवसर पर महाराज करन्धम अपने सुयोग्य मन्त्रियों के साथ मन्त्रणागृह में बैठ कर सब व्यवस्था करते रहते थे। उस समय मंत्रियों ने राजा से कहा—हे महाराज ! राज्य का पालन करते हुए आपकी अवस्था पूर्ण हो चली है और आपके एकमात्र पुत्र ने स्त्री सम्पर्क त्याग कर कोई सन्तान उत्पन्न नहीं की है। यदि वे आजन्म इसी प्रकार ब्रह्मचारी बने रहे तो अन्त में आपका यह राज्य शत्रुओं के अधिकार में चला जायगा। इस प्रकार आपका वंश क्षय होकर पितरों का श्राद्ध और तर्पण बन्द हो जायगा। इस प्रकार सब क्रियाओं के रुक जाने पर शत्रुओं का भय उपस्थित होगा। इसलिये जैसे भी सम्भव हो आप ऐसा उपाय कीजिये जिसमें आपका पुत्र गृहस्थ आश्रम स्वीकार करके पितरों के श्राद्ध और तर्पण को स्थिर रख सके ॥७—१५॥

एतस्मिन्नन्तरेशब्दं शुश्रावजगतीपतिः ।
पुरोहितस्यवीरायागदतोह्यधिनप्रति ॥१६
क किमिच्छतिदु साध्यकस्यकिसाध्यतामिति ।
करन्धमस्यमहिषीकिमिच्छिकमुपोषिता ॥१७
राजपुत्रोऽप्यविक्षित् श्रुत्वापौरोहितवच ।
प्रत्युवाचार्थिन भर्वान्राजद्वारमुपागतान् ॥१८
मयासाध्यशरीरेणयस्यकिञ्चिद्ब्रवीतुसः ।
ममभातामहाभागाकिमिच्छकमुपोषिता ॥१९
श्रृणुवन्तुमेर्थिनः सर्वेप्रतिज्ञातमयातदा ।
किमिच्छथददाम्येपक्रियमाणेकिमिच्छके ॥२०
ततोराजानिशम्यैतद्वाक्यपुनमुखाच्छ्रुतम् ।
तमुत्पत्याब्रवीत्पुत्रमहमर्थीप्रयच्छमे ॥२१
दातव्ययन्मयातातभवतेतद्ब्रवीहिमाम् ।
कर्तव्यदुष्करवातेसाध्यदु साध्यमेववा ॥२२

मार्कण्डेयजी कहने लगे—उसी समय राजा के कानों में पुरोहितों के ये शब्द आये कि 'करन्धम की राजमहिषी 'किमिच्छक' व्रत करती है—तुम क्या इच्छा करते हो ? जिसका जो कठिन कार्य पूरा किया जाने को हो वह उसके सम्मुख कहो।" राजपुत्र अवीक्षित ने भी पुरोहितों के इन वचनों को सुना और तब वह भी द्वार पर आकर कहने लगे—'हे प्रार्थीगणों ! मेरी प्रतिज्ञा है कि मेरी भाग्यवती माता जो 'किमिच्छक' व्रत कर रही हैं उसके सम्बन्ध में मैं भी प्रत्येक कार्य, जो कुछ मेरे शरीर से सम्भव है, पूरा करने को प्रस्तुत हूं। जब राजा करन्धम ने अवीक्षित को इस प्रकार कहते सुना तो उसने अवीक्षित के सामने जाकर कहा—'पुत्र ! मैं भी अर्थी हूं, मेरी अभिलाषा को भी पूर्ण करो।" अवीक्षित ने कहा—पिताजी ! मैं आपको क्या दूं ? आप जो चाहते हों उसकी आज्ञा दें वह कार्य कैसे भी दुःसाध्य या असाध्य भी क्यों न हो मैं उसे पूरा करूंगा ॥१६–२२॥

यदिसत्यप्रतिज्ञस्त्वददासिचकिमिच्छकम् ।
पौत्रस्यदर्शयमुखममोत्सङ्गगतस्यतत् ॥२३
अहन्तवैकस्तनयोब्रह्मचर्य्यंचमेनृप ।
नमेपुत्रोऽस्तिपौत्रस्यदर्शयामिकथमुखम् ॥२४
पापायब्रह्मचर्य्यन्तेयदिद धार्य्यतेत्वया ।
तस्मात्त्वमोचयात्मानममपौत्रचदर्शय ॥२५
विषमस्यान्महाराजयदन्यत्तत्समादिश ।
वैराग्येणमयात्यक्त स्त्रीसंभोगस्तथात्तुसः ॥२६
बहुभिर्युध्यमानानादृष्टोवैवैरिणाजय ।
तत्रापियदिवैराग्यमुपैपितदपण्डित ॥२७
किंवानोबहुनोक्तेनब्रह्मचर्य्यंपरित्यज ।
मातुस्त्वमिच्छयावक्त्रपौत्रस्यममदर्शय ॥२८

राजा ने कहा—"अगर तुमने किमिच्छक व्रत मे दान करने की प्रतिज्ञा सचमुच की है तो मुझे पौत्र का मुख दिखाओ।' अवीक्षित ने उत्तर दिया—पिताजी ! आपका एकमात्र पुत्र तो मैं ही हूँ और मैंने सदैव के लिये ब्रह्मचर्य

पालन का निश्चय किया है और मेरे कोई पुत्र नहीं है। इस कारण आपको पौत्र का मुख कैसे दिखा सकता हूं ?" महाराज करन्धम ने कहा—तुमने जो ब्रह्मचर्य धारण किया है वह नीति विरुद्ध पाप कार्य है। इसलिये उसे त्याग कर मुझे पौत्र का मुख दिखाओ।" अवीक्षित ने कहा कि इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का त्याग मेरे मन के बहुत विरुद्ध है। मैंने वैराग्य भावना से स्त्री-सम्पर्क का त्याग किया है, अतएव आप मुझे ऐसी आज्ञा दें जिससे मेरा व्रत खंडित न हो। राजा ने कहा—तुमने बड़ी-बड़ी सेनाओं सहित प्रबल वैरियों को हराया है, इस पर भी तुम वैराग्य धारण करते हो तो कोई तुमको बुद्धिमान् नहीं कह सकता। कुछ भी हो, इस विषय में अधिक विवाद न करके अपनी माता के व्रत का पालन करने के लिये मुझे पौत्र का मुख दिखाओ ॥२३-२८॥

यदासवहुशस्तेनप्रोक्त पुत्रेणपार्थिवः ।
नान्यत्प्रार्थयतेकिंचित्तदापुनोऽब्रवीत्पुन ॥२६
दत्वाकिमिच्छकतुभ्यप्राप्तोऽहंतातसङ्कटम् ।
तत्करिष्यामिनिर्लज्जोभूयोदारपरिग्रहम् ॥३०
स्त्रिया समक्षविजित पतितोधरणीतले ।
स्त्रीपतिर्भवितभूयस्तालंतदतिदुष्करम् ॥३१
तथापिकिकरोम्येपसत्यपाशवङ्गतः ।
करिष्यामियथाऽऽत्थत्वभुज्यतानिजशासनम् ॥३२

मार्कण्डेय जी कहने लगे—यद्यपि अवीक्षित ने बार-बार अपनी कठिनाई बतलाई और राजा से कोई दूसरी बात माँग लेने को कहा—पर जब वे न माने तो उसने कहा—"पिताजी ! मैं 'किमिच्छक' व्रत के लिये इच्छानुसार दान देने की प्रतिज्ञा करके सङ्कट में पड़ गया हूं इसलिए निर्लज्ज होकर फिर गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होना ही पड़ेगा। अन्यथा सच्ची बात तो यह है कि जब मैं स्त्री के सामने पराजित होकर पृथिवी में गिर गया तो अब मैं स्त्री और वह पति के समान होगी, वास्तव में यह मेरे लिये बड़ा कठिन कार्य है। तोभी जब मैं आपसे प्रतीज्ञा-बन्धन में बँध गया हूं, तो आपने जो कहा है उसे अवश्य

करूँगा । आप अब इस विषय में निश्चिन्त हो जायें और अपना राज्य-कार्य सुखपूर्वक करते रहें ॥२९-३२॥

११३—अवीक्षित चरित्र (५)

कदाचिद्राजपुत्रोऽसौ मृगयामचरद्वने ।
मृगान्विध्यन्वराहांश्च शार्दूलादींश्च द्विपान् ॥१
शुश्राव क्रन्दितं तत्र त्राहि त्राहीति योषितः ।
बिभेमीत्युक्त्वा बहुशो भयगद्गदमुच्चकैः ॥२
मा भैर्मा भैरिति वदन्राजपुत्रो जवेरितः ।
चोदयामास तुरगं यतः शब्दः समागतः ॥३
ततस्त्रासादिविह्वला कन्यका विजने वने ।
गृहीता दनुपुत्रेण दृढकेशेन मानिनी ॥४
करन्धमसुतस्याहं भार्या चाहमनिन्दिता ।
ह्रियेऽनार्येण विजने पृथिवीशस्य धीमतः ॥५
यस्य सर्वे महीपालास्तथा गन्धर्वगुह्यकाः ।
न समर्थाः पुरः स्थातुं तस्य भार्या ह्रियाम्यहम् ॥६
यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः ।
करन्धमसुतस्यैव तस्य भार्या ह्रियाम्यहम् ॥७

आदि देवगण भी शत्रुभाव से नहीं ठहरते हैं, मैं उनकी ही पत्नी होकर हरण की जा रहा हूं। जिनके क्रोध में पडकर कोई बचकर नहीं जा सकता और जो इन्द्रतुल्य पराक्रमी हैं, उन महाराज करन्धम के पुत्र की भार्या को यह पापी हरण कर रहा है ॥१–७॥

इत्याकर्ण्यमहीपालतनयःसशरासनी ।
चिन्तयामासकिमिद ममभार्यात्रकानने ॥८
मायेयरक्षसांनूनंदुष्टानांकाननौकसाम् ।
अथवागतएवाहंसर्वं वेत्स्यामिकारणम् ॥६
त्वरित सततोगत्वाहदर्शातिमनोरमाम् ।
काननेकन्यकामेकासर्वालङ्कारभूषिताम् ॥१०
गृहीतांदनुपुत्रेणदृढकेशेनदंडिना ।
त्राहित्राहीतिकरुणंविक्रोशन्तीपुन.पुनः ॥११
माभैरितिसतामाहहतोऽसीतिचतंवदन् ।
शासतीमांमहीदुष्ट.कोदूयेतकरंधमे ॥१२
यस्यप्रतापावनताभुविसर्वेमहीक्षित. ।
ततस्तमागतदृष्ट्वागृहीतवरकार्मुकम् ॥१३
मांत्राहीत्याहतन्वङ्गीहृतास्म्येपेतिचासकृत् ।
राज्ञ.करन्धमस्याहस्नुषाभार्य्याप्यविक्षितः ।
हृतास्म्येतेनदुष्टेनसनाथाऽनाथवद्वने ॥१४

मार्कण्डेयजी कहने लगे—अवीक्षित इन शब्दों को सुनकर विचार करने लगा कि इस वन मे मेरी पत्नी कहाँ से आयी। हो न हो यह राक्षसों की माया है। तोभी जब आगे बढ कर उन्होंने देखा कि दृढकेश नामक दानव अनेक आभूषणों से युक्त एक अत्यन्त मनोहर कन्या को पकड रहा है और वह बार-बार 'त्राहि-त्राहि' कहकर रो रही है तो उन्होंने कन्या से कहा—'डरो मत।' फिर वे उस दानव से बोले—अब तेरी मृत्यु आ चुकी है, महाराज करन्धम के शासन-काल मे कौन इस प्रकार अत्याचार कर सकता है। जिन महाराज करन्धम के सम्मुख पृथ्वी के समस्त नृपतिगण मस्तक झुकाते हैं, उनके शासन

में कोई दुष्ट जीवित नहीं रह सकता। उस समय उन प्रचण्ड धनुष धारण किये हुये राजकुमारों को वहां आया देखकर वह कुमारी बार बार कहने लगी—"मेरी रक्षा करो—यह दुष्ट मुझे अपहरण कर रहा है। मैं करन्धम पुत्र अवीक्षित की भार्या हूँ और सनाथ होकर भी इस समय अनाथ के समान हरण की जा रही हू ॥८–१४॥।

ततोविमम्रुशेवाक्यमविक्षित्सतयोदितम् ।
कथमेषाहिमेभार्य्यास्तुपातातस्यवाकथम् ॥१५
अथवामोचयाम्येतातन्वीवेत्स्यामितत्पुनः ।
क्षत्रियैर्धार्य्यतेशस्त्रमार्त्तानात्राणकारणात् ॥१६
तत क्रुद्धोऽब्रवीद्वीरोदानवतसुदुर्मतिम् ।
जीवन्गच्छविमुच्यैनामन्यथानभविष्यसि ॥१७
तत सताविहायोच्चैर्दण्डमुत्क्षिप्यदानवः ।
तमप्यधावत्सोऽप्येनशरवर्षैरवाकिरत ॥१८
सवार्य्यमाणोबाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वित ।
राजपुत्रायचिक्षेपदण्डशङ्कुशतावृतम् ॥१९
तमापतन्तंचिच्छेदशरैर्भूपसुतस्ततः ।
सोऽप्यासन्न गृहीत्वोच्चैर्द्रुममाजौव्यवस्थितः ॥२०
सृजत शरवर्षाणितचिक्षेपततोद्रुमम् ।
सचततिलशश्चक्रे भल्लैर्कार्मुकमोचितैः ॥२१
ततश्चिक्षेपचशिलाराजपुत्रायदानवः ।
सापिमोघापपातोर्व्यामुजभ्नातेनलाघवात् ॥२२
राजपुत्रायकुपितोयद्यच्चिक्षेपदानवः ।
ततच्चिच्छेदबाणौघैर्भूभृत्सूनु सलीलया ॥२३

व्यक्तियों की रक्षा के लिए ही क्षत्रीगण शस्त्र धारण करते हैं। तत्पश्चात् उन्होने अत्यन्त क्रोध पूर्वक उस दुष्ट दानव से कहा यदि तुझे अपनी जान बचानी हो तो यहां से शीघ्र भाग कर चला जा, अन्यथा मैं तुझे अभी यमालय पहुँचाता हूँ। राजपुत्र की बात सुनकर वह उस कन्या को छोड दण्ड हाथ मे ले उन्हे मारने दौडा। अवीक्षित ने उसे बीच मे ही वाणो से रोक दिया। दानव ने उन बाणो को रोक कर बडे अहङ्कार के साथ राजपुत्र पर दण्ड को फेंक कर मारा, पर उन्होंने उसे वाणो से काटकर टुकडे-टुकडे कर दिया। तब दानव एक बड़ा वृक्ष उखाड कर मारने को चला, पर अवीक्षित ने वाणो द्वारा उसे भी खण्ड-खण्ड कर डाला। तत्पश्चात् वह बडे-बड़े शिलाखण्ड लेकर उनके ऊपर फेंकने लगा, पर राजकुमार ने उन सबको वाणो द्वारा व्यर्थ कर दिया। उसने मारने के लिये जो कुछ चलाया उसे अवीक्षित ने सहज मे काट डाला ॥१५-२३॥

ततोविच्छिन्नदंडोसाविच्छिन्नसकलायुधः ।
मुष्टिमुद्यम्यसक्रोधोराजपुत्रमधावत ॥२४
तस्यापततएवासौकरन्धमसुतःशिरः ।
छित्त्वावेतप्रपत्रेणपातयामासवैभुवि ॥२५
तस्मिन्विनिहतेदेवैर्दानवेदुष्टचेष्टिते ।
करन्धमसुतःसर्वैःसाधुसाध्वितिभाषितः ॥२६
वरवृणीष्वेतिततदादेवैरुक्तोनृपात्मजः ।
वव्रे पुत्रंमहावीर्य्यंपितुःप्रियचिकीर्षया ॥२७
भविष्यतिहितेपुत्रश्चक्रवर्त्तीमहाबलः ।
अस्यामेवहिकन्यायांमोक्षितायांत्वयानघ ॥२८
पित्राहसत्यपाशेनबद्धइच्छाम्यहंसुतम् ।
राजर्भिर्निर्जितेनाजौत्यक्तोमेदारसंग्रहः ॥२९
साचमेयावतात्यक्ताविशालनृपतेसुता ।
तयाचमत्कृतेत्यक्तोमामृतेनरसङ्गमः ॥३०

भविष्यतिचपुत्रस्तेचक्रवर्त्तीमहाबलः ।
प्रीणयिष्यतियोदेवानसुराश्चहनिष्यति ॥३७
इतिदेवाज्ञयातेनदेवदूतेनवारिता ।
नसत्यक्तवतीदेहंत्वरसङ्गममनोरथा ॥३८

देवों ने कहा—"यह वही विशाल नृप की कन्या है। जिसकी तुम प्रशसा कर रहे हो और जो तुम्हारे लिए वनवासिनो होकर तपस्या कर रही है। इसी के गर्भ से तुम को एक ऐसा पुत्र जन्म ग्रहण करेगा जो सातो द्वीपो का शासन, सहस्रों यज्ञो का करने वाला होगा।" जब देवगण यह कह कर अन्तर्धान हो गये तो राजकुमार ने पत्नी से पूछा—"तुम इस विपत्ति मे किस प्रकार फंस गई" वह कहने लगी—"जब आप मेरे पिता के नगर से मुझे छोड कर चले आये तब मैं भी दुखित चित्त से परिवार वालो को त्याग वन मे रहने चली आई। यहाँ पर निराहार तपस्या करने से जब मैं अत्यन्त दुर्बल हो गई और निराश होकर देह त्याग का विचार करने लगी तो एक देवदूत ने आकर मुझे ऐसा कहा—"तुम्हारे गर्भ से एक महा पराक्रमी पुत्र जन्म लेगा, जो असुरों को मार कर देवताओं का कृपापात्र बनेगा, इसलिये तुम इस प्रकार आत्मघात मत करो। इस प्रकार आशान्वित हो कर मैंने जीवन त्याग करने का विचार छोड दिया ॥३२–३८॥

परश्वश्चमहाभागस्तातुंगङ्गांह्रदंगता ।
अवतीर्णाविकृष्टास्मिवृद्धनागेनकेनचित् ॥३६
ततोरसतलंनीतातेनतत्रचमेपुरः ।
नागाःसहस्रशस्तस्युर्नागपत्न्यःकुमारकाः ॥४०
तुष्टुवुर्मांसमभ्येत्यमामन्येऽपूजयस्तथा ।
ययाचिरेसविनयंनागामामङ्गनास्तथा ॥४१
प्रसादकुरुसर्वेषांत्वमस्माकसुतस्त्वया ।
अपराधमुपेतानांसनिवार्य्योवधोन्मुखः ॥४२
अपराधंकरिष्यन्तित्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ।
तन्निमित्तं निवार्योऽसौप्रसादःक्रियतामिति ॥४३

नरेन्द्रिचमयाप्रोक्तो दिव्यै पातालभूषणै ।
भूयेनाहृतथानुर्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः ।।४४
समानीतातथालोकमिमन्तेनानिलाशिना ।
पुरायथाकान्तिमतीपूर्ववद्रूपशालिनी ।।४५
इतिरूपवतीदृष्ट्वासर्वालङ्कारभूषिताम् ।
जग्राहदृढकेशोऽयहर्तुं काम-सुदुर्मति ।।४६
युष्मद्बाहुबलेनाहराजपुत्रविमोक्षिता ।
त्वंप्रसीदमहाबाहोमाप्रतीच्छत्वयासम ।
भूलोकेराजपुत्रोऽन्योनास्तिसत्यब्रवीम्यहम् ।।४७

अभी दो दिन पूर्व जब गंगा के निकटवर्ती कुण्ड से स्नान करने गई तो एक बूढ़ा नाग मुझे खींचकर रसातल में ले गया, जब मैं वहाँ पहुँची तो हजारों नाग, नाग-रमणियाँ और बालक मेरे सामने इकट्ठे हो गये और मेरी पूजा, स्तुति करके कहने लगे कि आप हमारे ऊपर कृपा करें। जिस समय हम किसी अपराध के कारण आपके पुत्र के सम्मुख दण्डनीय हों तो आप उनको रोक कर हमारी रक्षा करना। यदि वायु भक्षण करने वाले नागगण तुम्हारे पुत्र का कोई अपराध करें तो उस समय आप हमारी सहायिका बनें, यही प्रार्थना हम करते हैं ।।३६–४३।। जब मैंने उनकी बात स्वीकार करली तब उन्होंने पाताल-लोक के दिव्य आभूषणों, मनोहर गंध, वस्त्र, पुष्प आदि से मुझे सजाया और सर्पगण मुझे पृथ्वी पर पहुँचा गये और नागों के प्रभाव से पूर्ववत् रूपवती और सौन्दर्य युक्त हो गई। आज मुझे इस प्रकार आभूषणों से विभूषित और रूप-सम्पन्न देख कर यह दृढ़केश नामक दुष्ट दानव हरण करने लिये जा रहा था कि आप आ गये और उसके पंजे से मुझे छुड़ा लिया। आज आपके ही बाहुबल से मेरी रक्षा हो सकी है इस लिये अब आप ही मुझे ग्रहण करके कृतार्थ करें। मेरा अटल विश्वास है कि इस समय आपके सदृश गुणवान् राजकुमार कहीं भी कोई नहीं है ।।४४–४७।।

११४—मरुत जन्म वर्णन

इतितस्यावच श्रुत्वॉस्मृर्त्वोपितृवच शुभम् ।
किमिच्छकेप्रतिज्ञातेयदुक्तं तेनभूभृता ।।१
प्रत्युवाचसतान्न्यामविक्षिन्नृपते सुत ।
सानुरागमना.कन्यात्यक्तभोगाश्चतत्कृते ।।
यदाहृत्यक्तवास्तन्वोंत्रामरातिपरजितं ।
विजित्यशत्रून्सप्राप्तात्वंमयोत्रकं रोमिकिम् ।।३
ममपाणिगृहाणत्वरमणोयेऽत्रकानने ।
सकामाया सकामेनसङ्गमोगुणवान्भवेत् ।।४
एवभवतुभद्रन्तेविधिरेवात्रिकारणम् ।
अन्यथाकथमन्यत्रत्वामहञ्चसमागतः ।।५

मार्कण्डेयजी ने कहा—राजकुमार अवीक्षित ने जब राजकन्या के मुख से यह सब वृत्तान्त सुना और किमिच्छक व्रत के अवसर पर पिता से की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण किया और यह भी देखा कि विशाल राज-कन्या ने मेरे ही लिये सब भोग त्याग रखे हैं तब उसके चित्त मे उस सौन्दर्यमयी के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया उसने कहा—हे सुन्दरी ! शत्रुओं से हार जाने पर ही मैंने तुम्हारा त्याग किया था और आज फिर शत्रु को जीत कर ही तुमको प्राप्त किया है, अत अब मैं क्या करू ? राजकुमारी ने उत्तर दिया—इस रमणीय वनस्थली में ही आप मेरा पाणिग्रहण करें तो दो सकाम युवक युवती का यह सम्मिलन सुख शान्ति और सत्परिणाम से सिद्ध होगा । राजकुमार अवीक्षित ने कहा—ऐसा ही हो—तुम्हारा मगल हो । इस घटना के पीछे स्पष्ट-रूप से दैव का हाथ है, अन्यथा तुम और मैं पृथक् पृथक् स्थान मे रहते हुए भी आज इस अवसर पर कैसे इकट्ठे हो सकते थे ।।१–५।।

एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोगन्धर्वस्तमयोमुने ।
राप्सरोभिःसहितोगन्धर्वैरपरैस्त्रं ।।६

राजपुत्रसुतेयम्मेभामिनीनाममानिनी ।
अभिशापादगस्त्यस्यविशालतनयाऽभवत् ।।७
बालभावेनयोऽगस्त्य कोपितःक्रीडमानया ।
ततस्तेनतदाशप्तामानुषीत्वभविष्यसि ।।८
प्रसादित सचास्माभिर्बालेयमविवेकिनी ।
तवापराद्धविप्रर्षेप्रसाद क्रियतामिति ।।६
प्रसाद्यमान सोऽस्माभिरिदमाहमहामुनिः ।
बालेतिमत्वाशापोऽल्पोदत्तोऽस्यानान्यथैवतत ।।१०
इतिशापा गस्त्यस्यविशालभवनेशुभा ।
जातेयमत्सुतासुभ्रूर्भामिनीनामनामल ।।११।।
तदस्याहृकृतेप्राप्तोगृहाणेमानृपात्मजाम् ।
ममात्मजासुतस्तेऽत्रचक्रवर्तीभविष्यति ।।१२

मार्कण्डेयजी कहने लगे—जिस समय अवीक्षित और विशाल राज-कन्या का यह वार्तालाप हो रहा था उसी समय तनय नामक गवर्व अन्य अनेक गन्धर्वों तथा अप्सराओ के साथ वहाँ आया। उसने कहा—यह कन्या वास्तव मे मेरी ही है और इसका नाम मानिनी है। अगस्त्य ऋषि को इसने एक बार क्रोधित कर दिया था और तब उन्होने शाप दिया कि तू मनुष्य योनि मे जन्म ले। मैंने उनसे प्रार्थना कि यह एक अबोध—कन्या है इस के ऊपर क्रोधित होना उचित नही, आप इस पर कृपा करें। महामुनि अगस्त्य जी ने मेरी प्रार्थना से प्रसन्न होकर कहा कि—बालिका समझ कर ही मैंने इसे सामान्य शाप दिया है, पर अब वह सर्वथा मिट नही सकता मेरी प्रिय कन्या ने उसी शाप के कारण विशाल राजा के यहाँ जन्म ग्रहण किया था। अब मैं इसके लिये ही यहाँ आया हू कि आप मेरी कन्या का पाणिग्रहण करें, इसके गर्भ से आप को चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा ।।६-१२।।

तथेत्युक्त्वेतितस्याश्चसपाणिपार्थिवात्मज ।
जग्राहविधिवद्धोमचक्रेतत्रचतुम्बुरु ।।१३

प्रजगुर्देवगन्धर्वाननृतुश्चाप्सरोगणा ।
पुष्पाणिससृजुर्मेघादेवत्राद्यानिसस्वनु. ।।१४
विवाहेराजपुत्रस्यतयातत्रसमेनृप ।
समस्तवसुधात्राणकर्त्तृ कारणभूतया ।।१५
सतोगन्धर्वलोकन्तेसहतेनमहात्मना ।
निःशेषेणययु साचसचराजसुतोमुने ।।१६
भामिन्यामुमुदेसार्द्धमविक्षिन्नृपनन्दन ।
साचतेनसमतत्रभोगसम्पत्समन्विता ।।१७
कदाचिदतिरम्येऽमौगगनोपवनेतया ।
विक्रीडतिसमतन्व्याकदाचिद्रुपपर्वते ।।१८
कदाचित्पुलिनेनद्याहंसमारसशोभिते ।
कदाचिद्भवनस्याग्रेप्रासादेचातिशोभने ।।१९
विहारदेशेष्वन्येपुरमणीयेष्वहर्निशम् ।
सरेमेसर्हितस्तन्व्यासाचतेनमहात्मना ।।२०

राजकुमार अवीक्षित न गन्धर्व का वचन सुन कर तथास्तु कहा। तब गन्धर्वों के पुरोहित तुम्बुरु ने उन दोनो का पाणिग्रहण सस्कार यथाविधि होम करके सम्पादन कराया। उस अवसर पर देवता तथा गन्धर्व हर्ष से गाने बजाने लगे, अप्सरायें नाचने लगी, आकाश से पुष्पवर्षा होने लगी और देवगण अपने वाद्य बजाने लगे। तत्पश्चात् सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल के पालनकर्त्ता (चक्रवर्ती शासक) की जननी होने वाली कुमारी तथा राजकुमार अवीक्षित के विवाह मे आये हुए समस्त गन्धर्व उस प्रमुख गन्धर्व तनय के साथ गन्धर्व लोक को चले गये। राजकन्या और राजकुमार अवीक्षित उन्हीं के साथ गये। वहाँ पर ये दोनो पति पत्नी एक दूसरे के सहवास और प्रेमयुक्त व्यवहार से अत्यन्त सन्तोष को प्राप्त हुए। वे अपनी उस मनोहर भार्या सहित कभी नगर के उपवनो म कभी उपपर्वतो मे क्रीडा करने लगे। कभी हंस-सारस आदि से शोभायमान नदियो के तट पर कभी भवनो मे, कभी ऊँचे महलों और कभी अन्य रमणीक स्थानो मे वे दोनो विहार सुख प्राप्त करने लगे ।।१३-२०।।

भक्ष्यानुलेपनवस्त्रं स्रवपानादिकमुत्तमम् ।
उपाजह्नु स्तयः स्तत्रमुनिगन्धर्वकिन्नराः ॥२१
तयाचरमतस्तस्यभामिन्यासहदुर्लभे ।
गन्धर्वलोकेवीरस्यपुत्रं सासुपुवेशुभा ॥२२
तस्मिञ्जातेमहावीर्येगन्धर्वाणांमहोत्सवः ।
बभूवमनुजव्याघ्रे तेनकार्य्यमवेक्षतः म् ॥२३
जगु केचित्तथैवान्येमृदङ्गपटहानकान् ।
अवादयन्तचैवान्येवेणुवीणादिकास्तथा ॥२४
ननृतुश्चतथातत्रबहवोऽप्सरसांगणाः ।
पुष्पवृष्टिमुचोमेघाजगर्जुः मृ दुनिस्वनाः ॥२५
तथाकोलाहलेतस्मिन्वर्तमानेऽथतुम्बुरुः ।
प्रणयेनस्मृतोम्येत्यजातकर्माकरोन्मुनिः ॥२६

वहाँ रहने वाले मुनि, गन्धर्व और किन्नर उनके उत्तम भक्ष्य पदार्थ, पानीय, वस्त्र, माला और गंध आदि भेंट स्वरूप देने लगे भोगों से भरपूर गन्धर्व लोक में राजकुमारी मानिनी के इस प्रकार विहार करते हुए राजकन्या ने एक पुत्र को जन्म दिया। (उस महावीर्य शाली पुत्र का जन्म होने पर भविष्य में उसके द्वारा महान् कार्यों के सिद्ध होने की आशा से गन्धर्वों ने महान् उत्सव का आयोजन किया। वहाँ पर कोई गान करने लगा, कोई मृदंग, पटह, ढोल वेणु, वीणा, आदि बजाने लगे। अप्सरायें मनोहर नृत्य करने लगी और मेघ फूलों की वर्षा करते हुए मधुर मन्द शब्द करने लगे।) इस प्रकार जब वहाँ सर्वत्र मंगल शब्द हो रहा था तनय के स्मरण करते ही पुरोहित तुम्बुरु ने वहाँ आकर शिशु का जात कर्म पूरा किया ॥२१-२६॥

देवाःसमाययु सर्वेतथादेवर्षयोऽमलाः ।
पातालात्पन्नगेन्द्राश्चशेषवासुकितक्षकाः ॥२७
तथादेवासुराणांचयेप्रधानाद्विजोत्तम ।
यक्षाणांगुह्यकानांचवायवश्चतथाऽनिलाः ॥२८

तदाऽऽगतैरशेषर्षिदेवदानवपन्नगैः ।
मुनिभिश्चाकुलमभूद्गन्धर्वाणामहत्पुरम् ॥२९
तत सतुम्बुरुःकृत्वाजातकर्मादिका क्रिया ।
चक्रे स्वस्त्ययनतस्यबालस्यस्तुतिपूर्वकम् ॥३०
चक्रवर्त्तीमहावीर्य्योमाहाबाहुर्महाबल. ।
महान्तकालमीशित्वमशेषायाःक्षिते.कुरु ॥३१
इमेशक्रादय सर्वेलोकपालास्तथर्षयः ।
स्वस्तिकुर्वन्तुतेवीरवीर्यंचारिविनाशनम् ॥३२
मरुत्तवशिवायास्तुवातिपूर्वेणयोऽरजा ।
मरुत्ते विमलोऽक्षीणोऽवैषम्यायास्तुदक्षिण ॥३३
पश्चिमस्तेमरुद्वीर्य्यमुत्तमतेप्रयच्छतु ।
बलयच्छतुचोत्कृष्ट मरुत्तोचनथोत्तर ॥३४

मार्कण्डेय जी कहने लगे—उस समय वहाँ पर सभी देवर्षि, पाताल निवासी शेष, वासुकि, तक्षक आदि नागगण, राजा, देव, असुर, यक्ष, गुह्यकों के प्रधान व्यक्ति और समस्त वायुकुल उपस्थित हुए। उस अवसर समस्त आने वाले समस्त ऋषि, देव, दानव, पन्नग और मुनियों से गन्धर्वों का सम्पूर्ण नगर भर गया। जातकर्म सम्पन्न हो जाने पर उन तुम्बुरु ने बालक का स्वस्त्ययन इस प्रकार किया—हे वीर तुम महाबली, महावीर्य और महाबाहु होकर पृथ्वी सार्वभौम आधिपत्य प्राप्त करके अब श्रेष्ठ शासक बनो। समस्त इन्द्रादि लोकपाल और ऋषिगण तुम्हारा मंगलमय और शत्रुओं को विजय करने वाला वीर्य विधान करें। पूर्व दिशा से चलने वाली स्वच्छ वायु तुम्हारा कल्याण करे। अक्षीण और विमल दक्षिण पवन तुम्हारे अनुकूल रहे। पश्चिम का मरुत तुमको महावीर्य और उत्तर का पवन उत्कृष्ट बल प्रदान करे ॥२७-३४॥

इतिस्वस्त्ययनस्यान्तेवागुवाचाशरीरिणी।
मरुत्तवेतिवहुशोयदिद गुरुरब्रवीत् ॥३५

मरुत्तइतितेनायभुविख्यातोभविष्यति ।
भुविचाभ्यमहीपालायास्यन्त्याज्ञावशायतः ॥३६
एपसर्वक्षितीशानावीर स्थास्यतिमूर्द्धनि ।
चक्रवर्त्तीमहावीर्य्य सप्तद्वीपवतीमहीम् ॥३७
आक्रम्यपृथिवीपालानयभोक्ष्यत्यवाग्ति ।
प्रधान पृथिवीशानाभविष्यत्ययपाज्वनाम् ।
आखिवयशौर्य्यवीर्य्येणभविष्यत्यस्यराजसु ॥३८
इत्याकर्ण्यवच सर्वकेनाप्युक्त दिवौकसाम् ।
तुतुषुर्विप्रगन्धर्वाश्चास्यमातातथापिता ॥३६

इस स्वस्त्ययन का पाठ समाप्त होने पर आकाशवाणी हुई कि गुरु ने बार-बार 'मरुत' शब्द का उच्चारण किया है इसलिये इस बालक का नाम 'मरुत' ही होगा और समस्त ससार विख्यात होगा। सम्पूर्ण राजागण इसके आज्ञावर्ती होंगे इस प्रकार सब राजाओ मे शिरोमणि होगा। यह सब राजाओ को हरा कर चक्रवर्ती पदवी पायेगा सातो द्वीपो मे विस्तृत पृथ्वी का भोग करेगा। यह सब नरेशो और यज्ञ करने वालो मे श्रेष्ठ होगा और समस्त राजाओ की अपेक्षा बल-वीर्य मे प्रधानता प्राप्त करेगा। देवगण की इस वाणी को सुनकर सब ब्राह्मण, गन्धर्व और बालक के माता पिता अत्यन्त प्रसन्न और सतुष्ट हुए ॥३५-३६॥

११५- मरुत्त चरित्र (१)

तत सराजपुत्रस्तमादायदयितसुतम् ।
पत्नी-चानुगतोविप्रगन्धर्वैरायर्यौपुरम् ॥१
सपितुर्भवनंप्राप्यववन्देपितुरादरात् ।
चरणौसाचतन्वङ्गी ह्रीमतीनृपते सुता ॥२
तथाहराजपुत्रोऽसौगृह्णीत्वाबालकसुतम् ।
धर्मासनगतभूपराज्ञामध्येयस्थमम् ॥३
पुरवोत्रस्यपर्यंतदुत्सङ्गस्ययन्मया ।
विदिच्छदेवप्रतिज्ञातंतुभ्यमातु पुरा ॥४

इत्युक्त्वापितुरुत्सङ्गे तंकृत्वातनयंततः ।
यथावृत्तमशेषंसकथयामासतस्यतत् ॥५
सपरिष्वज्यतंपौत्रमानन्दास्राविलेक्षणः ।
सभाग्योऽस्मीत्यथात्मानप्रशशंसपुनः पुनः ॥६
ततः सोर्घ्यादिनासम्यग्गन्धर्वान्समुपागतान् ।
समानयामासमुदाविस्मृतान्यप्रयोजनः ॥७

मार्कण्डेयजी कहने लगे—तत्पश्चात् राजकुमार अवीक्षित अपने नवजात पुत्र तथा पत्नी के साथ अपने नगर में आये। उस समय अनेक गन्धर्व भी उनके पीछे-पीछे थे। उन्होंने राज भवन में जाकर पिता की वन्दना की, विशाल राज-कन्या ने भी सलज्जभाव से उनको प्रणाम किया। तदनन्तर अवीक्षित ने पुत्र को लेकर बड़े-बड़े सरदारों के साथ राजसिंहासन पर विराजमान अपने पिता महाराज करन्धम से कहा—"माताजी के किमिच्छक व्रत के अवसर पर मैंने आपसे जो प्रतिज्ञा की थी, तदनुसार पौत्र को गोदी में लेकर इसका मुख देखिये।" यह कहते हुए उन्होंने पुत्र को पिता की गोदी में दे दिया और विवाह तथा पुत्र-जन्म का पूरा वृत्तान्त उनको सुना दिया। पौत्र को देखकर राजा के नेत्रों में हर्ष से अश्रु आगये और अपने का परम सौभाग्यवान् मानकर स्वयं ही अपनी प्रशंसा करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने साथ में आये गन्धर्वों का सब प्रकार से सम्मान किया ॥१-७॥

ततः पुरेमहानासीदानन्दः पौरवेश्मसु ।
अस्माकसन्ततिर्जातानाथस्येतिमहामुने ॥८
हृष्टपुष्टेपुरेतस्मिन्गीतवाद्यैर्वराङ्गनाः ।
विलासिन्योऽतिचार्वङ्ग्योननृतुर्लास्यमुत्तमम् ॥९
राजाचद्विजमुख्येभ्योरत्नानिचवसूनिच ।
गावोवस्त्राण्यलङ्कारानददाद्धृष्टमानसः ॥१०
ततः सबालोववृधेशुक्लपक्षेयथाशशी ।
पितृणांप्रीतिजनकोजनस्येष्टश्चसोऽभवत् ॥११
आचार्य्याणांसकाशात्सप्राप्वेदाङ्गगृहेमुने ।
ततःशस्त्राण्यशेषाणिधनुर्वेदंततः परम् ॥१२

कृतोद्योगोयदासोऽभूत्वखड्गकामु‌र्ककर्मणि ।
अन्येषुचतथावीरःशस्त्रेषुविजितश्रम ॥१३
ततोऽस्त्राणिसजग्राहभार्गवाद्भृगुसंभवात् ।
विनयावनतोविप्रगुरो प्रीतिपरायण ॥१४

मार्कण्डेय कहने लगे—उस समय समस्त नगर में भी बहुत बड़े उत्सव होने लगे और लोग यह कह कर खुशी मनाने लगे कि "हमारे रक्षक राजा के सन्तान हुई है।" (उस समय नगर के भीतर स्थान-स्थान पर नर्तकियाँ नृत्य और गायन करने लगीं।) महाराज करन्धम गुणवान् ब्राह्मणों को धन, रत्न, वस्त्र, आभूषण और गौओं का दान देने लगे। इस प्रकार के प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में वह बालक क्रमशः बड़ा होता हुआ पिता का प्रीतिपात्र और अन्य साधारण मनुष्यों का भी प्यारा बन गया। बड़ा होने पर उसने आचार्य के समीप रहकर वेद, शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की। जब वह इन सब शास्त्रों का ज्ञाता हो गया तो खड्ग, धनुष बाण और अन्यान्य शस्त्रों का प्रयोग सीखने के लिए भृगुवंशीय भार्गव के निकट जाकर उनका रहस्य सीखने लगा ॥८-१४॥

इस प्रकार सुयोग्य गुरुओं से परिश्रम पूर्वक शिक्षा ग्रहण करके वह धनुर्वेद में पारंगत बन गया और युद्ध सम्बन्धी सब कलाओं में पूर्ण निष्णात होगया। उस समय इन विद्याओं में उससे बढ़कर कोई अन्य दिखाई नहीं पड़ता था। अपनी कन्या के मनोरथ की सिद्धि दौहित्र की विशेष योग्यता को जानकर विशाल राजा को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। शत्रु पर सदा विजय प्राप्त करने वाले और परम बुद्धिमान् महाराज करन्धम ने पौत्र का प्राप्त करने की खुशी में अनेक यज्ञ करके ॠषियो बहुत सा दान दिया और बहुत से सत्कार्य करके प्रजा का हित साधन किया। तदनन्तर कुछ समय पीछे वन जाने की इच्छा से उन्होंने अपने पुत्र अवीक्षित से कहा—'पुत्र! अब मेरी वृद्धावस्था है और मेरी अभिलाषा वन में रहकर भगवद् भजन करने की है, अतएव अब तुम इस राज्य को ग्रहण करो। मैं सभी दृष्टियों से अपने जीवन को सफल हुआ देख रहा हूँ अब तुम्हारा राज्याभिषेक करने के अतिरिक्त मेरे लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है, इस कारण मैं तुमसे इस भाँति से सम्पन्न राज्य का शासक भार ग्रहण करने का आग्रह करता हूँ'॥१४—२०॥

इत्युक्त पितरप्राहसोऽविक्षिन्नृपनन्दन ।
प्रश्रयावनतोभूत्वाथिग्राक्षुस्तपसेवनम् ॥२१
नाहंतावकरिष्यामिपृथिव्या.परिपालनम् ।
नापंतिह्रीर्मेमनमिराज्येऽन्यत्वनियोजय ॥२२
तातेनमोक्षितोबद्धोनस्ववीर्य्यादिहयत ।
तत्.कियत्पौरुषमेपुरर्षं पाल्यतेमहीम् ॥२३
योऽहंनपालनायालमात्मनोऽपिवसुन्धराम् ।
सकथपालयिष्यामिराज्यमन्यत्रविक्षिप ॥२४
सस्त्रीसधर्मापुरुषोमश्चान्येस्तावद् ह्यते ।
आत्माऽमोहायभवतावन्धनाद्येनमाक्षित ॥२५
सोऽहंकथभविष्यामिस्त्रीसधर्मामहीपति ।
स्त्रियपुमान्भवेद्भर्ताय शूरसमहीपति ॥२६

कृतोद्योगोयदासोऽभूत्वखड्गकार्मुककर्मणि ।
अन्येषुचतथावीरःशस्त्रेषुविजितश्रमः ॥१३
ततोऽस्त्राणिसजग्राहभार्गवाद्भृगुसंभवात् ।
विनयावनतोविप्रगुरोःप्रीतिपरायणः ॥१४

मार्कण्डेय कहने लगे—उस समय समस्त नगर में भी बहुत बड़े उत्सव होने लगे और लोग यह कह कर खुशी मनाने लगे कि "हमारे रक्षक राजा के सन्तान हुई है।" (उस समय नगर के भीतर स्थान-स्थान पर नर्तकियाँ नृत्य और गायन करने लगी।) महाराज करन्धम गुणवान् ब्राह्मणों को धन, रत्न, वस्त्र, आभूषण और गौओं का दान देने लगे। इस प्रकार के प्रसन्नतापूर्ण वातावरण में वह बालक क्रमशः बड़ा होता हुआ पिता की प्रीतिपात्र और अन्य साधारण मनुष्यों का भी प्यारा बन गया। बड़ा होने पर उसने आचार्य के समीप रहकर वेद, शास्त्र और धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की। जब वह इन सब शास्त्रों का ज्ञाता हो गया तो खड्ग, धनुष-बाण और अन्यान्य शास्त्रों का प्रयोग सीखने के लिए भृगुवंशीय भार्गव के निकट जाकर उनका रहस्य सीखने लगा ॥८-१४॥

गृहीतास्त्रःकृतीवेदेधनुर्वेदस्यपारगः ।
निष्णातःसर्वविद्यासुसबभूवततःपरः ॥१५
विशालोऽपिसुतावार्त्तामुपलभ्याखिलामिमाम्।
हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दौहित्रस्यचयोग्यताम् ॥१६
अथराजासुतंसुतंदृष्ट्वाप्राप्तमनोरथः ।
यज्ञाननेकान्निष्पाद्यदत्वादानानिअर्थिनाम्॥१७
कृतशेषक्रियोयुक्तःसवर्णैर्धर्मतोमहीम्।
परिपाल्यारिविजयीबलबुद्धिसमन्वितः ॥१८
सयियासुर्वनंपुत्रमविक्षितमभाषत ।
पुत्रवृद्धोऽस्मिगच्छामिवनराज्यंगृहाणमे ॥१९
कृतकृत्योऽस्मिनास्त्यन्यत्किञ्चिद्त्वदभिषेचनात् ।
सुनिष्पन्नमतोराज्यत्वंगृहाणमयार्पितम् ॥२०

इस प्रकार सुयोग्य गुरुओ से परिश्रम पूर्वक शिक्षा ग्रहण करके वह धनुर्वेद मे पारगत बन गया और युद्ध सम्बन्धी सब कलाओ मे पूर्ण निष्णात होगया। उस समय इन विद्याओ मे उससे बढकर कोई अन्य दिखाई नहीं पडता था। अपनी कन्या के मनोरथ की सिद्धि दौहित्र की विशेष योग्यता को जानकर विशाल राजा को भी अत्यन्त हर्ष हुआ। शत्रु पर सदा विजय प्राप्त करने वाले और परम बुद्धिमान् महाराज करन्धम ने पौत्र का प्राप्त करने की खुशी मे अनेक यज्ञ करके ऋषियो बहुत-सा दान दिया और बहुत से सत्कार्य करके प्रजा का हित साधन किया। तदनन्तर कुछ समय पीछे वन जाने की इच्छा से उन्होने अपने पुत्र अवीक्षित से कहा–' पुत्र ! अब मेरी वृद्धावस्था है और मेरी अभिलाषा वन मे रहकर भगवद् भजन करने की है, अतएव अब तुम इस राज्य को ग्रहण करो। मैं सभी दृष्टियो से अपने जीवन को सफल हुआ देख रहा हूँ अब तुम्हारा राज्याभिषेक करने के अतिरिक्त मेरे लिये कोई कर्तव्य शेष नही रह गया है, इस कारण मैं तुमसे इस भाँति से सम्पन्न राज्य का शासक भार ग्रहण करने का आग्रह करता हूँ" ॥१४–२०॥

इत्युक्त पितरप्राहसोऽविक्षिन्नृपनन्दन ।
प्रश्रयावनतोभूत्वाग्रिसातुस्तपसेवनम् ॥२१
नाहतातकरिष्यामिपृथिव्या.परिपालनम् ।
नार्पतिह्रीर्मेमनमिराज्येऽन्यत्त्वनियोजय ॥२२
तातेनमोक्षितोबद्धोनस्ववीर्य्यादिहयत. ।
तत्.कियत्पौरुषमेपुरुषै पाल्यतेमहीम् ॥२३
योऽहनपालनायालमात्मनोऽपिवसुन्धराम् ।
सकथपालयिष्यामिराज्यमन्यत्रविक्षिप ॥२४
सस्त्रीसधर्पुरुषोसश्चान्येतातवद्र् ह्यते ।
आत्माऽमोहायभवतावन्धनाद्यं नमोक्षित ॥२५
सोऽहकथभविष्यामिस्त्रीसधर्मामहीपति' ।
स्त्रिय पुमान्भवेद्भर्ताय शूर समहीपति ॥२६

पर राजकुमार अवीक्षित स्वयं वन में जाकर तप करने के इच्छुक थे। उन्होंने कहा—'पिताजी! मैं राज्य का भार ले सकने में असमर्थ हूं, अभी तक मेरी पहली लज्जा की भावना दूर नहीं हुई है, इसलिये आप इस उत्तरदायित्व को अन्य किसी को दें। जब मैं हार कर बन्धन ग्रस्त होगया और पिता के द्वारा छुड़ाया गया तो मेरे पुरुषार्थ और वीरता का महत्त्व ही क्या रह गया? जब मैं स्वयं अपनी रक्षा करने में समर्थ न हो सका तो पृथ्वी का पालन किस तरह कर सकता हूं? बुद्धिमान् और धर्माचरण वाला होने पर भी जो मनुष्य शत्रुओं से पराजित होगया, जो अपनी आत्मा का भी उद्धार न कर सका और पिता की सहायता से ही जो बन्धन मुक्त हो सका, वह पुरुष कहे जाने के योग्य नहीं, वह तो एक प्रकार से स्त्री ही है और कदापि राज्य करने में समर्थ नहीं हो सकता।।२१-२६।।

नभिन्नएवपुत्रस्य पितापुत्रस्तथापितुः ।
नान्येनमोक्षितोवीरयस्त्वपित्रामोक्षित ।
हृदयनान्ययानेतु मयाशक्यमनरेश्वर ।।२७
हृदयेह्रीर्ममातीवयस्त्वहमोक्षितस्त्वया ।।२८
पित्रोपात्ताश्रियभुङ्क्ते पित्राकृच्छ्रात्समुद्धृत ।
विज्ञायतेचय पित्रामानव·सोस्तुनोकुले ।।२९
स्वयमर्जितवित्तानाख्यातिस्वयमुपेयुषाम् ।
स्वयनिस्तीर्णकृच्छ्राणायागति साऽस्तुमेगति ।।३०

करन्धम ने कहा—हे वीर श्रेष्ठ, पिता और पुत्र में कोई अन्तर नहीं

वैभव प्राप्त करता है, स्वयं नाम कमाता है और स्वयं ही आपत्तियों से छुटकारा पाने में समर्थ है वही सच्चा पुरुष है ॥२७–३०॥

इत्याहत्रहुश.पित्रायदाप्युक्त्वोऽप्यसौमुने ।
तदातस्यसुतराज्येमरुत्तमकरोन्नृप ॥३१
सपित्रासमनुज्ञातराज्यप्राप्यपितामहात् ।
चकारसम्यक्सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥३२
राजाकरन्धमश्चापिवीरामादायतान्तथा ।
वनजगामतपसेयतवाक्कायमानस. ॥३३
तत्रवर्पसहस्रं सतपस्तप्त्वासुदुश्चरम् ।
विहायदेहंनृपति शक्रस्यापसलोकताम् ॥३४
सास्यपत्नीतदावीरावर्षाणामपरशतम् ।
तपश्चचारविप्रर्षेजटिलामलपंकिनी ॥३५
सालोक्यमिच्छतीभर्त्तुःस्वर्गतस्यमहात्मन ।
फलमूलकृताहाराभार्गवाश्रमसश्रया ।
द्विजातिपत्नीमध्यस्थाद्विजशुश्रूपणाहृता ॥३६

मार्कण्डेयजी ने कहा—जब अवीक्षित ने पिता के बारम्बार कहने पर भी राज्य भार ग्रहण करने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो महाराज करन्धम ने उसके पुत्र मरुत को राज्य भार दे दिया। मरुत ने पिता की अनुमति पाकर पितामह द्वारा प्रदत्त राज्य भार को स्वीकार किया और ऐसे सुचारु रूप से सचालन करने लगे जिससे उनके समस्त निकटवर्तियों को परम सन्तोष और आनन्द हुआ। तब महाराज करन्धम भी अपनी पत्नी वीरा को साथ लेकर मन, वचन, काया से तपस्या में निरत होने के लिये वन में चले गये वहाँ पर करन्धम के एक हजार वर्ष तक कठिन तप करके देह त्याग करने पर वह इन्द्रलोक को प्राप्त हुए। उनकी पत्नी वीरा देवी इसके पश्चात् भी सौ वर्ष तक तपस्या में निरत रही। वह सदैव परलोक में भी पति का सामीप्य प्राप्त करने की इच्छा करती रहती

और केवल फल, मूल का आहार करके भार्गव के आश्रम में द्विज पत्नियों के साथ सेवा और सम्मान पाती हुई समय व्यतीत करती थी ॥३१-३६॥

११६—मरुत्त चरित्र (२)

भगवन्विस्तरात्सर्वममेतत्कथितस्त्वया ।
करन्धमस्यचरितमविक्षिच्चरितचयत ॥१
आविक्षितस्यनृपतेर्मरुत्तस्यमहात्मन. ।
श्रोतुमिच्छामिचरितश्रूयतेसोऽतिचेष्टित ॥२
चक्रवर्त्तीमहाभाग शूरकान्तोमहामति ।
धर्मविद्धर्मकृच्चैवसम्यक्पालयिताभुव ॥३
सपित्रासमनुज्ञातराज्यप्राप्यपितामहात् ।
धर्मत पालयामासपितापुत्रानिवौरसान् ॥४
इयाजसुबहून्यज्ञान्यथावत्स्वाप्तदक्षिणान् ।
ऋत्विक्पुरोहितादेशादनिर्विण्णोमहीपति ॥५
तस्याप्रतिहतचक्रमासीद्द्वीपेषुसप्तसु ।
गतिश्चाप्यनवच्छिन्नास्व पातालजलादिषु ॥६
तत प्राप्यधनविप्रयथावत्स्वक्रियापर ।
अयजत्समहायज्ञै र्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥७

क्रोष्टुकि बोले—हे भगवन् ! अब मैं सूर्यवंश के राजा मरुत्त के चरित्र को सुनना चाहता हूँ, सुना जाता है कि वह अत्यन्त उद्यमी, प्रतिष्ठावान् ॥२॥ चक्रवर्ती, महाभाग, शूर, कान्त, श्रेष्ठ बुद्धि, धर्मज्ञ, धर्माचारी तथा भले प्रकार से पृथिवी का पालन करने वाले थे ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पिता की आज्ञा से मरुत्त ने अपने पितामह से राज्य को प्राप्त किया और प्रजा का पालन अपने पुत्र के समान करने लगे ॥४॥ याज्ञिकों और पुरोहितों की अनुज्ञा पूर्वक

समस्त यज्ञ-स्थान और स्वर्णमय उज्ज्वल भवनों का निर्माण हुआ था ।।१३।। इन मरुत्त के चरित्र को आधार बना कर ऋषिगण सदा इनका वृत्तान्त कीर्तन करते और इनके चरित्र का अध्ययन करते थे ।।१४।।

मरुत्तेनसमोनाभूद्यजमानोमहीतले ।
सद समस्तयद्यज्ञे प्रासःदाश्चे वकाचना ।।१५
अमाद्यदिन्द्र सोमेनदक्षिणाभिद्विजातय. ।
विप्राणापरिवेष्टार शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमा ।।१६
यथायज्ञे मरुत्तस्यतृप्ता सर्वेमहीपते ।
सुवर्णमखिलत्यक्त रत्नपूर्णगृहेद्विजैं ।।१७
प्रासादादिसमस्तचसौवर्णतस्ययत्क्रतौ ।
अयोवर्णाह्यलम्यन्ततस्मात्केचित्तथाददु ।।१८
(तेनत्यक्तेनशिष्टायेजना पूर्णमनोरथा ।
तपियज्ञान्यजतेस्मदेशेदेशेपृथक्पृथक् ।)
यस्यैवकुर्वतोराज्यसम्यक्पालयतःप्रजा ।
तपस्वीकश्चिदभ्येत्यतमाहमुनिसत्तम ।।१९
पितुर्मातातवाहेदद्दष्टातापसमण्डलम् ।
विपाभिभूतमुरगैम ोन्मत्तनरेश्वर ।।२०
पितामहस्तेस्वर्यातःसम्यक्सपाल्यमेदिनीम् ।
पितातवतथाशक्तोहित्वाग्रामवनगत ।
(तपश्चरणशक्ताऽहमिहचौर्वाश्रमेस्थिता) ।।२१

जिनके यज्ञ में समस्त सभा भवन एव प्रासाद स्वर्णमय बनाये गये थे, इन्द्र सोमपान करके और ब्राह्मण दक्षिणा को प्राप्त करके मत्त हो उठे थे, सब प्रधान देवताओं ने ब्राह्मणों को घेर रखा था, उन मरुत्त के समान यज्ञ करने वाला कोई पुरुष पृथिवी पर उत्पन्न नहीं हुआ ।।१५-१६।। ब्राह्मणों ने जितनी रत्नमय गृह और स्वर्ण राशि उन मरुत्त के यज्ञ में प्राप्त की थी उतनी अन्य किसके यज्ञ में की ? उन्हीं के समय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्ण स्वर्णमय भवनादि को पा सके थे, उनके अतिरिक्त ऐसा दान और किस पुरुष ने

किया है ? ॥१८॥ उनके धन को प्राप्त कर जो मनुष्य पूर्ण काम हुए, उन्होंने भी अपने द्वारा समस्त यज्ञों का सम्पादन किया था) हे मुनिवर ! उनके इस प्रकार के श्रेष्ठ राज्य शासन, एवं प्रजा पालन काल में एक दिन एक तपस्वी उनके पास आकर बोला ॥१९॥ हे राजन् ! तुम्हारी पितामही ने तापस मंडली को मदोन्मत्त सर्पों के विष से पीड़ित होता हुआ देखा और यह संदेश भेजा है ॥२०॥ तुम्हारे पितामह भले प्रकार से पृथिवी का पालन करने के कारण स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं और तुम्हारे पिता ने भी वन का आश्रय लिया है (मैं भी तप में आसक्त होकर और्वाश्रम में स्थित हूँ) ॥२१॥

साऽहपश्यामिवंकल्यतवराज्यप्रशासत ।
पितामहस्यतेनाभूद्यत्पूर्वंयाचतेनृप ॥२२
नूनप्रमत्तोभोगेषुसक्तोवाऽसिजितेन्द्रिय ।
चारान्धतायतोस्तीयदुष्टादुष्टनवेत्सियत् ॥२३
पातालादम्युपेतेस्तुभुजगंर्दंशशालिभि ।
दष्टामुनिसुता सप्तदूपिताश्चजलाशयाः ॥२४
स्वेदमूत्रपुरीषेणदूषितसुश्रुतहवि ।
अपराधसमुद्दिश्यदत्तोनागवलिश्चिरात् ॥२५
एतेसमर्यामुनयोभस्मीकर्तुं भुजगमान् ।
किन्त्वेपानाधिकारोऽत्रत्वमेवात्राधिकारवान् ॥२६
तावत्सुखभूपतिर्जंर्भोगजप्राप्यतेनृप ।
अभिषेकजलयावन्नमूर्ध्निविनिपात्यते ॥२७

हे राजन् ! जो घटनाएँ तुम्हारे अन्यान्य पूर्व पुरुषों के शासन काल में घटीं, उन्हें तुम्हारे शासन काल में घटती हुई देख रहा हूँ ॥२२॥ तुम या तो प्रमत्त हो अथवा अजितेन्द्रिय रहकर भोगों के प्रति अनुरक्त हुए हो, तुम दूतों को न रखने के कारण अच्छी-बुरी घटनाओं को जानने में समर्थ नहीं हो ।२३। दशनशील नागों ने पाताल से आकर सात मुनि कुमारों को डस लिया है तथा स्वेद, मूत्र और पुरीष से सब जलाशय और यज्ञ हवि को दूषित कर दिया है, इसलिये अपराध हुआ जानकर मुनिगण सर्पों को बलि दे रहे हैं ॥२४-२५॥

यद्यपि यह मुनिगण सर्पों को स्वय ही भस्म कर सकते हैं, परन्तु उस कार्य के तुम्ही अधिकारी हो ।।२६।। हे राजन् ! राजपुत्रो को भोग जनित सुख के भोगने का अधिकार तभी तक है, जब तक उनके शीश पर अभिषेक का जल नही सीचा जाता ।।२७।।

कानिमित्राणिक शत्रुर्मम शत्रोबलवियत् ।
कोऽहकेमन्त्रिण पक्षेकेवाभूपतयोमम ।।२८
(कियान्कोशोवलकिवाकोमुरक्तोजनोमम) ।
विरक्तोवापरैर्भिन्न परेषामपिकीदृश ।
क सम्यगत्ननरेविषयेवाजनोमम ।।२९
धर्मकर्मश्रियोमूढ क सम्यगपिवर्त्तते ।
कोदण्डश्च परिपाल्य क केचोपेक्ष्यानरामया ।।३०
सामभेदतयादम्यादेशकालमवेक्षता ।
चाराश्चारयेदन्यैरज्ञातान्भूपतिश्चरै ।।३१
सचिवादिषुसर्वेपुचरान्दद्यान्महीपतिः ।
इत्यादौभूपतिर्नित्यकर्मण्यासक्तमानसः ।।३२
नयेद्दिनतथारात्रिनतुभोगपरायण ।
राज्ञाशरीरग्रहणनभोगायमहीपते ।।३३

मित्र कौन है ? शत्रु कौन है ? शत्रु के पास कितनी शक्ति है ? कौन मन्त्री कैसा है ? कौन राजा अपने पक्ष का है ? ।।२८।। (मेरे पास कितना कोष है ? कितनी शक्ति है ! कौन मुझसे प्रीति करता है ?) शत्रु के द्वारा भेद को किसने पा लिया है ? कौन शत्रु किस प्रकार का है ? अपने नगर अथवा राज्य मे धर्म-कर्म का आश्रय लेने वाला कौन है ? ।।२९।। कौन मूर्ख रहता है ? कौन दडनीय है ? कौन पालनीय और कौन उपेक्षणीय है ? ।।३०।। छिद्र भेद के भय से किसके प्रति दृष्टि रखनी चाहिये ? इस सबका ज्ञान करने के लिये दूत के अपरिचित गुप्तचर को नियुक्त करना उचित है ।।३१।। सब सचिवादि पर दृष्टि रखने के लिये भी दूत की नियुक्ति करे, इस प्रकार राज्य काज के प्रति राजा को दत्तचित्त होना चाहिए ।।३२।। इसी मे दिन-रात्रि व्यतीत करे और

भोग-परायण न हो,हे राजन् ! राजाओं का जन्म भोग के लिये नहीं होता है ३३

क्लेशायमहतेपृथ्वीस्वधर्मपरिपालने ।
सम्यक्पालयतःपृथ्वीस्वधर्मंचमहीपतेः ॥३४
इहक्लेशोमहान्स्वर्गेपरमंसुखमक्षयम् ।
तदेतदवबुध्यस्वहित्वाभोगान्नरेश्वर ॥३५
पालनायक्षितेक्लेशमङ्गीकर्तुमिहार्हसि ।
इतिवृत्तमृषीणायद्व्यसनत्वयिशासति ॥३६
भुजङ्गहेतुकभूपचारान्धोनापिवेत्सितत् ।
बहुनात्रकिमुक्तेनदुष्टेदण्डोनिपात्यताम् ॥३७
शिष्टान्पालयराजस्त्वंधर्मंषड्भागमाप्स्यसि ।
अरक्षन्पापमखिलदुष्टैरविनयात्कृतम् ॥३८
समवाप्स्यस्यसन्दिग्धंयदिच्छसिकुरुष्वतत् ।
एतन्मयोक्तंसकलयत्तवाहपितामही ।
कुरुष्वैवंस्थितेयत्तेरोचतेवसुधाधिप ॥३९

पृथिवी का पालन और अपने धर्म का पालन करने के लिये उन्हें तो महाकष्ट ही भोगने होते हैं, उन्हें अपने धर्म और पृथिवी के पालन से ॥३४॥ इस जन्म मे अत्यन्त क्लेश भोग लेने पर परलोक में उन्हें अक्षय सुख की प्राप्ति होती है, हे राजन् ! इस पर विचार करके और भोग का परित्याग करके ॥३५॥ तुम्हें पृथिवी का पालन करने के लिये क्लेश को अंगीकार करना चाहिये, तुम्हारे शासनकाल में ऋषियों को सर्पों से जो भय उपस्थित हुआ है ॥३६॥ उस भय को दूतों के न होने के कारण ही जानने में समर्थ नहीं हुए, हे राजन् ! तुम दुष्टों को दण्डित करो ॥३७॥ और शिष्टजनों का पालन करो, इससे धर्म के षष्ठ भाग की प्राप्ति होगी, दुष्टगण जिस उद्दण्डता को करते हैं, उनसे सज्जनों की रक्षा न करोगे तो ॥३८॥ तुम अवश्य ही पाप के भागी होगे, अब जो कर्त्तव्य समझो, वह करो. हे राजन् ! मैं तुम्हारी पितामही हूँ, इसीलिये ऐसा कहा है, अब तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वही करो ॥३९॥

११७ — मरुत्त चरित्र (३)

इतितापसवाक्यसश्रु त्वालज्जापरोनृपः ।
धिड्माचारान्धमित्युक्त्वानि.श्वस्यजगृहेधनु ॥१
तत सत्वरितगत्वाखल्वोर्वस्याश्रमप्रति ।
ववन्देशिरसावीरामातरपितुरात्मन ॥२
तापसाश्चयथान्यायतश्चाशीर्भिरभिष्टुत ।
दृष्ट्वाचतापसान्सप्तनागैदष्टान्मृतान्भुवि ॥३
निनिन्दात्मानमसकृत्पुरस्तेपामहीपति ।
उवाचचैनदद्याहंमद्वीर्य्यमवमन्यताम् ॥४
यत्करोमिभुजङ्गानादुष्टानाब्राह्मणद्विषाम् ।
तत्पश्यतुजगत्सर्वसदेवासुरमानुषम् ॥५
इत्युक्त्वाजगृहेकोपादस्त्रसवर्तकनृप ।
नाशायाशेषनागानापातालोर्व्वीविचारिणाम् ॥६
ततोजज्वालसहसानागलोकःसमन्तत ।
महास्त्रतेजसाविप्रदह्यमानोनिवारित ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—तापस की बात सुनकर राजा लज्जित हुए और 'मुझ आचारान्ध को धिक्कार है' ऐसा कहते हुए हाथ मे धनुष उठाया ॥१॥ और अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक और्वाश्रम मे जाकर नत मस्तक हो अपनी पितामही वीरा ॥२॥ और तपस्वियो को प्रणाम किया, उन्होने भी राजा को आशीर्वाद दिये, फिर राजा ने सर्पदश से मरे हुए सात तपस्वियो को पृथिवी म पडे देखा ॥३॥ राजा ने मुनियो के समक्ष बारम्बार अपनी निन्दा की और बाले—यह दुष्ट नाग मेरे बल के तिरस्कार पूवक ॥४॥ ब्राह्मणों से द्वेष करते हैं इसलिये अब मैं उनकी जो दशा करता हूँ, उसका देवता, दैत्य और सम्पूर्ण विश्व अवलोकन करे ॥५॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—ऐसा कहकर राजा ने पाताल और पृथिवी में रहने वाले सब नागों को नष्ट करने के उद्देश्य से संवर्त्तक अस्त्र को

हाथ में उठाया ॥६॥ उस समय उस महा अस्त्र के तेज से समस्त नागलोक प्रकाशमान हो उठा और भस्म होने लगा ॥७॥

हाहाताततिहामातहाहावत्सेतिमभ्रमे ।
तस्मिन्नस्त्रकृतेवाच पन्नगानामथाभवन् ॥८
केचिज्ज्वलद्भि पुच्छाग्रं फणैरन्येभुजङ्गमा ।
गृहीतपुत्रदाराश्चत्यक्ताभरणवासस ॥६
पातालमुत्सृज्यययु शरणंभामिनीतदा ।
मरुत्तमातर पूर्वययादत्ततदाभयम् ॥१०
तामुपेत्योरगा सर्वेसप्रमाणभयातुरा ।
सगद्गदमिदप्रोचु स्मर्यतान पुरोदितम् ॥११
प्रणम्याभ्यर्थितपूर्वयदस्माभीरसातले ।
तस्यकालोऽयमायातस्त्राहिवीरप्रजायिनि ॥१२
पुत्रोनिवार्य्यतांराज्ञिप्राणैं सयोज्यमस्तुन ।
दह्यतेसकलोलोकोनागानामस्त्रवह्निना ॥१३
एवसदह्यमानानामस्माकतनयेनते ।
त्वामृतेशरणनान्यत्कृपाकुरुयशस्विनि ॥१४

इस अस्त्र के भय से भीत हुए नागगण माता, तात, वत्स आदि पुकारते हुए चीत्कार करने लगे ॥८॥ किसी की पूँछ और किसी का फण दग्ध होने लगा, किसी ने वस्त्राभरणों को परित्याग कर स्त्री पुत्र सहित ॥६॥ पाताल-लोक को छोड राजा मरुत्त की माता भामिनी की शरण ग्रहण की, क्योंकि उसने इनको कभी अभय दान दिया था ॥१०॥ सभी नाग उसके समक्ष उप-स्थित होकर गद्गद वचनो से कहने लगे—आप रसातल मे हमारे द्वारा की हुई प्रार्थना का स्मरण करिये, उसके निर्वाह का यही समय है, आप हमारी रक्षा करिये ॥११–१२॥ हे राजमाता ! अपने पुत्र को रोक कर हमारे प्राणों की रक्षा करिये, समस्त नागलोक उनके अस्त्रों से उत्पन्न अग्नि से भस्म हुआ जाता है ॥१३॥ हे यशस्विनी ! आपका पुत्र इस विधि से हमें जलाता है, इस-

लिए आपके अतिरिक्त अन्य किसी की शरण हम नहीं ले सकते, आप हम पर दया करें ॥१४॥

इतिश्रुत्वावचस्तेषासस्मृत्यादौचभाषितम् ।
भर्त्तारमाहसासाध्वीससम्भ्रममिदवच ॥१५
पूर्वमेवतवाख्यातपातालेयद्भुजङ्गमै ।
प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्वममासीत्तनयप्रति ॥१६
तइमेऽभ्यागताभीतादह्यन्तेतस्यतेजसा ।
मामेतेशरणपूर्वदत्तमेभ्योमयाऽभयम् ॥१७
येमाशरणमापन्नास्तेत्वाशरणमागता ।
अपृथग्धर्मचरणायाताहशरणतव ॥१८
तन्निवारयपुत्रत्वमरुत्त वचनात्तव ।
मयाचाभ्यर्थितोऽवश्यशममभ्युपयास्यति ॥१९
महापराधेनियतमरुत्त क्रोधमागत ।
दुर्निवर्त्त्यमहमन्येतस्यक्रोधसुतस्यते ॥२०

मार्कण्डेयजी ने कहा—सर्पों के करुणापूर्ण वचन सुन कर उस साध्वी स्त्री को सर्पों को दिया अपना अभय वचन स्मरण हो आया तो वह सभ्रम-सहित अपने स्वामी से बोली ॥१५॥ मानिनी ने कहा—पाताल स्थित सर्पगणों ने विनय-पूर्वक जो कुछ मेरे पुत्र के सम्बन्ध मे कहा वह पूर्व ही मैंने आपसे वर्णन किया ॥१६॥ वही सर्पगण इस काल मेरे पुत्र के तेज के कारण दग्ध हुए जाते हैं मैंने पहले ही इन्हे अभय-वर दिया था इसलिए भयभीत होकर वे मेरी शरण मे आये हैं ॥१७॥ जो मेरी शरण में आये हैं वे आपके भी शरणागत हैं क्योकि एक धर्माचरण के कारण मैं आपकी शरणागत हुई हूँ ॥१८॥ इसलिए आप पुत्र मरुत को रोकिये। आपके आदेश और मेरे आग्रह से वह निश्चित ही शान्त हो जायगा ॥१९॥ अवीक्षित बोले—इनकी सदैव अपराधी प्रवृत्ति के कारणवश ही मरुत क्रोधित हुआ है इस कारण तुम्हारे पुत्र का क्रोध सरलता से शान्त हो जायगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता ॥२०॥

शरणागतास्तववयप्रसाद क्रियतानृप ।
क्षत्रस्यार्तपरित्राणनिमित्तं शस्त्रधारणम् ॥२१
नागानांतद्वच श्रुत्वाभूतानांशरणैषिणाम् ।
तयाचाभ्यर्थित.पत्न्याप्राहावीक्षिन्महायशाः ॥२२
गत्वाब्रवीमितंभद्रेतनयंत्वरयातव ।
परित्राणायनागानानत्याज्याःशरणागता. ॥२३
नोपसंहरतेसोस्त्रंयदिमद्वचनान्नृपः ।
तदास्त्रैर्वारयिष्यामितस्यास्त्रतनयस्यते ॥२४
ततोगृहीत्वासधनुरवीक्षित्क्षत्रियोत्तमः ।
भार्य्यासहितःप्रायात्त्वरावान्भार्गवाश्रमम् ॥२५

सर्प बोले—हे राजा ! हम आपके शरणागत हैं, आप हम पर कृपा कीजिये, क्षत्रिय मनुष्य सदैव त्रसित मनुष्यों की रक्षार्थ ही अस्त्र ग्रहण करते हैं ॥२१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यशस्वी अवीक्षित ने पत्नी का निवेदन और शरण में आये सर्पों के वचन सुनकर कहा—॥२२॥ हे भद्रे ! मैं तुरन्त ही तुम्हारे पुत्र मरुत के निकट जाकर नागों की रक्षा हेतु उससे कहता हूं, शरण में आये को शरण न देना कभी उचित नहीं है ॥२३॥ यदि तुम्हारा पुत्र राजा मरुत मेरे कहने पर ही अस्त्र त्याग नहीं करेगा तो मैं उसके विरुद्ध अस्त्र का प्रयोग करूँगा ॥२४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् नरश्रेष्ठ अवीक्षित धनुष धारण करके भार्या को संग लेकर भार्गवाश्रम गये ॥२५॥

११८—मरुत्त चरित्र (४)

सतुतत्रसुतंदृष्ट्वागृहीतवरकार्मुकम् ।
धनुःशस्त्रचतस्योग्रंज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥१
उद्गिरन्तमहावह्निदीपिताखिलभूतलम् ।
पातालान्तर्गतंप्राप्तममह्यं घोरमोपणम् ॥२

सतदृष्ट्वामहीपालभृकुटीकुटिलाननम् ।
माक्रुधस्त्वमरुत्तास्त्रमुपसह्रियतामिति ॥३
प्राहासक्त्वानुलुप्तवर्णक्रममुदारधी ।
सनिशम्यगुरोर्वाक्यदृष्ट्वातचपुन.पुनः ॥४
गृहीतकार्मुकं पित्रो.प्रणिपत्यसगौरवम् ।
प्रत्युवाचापराद्धामेसुभृशपन्नगाःपिता ॥५
शासतीमामयिमहीपरिभूयबलमम ।
सप्ताश्रममुपागम्यदष्टामुनिकुमारका: ॥६
ऋषीणामाश्रमस्थानाममीपामवनीपते ।
मयिशासतिदुर्वृत्तं दूषितानिहवीपिच ॥७

मार्कण्डेय जी ने कहा—अवीक्षित ने वहाँ आकर देखा कि मरुत धनुष पर शस्त्र चढाये हुए हैं, जिस की तीव्र ज्वाला से समस्त दिशामण्डल प्रकाशित है ॥१॥ उस उग्र शस्त्र मे से तीव्र अग्नि उत्पन्न होकर पृथ्वी को प्रदीप्त कर रही है, जो कि अत्यन्त भीषण व असहनीय है एवं पाताल तक पहुच रही है ॥२॥ यह देख कर कि महीप मरुत की मुखाकृति व भ्रकुटि कुटिल हैं, तो वे बोले—हे मरुत ! अस्त्र त्याग दो और क्रोध समाप्त करो ॥३॥ बार बार इस प्रकार कह कर जब चुप हो गये तो उस बुद्धिमान् मरुत ने उनकी ओर देख कर ॥४॥ पिता व माता दोनों को प्रणाम सहित आदर पूर्वक बोला—हे पिता ! यह सर्पगण मेरे घोर अपराधी हैं ॥५॥ मेरे पराक्रम की अवहेलना करके इन्होंने मेरे राज्य-काल में आश्रम मे आकर सात मुनिकुमारो को काटा

नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ।
अहमेवगमिष्यामिनरकयदिपापिनाम् ।
ननिग्रहेयताम्येषामानिवारयमामपित ॥१०
मामेतेशरणप्राप्ता.पन्नगाममगौवात् ।
उपसंह्रियनामस्त्रमलंकोपेनतेनृप ॥११
नाहमेपाक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ।
स्वधर्ममुल्लंघ्यकथंकरिष्यामिवचस्तव ॥१२
दण्डघ्नं निपातयन्दण्ड भूयःशिष्टाश्चपालयन् ।
पुण्यलोकानवाप्नोतिनरकाश्चाप्युपेक्षणात् ॥१३

इसलिए आप इन सर्पगणो के विषय में कुछ भी न कहें और ब्रह्म-हत्यारे नागों के संहार-कार्य से मुझे न रोकें ॥८॥ अवीक्षित बोले—यदि इन्होंने ब्रह्म-हत्या की है तो मरने के पश्चात् नरक को जायेंगे किन्तु तुम अस्त्र का प्रयोग न करके मेरे वचन की रक्षा करो ॥९॥ मरुत बोले—यदि इन पापियों पर नियन्त्रण का यत्न छोड़ दूँ तो मुझे ही नर्क की प्राप्ति होगी, इसलिए हे पिता जी आप मुझे उनके संहार से मत रोकिये, मैं इन दुष्टों को क्षमा नहीं करना चाहता ॥१०॥ अवीक्षित बोले—यह नाग मेरी शरण को प्राप्त हुए हैं, इसलिए मेरे गौरव की रक्षा के निमित्त क्रोध छोड़ कर अस्त्र त्याग दो ॥११॥ मरुत बोले—इन दुष्टों को मैं क्षमा करके अपने धर्म का उल्लंघन कैसे करूं और आपके वचन को कैसे निभाऊँ ॥१२॥ दंड योग्य जीवों को दंड देकर और शिष्ट पुरुषों का पालन करके ही राजा पुण्य लोक को प्राप्त होते हैं अन्यथा उन्हें नर्क की प्राप्ति होती है ॥१३॥

एवमवहुश पित्रावार्य्यमाणोम्वयासह ।
नोपसहृरतेसोऽस्त्रततोऽसौपुनरव्रवीत् ॥१४
हिंससेपन्नगान्भीतान्ममैतान्छरणागतान् ।
वार्यमाणोऽपितस्मात्तेकरिष्यामिप्रतिक्रियाम् ॥१५
मयाप्यस्त्राण्यवाप्तानिनत्वमेकऽस्त्रविद्भुवि ।
ममाग्रतःसुदुर्वृ त्तपौरुषञ्चकियत्तव ॥१६

ततकामुंकमारोप्यकोपताम्रविलोचन ।
अविक्षिदस्त्रजग्राहकालस्यमुनिपुङ्गव ॥१७
ततोज्वालापरीवारमनिसघघ्नमुत्तमम् ।
कालास्त्रतुमहावीर्यंयोजयामासकामुंके ॥१८
ततश्चुक्षोभजगतीसवत्तास्त्रिप्रतापिता ।
साब्धिशैलाऽखिलाविप्रकालस्यास्त्रसमुद्यते ॥१९
कालास्त्रमुद्यतपित्रामरुत्त सोऽपिवीक्ष्यतत् ।
प्राहोच्चै रस्त्रमेतन्मेदुष्टशास्तिसमुद्यतम् ॥२०
नत्वद्वधायकालास्त्रमयिमु चतिविमवान् ।
स्वधर्मचारिणिसुतेसदैवाज्ञावरतव ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा—पिता के द्वारा बारम्बार निषेध किये जाने पर भी मरुत्त ने जब अस्त्र का परित्याग नहीं किया तब अवीक्षित ने उनसे पुन कहा ॥१४॥ ये नाग भयभीत होकर मेरी शरण को प्राप्त हुए मरे द्वारा निवारण किये जाने पर भी तुम इनकी हिंसा म प्रवृत्त हो, इसलिए मैं इसका प्रतिकार करूँगा ॥१५॥ पृथ्वी पर एकमात्र तुम्हीं अस्त्र विज्ञाता नहीं हो, मैंने भी ...

शरणागतसत्राणकर्तुं व्यवसितावयम् ।
तस्यव्याघातकर्त्तात्विनमेजीवन्विमोक्ष्यसे ॥२३
मावाहत्वास्त्रवीर्येणजहिदुष्टानिहोरगान् ।
त्वावाहत्वाऽहमस्त्रेणरक्षिष्यामिमहोरगान् ॥२४
धिक्तस्यजीवितपु स शरणार्थिनमागतम् ।
योनार्तमनुगृह्णासिवैरिपक्षमपिध्रु वम् ॥२५
क्षत्रियोऽहमिमेभीता शरणमामुपगता ।
अपकर्त्तात्वमेवैषाकथवध्योनमेभवान् ॥२६
मित्रावावान्धवोवाऽपिपितावायदिवागुरु ।
प्रजापालनविघ्नाययोहन्तव्य सभूभृता ॥२७
सोऽहन्तेप्रहरिष्यामिनक्रोद्धव्यत्वयापित ।
स्वधर्म परिपाल्योमेनास्तिक्रोधस्तवोपरि ॥२८

हे महाभाग ! प्रजा पालन ही मेरा परम कर्त्तव्य है, फिर आप मेरे सहार के लिए इस प्रकार के अस्त्र को क्यों प्रयुक्त करते हैं ॥२२॥ अवीक्षित बोले–मैंने शरणागतों की रक्षा का दृढ निश्चय किया है, तुम उस कार्य मे विघ्न उपस्थित करते हो इसलिए तुम मेरे जीवित रहते रक्षा नही प्राप्त कर सकते ॥२३॥ इस काल या तो तुम्हीं मुझे अस्त्र बल से मार-कर दुष्ट नागो को मार डालो या मैं ही अस्त्र की सहायता से तुम्हारा वध करके इन सर्पों की रक्षा करूँगा ॥२४॥ जो शत्रु पक्ष के मनुष्य भी आर्त होकर शरण ग्रहण करें उनकी रक्षा न करने वाले पुरुष के जीवन को धिक्कार है ॥२५॥ मैं क्षत्रिय हू, भयभीत होकर मेरी शरण मे आये हैं और तुम्हीं इनका अपकार करते हो, इसलिये तुम मेरे द्वारा मारे जाने योग्य क्यो नही हो ॥२६॥ मरुत बोले—मित्र, बन्धु, पिता अथवा गुरु भी यदि प्रजा के पालन म विघ्न उपस्थित करे तो राजा के द्वारा वध किये जाने के योग्य है ॥२७॥ इसलिए हे पिता ! मैं आप पर जो प्रहार करूँ, उससे आप क्रोधित न हो, मैं अपने धर्म के पालन के लिये ही ऐसा करने को तत्पर हुआ हूँ । यह मेरा क्रोध आपके प्रति नही है ॥२८॥

ततः कार्मुकमारोप्यकोपताम्रविलोचनः ।
अविक्षिदस्त्रजग्राहकालस्यमुनिपुङ्गवः ॥१७
ततोज्वालापरीवारमनिसघ्नमुत्तमम् ।
कालास्त्रतुमहावीर्य्यंयोजयामासकार्मुके ॥१८
ततश्चुक्षोभजगतीसवर्त्तास्त्रप्रतापिता ।
साब्धिशैलाऽखिलाविप्रकालस्यास्त्रेसमुद्यते ॥१९
कालास्त्रमुद्यतपित्रामरुत्तःसोऽपिवीक्ष्यतत् ।
प्राहोच्चैरस्त्रमेतन्मेदुष्टशास्तिसमुद्यतम् ॥२०
नत्वद्वधायकालास्त्रमयिमुञ्चतिकिमवान् ।
स्वधर्मचारिणिसुतेसदैवाज्ञाकरेतव ॥२१

मार्कण्डेय जी ने कहा–पिता के द्वारा बारम्बार निषेध किये जाने पर भी मरुत ने जब अस्त्र का परित्याग नहीं किया तब अवीक्षित ने उनसे पुनः कहा ॥१४॥ ये नाग भयभीत होकर मेरी शरण को प्राप्त हुए मेरे द्वारा निवारण किये जाने पर भी तुम इनकी हिंसा में प्रवृत्त हो, इसलिए मैं इसका प्रतिकार करूँगा ॥१५॥ पृथ्वी पर एकमात्र तुम्हीं अस्त्र विज्ञाता नहीं हो, मैंने भी अनेक अस्त्र प्राप्त किये हैं, मेरे सामने तुम्हारा पौरुष नगण्य है ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अवीक्षित ने ऐसा कह कर क्रोध से ताम्रवर्ण नेत्र कर धनुष उठा कर कालास्त्र ग्रहण किया ॥१७॥ ज्वाला से परिपूर्ण शत्रुओं के नाश करने वाला वह श्रेष्ठ कालास्त्र धनुष पर चढाया ॥१८॥ हे ब्रह्मन् ! मरुत के सवर्त्तकास्त्र से तप्त हुए पर्वत एवं समुद्र से युक्त सम्पूर्ण विश्व कालास्त्र के संधान से क्षोभ को प्राप्त हुआ ॥१९॥ मरुत भी धनुष पर चढ़ाये हुए उस कालास्त्र को देख कर उच्च स्वर में बोले—मेरा सवर्त्तकास्त्र दुष्टों का शमन करने के लिए तत्पर हुआ है ॥२०॥ वह आपके हनन के लिए नहीं है, तो फिर सदा सत्पथ का आश्रय लेने वाले और अपनी आज्ञा-पालन में तत्पर रहने वाले पुत्र के प्रति आप इस कालास्त्र को क्यों छोड़ते हैं ॥२१॥

मयाकार्यमहाभागप्रजानापरिपालनम् ।
त्वयंवक्रियतेत्वस्मान्मद्वधायास्त्रमुद्यतम् ॥२२

शरणागतसन्त्राणकर्तु व्यवसितावयम् ।
तस्यव्याघातकर्त्तात्वनमेजीवन्विमोक्ष्यसे ॥२३
मावाहत्वास्त्रवीर्येणजहिदुष्टानिहोरगान् ।
त्वावाहत्वाऽहमस्त्रेणरक्षिष्यामिमहोरगान् ॥२४
धिक्तम्यजीवितपुंस:शरणार्थिनमागतम् ।
योनार्तमनुगृह्णासिवैरिपक्षमपिध्रुवम् ॥२५
क्षत्रियोऽहमिमेभीता शरणमामुपगता: ।
अपकर्त्तात्वमेवेषाकथंवध्योनमेभवान् ॥२६
मित्रवाबान्धवोवाऽपिपितावायदिवागुरु ।
प्रजापालनविघ्नाययोहन्तव्य:समूभृता ॥२७
सोऽहन्तेप्रहरिष्यामिनक्रोद्धव्यस्त्वयापित ।
स्वधर्मं परिपाल्योमेनास्तिक्रोधस्त्ववोपरि ॥२८

हे महाभाग ! प्रजा पालन ही मेरा परम कर्त्तव्य है, फिर आप मेरे सहार के लिए इस प्रकार के अस्त्र को क्यों प्रयुक्त करते हैं ॥२२॥ अवीक्षित बोले–मैंने शरणागतो की रक्षा का दृढ निश्चय किया है, तुम उस कार्य मे विघ्न उपस्थित करते हो इसलिए तुम मेरे जीवित रहते रक्षा नहीं प्राप्त कर सकते ॥२३॥ इस काल या तो तुम्हीं मुझे अस्त्र बल से मार-कर दुष्ट नागो को मार डालो या मैं ही अस्त्र की सहायता से तुम्हारा वध करके इन सर्पों की रक्षा करूँगा ॥२४॥ जो शत्रु-पक्ष के मनुष्य भी आर्त होकर शरण ग्रहण करें उनकी रक्षा न करने वाले पुरुष के जीवन को धिक्कार है ॥२५॥ मैं क्षत्रिय हू, भयभीत होकर मेरी शरण में आये हैं और तुम्हीं इनका अपकार करते हो, इसलिये तुम मेरे द्वारा मारे जाने योग्य क्यो नहीं हो ॥२६॥ मरुत बोले—मित्र, बन्धु, पिता अथवा गुरु भी यदि प्रजा के पालन मे विघ्न उपस्थित करे तो राजा के द्वारा वध किये जाने के योग्य है ॥२७॥ इसलिए हे पिता ! मैं आप पर जो प्रहार करूँ, उससे आप क्रोधित न हो, मैं अपने धर्म के पालन के लिये ही ऐसा करने को तत्पर हुआ हूँ। यह मेरा क्रोध आपके प्रति नहीं है ॥२८॥

तनस्तौ निश्चितोद्दृष्ट्वापरस्परवधप्रति ।
समुत्पत्यान्तरेतस्थुर्मुनयोभार्गवादयः ॥२६
ऊचुश्चैननमोक्तव्यस्त्वयास्त्र पितरप्रति ।
त्वयाचनायहन्तव्य पुत्र प्रख्यातचेष्टितः ॥३०
मयादुष्टानिहन्तव्या.सन्तोरक्ष्यामहोक्षिता ।
इमेचदुष्टाभुजगा कोपराधोऽत्रमेद्विजा ॥३१
शरणागतसन्त्राणमयाकार्यमयश्वमे ।
अपराध्यःसुतोविप्रायोहन्तिशरणागतान् ॥३२
इमेवदन्तिभुजगास्त्रासलोलविलोचना ।
सजीव्यामस्तान्विप्रान्येदष्टादुष्टपन्नगैः ॥३३
तदलविग्रहेणोभौराजवर्यौप्रसीदताम् ।
उभावपिनिव्यूढप्रतिज्ञौधर्मकोविदौ ॥३४
सातुवीरासम्प्रेत्यपुत्रमेतदभाषत ।
मद्वाक्यादेषतेपुत्रोहन्तु नागान्कृतोद्यमः ॥३५
तन्निष्पन्नयदाविप्रास्तेजीवन्तितथामृता ।
सजीवन्तश्चामुच्यन्तेयद्युष्मच्छरणंगताः ॥३६

मार्कण्डेय जी ने कहा—उन दोनो को परस्पर संहार करने मे प्रवृत्त देख कर भार्गवादि मुनि शीघ्र आकर दोनो के मध्य खडे हो गये ॥२६॥ और मरुत से कहा—पिता के ऊपर अस्त्र चलाना किसी प्रकार भी उचित नही है और अवीक्षित से कहा कि आपको भी इस श्रेष्ठ कर्मा पुत्र को नष्ट करना अनुचित है ॥३०॥ मरुत बोले– हे द्विजो ! मैं राजा हूँ, दुष्टों का वध करना और शिष्ट जनो का पालन करना मेरा परम कर्तव्य है। ये नाग भी दुष्ट हैं, इसलिये इनके विषय में मेरा क्या अपराध है ॥३१॥ अवीक्षित बोले—हे विप्रो ! शरणागतो की रक्षा करना मैं अपना कर्तव्य मानता हू, जो पुत्र मेरे शरणागतो का वध करने को तत्पर है, वह मेरा अपराधी है ॥३२॥ ऋषि बोले—भय से चचल नेत्र हुए भुजगो ने कहा कि जिन ब्राह्मणो को दुष्ट नागो ने डस लिया है, हम उनको जीवित कर रहे हैं ॥३३॥ इसलिये अब युद्ध की

आवश्यकता नहीं रह गई, आप दोनों ही राज श्रेष्ठ, धर्मज्ञानी और प्रतिज्ञा-पालक हैं, आप प्रसन्न हों ॥३४॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तभी वीरा ने आकर अपने पुत्र अवीक्षित से कहा कि मेरे कहने से ही तुम्हारा पुत्र सर्पों को नष्ट करने में तत्पर हुआ था ॥३५॥ और अब जब ये मृतक ब्राह्मण जीवित हो रहे हैं, तब उसका कार्य भी सम्पन्न होगया और तुम्हारे ये शरणागत भी मुक्त हो गये ॥३६॥

> सहमभ्यर्थितापूर्वमेभि पातालसंश्रयै ।
> तन्निमित्तमयाभर्त्तामयात्रविनियोजित ॥३७
> तदेतदार्यनिर्वृत्तमुभयोरपिशोभनम् ।
> ममभर्तुश्चपुत्रस्यत्वत्पौत्रस्यात्मजस्यच ॥३८
> तत सजीवयामासुस्तान्विप्रास्तेभुजङ्गमा ।
> दिव्यौषधिजातैश्चविषसंहरणेनच ॥३९
> पित्रोर्ननामचरणौसततोजगतीपति ।
> मरुत्तश्चमतप्रीत्यापरिष्वज्येदमब्रवीत् ॥४०
> मानहाभवशत्रूणाचिरपालयमेदिनीम् ।
> पुत्रपौत्रैश्चमोदस्वमाचतेसन्तुविद्विप ॥४१
> ततोद्विजैरनुज्ञातौवीरयाचनरेश्वरौ ।
> समारुढोरथसाचभामिनीस्वपुरङ्गता ॥४२

भामिनी बोली—पाताल में रहने वाले इन सभी सर्पों ने पहले मुझ से अभय याचना की थी, इसीलिए मैंने अपने स्वामी से तद्विषयक अनुरोध किया था ॥३७॥ इस समय मेरे स्वामी और पुत्र अथवा तुम्हारे पुत्र और पौत्र का यह श्रेष्ठ रीति से पूर्ण हुआ है ॥३८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर सर्पों ने उन मरे हुए ब्राह्मणों का विष दिव्य औषधियों के द्वारा दूर करके उन्हें जीवित कर दिया ॥३९॥ फिर राजा मरुत्त ने भी माता पिता के चरणों में प्रणाम किया और अवीक्षित ने भी मरुत्त को आलिंगन करके प्रीतिपूर्वक यह आशीर्वाद दिया ॥४०॥ शत्रुओं के मान-मर्दक होओ, पृथ्वी का सदा

पालन करो, पुत्र-पौत्र सहित सुख-पूर्वक समय व्यतीत करो तुम्हारे शत्रु नष्ट हों ॥४१॥ फिर ब्राह्मणों और वीरा की आज्ञा प्राप्त कर दोनों राजा और भामिनी रथारूढ होकर अपने नगर को चले गये ॥४२॥

वीराऽपिकृत्वासुमहत्तपोधर्मभृतांवरा ।
भर्तुः सलोकताप्राप्तामहाभागापतिव्रता ॥४३
मरुत्तोऽपिचकारोर्व्यांविधर्मंत परिपालनम् ।
विनिर्जितारिषड्वर्गोभोगांश्चबुभुजेनृप ॥४४
तस्यपत्नीमहाभागाविदर्भतनयातथा ।
प्रभावतीसुवीरस्यसोवीरीचाभवत्सुता ॥४५
सुकेशीकेतुवीर्य्यस्यमागधस्यात्मजाऽभवत् ।
सुताचसिन्धुवीर्य्यस्यमद्रराजस्यकेकयी ॥४६
केकयस्यचसैरन्ध्रीसिन्धुभर्तुर्वपुष्मती ।
चेदिराजसुताचाभद्भार्य्यातस्यसुशोभना ॥४७
तासापुत्रास्तस्यचासन्भूतोऽष्टादशद्विज ।
तेषांप्रधानोज्येष्ठश्चनरिष्यत सुतोऽभवत् ॥४८
एववीर्य्योमरुत्तोऽभून्महाराजामहाबल ।
तस्याप्रतिहतचक्रमासीद्द्वीपेषुसप्तसु ॥४६
यस्यतुल्योऽपरोराजानभूतोनभविष्यति ।
सत्यविक्रमयुक्तस्यरार्परमितौजस ॥५०
तस्यैतच्चरितश्रुत्वामरुत्तस्यमहात्मन ।
जन्मचाग्र्यद्विजश्रेष्ठमुच्यतेसर्वकिल्विषैः ॥५१

फिर धार्मिक-श्रेष्ठ परम भाग्यवती पतिव्रता वीरा देवी घोर तपस्या का आचरण करके अपने स्वामी के सालोक्य को प्राप्त हुई ॥४३॥ राजा मरुत्त ने भी छः हो शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन और विभिन्न प्रकार के सुख भोग किये ॥४४॥ विदर्भसुता प्रभावती तथा सुवीर की की पुत्री सौवीरी, मगधेश्वर केतु-वीर्य की पुत्री सुकेशा, मद्रराज सिंधुवीर्य की पुत्री केकयी, सिंधुनरेश की पुत्री सैंधवी, चेदिराज की पुत्री वपुष्मती, ये

पराक्रमी वीर्यवान् थे उनका वृत्तान्त आपके मुखारविन्द से श्रवण करना चाहता हूं ।।२।। मार्कण्डेय जी ने कहा—मरुत के अठारह पुत्र हुए, जिनमें नरिष्यन्त सबसे बड़ा और श्रेष्ठ पुत्र हुआ ।।३।। क्षत्रिय श्रेष्ठ मरुत ने सत्तर सहस्र पंद्रह वर्ष पर्यन्त समस्त भूतल पर राज्य किया ।।४।। धर्म के अनुसार शासन कर और सर्वश्रेष्ठ यज्ञ एवं अनुष्ठान करके वह अन्त में अपने ज्येष्ठ पुत्र नरिष्यन्त को राज्याभिषेक करके वनवास करने चले गये ।।५।। हे द्विज ! तदुपरान्त दत्तचित्त से वन मे तपस्या करते हुए पृथ्वी से यश प्राप्त करके राजा मरुत ने स्वर्ग प्राप्त किया ।।६।।

नरिष्यत:सुत:सोस्यचितयामासबुद्धिमान् ।
पितुर्वृंतंसमालोक्यतथान्येषांचभूभृताम् ।।७
अन्ववशेमहात्मानोराजानोममपूर्वजाः ।
यज्विनोधर्मत पृथ्वीपालयामासुरूर्जिताः ।।८
दातारश्चापिवित्तानासग्रामेष्वनिर्वर्तिनः ।
तेषांकश्चरितशक्तस्त्वनुयातुं महात्मनाम् ।।९
किन्तुतैर्यत्कृतकर्मधर्म्यमाहवनादिभिः ।
तदहकर्तुं मिच्छामितन्नास्तिकरोमिकिम् ।।१०
धर्मात्पालयन पृथ्वीकोगुणोत्रमहीपतेः ।
असम्यक्पालनात्पापीनरेन्द्रोनरकव्रजेत् ।।११
सतिवित्ते महायज्ञा.कर्तव्याएवभूभृता ।
दातव्यचार्थकिचिन्नसीदतामीश्वरोगति ।।१२
आभिजात्यतथालज्जाकोपश्चारिजनाश्रयः ।
कार्यतिम्बधर्मश्चसग्रामादपलायनम् ।।१३
एतत्सर्वयथासम्यङ्मत्पूर्वै पुरुषै कृतम् ।
पिनाचमेमरत्तं ततथातत्के नशक्यते ।।१४

परम विद्वान् पुत्र नरिष्यन्त ने अपने पिता व अन्य दूसरे अधिपतियों के व्यवहार देखकर विचार किया ।।७।। कि इस कुल मे मेरे समस्त पूर्वज महान् आत्मा नृपगण यज्ञ व अनुष्ठान करने वाले, महा पराक्रमी, वीर्यवान्, धनदाता

संग्राम में कभी भी मुख न मोड़ने वाले थे एवं सभी ने धर्म के अनुसार भूतल का पोषण किया था, उन महान् आत्माओं के चरित्र का अनुसरण करने की सामर्थ्य किस में होगी ? ॥८-९॥ आहवानादि से उन्होंने जो धार्मिक कृत्य पूर्ण किये उन्हें करने की मेरी भी आकांक्षा है परन्तु वह भी तो अद्भुत नहीं है, इसलिए मैं कैसे करूँ ॥१०॥ यदि नृप धर्म व न्याय पूर्वक भूतल का पालन न करे तो फिर उसमें नृप के क्या गुण हैं ? उनके गुण में वह कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि न्यायिक प्रकार से पृथिवी का पालन न करने वाला राजा पाप का भागी बनकर नरक प्राप्त करता है ॥११॥ धन युक्त होने पर नृप को दान और यज्ञ करने चाहियें, इसमें भी कोई अद्भुत बात नहीं है, राजा के लिए तो ईश्वर ही एकमात्र गति है ॥१२॥ अपने धर्म में स्थित रहने से ही राजा अपनी जाति में श्रेष्ठ व और लज्जा के कारण शत्रु के कोप और संग्राम में पीछे नहीं मुड़ता है॥१३॥ यह सब कार्य मेरे पूर्व पुरुषों और मेरे पिता मरुत ने जिस प्रकार किये हैं, वैसे कार्य अन्य कौन कर सकता है ? ॥१४॥

तदहं किं करिष्यामि यत्तु तैः पूर्वजैः कृतम् ।
येयज्विनो वरादाता संग्रामाच्चानिवर्तिन ॥१५
महत्सग्राममर्देश्च विसवादिपौरुषा ।
क्रमेणाहयतिष्यामि कस्मै तानभिसंधितुम् ॥१६
अथवाते स्वययज्ञा कृता पूर्वजनेश्वरैः ।
अविश्रमद्भिर्नान्यैस्तु कारितास्तत्करोम्यहम् ॥१७
इतिसंचिन्त्ययज्ञं सचकारैस नरेश्वर ।
यादृशनत्रकारान्यो वित्तोत्सर्गोपशोभितम् ॥१८
द्विजानाजीवनाणलदत्त्वा सुमहाधनम् ।
तत ददनगुणनैपायनार्थमददान्नृप ॥१९
गावोवस्त्राण्यनकारधान्यागारादिकतया ।
प्रत्येकमददात्तेषामवर्ष्पृथ्वीनिवासिनाम् ॥२०

मेरे सभी पूर्व पुरुष श्रेष्ठ यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले, दानशील सम-गुण युक्त तथा युद्ध में विमुख होने वाले न थे ॥१५॥ तथा युद्ध उपस्थित होने

पर शत्रुओं को अपना पराक्रम दिखाते थे, मैं इस समय ऐसा कौन कार्य करूँ, जिसे उन्होंने नहीं किया ? मैं कर्म द्वारा ही निष्काम धर्म को करूँगा ।।१६।। अथवा जो यज्ञ मेरे पूर्व पुरुषों ने स्वयं किये थे, किसी अन्य को नहीं कराये, उन्ही यज्ञो को मैं करूँगा ।।१७।। मार्कण्डेयजी ने कहा—राजा ने ऐसा विचार करके विपुल धन द्वारा एक ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसे पूर्व मे कोई भी नही कर सका था ।।१८।। उस यज्ञ मे उन्होंने ब्राह्मणों को अत्यधिक धन प्रदान किया और उससे भी सौ गुणा अन्नदान किया ।।१९।। पृथिवी पर जितने भी ब्राह्मण थे, उनमे से प्रत्येक को उन्होंने गौ, वस्त्र, अलंकार, घर, धान्य आदि प्रदान किया था ।।२०।।

ततस्तेनयदायज्ञ प्रारब्धोभूभुजापन ।
प्रारब्धेसमखेयष्टु ततोनालभतद्विजान् ।।२१
यान्यान्वृणोतिसनृपोविप्रानार्त्विज्यकमणि ।
तेतेतमूचुयज्ञायवयमन्यनदीक्षिता ।।२२
अन्यवरययद्वित्त त्वयास्माकविसर्जितम् ।
तस्यातोनास्तियज्ञपुदद्यास्त्वनृपतेन्नथम् ।।२३
नचापश्रृत्विजोविप्रास्तदाशेपक्षितीश्वर ।
वहिर्वेद्यातदादानमदातुमुपचक्रमे ।।२४
तथापिजगृहुर्नैवधनसपूर्णमदिरा ।
द्विजायदातु भूयोऽस्योनिर्विण्णइदमब्रवीत् ।।२५
अहोतिशोभनपृथ्व्यायद्विप्रोनाधन क्वचित् ।
अशोभनचयत्कोपोविफलोयमयज्विन ।।२६
नार्त्विज्यकुरुलेकश्चिद्यजमानोखिलोजन ।
द्विजानानचनोदानददतासप्रतीच्छते ।।२७

जब राजा ने पुन. यज्ञानुष्ठान किया तब उन्हे कोई भी ब्राह्मण यज्ञ के लिए उपलब्ध नही हुआ ।।२१।। उन्होने जिस-जिस को भी ऋत्विक् के रूप मे वरण करने की इच्छा की, उसी-उसी ने कहा कि मैं यज्ञ के लिये अन्यत्र वरण किया जा चुका हूँ ।।२२।। आप किसी अन्य को वरण कर ले हे राजन् ! आपने

आपने यज्ञ में हमें जितना धन दिया, वह अनेकानेक यज्ञों में भी समाप्त नहीं हो सका ॥२३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—सम्पूर्ण पृथिवी के राजा होकर भी जब उन्हें ऋत्विक् वनन के लिये कोई ब्राह्मण न मिला, तब वह वहिर्वेदी में दान करने को उद्यत हुए ॥२४॥ फिर भी धन से युक्त घर वा दान ब्राह्मणों ने ग्रहण नहीं किया, जब राजा दान करने में सफल नहीं हुए और उनका श्रम व्यर्थ गया तब वे अत्यन्त दुखित होकर सोचने लगे ॥२५॥ पृथिवी में कहीं कोई भी इस समय धनहीन ब्राह्मण नहीं है यह अत्यन्त सन्तोष की बात है, परन्तु यज्ञानुष्ठान के बिना मेरा मेरे पास राजकोष का होना सार्थक नहीं है, यही कष्ट का कारण है ॥२६॥ सभी ब्राह्मण इस समय स्वयं ही यज्ञ कार्य में प्रवृत्त हैं, इसलिए ऋत्विक् होने में कोई ब्राह्मण सहमत नहीं है, इस समय वह स्वयं ही दान कर रहे हैं, इसलिये मेरा दान स्वीकार नहीं करते ॥२७॥

ततः काश्चिद्द्विजान्भक्त्याप्रणिपत्यपुनःपुनः ।
स्वयज्ञेऽऋत्विजश्चक्रे तेप्रचक्रुर्महामखम् ॥२८
अत्यद्भुतमिदं चासीद्यदातस्यमहीपतेः ।
सयज्ञोभूत्तदापृथ्व्यांयजमानोऽखिलोजनः ॥२९
द्विजन्मनामभून्नासीत्सदस्यस्तत्र कश्चन ।
यजमानाद्विजाः केचित्केचित्तेपातुयाजकाः ॥३०
नरिष्यतोनरपतिर्स्त्रियाजसयदातदा ।
तत्प्रदातुर्धनैर्यागकुर्युः पृथ्व्यामशेषतः ॥३१
प्राच्यांकोटयस्तुयज्ञानामसन्नष्टादशाधिकाः ।
प्रतीच्यांसप्तवैकोट्योदक्षिणस्यांचतुर्दश ॥३२
उत्तरस्यांचपञ्चाशदेकवालतदाभवन् ।
मुनेब्राह्मणयज्ञानानरिष्यतोयदाऽयजत् ॥३३
एवमराजाधर्मात्मानरिष्यन्तोऽभवत्पुरा ।
मरुत्ततनयोविप्रविख्यातबलपौरुषः ॥३४

मार्कण्डेय जी ने कहा—फिर बारम्बार परम भक्ति और प्रणाम पूर्वक उन्होंने कोई ब्राह्मणों को अपने यज्ञ में ऋत्विक् होने का सहमत कर लिया और

तब उन ब्राह्मणों ने उस महायज्ञ का सम्पादन किया ।।२८।। यह अत्यन्त विस्मय की बात थी कि राजा द्वारा सम्पादित उस महायज्ञ में सभी ब्राह्मण स्वयं ही यजमान हुए ।।२९।। उस यज्ञ में कोई सभासद नहीं हुआ था, ब्राह्मणों में से ही कोई स्वयं यजमान और कोई याजक हुआ ।।३०।। जब राजा नरिष्यन्त ने यज्ञ किया तब उन्हीं के धन से ब्राह्मणगण अनेक यज्ञों के अनुष्ठान में प्रवृत्त हुए थे उस समय अट्ठारह करोड़ से भी अधिक यज्ञ किये गये, पश्चिम में सात करोड़, दक्षिण में चौदह करोड़ ।।३१-३२।। तथा उत्तर में पचास करोड़ यज्ञ हुए, ब्राह्मणों के सभी यज्ञ एक ही अवसर में सम्पन्न हुए ।।३३।। हे ब्रह्मन् ! पुराकाल में विख्यात बली एवं पराक्रमी मरुत्त पुत्र नरिष्यन्त ऐसे धर्मज्ञ थे ।।३४।।

१२०—दम चरित्र (१)

नरिष्यन्तस्यतनयोदुष्टारिदमनोदमः ।
शक्रस्येवबलंतस्यदयाशीलमुनेरिव ।।१
बाभ्रव्यामिन्द्रसेनायासजज्ञेतस्यभूभृत ।
नववर्षाणिजठरेस्थित्वामातुर्महायशा ।।२
यद्ग्राहयामासदममातरजठरेस्थित ।
दमशीलश्चभवितायनश्चायनृपात्मज ।।३
ततस्तिरालब्धिज्ञानःसहितस्यपुरोहित ।
दमइत्ययरोन्नामनरिष्यतमुतस्यतु ।।४
सदत्तोराजपुत्रस्तुधनुर्वेदमशेषत ।
जगृहेसुरराजस्यसकाशाद्वृषपर्वण. ।।५
दुन्दुभेर्दैत्यवर्य्यस्यतपोवननिवासिनः ।
सकाशाज्जगृहेशस्त्रमस्त्रग्रामश्चाखवत ।।६
शक्तेःसकाशाद्वेदांश्चवेदाङ्गान्यखिलानिच ।
तथाष्टिषेणाद्राजर्षेर्जगृहेयोगमात्मवान् ।।७

मार्कण्डेय जी ने कहा—राजा नरिष्यन्त के पुत्र दम हुए, वे इन्द्र के समान बली, मुनि के समान दयावान् और शीलवान् तथा शत्रुओं का दमन करने में समर्थ थे ॥१॥ बभ्रु की पुत्री इन्द्रसेना के जठर से बभ्रु नरिष्यन्त के वीर्य से उत्पन्न हुए, यह नौ वर्ष पर्यन्त माता के गर्भ में ही रहे ॥२॥ इनके गर्भ में स्थित रहने के समय माता को इन्द्रिय निग्रह पूर्वक रहना पड़ा था और यह राजकुमार भी दमशील हुए ॥३॥ यह देखकर तीनों काल के जानने वाले राज-पुरोहितों ने उनका नाम दम रखा, इस राजकुमार ने राजा वृषपर्वा से सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की ॥४-५॥ तथा तपोवन में रहने वाले दैत्यवर दुंदुभि से उन्होंने समस्त अस्त्र ग्राम के प्रयोगों को संहार सहित प्राप्त किया ॥६॥ शक्ति मुनि से सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग और आर्ष्टिषेण से योग शिक्षा प्राप्त की ॥७॥

तमुरूपमहात्मानगृहीतास्त्रमहाबलम् ।
स्वयंवरेवृतापित्राजगृहेसुमनापतिम् ॥८
सुतादशार्णाधिपतेर्बलिनश्चारुवर्मणः ।
पश्यतांसर्वभूनानायेतदर्थमुपागताः ॥९
तस्याश्चसानुरागोऽभून्मद्रराजस्यवैसुत ।
सुमनायामहानादोमहाबलपराक्रम ॥१०
तथाविदर्भाधिपते पुत्र सङ्क्रन्दनस्यच ।
वपुष्मान्राजपुत्रश्चमहाधनुरुदारधी ॥११
तेनदान्तं वृतं दृष्ट्वादुष्टारिदमनंदमम् ।
मन्त्रयामासुरन्योऽन्यतत्रानङ्गविमोहिता ॥१२
एतामस्यबलात्कन्यागृहीत्वावरवर्णिनीम् ।
गृहंप्रयामस्तस्येयमस्माकंग्रहीष्यति ॥१३
भर्त्तृ बुद्धचावरारोहास्वयंवरविधानतः ।
तस्यच्छन्दमतो भविता भार्या धर्मोपपादिना ॥१४
अथनेच्छतिमांकश्चिदस्माकंमदिरेक्षणा ।
ततस्तस्य न वित्तश्चायोदमयानविष्यते ॥१५

दशार्णाधिपति चारुवर्मा की कन्या सुमना ने अपने पिता के द्वारा स्वयंवर किये जाने पर, महाबली महात्मा दम को ही अपना पति बनाया ।।८-९।। मद्रराज के पुत्र महानन्द, विदर्भ राज के पुत्र वपुष्मान् तथा महाधनु नामक राजपुत्र ने उस सुमना की कामना की थी ।।१०-११।। परन्तु शत्रुओं का दमन करने वाले 'दम' को राजकन्या ने वरण किया, यह देखकर वह राजकुमार परस्पर विचार करने लगे ।।१२।। हम इस रूपवती राजकुमारी को इससे बल पूर्वक छीन कर ले जांयगे ।।१३।। इसके पश्चात् यह राजकुमारी स्वयंवर की विधि से हममें से जिसे चाहे स्वेच्छापूर्वक वरण करे, तब यह उसी की धर्म से उपलब्ध पत्नी मानी जायगी ।।१४।। यदि यह हममें से किसी को भी ग्रहण नही करेगी तो जो दम का वध कर देगा, यह उसकी पत्नी होगी ।।१५।।

इतितेनिश्चयकृत्वात्रय.पार्थिवनन्दनाः ।
जगृहुस्तासुचार्वङ्गीदमपार्श्ववर्तानुवर्त्तिनीम् ।।१६
तत केचिन्नृपास्तेपायेतत्पक्षा विचुक्रुशुः ।
चुक्रुशुश्चापरेभूपा केचिन्मध्यस्थतागता ।।१७
ततोदमस्तान्भूपालानवलोक्यसमन्तत ।
अनाकुलमनावाक्यमिदमाहमहामुने ।।१८
भोभूपाधर्मकृत्येपुयद्वदन्तिस्वयवरम् ।
दशार्णपतिनाभूपाःकृतेधर्म्येस्वयवरे ।
अधर्मोवाऽथवाधर्मोयदेभिर्गृह्यतेबलात् ।।१९
यद्यधर्मोनमेकार्यमन्यभार्याभविष्यति ।
धर्मोवातदलप्राणैर्यैरक्षयन्तेरिलघने ।।२०
ततोदशार्णाधिपतिश्चारुवर्मानिराधिप. ।
नि.शब्दकारयित्वातत्सद.प्राहमहामुने ।।२१

मार्कण्डेयजी ने कहा—उन तीनो राजकुमारो ने ऐसा विचार करके दम के पार्श्व मे बैठी हुई उस राजकुमारी का हरण कर लिया ।।१६।। उस समय दम पक्षीय राजाओ ने उनकी निन्दा और भर्त्सना की, बहुत से राजा अत्यन्त क्रोधित हुए और बहुत से तटस्थ रहे ।।१७।। फिर अपने चारो ओर राजाओ को स्थित

देखकर दम ने व्याकुलता पूर्वक कहा ॥१८॥ दम बोले—हे राजाओ ! जिस स्वयवर को धर्म कार्य समझा जाता है वह यथार्थ में धर्म है अथवा अधर्म है। इन्होने स्वयवर द्वारा प्राप्त हुई कन्या का जो हरण बलपूर्वक किया है ॥१९॥ तो यदि स्वयवर धर्म-कार्य नहीं है तो अवश्य ही यह अन्य की पत्नी बने, परन्तु यदि आप इसे धर्म कहते हो, तो शत्रु से तिरस्कृत हुए इस शरीर को प्राण रखने की क्या आवश्यकता है ? फिर दशार्णाधिपति चारुवर्मा ने सभाभवन को शब्द रहित कराते हुए कहा ॥२१॥

दमेनयदिद प्रोक्त धर्माधर्माश्रितनृपा ।
तद्वदध्वयथाधर्मोममाम्यचनलुप्यते ॥२२
तत केचिन्महीपालास्तमूचुर्वसुधाधिपम् ।
परम्परानुरागेणगान्धर्वोविहितोविधि. ॥२३
क्षत्रियाणापरमयनविट्शूद्रद्विजन्मनाम् ।
दममाश्रित्यनिष्पन्न सचास्यादुहितुस्तव ॥२४
इतिधर्माद्दमस्यैपादुहितातवपार्थिव ।
योऽन्यथावर्त्ततेमोहात्कामात्मासम्प्रवर्त्तते ॥२५
तयाऽपरेतदाप्रोचुर्महात्मानोहिभूभृताम् ।
पक्षेयेभूभृतोविप्रदशार्णाधिपतिवच ॥२६
मोहात्किमाहुर्धर्मोऽयगान्धर्वक्षत्रजन्मन: ।
नयेप्रशास्तानान्योहिराक्षस शस्त्रजीविनाम् ॥२७
बलादिमायोऽरनिहृत्यातुपरिपन्थिन ।
तस्यैपास्याद्राक्षसेनविवाहेनावनीश्वरा ॥२८

हे राजाओ ! दम ने धर्म अधर्म विषयक जो बात कही है उस पर आप अपनी सम्मति दीजिये, जिससे आप धर्म से च्युत न हों ॥२२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—तब अनेक राजा उनसे बोले कि परस्पर की प्रीति से गान्धर्व विवाह का विधान है ॥२३॥ यह विवाह क्षत्रियों के लिये उत्तम है, ब्राह्मण वैश्य या शूद्र के लिये नहीं, आपकी इस कन्या का विवाह उक्त विधान से दम के साथ ही सम्पन्न होगया है ॥२४॥ इसलिये हे राजन् ! आपकी पुत्री दम की

गी पत्नी हुई, परन्तु कामासक्त मनुष्य ही मोह में वशीभूत होकर इसका विरोध करते हैं ॥२५॥ इसके पश्चात् विरोध पक्ष के राजाओं ने दशार्णाधिपति से इस प्रकार कहा—॥२६॥ मोह के वशीभूत हुए यह राजागण कैसी बात कर रहे हैं? क्षत्रियों के हित में यह गान्धर्व विवाह ता है ही नहीं, अन्य विवाह में उनके लिये प्रशस्त नहीं हैं, शस्त्रजीवियों के लिये तो केवल राक्षस विवाह ही उचित माना गया है ॥२७॥ हे राजन्! विपक्ष को नष्ट करके इस कन्या को जो बलपूर्वक ले लेगा, राक्षस विवाह के विधान से यह उसी की भा होगी ॥२८॥

प्रधानतरएषोऽत्रविवाहद्वितयेमत. ।
क्षत्रियाणामतोधर्मोमहात्मन्दादिभि कृत ॥२९
अथप्रोचु पुनर्भू पार्थ पूर्वमुदितोनृप ।
परस्परानुरागेणजातिधर्माश्रितवचः ॥३०
सत्यशस्ताराक्षसोऽपिक्षत्रियाणापरोविधि. ।
किन्त्वसौजनकस्याम्येकुमार्य्यानुमतोवर ॥३१
हत्वातुपितृसम्बन्धबलेनह्रियतेह्रिया ।
सराक्षसोविधि प्रोक्तोनात्रभर्तृ करेम्थिता ॥३२
पश्यतासर्वभूपानाममयायदवतोदम ।

मे 'दम' का वरण किया है ॥३१॥ राक्षस विवाह वही है, जिसमे कन्या पक्ष के पिता आदि को मार कर या घायल करके कन्या का हरण कर लिया जाय, परन्तु पति को प्राप्त हुई कन्या का हरण करने से उसे राक्षस विवाह नहीं माना जा सकता ॥३२॥ सब नृपालो के सामने ही सुमना ने दम का वरण किया है, इसलिये यह विवाह मानव विवाह ही है, इसम राक्षस विवाह का विधान कौन-सा हुआ ? ॥३३॥ विवाह होने पर कन्यात्व नहीं रहता, इसलिये विवाह के होने तक ही उसे कन्या समझना चाहिये ॥३४॥ दम के हाथ से इस कन्या का बलपूर्वक हरण करने वाले लोग अपने बल के मद मे ऐसा कर सकते हैं, परन्तु यह कोई अच्छा कार्य नहीं है ॥३५॥

तच्छ्रुत्वाऽम्भोदम कोपकषायीकृतलोचन ।
आरोपयामासधनुर्वचनचेदमब्रवीत् ॥३६
ममाविभार्य्याबलिभि पश्यतोह्रियतेयदि ।
तत्कुलेनभुजाभ्यावाकोगुण क्लीबजन्मन ॥३७
धिङ्ममास्त्राणिधिक्छौर्य्यंधिक्छरान्धिक्छरासनम् ।
धिग्जन्ममेकुलेजन्ममरुत्तस्यमहात्मन ॥३८
यदिभार्य्यामिमेमूढा समादायवनान्विता ।
प्रयान्तिजीवनोधिक्तामभ्यर्थमनुप्यताम् ॥३९
इत्युक्त्वातान्महीपालान्महानन्दमुखान्बली ।
अथाब्रवीत्तदासर्वान्महारिदमनोदम ॥४०
एषातिशोभनाबालाचार्वङ्गीमदिरेक्षणा ।
किन्तस्यजन्मनाभार्य्यानयस्येयकुलोद्भवा ॥४१
इतिसञ्चिन्त्यभूपालास्तथायत्नसयुगे ।
यथानिर्जित्यमामेतापत्नीवुरुतमानिन ॥४२

मार्कण्डेयजी न कहा—यह बात सुनकर दम ने क्रोध से लाल नेत्र कर अपने धनुष पर ज्या चढाते हुए कहा—॥३६॥ यह मेरे सामने ही मेरी पत्नी का बलपूर्वक हरण करते हैं, इसलिए मैं क्लीव ही हुआ समझो इस प्रकार मेरे वश के गौरव और दोनो भुजाओ मे कोई गुण ही नहीं है ॥३७॥ मेरे जीवित

ही पत्नी हुई, परन्तु कामासक्त मनुष्य ही मोह के वशीभूत होकर इसका विरोध करते हैं ॥२५॥ इसके पश्चात् विरोध पक्ष के राजाओं ने दशार्णाधिपति से इस प्रकार कहा—॥२६॥ मोह के वशीभूत हुए यह राजागण कैसी बात कर रहे हैं ? क्षत्रियों के हित में यह गान्धर्व विवाह तो है ही नहीं, अन्य विवाह भी उनके लिये प्रशस्त नहीं हैं, शस्त्रजीवियों के लिये तो केवल राक्षस विवाह ही उचित माना गया है ॥२७॥ हे राजन् ! विपक्ष को नष्ट करके इस कन्या को *जो बलपूर्वक ले लेगा, राक्षस विवाह के विधान से यह उसी की भार्या होगी* ॥२८॥

प्रधानतरएषोऽत्रविवाहद्वितयेमत. ।
क्षत्रियाणामतोधर्मोमहानन्दादिभि कृत: ॥२६
अथप्रोचु पुनर्भूपार्थं पूर्वमुदितोनृप ।
परस्परानुरागेणजातिधर्माश्रितवचः ॥३०
सत्यशस्ताराक्षसोऽपिक्षत्रियाणापरोविधि. ।
किन्त्वसौजनकस्वाम्येकुमार्य्यानुमतोवर ॥३१
हृत्वातुपितृसम्बन्धबलेनह्रियतेह्रिया ।
सराक्षसोविधि प्रोक्तोनात्रभर्तृकरेस्थिता ॥३२
पश्यतासर्वभूपानामनयायदवृतोदम. ।
गान्धर्वस्येहनिष्पत्तौविवाहोराक्षसोऽत्रक ॥३३
विवाहिताया.कन्यायायान्यात्वनैवविद्यते ।
कन्यायाश्वविवाहेनसम्बन्ध पृथिवीश्वरा ॥३४
तइमेयेबलादेनादमादादातुमुद्यता ।
वलिनस्तेयदितत कुर्वन्तुनतुमाधुनत् ॥३५

क्षत्रियों में जब राक्षस विवाह की ही प्रमुखता है तब महानन्द आदि राजकुमारों ने धर्म का ही आचरण किया है ॥२६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—जिन राजाओं ने पहिले परम्परागत धर्म और जाति धर्म के विषय में कहा था, उन राजाओं ने पुन कहा ॥३०॥ *यह भी सत्य है कि क्षत्रियों में राक्षस विवाह* को श्रेष्ठ माना गया है, परन्तु इस राजकुमारी ने तो अपने पिता की अधीनता

मे 'दम' का वरण किया है ॥३१॥ राक्षस विवाह वही है, जिसमे कन्या पक्ष के पिता आदि को मार कर या घायल करके कन्या का हरण कर लिया जाय, परन्तु पति का प्राप्त हुई कन्या का हरण करने से उस राक्षस विवाह नहीं माना जा सकता ॥३२॥ सब नृपालो के सामने ही सुमना ने दम का वरण किया है, इसलिये यह विवाह गान्धर्व विवाह ही है, इसमे राक्षस विवाह का विधान कौन-सा हुआ ? ॥३३॥ विवाह होने पर कन्यात्व नही रहता, इसलिये विवाह के होने तक ही उसे कन्या समझना चाहिये ॥३४॥ दम के हाथ से इस कन्या का यत्नपूर्वक हरण करने वाले लोग अपने बल के मद मे ऐसा कर सकते हैं, परन्तु यह कोई अच्छा कार्य नहीं है ॥३५॥

तच्छ्रुत्वाऽसौदम कोपकषायीकृतलोचन ।
आरोपयामासधनुर्वचनचेदमब्रवीत् ॥३६
ममापिभार्य्याविलिभि पश्यतोह्रियतेयदि ।
तत्कुलेनभुजाभ्यावाकोगुण क्लीबजन्मन ॥३७
धिङ्ममास्त्राणिधिक्छौर्य्यंधिक्छराञ्धिक्छरासनम् ।
धिग्न्यर्थमेकुलेजन्ममरुत्तस्यमहात्मन ॥३८
यदिभार्य्यामिमेमूढा सभादायबलान्विता ।
प्रयान्तिजीवतोधिक्नाममध्यर्थमनुष्यताम् ॥३९
इत्युक्त्वातान्महीपालान्महानन्दमुवाचखलो ।
अथाब्रवीत्तदासर्वान्महारिदमनोदम ॥४०
एषातिशोभनाबालाचार्वङ्गीमदिरेक्षणा ।
किन्तस्यजन्मनाभार्य्यानियस्येयकुलोद्भवा ॥४१
इतिसञ्चिन्त्यभूपालास्त्वयायत्तसयुगे ।
यथानिर्जित्यमामेतापत्नींकुरुतमानिन ॥४२

मार्कण्डेयजी ने कहा—यह बात सुनकर दम ने क्रोध से लाल नेत्र कर अपने धनुष पर ज्या चढाते हुए कहा—॥३६॥ यह मेरे सामने ही मरी पत्नी का बलपूर्वक हरण करते हैं, इसलिए मैं क्लीब ही हुआ समझो, इस प्रकार मेरे वश के गौरव और दोनो भुजाओ मे कोई गुण ही नही है ॥३७॥ मेरे जीवित

ही पत्नी हुई, परन्तु कामासक्त मनुष्य ही मोह के वशीभूत होकर इसका विरोध करते हैं ॥२५॥ इसके पश्चात् विरोध पक्ष के राजाओं ने दशार्णाधिपति से इस प्रकार कहा—॥२६॥ मोह के वशीभूत हुए यह राजागण कैसी बात कर रहे हैं ? क्षत्रियों के हित में यह गान्धव विवाह तो है ही नहीं, अन्य विवाह भी उनके लिये प्रशस्त नहीं हैं, शस्त्रजीवियों के लिये तो केवल राक्षस विवाह ही उचित माना गया है ॥२७॥ हे राजन् ! विपक्ष को नष्ट करके इस कन्या को जो बलपूर्वक ले लेगा, राक्षस विवाह के विधान से यह उसी की भार्या होगी ॥२८॥

प्रधानतरएषोऽत्रविवाहद्वितयेमत. ।
क्षत्रियाणामतोधर्मोमहानन्दादिभि कृत ॥२६
अथप्रोचु पुनर्भू पार्थे पूर्वमुदितोनृप ।
परस्परानुरागेणजातिधर्माश्रितवचः ॥३०
सत्यशस्ताराक्षसोऽपिक्षत्रियाणापरोविधि. ।
किन्त्वसौजनकस्वाम्येकुमार्य्यानुमतोवर ॥३१
हृत्वातुपितृसम्बन्धबलेनह्रियतेहृया ।
सराक्षसोविधि प्रोक्तोनात्रभर्तृ करेस्थिता ॥३२
पश्यतासर्वभूपानामनयायद्वृतोदम ।
गान्धर्वस्येहनिष्पत्तौविवाहोराक्षसोऽनक ॥३३
विवाहितायाः कन्यायायान्यात्वनैवविद्यते ।
कन्यायाश्चविवाहेनसम्बन्ध पृथिवीश्वरा ॥३४
तइमेयेबलादेनादमादादातुमुद्यता ।
वलिनस्तेयदितत कुर्वन्तुनतुसाधुतत् ॥३५

क्षत्रियों में जब राक्षस विवाह की ही प्रमुखता है तब महानन्द आदि राजकुमारों ने धर्म का ही आचरण किया है ॥२६॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—जिन राजाओं ने पहिले परम्परागत धर्म और जाति धर्म के विषय में कहा था, उन राजाओं ने पुन कहा ॥३०॥ यह भी सत्य है कि क्षत्रियों में राक्षस विवाह को श्रेष्ठ माना गया है, परन्तु इस राजकुमारी ने तो अपने पिता की अधीनता

मे 'दम' का वरण किया है ॥३१॥ राक्षस विवाह वही है, जिसमे कन्या पक्ष के पिता आदि को मार कर या घायल करके कन्या का हरण कर लिया जाय, परन्तु पति को प्राप्त हुई कन्या का हरण करने से उस राक्षस विवाह नहीं माना जा सकता ॥३२॥ सब नृपालो के सामने ही सुमना ने दम का वरण किया है, इसलिये यह विवाह गांधर्व विवाह ही है, इसमे राक्षस विवाह का विधान कौन-सा हुआ ? ॥३३॥ विवाह होने पर कन्यात्व नहीं रहता, इसलिये विवाह के होने तक ही उसे कन्या समझना चाहिये ॥३४॥ दम के हाथ से इस कन्या का बलपूर्वक हरण करने वाले लोग अपने बल के मद मे ऐसा कर सकते हैं, परन्तु यह कोई अच्छा कार्य नहीं है ॥३५॥

तच्छ्रुत्वाऽसौदम कोपकषायीकृतलोचन ।
आरोपयामासधनुर्वचनचेदमब्रवीत् ॥३६
ममाभिभार्य्याविलिभि पश्यतोह्रियतेयदि ।
तत्कुलेनभुजाभ्याबाकोगुण क्लीबजन्मन ॥३७
धिङ्ममास्त्राणिधिक्छौर्य्यंधिक्छरान्धिक्छरासनम् ।
धिग्व्यर्थमेकुलेजन्ममरुत्तस्यमहात्मन ॥३८
यदिभार्य्यामिमेमूढा समादायजनान्विता ।
प्रयान्तिजीवतोधिक्तामम्यर्थमनुष्यताम् ॥३९
इत्युक्त्वातान्महीपालान्महानन्दसुतान्बली ।
अथाब्रवीत्तदासर्वान्महारिदमनोदम ॥४०
एषातिशोभनाबालासार्वङ्गीमदिरेक्षणा ।
विन्तस्यजन्मनाभार्य्यानिमस्येयकुतोद्भवा ॥४१
इतिसञ्चिन्त्यभूपालास्त्वयाय-तसयुगे ।
यथानिर्जित्यमामेनापत्नीपुरुषमानिन ॥४२

मार्कण्डेयजी ने कहा—यह बात सुनकर दम ने क्रोध से लाल नेत्र कर अपने धनुष पर ज्या चढाते हुए कहा—॥३६॥ यह मेरे सामने ही मेरी पत्नी का बलपूर्वक हरण करते हैं, इसलिए मैं क्लीव ही हुआ समझो, इस प्रकार मेरे वंश के गौरव और दोनों भुजाओं मे कोई गुण ही नहीं है ॥३७॥ मेरे जीवित

रहते हुए यह पत्नी का हरण कर ले जाँय तो मेरे अस्त्रों, बाणों और धनुष को धिक्कार है तथा महात्मा मरुत्त के वश मे उत्पन्न होने और मनुष्य बनने को भी धिक्कार है ॥३८-३९॥ शत्रुओं का दमन करने वाले महाबली दम ने ऐसा कहकर महानन्दादि के प्रति कहा ॥४०॥ हे सम्मानित राजागण ! यह सत्कुल में उत्पन्न हुई सुन्दरी बालिका जिसकी पत्नी नहीं हुई, उसका जन्म ही वृथा हुआ है ॥४१॥ यह सोचकर मुझे पराजित करके इसे अपनी पत्नी बना सको, वैसा ही प्रयत्न सग्राम भूमि मे करो ॥४२॥

इत्याभाष्यततस्तश्रशरवर्षममु चत ।
छादयन्पृथिवीपालास्तमसेवमहीरुहान् ॥४३
तेऽपिवीरामहीपाला शरक्तयष्टिमुद्गरान् ।
मुमुचुस्तत्प्रयुक्ताश्चदमश्चिच्छेदलीलया ॥४४
तेऽपितत्प्रहितान्बाणास्तेपाचासौशरोत्करान् ।
चिच्छेदपृथिवीशानांनरिष्यन्तात्मजोमुने ॥४५
वर्त्तमानेतदायुद्धे दमस्यक्षितिपात्मजै. ।
प्रविवेशमहानन्दःखड्गपाणिर्यतोदम ॥४६
तमायान्तदमोदृष्ट्वाखड्गपाणिमहामृधे ।
मुमोचशरवर्षाणिवर्षाणीवपुरन्दर. ॥४७
तदस्त्राणिततस्तानिशरजालानितत्क्षणात् ।
महानन्द प्रचिच्छेदखड्गे नान्यानवचयत् ॥४८
ततोरोषात्समारुह्यतदमस्यतदारथम् ।
महानन्दोमहावीर्योदमेनयुयुधेसह ॥४९

ऐसा कहकर दम ने उन राजाओं के आच्छादन पूर्वक बाण-वृष्टि की ॥४३॥ उन राजाओं ने भी बाण, शक्ति, ऋष्टि, मुगदर आदि इन पर चलाये, परन्तु इन्होंने उन सब शस्त्रास्त्रों को लीलापूर्वक ही नष्ट कर दिया ॥४४॥ हे मुने ! उस समय सब राजा दम के अस्त्रों को और दम भी उनके अस्त्रों को काटने लगे ॥४५॥ दम और उन राजपुत्रों के मध्य इस प्रकार सग्राम हो ही रहा था, तभी हाथ मे खड्ग ग्रहण किये हुए महानन्द उनके सामने हुआ ॥४६॥

उसे हाथ में खड्ग लिये आता देखकर, इन्द्र द्वारा जल वृष्टि करने के समान, दम ने बाणों की वर्षा प्रारम्भ की ॥४७॥ महानन्द ने उनके सब अस्त्रों और बाणों को अपने खड्ग से काट डाला, उसने यह कार्य इस चतुराई से किया कि अन्य राजागण उसे देख भी न सके ॥४८॥ फिर क्रोध में भरा हुआ वह महानन्द दम के रथ पर चढ़कर उसके साथ लड़ने लगा ॥४९॥

वहुधायुध्यमानस्यमहानन्दस्यलाघवात् ।
दमोमुमोचहृदयेशरंकालानलप्रभम् ॥५०
तलग्नमात्मनोत्कृष्यविभिन्नेनततोहृदा ।
दमप्रतिविचिक्षेपमहानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ॥५१
पतन्तचैनमुल्काभमशक्त्याचिक्षेपतद्दम ।
शिरोवैतसपत्रेणमहानन्दस्यचाच्छिनत् ॥५२
तस्मिन्हतेमहानन्देप्राचुर्य्येणपराङ्मुखा ।
वभूवु पार्थिवास्तथोवपुष्मान्कुण्डिनाधिपः ॥५३
दमेनयुधेचासौवलगर्वमदान्वित ।
दाक्षिणात्यमहीपालतनयोरणगोचर ॥५४
युध्यमानस्यतस्योग्र करवालसवैलघु ।
शिरश्छेदमारथेदस्यैवशिर मस्येनयाग्रजम् ॥५५
छिन्नखड्गोगदासोऽथजग्राहवहुकण्टकाम् ।
तामप्यस्यमच्छिन्नेदकरस्यामिरमत्तर ॥५६

बहुत समय तक इस प्रकार युद्ध करते हुए दम ने उसके हृदय में कालाग्नि के समान उज्वल बाण छोड़ा ॥५०॥ महानन्द ने हृदय में लगे हुए उस बाण को स्वयं ही निकाला और दम पर अपना उज्ज्वल खड्ग का वार किया ॥५१॥ दम ने विद्युत् के समान गिरते हुए उस खड्ग को शक्ति द्वारा काट कर तुरन्त ही वेतसपत्र बाण के द्वारा उस महानन्द का शीश काट डाला ॥५२॥ महानन्द के समाप्त होते ही कुण्डिनाधिपति वपुष्मान् के अतिरिक्त अधिकतर नृप रण से विमुख हो गये ॥५३॥ वह राजपुत्र दाक्षिणात्य एवं अपने पराक्रम के प्रति अभिमानपूर्ण वपुष्मान् रण-क्षेत्र में दम से युद्ध करने लगा ॥५४॥ युद्ध

क्षेत्र में दम ने तुरन्त वपुष्मान् की तीक्ष्ण तलवार एवं उसके सारथी का सिर व रथ की ध्वजा काट डाली ॥५५॥ तलवार के नष्ट होने पर वपुष्मान् ने अनेक काटों से युक्त गदा धारण की और उसके वार करने से पूर्व ही दम ने वह गदा उसके हाथों में खण्ड-खण्ड कर डाली ॥५६॥

यावदन्यत्समादत्ते सवपुष्मान्वरायुधम् ।
तावच्छरेणतविद्धादमोभूमावपातयत् ॥५७
सपातितस्ततोभूमौविह्वलाङ्ग सवेपथु ।
विनिवृत्तमतिर्युद्धादभवक्षितिपात्मज ॥५८
तमालोक्यतथाभूतमयुयुद्धमतिमात्मवान् ।
उत्सृज्यादायसुमनासुमना प्रययौदम ॥५९
ततोदशार्णाधिपति प्रीतिमानकरोत्तमो ।
दमस्यसुमनायाश्चविवाहविधिपूर्वकम् ।।६०
कृतदारोदमस्तत्रदशार्णाधिपतेःपुरे ।
स्थित्वाऽल्पकालप्रययौसभार्योनिजमन्दिरम् ॥६१
दशार्णाधिपतिश्चासौदत्त्वानागास्तुरङ्गमान् ।
रथगोऽश्वखरोष्ट्राश्चदासीदासास्तथाबहून् ॥६२
वस्त्रालङ्कारचापादिवरोपस्करमामनम् ।
अन्येस्तैश्चतथाभाण्डे परिपूर्णंव्यसर्जयत् ॥६३

इसके पश्चात् वपुष्मान् द्वारा सर्वोत्तम अस्त्र ग्रहण करने पर भी दम ने उसे अपनी बाण-वर्षा द्वारा टुकड़े कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥५७॥ तब राजपुत्र वपुष्मान् ने व्याकुल व कम्पित शरीर को पृथ्वी पर गिरा दिया व युद्ध की तत्परता त्याग दी ॥५८॥ दम ने उसकी ऐसी स्थिति एवं उसकी युद्ध के लिए तत्परता न देख उसे छोड़ दिया एवं आनन्दपूर्ण हृदय से सुमना को लेकर चले गये ॥५९॥ इसके पश्चात् दशार्णाधिपति ने आनन्दित चित्त होकर सुमना व दम का विवाह विधिपूर्वक सम्पन्न किया ॥६०॥ भार्या प्राप्त करके दम कुछ समय तक दशार्णाधिपति के महल में रहे तदनन्तर पत्नी के साथ अपने गृह को चले गये ॥६१॥ उनको विदा करते समय दशार्णाधिपति ने उन्हे अनेकों हाथी,

घोड़े, रथ, गौ, खर, ऊँट, दास, दासी ॥६२॥ वस्त्र, ग्राभूषण, धनुष ग्रादि विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य वस्तुऐ भेंट स्वरूप एव दानस्वरूप धन, रत्न ग्रादि प्रदान किये ॥६३॥

१२१—दम चरित्र (२)

मतालब्ध्वातथापत्नीसुमनांसुमहामुने ।
प्रणम्यसपितु पादौमातुश्चक्षितिपात्मज. ॥१
साचतौश्वशुरौसुभ्रू र्नताममसुमनातदा ।
ताभ्यातौचतदाविप्रश्र शीभिरभिनन्दितौ ॥२
महोत्सवश्चसजज्ञ नरिष्यन्तस्यवैपुरे ।
कृतदारेचसप्राप्त दशार्णाधिपतेपुरात् ॥३
सम्बन्धिनदशार्णेशजिताश्चपृथिवीश्वरान् ।
श्रुत्वापुत्रेणमुमुदेनरिष्यतोमहीपति ॥४
सोऽपिरेमेसुमनयामहाराजसुतोदमः ।
वरोद्यानवनोद्द् शप्रासादगिरिसानुषु ॥५
ग्रथकालेनमहतारममाणादमेनसा ।
ग्रवापगर्भसुमनादशार्णाधिपते सुता ॥६
सोऽपिराजानरिष्यन्तोभुक्तभोगोमहीपति ।
वय परिणतिप्राप्यदमराज्येऽभिषिच्यच ॥७
वनजगामेद्रमेनापत्नीचास्यतपस्विनी ।
वानप्रस्थविधानेनमतत्रसमतिष्ठत ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा— हे महर्षि ! दम ने ग्रपनी भार्या सुमना सहित ग्राकर ग्रपने माता-पिता के चरणा म प्रणाम किया ॥१॥ एव इसी प्रकार सुमना ने भी उन्ह प्रणाम किया। हे द्विज ! उन दोनो माता पिता ने भी ग्राशीर्वाद प्रदान करते हुए उनका ग्रभिनन्दन किया ॥२॥ सुमना के भार्या के

रूप मे ग्रहण करके दम दशार्णाधिपति के महल से आये, तो नरिष्यन्त के महल मे आनन्दोत्सव प्रारम्भ हो गया ॥३॥ नराधिपति नरिष्यन्त को दशार्णराज के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने एव अपने पुत्र द्वारा अन्य राजाओ को हराने का वृतात सुनकर अत्यन्त सतोष हुआ ॥४॥ इसके पश्चात् राजकुमार दम अनुपम उद्यानो, वनो, महलो एव पर्वत आदि स्थलो पर भार्या सुमना के साथ विहार करने लगे ॥५॥ इस प्रकार विहार करते हुए कुछ समय पश्चात् दशार्ण सुता ने गर्भ धारण किया ॥६॥ उसी काल नृपेन्द्र नरिष्यन्त ने वैभव का उपभोग कर अपनी वृद्धावस्था को देखकर दम को राज्याभिषेक कर दिया ॥७॥ अपनी भार्या रानी इन्द्रसेना को साथ लेकर वन मे प्रस्थान कर गये एव *वहाँ विधिपूर्वक वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने लगे ॥८॥*

दाक्षिणात्य सुदुर्वृत्त सक्रन्दनसुतोवने ।
वपुष्मान्समृगान्हन्तुययावल्पपदानुग ॥९
सतदृष्ट्वानरिष्यन्ततापसमलपाङ्किनम् ।
इन्द्रसेनाचतत्पत्नीतपसातिसुदुर्बलाम् ॥१०
पप्रच्छकस्त्वभोविप्रःक्षत्रियोवावनेचरः ।
वानप्रस्थमनुप्राप्तोवैश्योवाममकथ्यताम् ॥११
ततामौनव्रतीभूपोनहितस्योत्तरददौ ।
इन्द्रसेनाचतत्सर्वमाचष्टाम्मैयथातथम् ॥१२
ज्ञात्वातञ्चनरिष्यन्तवपुष्मान्पितररिपो ।
प्राप्तोऽस्मीतिवदन्कोपाज्जटासुपरिगृह्यच ॥१३
हाहेतिचन्द्रसेनायारुदत्याश्चाप्यगद्गदम् ।
चकर्पकोपात्स्वङ्ग चवाक्य चेदमुवाचह ॥१४

एक बार दाक्षिणात्य नृप सक्रन्दन का दुराचारी पुत्र वपुष्मान् अपने कुछ अनुचरों के साथ उस वन में आखेट के लिए आया ॥९॥ वहाँ वानप्रस्थी नरिष्यन्त को मलिन देह व निर्बलाङ्गी इन्द्रसेना को देखकर ॥१०॥ वपुष्मान् उनसे पूछा तुम कौन हो ? ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य में से किस जाति के हो वानप्रस्थी होकर वनवासी हुए हो, यह मुझे बताओ ॥११॥ राजा मौन

व्रत मे थे, इसलिए इसका उत्तर नही दे सके परन्तु, इन्द्रसना ने सब बात यथावत् बतादी ॥१२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—वपुष्मान् ने उस शत्रु का पिता नरिष्यन्त जान कर "पा गया" कहते हुए क्रोधपूर्वक उनकी जटा पकडली ॥१३॥ उस समय इन्द्रसेना हाहा कर रोने लगी, तभी दुराचारी ने म्यान से तलवार निकालकर कहा ॥१४॥

निर्जित समरेयेनयेनमेसुमनाहृता ।
दमस्यतस्यपितरहंनिघ्येऽवतुतन्दमः ॥१५
येनाखिलमहीपालपुना कन्यार्थमागता ।
अवधूताहनिघ्येऽहपितरतस्यदुर्मतेः ॥१६
यौवनास्त्रस्वरूपेपुमदोयस्यदुरात्मन ।
सदमोवारयत्वेपहन्मितस्यरिपोर्गुरुम् ॥१७
इत्युक्त्वासदुराचारोवपुष्मानवनीपति ।
क्रदन्त्यामिन्द्रसेनायाशिरश्छिच्छेदतस्यच ॥१८
ततोधिग्धिड्मुनिजनाश्रन्येचवनवासिन ।
तमूचु सचतहत्वाजगामस्वपुरवनात् ॥१९
गतेतस्मिन्विनिश्वस्यसेन्द्रसेनावपुष्मति ।
प्रेषयामासपुनस्यसमीपशूद्रतापसम् ॥२०

जिसने मुझे युद्ध मे हरा दिया था और जो मेरी सुमना का हरण कर ले गया है उस दम के पिता का मैं वध करता हू, वह दम यहा आकर इसकी रक्षा करे ॥१५॥ कन्या की कामना से सब राजकुमारो को जिसने अपमानित किया, उस दम के पिता को आज मैं मार रहा हू ॥१६॥ जो योद्धाओ के दमनकारी स्वभाव वाला है, मैं आज उस दुरात्मा शत्रु के पिता को विनष्ट करता हू दम आकर इसको बचावे ॥१७॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—इतना कह कर दुरात्मा राजा वपुष्मान् ने रुदन करती हुई इन्द्रसेना के समक्ष नरिष्यन्त का मस्तक छिन्न कर दिया ॥१८॥ यह देखकर मुनिगण और अन्य सब वनवासी उसे धिक्कार देने लगे और वह भी नरिष्यन्त को इस दशा में छोडकर

अपने नगर को चला गया ।।१९।। जब वपुष्मान् चला गया, तब इन्द्रसेना ने दीर्घ विश्वास लेकर एक वृद्ध तपस्वी को अपने पुत्र के पास भेजा ।।२०।।

गच्छेथाआशुमेपुत्रदमम्र्ूहिवचोमम ।
अभिज्ञोह्यसिमद्भर्तुंवृत्तान्तप्रोच्यतेऽत्रकिम् ।।२१
तथापिवाच्य पुत्रोमेयद्ब्रवीम्यतिदुःखिता ।
लघनामीदृशीप्राप्ताविलोक्यतामहीपते ।।२२
मद्भर्त्तऽधिकृतोराजाचतुर्णांपरिपालकः ।
त्वमाश्रमाणांकियुक्त तापसान्यन्नरक्षसि ।।२३
भर्तामिमनरिष्यन्तस्तापसस्तपसिस्थित ।
विलपन्त्यास्तथानाथोयथानासिनथात्वयि ।।२४
आकृष्यकेशेषुबलादपराधविनातत ।
हतोवपुष्मताख्यातिमितितेभूपतिर्गता ।।२५
एवस्थितेतत्क्रियतायथाधर्मोनलुप्यते ।
तथाचनैववक्तव्यमाताहृतापसी॰त ।।२६
पितावृद्धस्तपस्वीचनापराधनेदूषित ।
निहतोयेनयत्तस्यकर्तव्यतद्विचिन्त्यताम् ।।२७
सन्तितेमन्त्रिणोवीरा सर्वशास्त्रार्थवेदिन ।
तै सहालोच्ययत्कार्यमेवभूतेकुरुष्वतत् ।।२८

इन्द्रसेना ने उससे कहा कि तुम शीघ्र ही हमारे पुत्र दम के पास जाकर इधर का समाचार कहो, तुम सब वृतान्त को भले प्रकार जानते हो, इसलिए तुम्हे बताने की कोई आवश्यकता नही है ।।२१।। फिर भी राजा का ऐसा अपमान उपस्थित देखकर और अत्यन्त दुःखित होकर मैं जो कह रही हूँ, वह सब मेरे पुत्र से कहना ।।२२।। तुम राजा हो, चारो आश्रम के पालन कर्त्ता एव स्वामी नियुक्त हुए हो, फिर भी तुम तपस्वियो की रक्षा करते, क्या यह उचित है ? ।।२३।। मेरे पति नरिष्यन्त यहाँ तप करते थे, परन्तु, तुम रक्षा करने वाले के होते हुए भी मेरे द्वारा विलाप करते करते वपुष्मान् ने उनका निरपराध ही वध कर दिया है । तुमने राजा होकर पसिद्धि उपलब्ध की है ।।२४।।२५।।

इस दशा मे जिससे धर्म लुप्त न हो वैसा ही कार्य करो, इससे अधिक कहना उचित नहीं समझते ॥२६॥ तुम्हारे पिता प्रथम तो वृद्ध थे, इस पर भी तपस्वी और सर्वथा निरपराधी थे, ऐसी अवस्था मे उनकी हत्या की गई है। इस विषय मे अपने कर्त्तव्य का भलीभाति निश्चय करो ॥२७॥ तुम्हारे वीर मन्त्री शास्त्र ज्ञाता हैं उनसे परामर्शपूर्वक जो कर्त्तव्य हो वही करना चाहिए ॥२८॥

नास्माकमधिकारोऽनापसानानराधिप ।
कुरुष्वैतदितीत्यत्वमेवभूपतिभाषितम् ॥२९
विदूरथस्यजनकोयवनेनयथाहत ।
तथायतवपुत्रस्यकुलतेनविनाशितम् ॥३०
जम्भस्यासुरराज्यस्यपितादष्टोभुजङ्गमै ।
तेनाप्यखिलपातालवासिन पन्नगाहता. ॥३१
पराशरेणपितरशक्तिनरक्षसाऽहतम् ।
श्रुत्वाऽग्नौपातितकृत्स्नरक्षसामभवत्कुलम् ॥३२
अन्यस्यापिस्ववशस्यलघनाक्रियतेह्रिया ।
तानालक्षत्रिय सोढु किपुन पितृमारणम् ॥३३
नायपितातेनिहतोनास्मिन्छस्त्रनिपातितम् ।
त्वामत्रनिहतमन्येत्वयिशस्त्रनिपातितम् ॥३४

हे राजन् ! तुम्हारे पिता ने मरते समय कहा है कि मैं तपस्वी हूँ, इस विषय मे अनधिकारी हू, इसलिए तुम्हे ही इसका प्रतिकार करना है ॥२९॥ हे पुत्र ! जिस प्रकार विदूरथ के पिता का यवन ने वध किया था, वैसे ही वपुष्मान ने तुम्हार पिता का वध करके कुल को नष्ट किया हैं ॥३०॥ जब दैत्यराज जभ क पिता को सर्पों ने काट लिया था, तब जभ ने पातालवासी सभी नागो को निहत किया था ॥३१॥ और उस असुर के द्वारा पिता शक्ति की मृत्यु हुई सुनकर पराशर जी ने सम्पूर्ण असुर-वश को अग्नि मे दग्ध कर दिया था ॥३२॥ जब क्षत्रियगण अपने कुल के किसी भी व्यक्ति का अपमान सहन नहीं कर पाते तो पिता के वध की बात का तो कहना ही क्या है ॥३३॥

मैं समझती हूं कि तुम्हारे पिता का वध नहीं हुआ है उन पर शस्त्र नहीं चलाया गया अपितु इस प्रकार तुम्हारा ही वध हुआ है ।।३४।।

बिभेत्यस्यहिकः शस्त्रन्यस्तयेनवनौकसाम् ।
तवभूपस्यपुत्रस्यमाविभेतुविभेतुवा ।।३५
तवेयलघनायुक्तायदस्मिस्ततत्समाचर ।
वपुष्मतिमहाराजसभृत्यज्ञातिबाधवे ।।३६
इतिसक्रान्तसन्देशमिन्द्रसेनाविसृज्यतम् ।
पतिदेहमुपाश्लिष्यविवेशाग्निमनस्विनी ।।३७

वन वासियों के ऊपर जो हथियार नहीं उठाता है उसका भय कौन करेगा ? अथवा उसका पौरुष ही क्या होगा ? तुम उनके पुत्र तथा पृथ्वी के पालक हो, यदि शत्रु को नष्ट कराने तो तुम्हारा भय सभी मानेंगे अन्यथा तुम्हारे शासन में भी विघ्न उपस्थित हो जायगा ।।३५।। हे राजन् ! ये तिरस्कार हुआ है, इसलिए भृत्यों व वपुष्मान् के प्रति तुम्हें जो करना चाहिये, वही करो ।।३६।। मार्कण्डेय जी ने कहा—इन्द्रसेना ने उस तापस से यह सदेश कह कर उसे विदा किया और पति के शरीर का आलिंगन करके अग्नि में प्रवेश किया ।।३७।।

१६२—दम चरित्र (३)

इन्द्रसेनासमाज्ञप्तःसगत्वाशूद्रतापस ।
समाचष्टयथापूर्वंदमायनिधनपितु ।।१
तापसेनसमाख्यातेदमस्तेनपितुर्वधे ।
क्रोधेनातीवजज्वालहविषेवाग्निरुद्धन ।।२
सतुक्रोधाग्निनाधीरोदह्यमानोमहामुने ।
करवरेणनिष्पिष्यवाक्यमतदुवाचह ।।३

अनाथइवमेतातोमयिपुत्रेनुजीवति ।
घातित सुनृशंसेनपरिभूयकुलमम ॥४
तापकरोम्यहकिवाप्येपवलैव्यात्क्षमाम्यहम् ।
दुवृ त्तशातौशिष्टानापालनेऽधिकृतात्वयम् ॥५
पितरंचापिनिहतदृष्ट्वाजीवन्तिशत्रवः ।
तत्किमेतेनबहुनाहातातेतिचकिंपुनः ॥६
विलापेनात्रयत्कृत्यतदेषोऽत्रकरोम्यहम् ।
यद्यहंतस्यरक्ते नदेहोत्थेनवपुष्मतः ।
नकरोमिगुरोस्तृप्तितत्प्रवेक्ष्येहुताशनम् ॥७
तच्छोणितेनोदककर्मतस्यामासेनसम्यग्द्विजभोजनच ।
कुर्यापितुस्तस्यचपिंडदाननचेत्प्रवेक्ष्याभिहुताशनतत ॥८

मार्कण्डेय जो ने कहा—इन्द्रमेना की आज्ञा से शूद्र तापम ने दम के निकट जाकर उनके पिता की मृत्यु का समाचार और रानी इन्द्रमेना ने जो कहा था, वह सब कह सुनाया ॥१॥ पिता की मृत्यु का पूर्ण सम्वाद सुन कर घृताहुति से तीक्ष्ण हुई अग्नि के समान राजा दम क्रोध से लाल हो गये ॥२॥ यद्यपि वह स्वभाव से धीर थे, परन्तु उस समय क्रोधाग्नि मे प्रज्वलित होकर हाथ मलते हुए बोले ॥३॥ मुझ पुत्र के जीवित रहते हुए उस नृशस ने मेरे कुल के अपमान पूर्वक पिता की अनाथ के समान हत्या की है ॥४॥ मैं क्रोध करू या क्लीवता से क्षमा कर दू, परन्तु मैं दुष्टो का दमन करने और शिष्ट-जनो का पालन करने के लिये नियुक्त हुआ हूं ॥५॥ पिता का बध करने पर भी मेरे शत्रु अभी तक जीवित हैं, परन्तु इस प्रकार अधिक वार्ता से क्या लाभ है ॥६॥ अब मुझे जो कर्त्तव्य है। वही करता हूं। यदि वपुष्मान् के देह से निकले हुए रुधिर से अपने पिता का तर्पण न करू तो शरीर में प्रवेश कर जाऊंगा ॥७॥ यदि उसे मारकर उसके रक्त से मृत-पिता का तर्पण न करू और पितरो को पिंड दान न करू तो मैं अग्नि मे प्रविष्ट होऊंगा ॥८॥

साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसघाः ।
कुर्वन्तिचेत्तानपिचास्त्रपूगैर्भस्मीकरोम्येपरपासमेतः ॥९

नीशूरमाधार्मिकमप्रशस्ततदाक्षिणात्यसमरेनिहत्य ।
भोक्ष्येततोऽहपृथ्वीचकृत्स्नाविह्निप्रवेक्ष्याम्यनिहत्यतवा ॥१०
सुदुर्मतितापसवृद्धघातिनवनस्थगसाधुर्विधिविदग्धगम् ।
हन्ताहमद्याखिलबन्धुमित्रपदातिहस्त्यश्वबलै समेतम् ॥११
एषोऽहमादायधनु सखड्गोरथीतथैवारिबलसमेत्य ।
करोमिवैयत्कदनसमस्ता पश्यन्तुमेदेवगणासमेता ॥१२
योय सहायोभवितायतस्यमयासमेतस्यरणायभूय ।
तस्यैवनि शेषकुलक्षयायसमुद्यतोऽहनिजबाहुसैन्य ॥१३
यदिकुलशिखराऽस्मिन्सयुगेदेवराज',
पितृपतिरथचोग्र दण्डमुद्यम्यकोपात् ।
धनपतिवरुणार्कारक्षितुन्त यतन्ते,
निशितशरवरौघैर्घातयिष्येतथापि ॥१४
नियतमतिरदोष काननाखण्डलोका,
निपतितफलभक्ष सर्वभूतेपुमैत्र ।
प्रभवतिमयिपुत्रैर्हिसितत्तोयेनत त,
पिशितरुधिरतृप्तास्तस्यसन्त्वद्यगृध्रा ॥१५

असुर देव, दक्ष, गन्धर्व, विद्याधर अथवा सिद्ध गण जो भी उसकी सहायता करेगा, उसे भी मैं अपने अस्त्रानल से भस्म कर डालूँगा ॥६॥ उस अशौर्य अधार्मिक, निंदित, दाक्षिणात्य को युद्ध मे मारकर ही सम्पूर्ण पृथ्वी को भोगूँगा अथवा उसके वध मे असमर्थ होने पर अग्नि मे प्रविष्ट हो जाऊँगा ॥१०॥ जिस दुर्मति ने मेरे तपोनिरत वनवासी मौनव्रती वृद्ध पिता के शांत वचनों के उपरात भी उनकी हत्या की है, उसे मैं अभी उसके सब बन्धुओ मित्रो तथा पैदल और सवार के सहित मार डालूँगा ॥११॥ मैं अब असि और धनुष को ग्रहण करता हुआ रथारूढ़ होकर शत्रु सेना के मध्य उपस्थित हो कर उसके सहार कार्य मे लगता हूँ। मेरा वह कृत्य सब देवगण देखें ॥१२॥ युद्ध में मेरे साथ भिड़ने पर उसका जो जो भी सहायक होगा उस उसको अपनी बाहु और सेना द्वारा कुल सहित नाश करने के लिये मैं आज तत्पर हुआ। हु

।।१३।। इस संग्राम मे वज्रधारी इन्द्र, उग्र दण्ड देने वाले यम, अथवा कुबेर, वरुण और सूर्य भी यदि उसकी रक्षा का प्रयत्न करेंगे तो मैं अपने श्रेष्ठ बाणों से उनको भी नष्ट कर डालूँगा ।।१४।। मुझ प्रभावशाली पुत्र के रहते हुए भी जिसने मेरे संयमचेता दोष रहित वनवासी केवल गिरे हुए फल से जीवन-निर्वाह करने वाले एवं सब प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रखने वाले पिता की हत्या की है। आज उसके रक्त और मांस से गृद्ध-गण तृप्ति को प्राप्त होंगे ।।१५

१२३—वपुष्मान् वध

इतीप्रतिज्ञायतदानरिष्यतसुतोदम. ।
कोपामर्षविवृत्ताक्ष.श्मश्रु मावृत्यपाणिना ।।१
हाहतोऽस्मीतिपितरध्यात्वादैवविनिंद्यच ।
प्रोवाचमंत्रिण सर्वानानिनायपुरोहितम् ।।२
यदत्रकृत्यतद्ब्रूततातेप्राप्ते सुरालयम् ।
श्रुत भवद्भिर्यत्प्रोक्त तेनशूद्रतपस्विना ।।३
वृद्धस्तपस्वीसनृपोवानप्रस्थव्रतेस्थित ।
मौनव्रतधरोऽशस्त्रोमन्मात्राचेन्द्रसेनया ।।४
प्रोक्त ससृष्टयास्वात्म्याद्याथातथ्यवपुष्मते ।
तेनापिखड्गमाकृष्यजटासव्येनपाणिना ।।५
धृत्वाजघानदुष्टात्मालोकनाथमनाथवत् ।
माताचसदिश्यमाधिक्छन्दब्रवतीसती ।।६
मदभाग्यचनि श्रीकप्रविष्टाहव्यवाहनम् ।
तमालिग्यनरिष्यत प्रयातात्रिदशालयम् ।।७

मार्कण्डेय जी ने कहा—इस प्रकार प्रण करके क्रोध मे भरे हुए दम ने घूर्णित नेत्रों से मूँछो पर हाथ फेर कर उन्हे ऊँची किया ।।१।। और अपने पिता का चिन्तन तथा दैव की निन्दा करने लगे, फिर पुरोहितों को बुलाया

और अमात्यों के समक्ष उनसे बोले ॥२॥ दम ने कहा—पिता जी स्वर्गवासी होगये, वृद्ध तापस के द्वारा यह बात आप सब को ज्ञात हो चुकी है, अब क्या कर्त्तव्य, वह मुझे बताइये ॥३॥ सब पर शासन करने वाले वह महाराज वृद्धावस्था में वानप्रस्थी होकर मौन व्रत का अवलम्बन कर रहे थे, वपुष्मान् द्वारा परिचय पूछने पर मेरी माता इन्द्रसेना ने ॥४॥ उसे अपना सम्पूर्ण परिचय यथार्थ रूप से दिया, तभी उस दुष्ट ने तलवार निकाल कर अपने वामहस्त से ॥५॥ मेरे पिता को अनाथ के समान पकड़ लिया और उनकी हत्या कर दी, तब मेरी सती माता ने मुझ मंदभाग्य और निःश्रीक को धिक्कारा और मेरे पिता का आलिंगन करके अग्नि में प्रविष्ट होगई ॥६-७॥

सोऽहमद्यकरिष्यामियन्मेमातुरुदीरितम् ।
हस्त्यश्वरथपादातसैन्यचपरिकल्प्यताम् ॥८
अनिर्याप्यपितुर्वैरमहत्वापितृघातकम् ।
अनुल्लंघ्यवचोमातुर्जीवितु किमिहोत्सहे ॥९
मनिपास्तद्वच श्रुत्वाहाहेत्युक्त्वातथाचतत् ।
एतयन्तोविमनस सभृत्यबलवाहना ॥१०
निर्ययु सपरीवारा.पुरस्कृत्यदमनृपम् ।
गृहीत्वाचाशिषोविप्राद्त्रिकालज्ञात्पुरोधस. ॥११
अहिंराजिचनि स्वस्यदम प्रायाद्वपुष्मतम् ।
सीमापालादिसामतान्निघ्नन्याम्यादिशत्वरा ॥१२
निरीक्ष्यत समायातवपुष्मान्मर्पपूरितः ।
संक्रन्दनसुतेनापिदमोज्ञातोवपुष्मता ।
आयात सपरीवार सामात्य.सपरिच्छदः ॥१३
अकम्पितेनमनसासासैन्यानिदिदेशह ।
दूतश्चप्रेषयामासनिर्गम्यनगराद्वहि ॥१४

माता ने जो आज्ञा मुझे भेजी है अब मुझे तदनुसार कार्य करना है, रथ, अश्व, पैदल आदि से युक्त वह चतुरंगिणी सेना सुसज्जित की जाय ॥८॥

पितृ-द्वेषी और पितृ घातक को मारे बिना और माता की आज्ञा का पालन किये बिना जीवित रहने पर मुझ में उत्साह नहीं रह सकता ॥९॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—उनके वचन सुन कर मन्त्रिगण ने शोक व्यक्त कर राजाज्ञा का पालन किया और वे भृत्य, सेना, वाहनादि के सहित ॥१०॥ सपरिवार चल पड़े और त्रिकालज्ञ पुरोहितों का आशीर्वाद लेकर दम भी ॥११॥ नागराज के समान श्वासोच्छ्वास छोड़ते हुए सीमापालक सामन्तों को मारते हुए दक्षिण दिशा में गये ॥१२॥ सपरिवार और मन्त्रिगण के साथ वीर देश में दम का आगमन सुन कर सक्रन्दन पुत्र वपुष्मान् ने भी क्रोध पूर्वक ॥१३॥ दृढ़चित्त से अपनी सेना को युद्ध करने का आदेश दिया और नगर से बाहर निकल कर दूत के द्वारा यह सन्देश भेजा ॥१४॥

त्वशोघ्रतरमागच्छनरिष्यत प्रतोक्षते ।
सभार्यस्त्वघोत्वसमायाहिममातिकम् ॥१५
इमेमद्वाहुनिर्मुक्ता-शितावाणा पिपासिता ।
भित्वाशरीरसग्रामेपास्यतिरुधिरतव ॥१६
श्रुत्वादमस्तुतत्सर्वदूतप्रोक्त यथोत्वरन् ।
स्मृत्वाप्रतिज्ञापूर्वोक्तानिनिःश्वसन्नुरगोयथा ॥१७
आहूतसमरेत्वंवपुमान्सेनाविकत्थनः ।
ततोयुद्धमतीवासीद्दमस्यचवपुष्मत ॥१८
रथोचरथिनानागोनागिनाहयिनाहयो ।
अयुध्यतचविप्रर्षेतद्युद्ध तुमुलह्यभूत ॥१९
पश्यतासर्वदेवानासिद्धगवर्वरक्षसाम् ।
चकपेवसुधात्यान्युध्यमानेदमेयुधि ॥२०
नगजोनरथोनाश्वस्तस्यबाणसहस्नुयः ।
ततोदमेनयुयुधेमेनाध्य क्षावमुष्मत ॥२१

अरे क्षत्रियाधम ! तू शीघ्र ही सामने आ, अरिष्यन्त भी पत्नी के सहित तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसलिये तुरन्त ही मेरे पास आ ॥१५॥ यह रक्त-पिपासु बाण शिला पर पैनाये गये हैं और अब मेरी भुजाओं द्वारा चलाये

जाकर तेरे देह को विदीर्ण कर रक्तपान करेंगे ॥१६॥ दूत की बात सुन कर और पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण कर सर्प के समान श्वास त्याग करते हुए द्रुतगति से दम वहाँ पहुँचे ॥१७॥ तथा युद्ध के लिये ललकारते हुए कहा—प्रकृत पुरुष आत्मश्लाघा कभी नहीं करते, इसके पश्चात् वपुष्मान् के साथ दम का अत्यन्त घोर संग्राम हुआ ॥१८॥ रथी से रथी, हाथी सवार से हाथी सवार और अश्वारोही से अश्वारोही भिड गये और घोर युद्ध होने लगा ॥१९॥ हे ब्रह्मर्षे ! उस युद्ध को अपने सामने ही सब देवता, सिद्ध, गंधर्वादि देख रहे थे, जब अत्यन्त क्रोध सहित दम युद्ध में प्रवृत्त हुए, तब पृथिवी कम्पायमान हो उठी ॥२०॥ उनके बाणों को सभी हाथी, अश्व या रथारोही सहन करते थे, दम के साथ वपुष्मान् का सेनापति भिड रहा था ॥२१॥

ह्रदिविव्याधचदमइपुणागाद्यमातिकम् ।
तस्मिन्निपतितेसैन्यपलायनपरह्यभूत् ॥२२
सस्वामिनतत प्राहदमःशत्रु दमस्तथा ।
क्वयासिदुष्टपितरघातयित्वातपस्विनम् ॥२३
अशस्त्र चतपस्यतक्षत्रियोसिनिवर्तताम् ।
ततोनिवृत्यसदमयोधयामाससानुज ॥२४
सपुत्र सहसबधिबाधवैर्युयुधेरथी ।
तत शरासनान्मुक्तबाणैर्व्याप्तास्ततोदिश ॥२५
दमचसरथचाशुग्ररजालैरपूरयत ।
तत पितृवधोत्थेनकोपेनसदमस्तथा ॥२६
चिच्छेदताञ्छरास्तेपाविव्याधान्यैश्चतानपि ।
एकेनैकेनबाणेनसप्तपुत्रास्तथाद्विज ॥२७
सबधिबाधवान्मित्राण्निनाययमसादनम् ।
वपुष्मान्सरथीक्रोधान्निहतात्मजबाधव ॥२८
युयुधेचसतातेजोशरैराशीविषोपमैः ।
चिच्छेदतस्यतान्बाणान्सद्मश्चमहामुने ॥२९

उसके हृदय को दम ने बींध दिया, उसके गिरते वपुष्मान् के सहित समस्त सेना भाग ने लगी ॥२२॥ तब शत्रुनाशक दम बोले—अरे दुष्ट मेरे पिता की हत्या करके तू किधर जा रहा है ॥२३॥ तूने शस्त्र रहित तपस्वी पिता का वध किया है, भाग मत, यह सुन कर वपुष्मान् अपने अनुज, पुत्र एव बाधवादि के सहित डट कर रथ पर चढ़ा हुआ युद्ध करने लगा और उसने अपने धनुष के द्वारा बाण वर्षा करके सभी दिशाओ को ढक दिया ॥२४-२५॥ उसने अपने बाणो के जाल से रथ अश्व सहित दम को आवृत्त कर और दम ने भी अपने पिता की हत्या से उत्पन्न हुए क्रोध मे उत्तेजित होकर ॥२६॥ उसके सब बाणो को काट कर, शत्रुओ के देह बाणो से बींध कर, एक-एक बाण से उसके सात पुत्र ॥२७॥ अनुज, सम्बन्धी आदि का वध कर दिया, जब वपुष्मान् ने अपने आत्मज तथा बन्धु आदि का मरण देखा, तब वह भी अत्यन्त क्रोध मे भर कर ॥२८॥ नागो के समान बाणो के द्वारा दम से युद्ध करने लगा, परन्तु दम ने वे सभी बाण काट दिये ॥२९॥

युयुधातेचसरब्धौपरस्पररजयैषिणौ ।
परस्परशराघातविच्छिन्नधनुषौत्वरा ॥३०
गृहीतखड्गावुत्तीर्यचिक्रीडातेमहाबलौ ।
दम क्षणान्नृपच्याश्वापितरनिहतवने ॥३१
केशेष्वाकृष्यचाक्रम्यनिपात्यधरणीतले ।
शिरोधारायापादेनभुजमुद्यम्यचाब्रवीत् ॥३२
पश्यंतुदेवता.सर्वामानुषा:पन्नगा खगा: ।
पाट्यमानचहृदयक्षत्रवधोर्वपुष्मत: ॥३३
एवमुक्त्वाचसदमोरःहृदयचव्यदारयत् ।
पातुकामश्चसमुरं क्षतजेननिवारत: ॥३४
तत्रश्चकारतातस्यारक्तेनैवोदकक्रियाम् ।
आनृण्यप्राप्यसपितु.पुन प्रायात्स्वमन्दिरम् ॥३५
वपुष्मतश्चमासेनपिंडदानचकारह ।
ब्राह्मणान्भोजयामासरक्ष.कुलसमुद्भवान् ॥३६

एवंविधाहिराजानोयभूवु सूर्यवंशजाः ।
अन्येपिसुधिय.शूरायज्विनोधर्मकोविदा ॥३७
वेदांतपारगास्ताश्चनसंख्यातुमिहोत्सहे ।
एतेषांचरितं श्रुत्वानरःपापैःप्रमुच्यते ॥३८

इस प्रकार क्रोध पूर्वक एक दूसरे को मारने की इच्छा से घोर संग्राम करने लगे, दोनो ही महाबली थे, दोनो के ही धनुष टूट गये थे, तब दोनो ही तलवार से युद्ध करने लगे, वन में मारे गये पिता की क्षण भर याद करके दम ने वपुष्मान् के ॥३०-३१॥ केश खींच कर पृथिवी मे डाल दिया और उसकी ग्रीवा को पाँव से दाब कर भुजा उठा कर दम ने इस प्रकार कहा ॥३२॥ मैं इस क्षत्रियाधम वपुष्मान् के हृदय को विदीर्ण करता हूँ, इसे सभी देवता, मनुष्य, सिद्ध और नागगण देखें ॥३३॥ ऐसा कह कर दम ने तलवार से उस का हृदय चीर डाला और उसका रक्त पीने को उद्यत हुए, तब देवताओं ने उन्हें रोका ॥३४॥ उसके रक्त से दम ने अपने पिता को उदक दान और मांस से पिंड-दान किया, इस प्रकार पितृ-ऋण से मुक्त हुए दम अपनी राजधानी मे लौट आये ॥३५-३६॥ सूर्यवंश मे ऐसे पराक्रमी राजा हुए तथा अन्य अनेक राजा यज्ञवान्, धर्मात्मा, ज्ञानी एवं वीर हुए हैं ॥३७॥ ऐसे-ऐसे वेदान्त पारगत हुए, जिनका वर्णन नही हो सकता और न उनकी गणना की जा सकती है, इनके चरित्र को सुनने वाला मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ॥३८

११३—पुराण श्रवण पठन फल

एवमुक्त्वाजैमिनेयंमार्कण्डेयोमहामुनि. ।
विसृज्यक्रौष्टुकिमुनिचक्रे माध्याह्निकीक्रियाम् ॥१
अस्माभिश्चश्रुतंतस्मादयत्तेप्रोक्तं महामुने !
अनादिसिद्धमेतद्धिपुराणंप्रोक्तं स्वयंभुवा

मार्कण्डेयायमुनयेयत्तेस्माभिरुदाहृतम् ।
पुण्यपवित्रमायुष्यधर्मकामार्थमिद्धिदम् ॥३
पठनाश्रृण्वतासद्य सर्वपापप्रमोचनम् ।
श्रादावेवकृतायेचप्रश्नाश्चत्वारएवहि ॥४
पितु पुत्रस्यसवादस्तथासृष्टि स्वयभुव ।
तयामनूनास्थितयोराज्ञाचचरितमुने ॥५
श्रस ाभिरेतत्तेप्रोक्त किमद्यश्रोतुमिच्छसि ।
एतान्सर्वान्नर श्रृत्वापठतेवासभासुच ॥६
विधूयसर्वपापानिब्रह्मणोह्यालयव्रजेत् ।
श्रष्टादशपुराणानियानिप्राहपितामह ॥७॥

पक्षियो ने कहा—हे जैमिने ! महामुनि मार्कण्डजी ने इस प्रकार कह कर क्रौष्टुकि मुनि को विदा किया और मध्याह्न क्रिया सम्पन्न की ॥१॥ हे महामुने ! जो हमने आपसे कहा है वह सब स्वय भगवान् मार्कण्डेय जी ने कहा था, हमने भी उन्ही से सुना है ॥२॥ आपसे कहा गया यह मनोहर पुराण मार्कण्डेय जी के द्वारा कहा गया एव अत्यन्त पवित्र है, इसके पढने या सुनने से आयु की वृद्धि और सभी कामनाओ की सिद्धि होती है ॥३॥ और इसके पाठ करने से सभी पापो से मुक्ति होती है पहिले आपने जो चार प्रश्न किये थे, उन सब का उत्तर ॥४॥ पिता-पुत्र सम्वाद स्वायमुव की सृष्टि, मनुष्यों की उत्पत्ति और राजागण का चरित्र भी ॥५॥ आपके प्रति कहे गये हैं, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? इस सब को सुनने और सभा स्थल मे वाचन कराने वाला मनुष्य ॥६॥ सभी पापो से छूट कर ब्रह्म म लीन हो जाता है ॥७॥

तेषातुसप्तमज्ञेयमार्कण्डेयसुविश्रुतम् ।
ब्राह्म पाद्म वैष्णवचशैवभागवततथा ॥८
तथान्यन्नारदीयचमार्कण्डेयचसप्तमम् ।
आग्नेयमष्टमप्रोक्त भविष्यनवमतथा ॥९

दशमब्रह्मवैवर्त लैंगमेकादशस्मृतम् ।
वाराहंद्वादशप्रोक्तं स्कादमत्रत्रयोदशम् ॥१०
चतुर्दशवामनचकौर्मपंचदशतथा ।
मात्स्यचगारुडचैवब्रह्माड चतत परम् ॥११
अष्टादशपुराणानानामधेयानियःपठेत् ।
त्रिसध्यंजपतेनित्यसोऽश्वमेधफललभेत् ॥१२
सर्गश्चप्रतिसर्गश्चवशोमन्वतराणिच ।
वशानुचरितचैवपुराणपचलक्षणम् ॥१३
चतु प्रश्नसमोपेतपुराणह्येतदुत्तमम् ।
श्रुत्वापुनश्चनेपापकल्पकोटिशतं कृतम् ॥१४
ब्रह्महत्यादिपापानियान्यन्यान्यशुभानिच ।
तानिसर्वाणिनश्य तितृणवातहत यथा ॥१५॥

पितामह ब्रह्मा जी ने अठारह पुराण कहे थे उनमे यह मार्कण्डेय पुराण सातवाँ है, प्रथम पुराण ब्राह्म, द्वितीय पाद्म, फिर वैष्णव, शैव, भागवत ॥८॥ नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य ॥६॥ ब्रह्मवैवर्त, लिंग, बाराह, स्कन्द ॥१०॥ वामन, कौर्म, मत्स्य, गरुड और फिर अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है ॥११॥ इन अठारह पुराणों के नाम का ही पाठ करने वाला तथा तीनो सध्या मे जप करने वाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के समान फल प्राप्त करता है ॥१२॥ सर्ग, प्रति सर्ग, वश, मन्वन्तर, वंशानुचरित यह पाँच लक्षण पुराणो के होते हैं ॥१३॥ चार प्रश्न वाला इस मार्कण्डेय पुराण के सुनने सो करोड कल्प के भी पापो का क्षय होता है ॥१४॥ तथा ब्रह्महत्या आदि सब महापाप प्रचण्ड वायु से टूटे हुए तृण के समान ही इसके पाठ करने से नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥

पुष्करेदानजपुण्यश्रवणादस्यजायते ।
सर्ववेदाधिकफलंसमाप्याचाधिगच्छति ॥१६
य श्रावयेत्पूजयेत्त यथादेवपितामहम् ।
गधपुष्पैस्तथावस्त्रै ब्राह्मणानांचतर्पणे ॥१७

यथाशक्त्याचदातव्यं नृपैर्ग्रामादिवाहनम् ।
एतत्पुराणमखिलवेदार्थरूपवृ हितम् ।
धर्मशास्त्रैकनिलयंश्रुत्वासर्वार्थमाप्नुयात् ।।१८
श्रुत्वापुराणमखिलव्यासपूजयेद्बुध ।
धर्मार्थकाममोक्षाणांयथोक्तफलहेतवे ।।१९
दद्याद्गागुरवेस्वर्णवस्त्रालकारसयुताम् ।
श्रवणस्यफलावाप्त्यैदानै सतोषयेद्गरुम् ।।२०
अपूज्यपाठकर्तारश्लोकमेकश्रृणोतिय ·
नासौपुण्यमवाप्नोतिशास्त्रचोर स्मृतोहिसः ।।२१

इसके श्रवण करने से वैसा ही पुण्य मिलता है, जैसा पुष्कर मे दान करने से मिलता है, इसकी सम्पूर्णता मे वेदपाठ की सम्पूर्णता के समान फल की उपलब्धि होती है ।।१६।। इस पुराण को सुनाने वाले पडित का ब्रह्मा के समान पूजन करे, गध, पुष्प, वस्त्रादि से पुराण का पूजन कर ब्राह्मण-भोजन करावे ।।१७।। राजा यथाशक्ति ग्राम तथा वाहनादि प्रदान करे, यह पुराण सम्पूर्ण वेदार्थ से युक्त तथा धर्म का स्थान रूप है, इसके श्रवण करने से सर्वार्थ सिद्धि होती है ।।१८।। इस सम्पूर्ण पुराण को सुन कर व्यास पूजन करे तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो पदार्थों की प्राप्ति होती है ।।१९।। स्वर्ण, वस्त्र, तथा अलकारादि से युक्त गौ गुरु को दे, क्योकि सुनने का फल प्राप्त करने के लिये दान द्वारा गुरु को सतुष्ट करे ।।२०।। वाचक की पूजा किये बिना जो पुरुष इसको सुनते हैं, उन्हें कुछ भी पुण्यलाभ नही होता, ज्ञानीजन उन्हें शास्त्र चोर कहते हैं ।।२१।।

नतस्यदेवा.प्रीणतिपितरोनैवपुत्रकान् ।
दत्तंश्राद्ध तथेच्छतितीर्थस्नानफलनच ।।२२
लभतेशास्त्रचोरश्चनिदासज्जनसंस द ।
अवज्ञयानश्रोतव्यशास्त्रमेतद्विचक्षणै ।।२३
पठ्यमानेत्ववज्ञातेसाधुभि शास्त्रउत्तमे ।
मूकोभवतिजन्मानिससमूर्ख प्रजायते ।।२४

श्रुत्वातत्पूजयेद्यस्तुपुराणसप्तमपुन ।
सर्वपापविनिर्मुक्त पुनात्येवनिजकुलम् ॥२५
पूतोयातिनमदेहोविष्णुलोकसनातनम् ।
च्युतस्तत पुनर्नैवसभविष्यतिमानव ॥२६
पुराणश्रवणादेवपरयोगमवाप्नुयात् ।
नास्तिकायनदातव्यवृपलेवेदनिंदके ॥२७
गुरुद्विजातिनिंदायतथाभग्नव्रतायच ।
मातापित्रोर्निंदकायवेदशास्त्रादिनिंदिने ॥२८

देवता उनसे रुष्ट हो जाते हैं, पितरगण भी अप्रसन्न होकर उनके द्वारा दिया गया श्राद्ध ग्रहण नही करते और उन्हे तीर्थ स्नान के फल से भी वंचित होना पड़ता है ॥२२॥ सज्जनो के समाज मे उनकी निन्दा होती है, इसलिए विद्वानो को अवज्ञापूर्वक श्रवण नही करना चाहिये ॥२३॥ जो मनुष्य साधुओ द्वारा शास्त्र पढने समय अवज्ञा करते हैं वह कई जन्म तक गूगे और सात जन्म तक बधिर होते हैं ॥२४॥ इस सप्तम पुराण का पूजन करने वाले मनुष्य सब पापो से मुक्त होते और अपने कुल को पवित्र करते हैं ॥२५॥ यह पवित्र होकर अवश्य ही विष्णुलोक को प्राप्त होते हैं, वहाँ से पुन ससार मे नहीं लौटते ॥२६॥ केवल इस पुराण के ही सुनने मात्र से उत्कृष्ट योग की प्राप्ति होती है, परन्तु यह पुराण नास्तिक, शूद्र, वेदनिन्दक, गुरुद्वेषी, व्रतत्यागी, माता पिता के निन्दक और शास्त्रादि के निन्दक को प्रदान न करे ॥२७ २८॥

भिन्नमर्यादिनेचैवतथावैश्वातिकोपिने ।
एतेपांनैवदातव्यप्राणैः कण्ठगतैरपि ॥२९
लोभाद्वायदिवामोहाद्भयाद्वापिविशेषत ।
पठेद्वापाठयेद्वापिसगच्छेन्नरकध्रुवम् ॥३०
एतत्सर्वमुपाख्यानधर्म्यस्वर्गापवर्गदम् ।
य शृणोतिपठेद्वापिसिद्ध तस्यसमीहितम् ॥३१
आधिव्याधिजदुःखेनयदाचिन्नाभियुज्यते ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्योमुच्यते नात्रसशय ॥३२

सनस्वजनमित्राणिभवतिहितवुद्धय ।
नास्यसभविष्यतिदस्यवोवाकदाचन ॥३३
सदर्थोमिष्टभोगीचदुर्भिक्षेनवसीदति ।
परदारपरद्रव्यहिंसादिकिल्विषे ॥३४
मुच्यतेनेकदु खेभ्योनित्यत्वैवद्विजोत्तम ।
ऋद्धिवृ द्धि स्मृतिशाति श्री पुष्टिस्तुष्टिरेवच ।
नित्यवस्यभवेद्विप्रय शृणोतिकथामिमाम् ॥३५

मर्यादा के तोडने वाले और जाति को दूषित करने वाले मनुष्य को भी न दे तथा प्राण कण्ठगत होने पर भी इस पुराण को प्रदान न करे ॥२६॥ यदि लोभ, मोह या भय के कारण इनमें से जो कोई पुराण का पाठ करता है या पाठ करा कर श्रवण करता है, तो वह अवश्य ही नरकगामी होता है ॥३०॥ मार्कण्डेय जी ने कहा—यह समस्त उपाख्यान धर्म, स्वर्ग और मोक्ष का दाता है, इसे जो पढता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध होती हैं ॥३१॥ उसे कभी रोगादि से कष्ट नहीं होता और वह ब्रह्महत्या आदि के पापो से मुक्त हो जाता है ॥३२॥ उसके स्वजन और मित्र उसका हित करने वाले हो जाते हैं, उसका कोई भी शत्रु नहीं होता और न चोरो की ही बाधा उपस्थित होती है ॥३३॥ उसके यहाँ श्रेष्ठ धन विद्यमान रहता है वह मिष्टान्न का भोजन करता और दुर्भिक्ष से कभी भी पीडित नहीं होता पर नारी, पर धन, और पर हिंसा के पापो से ॥३४॥ अथवा अन्य अनेक प्रकार के दु खो से मुक्त हो जाता है इस कथा को जो सुनता है, ऋद्धि वृद्धि, स्मृति, शान्ति, श्री, पुष्टि, तुष्टि उसके साथ रहती हैं ॥३५॥

मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलश्रृण्वन्नशो–
च्य पुमान्योवासम्यगुदीरयेद्रसमयशोच्योनसोपिद्विज ।
योगज्ञानविशुद्धसिद्धिसहित स्वर्गादिलोकेप्यसौ–
दानवासुरादिभि परिवृत स्वर्गेसदापूज्यते ॥३६

पुराणमेतच्छ्रु त्वाचज्ञानविज्ञानसयुतम् ।
विमानवरमारुह्यस्वर्गलोकेमहीयते ॥३७
पुराणाक्षरसख्याचप्रख्यातातत्त्वबुद्धिना ।
श्लोकानापट्सहस्राणितथाचाष्टशतानिच ॥३८
श्लोकास्तत्रनवाशीतिरेकादशसमाहिता. ।
कथितामुनिनापूर्वमार्कण्डेयेनधीमता ॥३९
भारतेनाभवद्यन्मेसशयस्फोटनद्विजा ।
तद्भवद्भि कृतयन्नकश्चिदद्यकरिष्यति ॥४०
यूयदीर्घायुपःस्यातप्रज्ञाबुद्धिविशारदा. ।
सास्ययोगेतथाचास्तुबुद्धिरव्यभिचारिणी ॥४१
पितृशापकृताद् ुःखाद्दोर्मनस्यंव्यपेतुवः ।
एतावदुक्त्वावचनजगामस्वाश्रममुनिः ।
चिंतयन्परमोदारपक्षिणावाक्यमीरितम् ॥४२

इस सम्पूर्ण मार्कण्डेय पुराण का श्रवण करने वाला कभी शोचनीय नही रहता, इसके कहने वाले विप्रगण भी शोचनीय नही रहते, वे योग, ज्ञान और सिद्धि के सहित स्वर्गादि लोको को प्राप्त होते हैं तथा इन्द्रादि देवताओ के साथ रह कर सदा पूजे जाते हैं ॥३६॥ इस ज्ञान-विज्ञान से युक्त पुराण का श्रवण करने वाले मनुष्य श्रेष्ठ विमान मे चढ कर स्वर्ग को गमन करते हैं ॥३७॥ पहिले सूक्ष्मदर्शी श्री मार्कण्डेय जी ने इस पुराण में छ हजार नौ सौ श्लोक कहे थे ॥३८–३९॥ जैमिनि ने कहा—हे खगगण ! महाभारत में जो सन्देह था, वह सब तुमने मित्रभाव से दूर कर दिया, इस प्रकार अन्य कौन कर सकता था ? ॥४०॥ तुम अत्यन्त दीर्घायुष्य, नीरोग और बुद्धि विशारद हो, तुम्हारी बुद्धि सांख्य योग में श्रेष्ठ गति वाली हो ॥४१॥ तुम पिता के वचन से ही दुःखों प्राप्त नही हुए हो, ऐसा कह कर और उन खगो के वचनों का स्मरण करते हुए मुनि अपने आश्रम मे लौटे ॥४२॥

मार्कण्डेय पुराण का नैतिक व सांस्कृतिक अध्ययन

पुराण रचना की पात्रता और मार्कण्डेय की दूरदर्शिता

इस पुराण के प्रणेता अथवा वक्ता महर्षि मार्कण्डेय हैं। उन्ही के नाम से यह पुराण अभिहित हुआ है। मार्कण्डेय उच्चकोटि के साधक और *आत्मानुसधान के प्रवीण पात्र थे। वे आत्मसाक्षात्कार की अन्तिम सीढी तक* पहुँच चुके थे। नारायण उनके इष्ट देव थे। उनके साक्षात् दर्शन होने के *सम्बन्ध मे स्वय नारायण ने प्रकट होकर महाभारत मे मार्कण्डेय को सम्बोधित* करते हुए कहा "हे मार्कण्डेय ! तुम्हारे ब्रह्मचर्य की महानता अवर्णनीय है। मेरे जिस रूप को देवता भी तत्त्व रूप से नही समझ सकते, उसे तुम अपने प्रत्यक्ष नेत्रो से देख रहे हो। *मैं नारायण हूँ,* विश्व का शाश्वत और अव्यय प्रसव स्थान हूँ। इन्द्र, प्रजापति, कुबेर शिव, ब्रह्मा, विष्णु, यम, सोम सब *मैं ही हू। चारो वेद मुझ से ही अविर्भूत होते हैं और मुझ मे ही समा जाते* हैं। जो कुछ भी स्थावर और जगम वस्तुओं को तुमने देखा है, उन्हें मेरी ही आत्मा समझो, "मैं नारायण हू।"

मार्कण्डेय ने महाभारत में युधिष्ठिर के एक प्रश्न के उत्तर मे कहा है "एकार्णवीभूत स्थिति में एक वटवृक्ष की शाखा पर मैं ने एक बालक के दर्शन किए जो स्वय नारायण थे। उन्होंने स्वयं कहा—मार्कण्डेय ! मैं तुम से सन्तुष्ट हू, तुम थक गये होगे, तुम मेरे शरीर मे *विश्राम लो।" कथा के* अनुसार मार्कण्डेय उस नारायण रूपी बालक के मुख में चले गये, वहाँ उन्होंने भारत वर्ष के दिव्य दर्शन किये—उसके जनपद, नगर, नदियाँ और पर्वत।" जिस तरह से भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को पात्र समझ कर विराट् रूप के

दर्शन दिये थे, उसी तरह से नारायण ने मार्कण्डेय को उत्तम पात्र जानकर उन्हें अपना साक्षात् दर्शन दिया और भारत वर्ष का विराट् रूप दिखाया। दूसरे शब्दो मे उन्होने मार्कण्डेय को भारत वर्ष की भौगोलिक समीक्षा और उसके निवासियो का नैतिक, सामाजिक, सास्कृतिक और आत्मिक विश्लेषण कर के मार्ग दर्शन करने का अधिकार दे दिया हो। नारायण को मार्कण्डेय उत्तम पात्र दिखाई दिये। ऐसा लगता है कि मार्कण्डेय पुराण की रचना का भार स्वय नारायण ने मार्कण्डेय को सौंपा हो। इससे स्पष्ट है कि मार्कण्डेय पुराण के प्रणयन की पृष्ठभूमि मे स्वय नारायण उपस्थित हैं। प्रस्तुत पुराण मे जो भी शिक्षाएँ और प्रेरणाएँ दी गई हैं, वे मार्कण्डेय के मस्तिष्क मे नारायण के प्रकाश से ही आई हैं। पुराणो को वैसे भी वेदो की सरल व्याख्या मानी जाती है। वेदो मे जो सिद्धान्त गहन रूप मे प्रतिपादित किये गए हैं, उन्हें कथाओं, कहानियो और रूपको के माध्यम से पुराणो मे वर्णित किया गया है ताकि वे सर्व साधारण की समझ मे आ सकें। वेदो को ईश्वरीय रचना मानने मे किसी को सन्देह ही नही हो सकता। अत यदि मार्कण्डेय पुराण की रचना के लिये नारायण ने मार्कण्डेय को पात्र समझ कर आदेश दिया हो तो इसमें कुछ अतिशयोक्ति नही है।

पुराण की रचना मे मार्कण्डेय ने अपनी पात्रता सिद्ध कर दी। उन्होने युगानुरूप सामग्री का चयन किया, पुराणो को सस्कारित किया, जो दोष कुछ अन्य पुराणों मे थे, उन्हें दूर किया, साम्प्रदायिक विद्वेष से दूर रहे, किसी भी सम्प्रदाय के देवी देवता का उन्होने खण्डन नही किया, उनके लिए सभी देवता समान हैं, वे तो सभी को नारायण रूप देखते थे। जिसे नारायण का स्वय साक्षात्कार हो गया हो, उसके मन मे भेदभाव की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वे तो सभी प्राणियो में अपने ही रूप के दर्शन करके उनके कल्याण की योजना मे मग्न रहते होंगे और यही मार्कण्डेय ने किया भी ऐसा ही।

मार्कण्डेय दूरदर्शी थे, उन्होंने मानव मन का गहन अध्ययन किया था, वे स्वय साधक थे और क्रियात्मक रूप से देखा था कि किस तरह से छुट से

महान अथवा नीचे से ऊपर चढने की क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। वे ऋषि थे, आत्मसाक्षात्कार किए हुए थे, उन्हें स्वय आत्मा के अतिरिक्त ससार मे कुछ सूझता ही न होगा। वे इस जगत की अनित्यता को भली भाँति अपने खुले नेत्रो से देखते होगे परन्तु जगत से उन्होने मुँह नही मोडा। वे जानते थे कि स्थूल शरीर की सुरक्षा के लिए हर प्रकार की भौतिक सामग्री की अपेक्षा रहती है। उनसे घृणा करना अपने मार्ग को अवरुद्ध करना होगा। अभ्युत्थान के लिए दोनो का समन्वय अभीष्ट है। मार्कण्डेय ने अपने पुराण म यही किया है। भौतिक, नैतिक, सामाजिक और आत्मिक सभी विषयो का प्रतिपादन किया गया है।

भौतिक विद्याओं के विकास का समर्थन—

महर्षि ने भारत वर्ष के भूगोल का विस्तृत विवेचन किया है। जिससे भारत की प्राचीन सीमाओ का दिग्दर्शन होता है। पर्वतो और नदियो का भी विस्तार से वर्णन है। सम्पूर्ण जनपद सूची भी दे दी गई है। मार्कण्डेय राष्ट्रवादी सत थे। आज तो पढे-लिखे लोग अपने देश की उपेक्षा करते हैं और इङ्गलैंड, अमेरिका की प्रशसा के पुल बाँधते नहीं थकते परन्तु मार्कण्डेय ने भारत को कर्म भूमि और शेष भू-भाग को भोग-भूमि घोषित किया है। ब्रह्मपुराण २७।७२-७८ मे भी कहा है कि भारत मे जन्म लेने वाले धन्य हैं। यहाँ सब पुण्यो के फल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। स्वर्ग के देवता यहाँ जन्म लेने मे गौरव का अनुभव करते हैं। जो कार्य यहाँ के लोग कर सकते हैं, वे देवताओ और असुरो किसी के लिए भी सम्भव नही है।" वास्तव मे प्राचीन भारत का गौरव ऐसे ही था जिसकी समृद्धि, विकास और उत्थान की ख्याति चारो ओर फैली हुई थी। आज भी यदि ऋषियो के पदचिह्नो पर चलने लगें तो उस खोए गौरव को पुन प्राप्त कर सकते हैं।

महर्षि ने भौतिक विद्याओ की उपेक्षा नही की। जीवन के पूर्ण विकास को भी आवश्यक मानते हैं। तभी उन्होने धन सग्रह करने के सभी उपायो का वर्णन किया है जिसे पद्मिनी विद्या का नाम दिया गया है। व्यापार द्वारा

धन कमाने के जितने भी साधन हो सकते हैं, उन सब का ब्यौरा पुराण में दिया गया है। आशय यह है कि व्यक्ति को घोर परिश्रम करके भौतिक जीवन को सुखी बनाने के लिए धन का सञ्चय करना चाहिए परन्तु अनैतिक उपायों से नहीं। वे धन को व्यक्तिगत सम्पत्ति भी नहीं मानते। जब राष्ट्र को उसकी आवश्यकता पड़े तो उससे मोह न करके राष्ट्रहित मे सारी सम्पत्ति का दान कर देना चाहिए। हरिश्चन्द्र का लम्बा आख्यान इसी उद्देश्य से लिखा गया है कि धनवानो को अपने धन से मोह नहीं करना चाहिए। यह ईश्वर द्वारा सत्कार्यों के लिए उन्हें दिया गया है। यदि वह इसका दुरुपयोग करेंगे तो उनसे छीन लिया जायेगा। मार्कण्डेय धन कमाने के पक्ष मे तो हैं पर हरिश्चन्द्र को आदर्श मान कर समय आने पर सर्वस्व लुटाने के लिए तैयार रहने की प्रेरणा भी देते हैं।

महर्षि जगत को अनित्य, क्षणभङ्गुर और अस्थायी मानते हैं परन्तु आत्मा के इस मन्दिर शरीर की सुरक्षा पर भी पूरा ध्यान देते हैं। पुराण मे शरीर विज्ञान का प्रतिपादन किया गया है, जो आधुनिक विज्ञान से मिलता है। इस सम्बन्ध मे लिखा है कि रज और वीर्य के मिलने से किस तरह नये शरीर की रचना प्रारम्भ होती है और किस तरह उसका क्रमिक विकास होता है। गर्भ मे शरीर का पोषण किस प्रकार से होता है, माता और गर्भस्थ शिशु के शारीरिक सम्बन्ध की अद्भुत व्यवस्था का वर्णन है। आयुर्वेद चिकित्सा का भी वर्णन है जिससे शरीर को असाध्य रोग होने पर भी स्वस्थ बनाया जा सके। आयुवृद्धि के उपायों पर भी प्रकाश डाला गया है। दम के पुत्र राज्यवर्धन की रानी ने उनके सिर पर सफेद बाल देखा तो दुखी हुई। राजा ने समझा कि अब मृत्यु निकट है और वानप्रस्थ मे प्रवेश कर वन में तप करने चलना चाहिए। प्रजा चाहती थी कि वही राजा राज्य शासन की बागडोर सम्भालते रहें। प्रजा ने राजा की आयुवृद्धि के लिये सूर्यदेव की सामूहिक आराधना का निश्चय किया और कामरूप पर्वत पर अनुष्ठान मे लग गई। तीन मास की उपासना के बाद सूर्यदेव प्रसन्न हुए और राजा को आयु दस हजार वर्ष करने का वरदान दिया। अतिशयोक्ति शैली मे वर्णित

यह कथा आयुवृद्धि के लिए सूर्य की शरण मे जाने को इङ्गित करती है। आधुनिक विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि सूर्य ही समस्त भौतिक शक्तियो का स्रोत है और शरीर के विकास, सुरक्षा, सुदृढता और चिकित्सा के लिए सभी आवश्यक तत्व इसमे विद्यमान हैं। सूर्य किरणें शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक मानी जाती हैं। जो लोग सूर्यदेव से विमुख रहते हैं, उन पर ही रोग आक्रमण करने का साहस करते हैं। सूर्य किरणो से रोग मुक्ति को एक नवीन चिकित्सा पद्धति का भी आविष्कार हो चुका है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर मानव का जीवन असम्भव है। सूर्य के अभाव में जीवधारी अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकते। जहाँ सूर्य के यदाकदा दर्शन होते हैं, वहाँ पर जब सूर्य निकलता है तो उत्सव मनाए जाते हैं। तभी भारत मे सूर्य को देवता की सज्ञा दी गई है और मार्कण्डेय पुराण मे भी उसका भव्य स्तवन किया गया है।

(पुराणकार मनोरंजन के साधनो को आवश्यक मानते हैं और कला की प्रशसा करते हैं।" जिसमे गुण रूप नही होता, उसे नाटक में सफलता प्राप्त नही होती। नृत्य का सुन्दर प्रशिक्षण आवश्यक है। उसके बिना नृत्य एक विडम्बना ही रह जाती है।")

ऐसा लगताहै कि प्राचीनाकाल मे सब प्राणियो की बोली समझने की विद्या का विकास हो चुका था तभी विभावरी ने जब स्वरोचिष को आत्म-समपर्ण किया तो विभावरी ने सब प्राणियो की बोली समझने की विद्या को शुल्क रूप में प्रदान किया।

जिस समय पुराण की रचना हुई, उस समय मत्र विज्ञान की प्रक्रिया उच्चशिखर पर थी। मत्र-विज्ञान की एक शाखा-इष्टि क्रिया का उल्लेख किया गया है। एक राजा की पत्नी किसी कारण से राजा को छोड कर चली गई। एक ब्राह्मण व राजा से मित्रविन्दा नाम की इष्टि करादी और जब वह साधना पूरी हो गई तो ब्राह्मण ने राजा से कहा "अब आपकी पत्नी आप में पूर्ण अनुरूप रहेगी, अत: आप उसे प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए" यह मंत्रविज्ञान का ही चमत्कार है।

कर्तव्य परायणता का निर्देश—

पुराणों में क्षत्रिय राजाओं के शौर्य, साहस और जीवन चरित्रों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। उनमें क्षत्रियों के क्षत्रित्व का पूर्ण परिचय मिलता है। वे अपने शरीर की आहुति देकर भी कर्तव्य पालन करते हैं और प्रजा की सुरक्षा को अपना आवश्यक धर्म मानते हैं। तभी कहा है "*हम बलवान क्षत्रियों के सामने यदि इस कन्या का अपहरण हो जाये तो हमारे जीवन को धिक्कार* है। जो दुष्ट लोगों से दुःखी व्यक्ति की सुरक्षा करता है, वही सच्चा क्षत्रिय है।"

अलर्क के पूछने पर मदालसा ने ब्राह्मण के धर्म का विवेचन करते हुए कहा "*दान, अध्ययन और यज्ञ यह ब्राह्मण के निरपेक्ष धर्म हैं*' चारों वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों का उल्लेख है।

राजा के कर्तव्य तो विस्तार से वर्णित किये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल की तरह उस समय भी शासक वर्ग में स्वार्थपरता का *अवगुण आ चुका था तभी वह कड़े शब्दों में शासकों को चेतावनी देते हैं कि* "वैश्य अपनी आयका १२ वाँ भाग राजा को इसलिए देता है कि उसके जान माल की सुरक्षा हो सके। ग्वाले, घी, तक्र आदि का तथा किसान अनाज का छटा भाग इसीलिए देते हैं। जो राजा व्यापारियों से उसकी आय का *अधिकांश भाग लेते हैं, वह चोर हैं। यदि कर लेकर भी राजा प्रजा* की सुरक्षा में असमर्थ रहता है और प्रजा को अन्य उपायों का सहारा लेना पड़ता है तो राजा निश्चय ही नरक जाता है। यदि चोरों से रक्षा नहीं कर सकता तो वह पापी कहलाता है।"

इस तरह से मार्कण्डेय एक स्वतन्त्र और निर्भीक विचारक की तरह अपने विचार व्यक्त करते हैं। उनका उद्देश्य जनता की भलाई है। उसमें उन्हें कष्ट भी सहना पड़े तो उसके लिए वे तैयार हैं। शासक वर्ग का कड़ा *विरोध करने पर क्या परिणाम निकलते हैं,* इससे सभी परिचित हैं। फिर भी अपनी आत्मा की आवाज को बन्द नहीं करते वरन् निर्भय रूप से उसका प्रचार करते हैं। वास्तव में ऐसे विचारक ही जनहित में सफल होते हैं।

मार्कण्डेय आध्यात्मवादी हैं, आत्म-साक्षात्कार कर चुके हैं, परन्तु भौतिक वाद की ओर आंख मूंदना उन्हें अभीष्ट नहीं है। इसीलिए अनेकों प्रकार की भौतिक विद्याओं की ओर उन्होंने अपने पाठकों को आकृष्ट किया है। वे चेतावनी भी देते हैं कि इन में लिप्त रहना निरी मूर्खता होगी, केवल भौतिक विकास पर ही सन्तुष्ट न हो जाना, मानव का चहुँमुखी विकास होना आवश्यक है। पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक और आत्मिक सभी धाराओं में उसका प्रवेश होना चाहिये और बिना विश्राम के प्रगति पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते चले जाना चाहिए। केवल भौतिक या आध्यात्मिक—दोनों एकांगी हैं। दोनों का विकास ही पूर्ण विकास माना जाता है।

पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं का समाधान—

मार्कण्डेय योग्य चिकित्सक थे। वे उलझी गुत्थियों को सुलझाना जानते थे और हवा का रुख देख कर उसी के अनुसार अपनी नीति का निर्धारण करते थे। उनके सामने बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार हो रहा था। जनता का झुकाव प्रवृत्ति मार्ग की अपेक्षा निवृत्ति मार्ग की ओर अधिक होने लगा था। परिणामतः गृहस्थ में प्रवेश की अपेक्षा लोग सन्यास ग्रहण करना अधिक पसन्द करते थे। गृहस्थ में प्रत्यक्ष रूप से लौकिक सुख की उपलब्धि थी परन्तु सन्यास में पारलौकिक कल्याण का लोभ निहित था। इससे अनीश्वरवादी धारा का प्रवाह बह चला। समाज में एक अजीब पागलपन आ गया। भारतीय ऋषियों ने चार आश्रम बड़ी सूझ बूझ से बनाये थे। उसमें भी सन्यास का विधान है परन्तु गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम के बाद जब साधक उसकी पात्रता प्राप्त कर लेता है। जब तक मन स्थिति में सन्यास का रंग न आए, तब तक उससे अपेक्षित लाभ की आशा करना व्यर्थ है भले ही घर बार छोड़ने और त्यागमय जीवन व्यतीत करने का ढोंग रचा जाये। मार्कण्डेय ने इस अव्यवहारिक प्रवृत्ति का विरोध किया, अपने पक्ष में व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत किया, गृहस्थ के आदर्श कर्तव्यों का निर्माण किया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार से गृहस्थ आश्रम में रहकर ही

लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। इनके सभी पक्षों का प्रतिपादन किया। मदालसा के माध्यम से उन्होंने अपनी विचारधारा प्रकट करते हुए कहा है कि जिसने गृहस्थ आश्रम ग्रहण किया, यह समझना चाहिए कि उसने विश्व के पालन का भार अपने कन्धों पर ले लिया है। देव, पितर, मुनि, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतंग, पशु और पक्षी सभी गृहस्थ आश्रम से ही जीवित रहते हैं और उसी से तृप्त होते हैं। तेरहवें मनु रौच्य की जन्म कथा में प्रजापति रुचि और पितरों के संवाद में भी यह चर्चा आई है। पितरों ने रुचि को सम्बोधित करते हुए कहा 'वत्स! तुमने गृहस्थ को छोड़ कर अच्छा काम नहीं किया। गृहस्थाश्रम स्वर्ग और मोक्ष दोनों का साधन है। इसी आश्रम में रहकर ही व्यक्ति देवता, ऋषि, पितर और अतिथियों के प्रति अपने कर्तव्य को निभाते हुए उत्तम लोकों की प्राप्ति कर सकता है।''

सन्यास मार्गियों की दृष्टि तो एक ओर थी परन्तु मार्कण्डेय ने चारों ओर घूम कर देखा तभी एक सुनिश्चित नीति को अपनाया। यदि युवक सन्यासी हो जाएँ तो लोक की युवतियों का क्या होगा। यौवन के प्रवेश पर काम भावों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, यदि उनकी पूर्ति की सामाजिक व्यवस्था न हो पाये तो अनर्गल उपायों की ओर मन का दौड़ना कौन रोक सकता है? हर एक में संयम की साधना कहाँ से आए? इसका कुप्रभाव चरित्र पर पड़ेगा और स्वच्छ जल में कीचड़ के छींटे पड़ जायेंगे। इस कुप्रवृत्ति का विरोध करते हुए मार्कण्डेय ने व्यवस्था दी कि सन्यास

दूसरा मार्ग यह है कि जब युवक सन्यासी हो रहे हैं तो युवतियाँ भी उसी मार्ग पर चलने लगें। सन्यास ग्रहण करने पर भी जब युवक और युवतियाँ साथ २ रहेंगे तो वहाँ पर भी वही प्राकृतिक प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होंगी, जिन्हें दोष, व्यभिचार और चरित्रहीनता की संज्ञा दी जाती है। मठो मे जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों निवास करते हैं, वहाँ ऐसी घटनाओं की चर्चा प्रायः सुनी जाती है। युवक सन्यासियों के पास जहाँ स्त्रियों का आना जाना बना रहता है, वहाँ भी दबा हुआ काम उभर पड़ता है और अपने बाह्य वेष को लज्जित करने मे सकोच नहीं करता। सम्भव है उस समय भी ऐसी घटनाएँ घटी हों और दूरद र्शी ऋषि ने समाज को नया मोड़ देना चाहा हो। कुछ भी हो, वे विवाह के पक्ष मे थे। तभी उन्होने कहा कि स्त्रियो को बहुत दिन तक पिता के घर बन्धु बान्धवो के बीच रहना यशस्कर नही होता। उनका अपने पति के घर रहना ही बन्धु बान्धवों को अभीष्ट होता है। विवाह हुने पर भी स्त्री का अधिक दिन तक बन्धु बान्धवो के बीच रहना ठीक नही माना गया है। सातवें मनु की कथा में इसका विवेचन है। त्वष्टा की पुत्री संज्ञा का पाणिग्रहण-संस्कार सूर्य से हुआ था। एक बार संज्ञा को पिता के घर अधिक दिन हो गये तो पिता ने पुत्री से कहा—"इस तरह से तुम्हारे धर्म का लोप हो रहा है। बन्धु बान्धवो के बीच स्त्री का अधिक दिन तक रहना ठीक नहीं है। तुम मेरे लिए पूज्य हो और मैं तुम से प्रसन्न भी हू पर तुम्हारा पतिग्रह मे जाना ही ठीक है।"

विवाह के नियमों का विस्तृत विवेचन है। पिता के अभाव मे स्त्रियों को अपने पति के चुनाव की स्वतन्त्रता दी गई है। कैसी कन्या से विवाह करना चाहिए, उसके लक्षणो का भी वर्णन किया गया है। पुत्र प्राप्ति के वैज्ञानिक नियम का भी उल्लेख है कि "जो पुरुष कन्या जन्म नहीं चाहता। वह पाँचवीं रात छोड़ कर छटवीं रात में स्त्री संग करे क्योंकि इसके लिए युग्म रात्रि ही श्रेष्ठ मानी गई है।" ऋतुकाल के दिन, चौदश, अमावस्या, अष्टमी पर्व सक्रान्ति काल में नारी समागम का निषेध किया गया है।

विवाह एक पवित्र आयोजन है, सामाजिक सुव्यवस्था का साधन है, सृष्टि सञ्चलन की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है, ऋषियों ने इसे पूर्णता प्राप्ति का साधन बताया है भोग का नही। भोग की सीमा स्त्री के ऋतुमती होने पर ही है अन्यथा नही। नारी को केवल भोग की सामग्री मात्र मान लेना उसका अपमान है। जो नारी को केवल अपनी वासना की तृप्ति का साधन मानते हैं, वे अपनी पत्नी से सन्तुष्ट नही होते और नित्य नया स्थान देखने की टोह मे रहते हैं। इसी दूषित विचारधारा ने बहुपत्नी प्रथा को जन्म दिया। राजाओं मे इसका अधिक प्रचलन था। इस से पारिवारिक क्लेश की वृद्धि होती है। दोनो पत्नियाँ द्वेष की अग्नि में जलती रहती हैं। उनकी सन्तान भी इसी महारोग का शिकार होती हैं। यह छूत का रोग पीढ़ियो तक चलता है। राम वनवास की पृष्ठभूमि मे इसी कुप्रथा का दोष झलकता है। कैकयी के द्वेष ने ही राम को राजतिलक की बजाये वन जाने को बाध्य किया। ऋषि ने स्वरोचिष के सम्बन्ध मे कहा है कि यह पुरुष धन्य नही कहा जा सकता क्योंकि "एक स्त्री के समक्ष दूसरी स्त्री के सम्पर्क करने मे इसे लज्जा नही आती। यह अन्य स्त्री से भी सम्पर्क रखता है। इसका चित्त किसी मे *अनुरक्त नही है। किसी एक आलम्बन मे अनुराग होना चित्त का स्वभाव* है, अतः अनेक भार्याओं में इसकी प्रीति कैसे हो सकती है। यह निश्चय जानो कि न इन स्त्रियो में इसका प्रेम है और न इसमे इन स्त्रियों का प्रेम है। इनका परस्पर प्रेम व्यवहार एक विनोद मात्र है।" स्वरोचिष ने अपनी पत्नी मनोरमा के अतिरिक्त विभावरी और कलावती से भी विवाह कर लिया था। पति-पत्नी मे हार्दिक प्रेम न होने पर पारिवारिक सुख शान्ति की उपलब्धि सम्भव नही।

पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिए दोनो को अपने कर्तव्यो पर ध्यान देना चाहिए। पुराणकार ने दोनो का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है। कहा है "वेद की आज्ञा है कि पति को अपनी पत्नी की रक्षा करनी चाहिए *क्योंकि पत्नी की रक्षा से सन्तान की रक्षा होती है।* पत्नी मे व्यक्ति तनय के रूप मे स्वयं जन्म लेता है। अतः पत्नी की रक्षा से स्वयं अपनी

रक्षा होती है।" एक और स्थान पर कहा है। 'पति को सदैव अपनी पत्नी का भरण और रक्षा करनी चाहिये क्योंकि धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति में पत्नी पति की सहायिका होती है। जब पत्नी और पति प्रेम पूर्वक व्यवहार करते हैं, तभी धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि होती है। पत्नी को त्यागने से धर्म का त्याग हो जाता है। व्यक्ति किसी भी वर्ण का क्यो न हो, वह पत्नी के अभाव मे किसी भी कर्म के योग्य नही रह जाता।

आदर्श पत्नी के कर्तव्य का बोध कराते हुए ऋषि ने अनसूया जी से कहलवाया है 'पुरुष महान कष्ट उठाकर जो पुण्य प्राप्त करते हैं, स्त्रियाँ केवल पति सेवा से ही उसका आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रियो के लिए यज्ञ, श्राद्ध और उपवास के लिए प्रथक विधान नही है, वे पति की सेवा से ही इहलोकों को प्राप्त कर लेती है। पति नारी की श्रेष्ठ गति है।" एक कौशिक नाम के कोढी ब्राह्मण की कथा दी गई है जिसकी पतिव्रता पत्नी ने सूर्य का उदय रोक दिया था क्योंकि सूली पर चढे एक अन्य ब्राह्मण ने उसके पति को शाप दिया था कि सूर्य उदय होते ही उसकी मृत्यु हो जायेगी। ऐसी पतिव्रता नारियों की कथाएँ अन्य पुराणों मे भी वर्णित हैं। पत्नी पति की सच्ची मित्र और सलाहकार होती है। हरिश्चन्द्र के आख्यान में जब विश्वामित्र को दक्षिणा देने का कोई साधन दिखाई नहीं देता और वह चिन्ताग्रस्त हो जाता है, तो पत्नी उनसे कहती है—महाराज ! चिन्ता छोड दो, सत्य का पालन करो, सत्य से च्युत मनुष्य श्मशान के समान त्याज्य होता है। पुरुष के लिए सत्यता से बढ कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जिसका वचन असत्य होता है, उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि समस्त पुण्य कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। धर्म शास्त्रो में सत्य से उत्थान और असत्य से पतन होना बताया है।" आदर्श पत्नी के यह विविध रूप दिखाए गए हैं।

पत्नी का एक और महत्वपूर्ण रूप माता का है। मदालसा की प्रसिद्ध कथा इसका माध्यम चुना गया है। मदालसा अपनी सतान को इच्छानुसार बनाती है। स्तन्य की पवित्र धारा के साथ अपने उद्देश्य के अनुरूप बच्चे

को लोरियाँ देती है। परिणाम स्वरूप बच्चे मे वैसे ही सस्कार उत्पन्न होते है। मनोविज्ञान के पाश्चात्य पण्डितो ने तो आज इस तथ्य की खोज की है परन्तु हमारे ऋषियो ने हजारों वर्षों पूर्व इसे प्रकट कर दिया था। मदालसा ने अपने तीन पुत्रों को लोरियों और उपदेशो से आध्यात्मवादी बनाया तो राजा को चिन्ता होनें लगी कि हमारे सभी पुत्र विरक्त होते गए तो हमारे बाद राज्य का सचालन कौन करेगा? राजा के अनुरोध पर मदालसा ने चौथे पुत्र को धर्म की शिक्षा दी। वह पुत्र आदर्श शासक निकला।

परिवार मे माता-पिता के साथ पुत्र का भी अपना स्थान है। सभी को मिलाकर एक परिवार बनता है। अत सभी को अपने-अपने कर्तव्यो का पालन करना चाहिए। ऋषि ने कहा है "पिता द्वारा अर्जित यश, धन और वीर्य को जो कम नही होने देता, वह मध्यम कोटि का पुत्र है। जो अपनी शक्ति से पिता के वीर्य आदि से अधिक वीर्य आदि का सम्पादन कर लेता है, वह उत्तम कोटि का पुत्र है और जो अपनी अकर्मण्यता से पिता के यश, धन को कम कर देता है, वह अधम कोटि का पुत्र है।" कुपुत्र की अनेक स्थानों पर भर्त्सना की गई है। "मनुष्य का पुत्रहीन होना अच्छा पर कुपुत्रवान् होना अच्छा नहीं क्योकि कुपुत्र माता-पिता के हृदय को सदा सन्तप्त करता रहता है और स्वर्गस्थ पितरों को नीचे गिरा देता है। उस कुकर्मी का जन्म माता-पिता के लिए दुःखदायक होता है। वह माता-पिता की चिन्ता से असमय मे ही वृद्ध बना देता है।" सुरूप नाम के ब्राह्मण के पास एक बार इन्द्र पक्षी के रूप मे आए और अपने आतिथ्य के लिये मनुष्य का मास अथवा रक्त मांगा। ब्राह्मण ने अपने पुत्रो से पक्षी का आतिथ्य कराना चाहा परन्तु शरीर के मोह में पड़कर उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। इस पर ब्राह्मण ने अपने पुत्रो को पक्षी होने का शाप दिया।

परिवार को स्वर्गीय बनाने के लिए जहाँ पति पत्नी का प्रेममय व्यवहार आवश्यक है, वहाँ सतान को भी आज्ञाकारी होना चाहिए। शरीर के सभी अंग पुष्ट होने पर ही शरीर स्वस्थ रह सकता है। एक छोटा सा फोड़ा भी सारे शरीर के लिए दुःखदायी हो जाता है। परिवार मे जब एक

भी सदस्य अपने कर्तव्यों की अवहेलना करता है तो स्वर्ग को नरक बनने में देर नहीं लगती।

उत्थान के व्यक्तिगत व सामाजिक नियमों का विवेचन—

परिवार की शान्ति सदस्यों के आपसी नम्र व्यवहार पर निर्भर करती है परन्तु यही पर्याप्त नहीं है। सुख वृद्धि के लिए उनके शरीर हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ होने चाहिये। स्वस्थता के नियमों की जानकारी होनी चाहिए। सभी को सदाचारी, चरित्रवान और शिष्ट होना चाहिए तभी समाज में उनका सम्मान स्थिर रह सकता है। चरित्र को सम्पत्ति माना गया है। परिवार की यह शोभा है। जहां इसका अभाव रहता है, वह निर्धन परिवार कहलाता है। आस्तिकता का सदाचार से घनिष्ट सम्बन्ध है क्योंकि ईश्वर को सर्वत्र व्यापक मानने वाला दुराचारों से भय खाकर दूर रहता है।

स्वस्थ और सभ्य नागरिक बनने के लिए महर्षि मार्कण्डेय ने विस्तृत नियमों का प्रतिपादन किया है जो विज्ञान और अनुभव की कसौटी पर खरे उतरते हैं। प्रातःकाल उठकर मल-मूत्र त्याग, दंत धावन, तेल मर्दन और स्नान के नियम बताये गये हैं। स्नान करने पर विशेष बल दिया गया है। स्वच्छता को स्वास्थ्य का एक आवश्यक नियम बताया गया है। यहाँ तक कि दूसरे के पहने हुए जनेऊ विभूषण और कमंडलु को भी ग्रहण करने की मनाही की गई है।

ब्रह्ममुहूर्त में उठने का आदेश देकर स्नान आदि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर पूर्वभिमुख बैठकर नक्षत्र के स्थित रहते हुए ही सन्ध्या करने का उपदेश दिया गया है। सायंकालीन सन्ध्या भी सूर्य के स्थित रहते बताई गई है। प्रातः साय हवन करने को भी कहा गया है। पाँच महायज्ञों और पितृ तर्पण करने की भी शिक्षा दी गई है। आत्मतत्व का चिन्तन भी आवश्यक बताया गया है। *पूजा उपासना करने के बाद ही भोजन की आज्ञा दी गई है। अधिक नमक, अत्यन्त गरम अन्न का व बहुत दिनों का रखा हुआ अथवा बासी भोजन का निषेध किया गया है।*

सद्‌विचारो का स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध है। बुरे विचारो वाला व्यक्ति कभी पूर्ण स्वस्थ नही रह सकता। स्थान-स्थान पर कहा गया है कि गृहस्थ को सदाचार परायण होना चाहिए, पर नारी को बुरी दृष्टि से न देखे सब से शिष्ट व्यवहार करे, अहकार, उद्दण्डता की गन्ध न हो, वाणी से प्रेम झलकता हो। ऋषि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है "आचार का पालन गृहस्थ का नित्य कर्तव्य है। जिसमे आचार नही, उसे न यहाँ सुख मिलता है न वहाँ। सदाचार के *बिना यज्ञ, दान, तप कोई करे भी तो क्या लाभ ? जिस पुरुष मे आचार का नियम नही बँधा, उसे दीर्घ आयु नही मिलती।"*

अतिथि सत्कार को भी आचार का एक अग माना गया है, आतिथ्य का अभिप्राय केवल भोजन कराना ही नही है वरन् अभावग्रस्त के अभाव को दूर करना, सकटग्रस्त के सकट को दूर करना और दुखी प्राणी को हर प्रकार से सहायता करना है। जो सामर्थ्य रखते हुए ऐसा नही करता, वह निन्दा का पात्र माना गया है। ऋषि के अतिथिसत्कार में समाजवाद के दर्शन होते हैं। वह अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं "समाज मे धनवान व्यक्तियो के रहते अन्य लोगो को धनाभाव के कारण जो *कुकर्म करने पड़ते हैं, उनका उत्तरदायित्व धनी व्यक्तियो पर ही होता है।"* परिश्रम-पूर्वक धन कमाने की सलाह भी दी गई है परन्तु उसका कुप्रभाव किसी अन्य पर न पड़े, इसकी चेतावनी भी दे दी गई है अन्यथा समाज मे परस्पर असतोष और द्वेष की भावनाओ को जन्म मिलेगा।

महर्षि मार्कण्डेय अपने पाठक को आध्यात्म की साधना आरम्भ करने के पूर्व उत्तम नागरिक बनाना चाहते हैं। उनके मतानुसार नागरिकता के नियमो की उपेक्षा कर के अध्यात्म पथ पर बढ़ना असम्भव है क्योंकि यह तो उसकी पहली सीढ़ी है। *उत्तम स्वास्थ्य तो उसकी नीव है ही।*

अवगुणों के प्रति चेतावनी—

मनुष्य श्रेष्ठतम सामाजिक प्राणी है क्योंकि उसे बुद्धि जैसी महानतम सम्पत्ति से विभूषित किया गया है। अपने इस गौरव की स्थिरता के लिये

आवश्यक है कि वह बुद्धिमानों जैसे कार्य करे। बुद्धिमान वही है जो अपने विचारों को स्वस्थ और पवित्र रखता है क्योंकि मानव जीवन की समस्त सुख-शान्ति उसके विचारों पर ही निर्भर करती है, इन्हीं से वह अपने भविष्य की, अपने भाग्य की रेखाओं का निर्माण करता है। विचारों को जो तत्व गदला बनाते हैं, उन्हें दूर करना आवश्यक है। बुरे विचारों को आसुरी शक्तियों की सज्ञा दी जाती है। इनसे सुरक्षा के लिये हमारे शास्त्रकारों ने बारबार चेतावनी दी है। सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बनने के लिये भी यही करना पड़ा था।

आध्यात्म पथ के पथिकों को आत्म निरीक्षण की शिक्षा दी जाती है ताकि मन में एक करने में घुसे हुए दुर्गुणों को छांट छांटकर बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि इनसे बढ़कर अपना और कोई शत्रु नहीं है। यह ऐसे शत्रु हैं जो निरन्तर अपने साथ रहते हैं और पग-पग पर चोट पहुँचाने का प्रयत्न करते रहते हैं। दुर्गुणी व्यक्ति अपनी धार्मिक शान्ति खो बैठता है क्योंकि उसे बाह्य जीवन में सब ओर लाछना, असफलता और तिरस्कार ही मिलता है। जिस प्रकार गन्दे, गलीज, घिनौने और छूत के रोगी से बचने का हर कोई प्रयत्न करता है, इसी प्रकार दुर्गुणी व्यक्ति जिधर जाता है, उधर से दुत्कारा जाता है। शरीर में घुसे हुए रोगों को दूर करने की हम चेष्टा करते हैं परन्तु अन्तः क्षेत्र को अस्त-व्यस्त कर डालने वाले दुर्गुणों की ओर कोई ध्यान नहीं देता। वास्तविकता यह है कि शारीरिक रोगों की अपेक्षा मानसिक दोष दुर्गुणों से अधिक हानि की सम्भावना होती है। दुर्गुण मानव के लिये एक अभिशाप हैं, एक कलङ्क हैं।

समाज में सर ऊँचा उठाकर चलने के लिये दुर्गुणों से रक्षा आवश्यक है। मार्कण्डेय ने बार-बार चेतावनी दी है, दुर्गुणों के दुष्परिणामों के भयङ्कर चित्र खींचे हैं सम्भव है उन्हें असम्भव की सज्ञा दी जाने लगे। परन्तु ऋषि का उद्देश्य केवल उन दुर्गुणों के प्रति सजग रहने की प्रेरणा मात्र है कि इनसे यह परिणाम भी निकल सकते हैं। उदाहरण के लिये मद्यपान से बचने के लिये बलराम की कथा दी गई है कि जब महाभारत युद्ध में उन्होंने पाण्डवों और कौरवों में से किसी का भी पक्ष लेना उचित नहीं समझा तो वह तीर्थ

यात्रा को चल पडे । एक दिन उन्होने अधिक मद्यपान कर लिया और रैवत वन मे प्रवेश किया जहाँ पर ऋषियो के समक्ष सूतजीको कथा हो रही थी । ऋषि बलराम जी के सम्मान मे उठ खडे हुए परन्तु सूतजी ने व्यास जी की मर्यादा का पालन किया और आसन पर बैठे रहे । इससे बलराम जी को क्रोध आ गया और उन्होने सूतजी का वध कर दिया । थोडी देर के बाद उन्हे होश आया तो इस कुकृत्य पर लज्जित हुए और प्रायश्चित के रूप मे नये सिरे से तीर्थाटन का आरम्भ किया ।

शराब को भी लोग पीते हैं । वह गाली,गलौच और लडाई-झगडा तो करते देखे जाते हैं परन्तु ऐसा कभी नहीं सुना कि किसी शराबी ने नशे मे चूर होकर किसी का वध कर दिया हो । यदि दो-चार हत्यायें इस तरह की हो जायें तो इसे कानून से ही बन्द करना पडे क्योकि इससे लोगों के जानमाल को सुरक्षा का खतरा उत्पन्न हो जायगा । परन्तु वास्तव में ऐसा होता नही है । महर्षि मार्कंडेय भी इस तथ्य से अवश्य परिचित होगे परन्तु उन्होने अतिशयोक्ति शैली मे अपरोक्ष मे मद्यपान के दोष का ही वर्णन किया है कि नशे मे जब ज्ञान तंतु सज्ञा शून्य हो जाते हैं तो उस क्षणिक पागलपन का प्रवाह किसी भी ओर वह सकता है और वह व्यक्ति मारपीट से लेकर हत्या तक कर सकता है ।

काम भी एक नशा है जो मनुष्य को अन्धा बना देता है । मन मे इसकी उत्तेजना इतनी तीव्र होती है कि कामी व्यक्ति सामाजिक मर्यादाओ का उल्लघन कर बडे दु साहस कर बैठता है । आजकल युवतियो से छेड-छाड तो साधारण बात हो गई है । सडक पर जाती हुई युवती का अपहरण कर लिया जाता है और उससे मनमाने कुकृत्य किये जाते हैं । वह युवती अपने दुर्भाग्य और फिर भगवान को कोसती होगी कि उसने यह पशुरूप में कैसे मानव बना दिये जो मानव शरीर को भी लज्जित करते हैं । वह इस समाज से भी घृणा करने लगती है जो पतन की पराकाष्ठा में पहुंच गया हो, फिर शासन को दोष देती है जहाँ किसी की लाज सुरक्षित नहीं है । इन घटनाओं पर सभी विचारक खेद प्रकट करते हैं परन्तु यह वातावरण उत्पन्न करने वाले जो माध्यम हैं,

उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। अश्लील फिल्में और उपन्यास, पत्रिकायें जिनसे इस विषय की उत्पत्ति होती है, उनमें सुधार की आवश्यकता है ताकि युवकों में यह सद्विचार उत्पन्न हो कि समाज की हर युवती उनकी बहिन है। यही सभ्य समाज की निशानी है अथवा तथाकथित विकसित युग की दुहाई देने से कोई लाभ नहीं है।

इतिहास साक्षी है कि काम भावना से प्रेरित होकर रावण ने सीता का हरण किया और एक महान् युद्ध को निमन्त्रण दिया। अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी को प्राप्त करने के लिये भीषण नर संहार कराया। काम के कारण हत्याओं के समाचार आज भी प्राप्त होते रहते हैं। इसी ओर महर्षि ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। एक कथा इस प्रकार से दी गई है कि नरिष्यन्त के पुत्र दम को दशार्ण के राजा चारुवर्मा की पुत्री राजकुमारी सुमना के स्वयंवर में अपना पति चुना परन्तु भद्रप्रदेश के राजकुमार महानंद,विदर्भ के राजकुमार वपुष्मान व महाधनु को यह सहन नहीं हुआ। उन्होंने एक षड्यन्त्र रचा जिसके अनुसार सुमना को बलपूर्वक छीन लेना था और यह निश्चित किया गया कि वह हम तीनों में से जिसको भी चुन लेगी,उसकी पत्नी हो जायेगी। यदि वह हममें से किसी को चुनेगी तो उसका वध करने वाला ही उसका पति माना जायगा। एक सुन्दर स्त्री को अपनी पत्नी बनाने के लिये वह घोर अन्याय और अधर्म पर उतारू हो गये। जब सुमना ने स्वयंवर में अपना पति चुन लिया तो इस दिशा में कोई भी पग जिसकी लाठी उसकी भैंस की संज्ञा में आ जाता है। दम और उसके शत्रुओं में घोर युद्ध हुआ। दम ने महानन्द का मस्तक काट दिया और वपुष्मान को बाणों से बींध दिया और सुमना को अपने घर ले गया। यदि कथा का मोड इस प्रकार से होता कि वह तीनों दम को कैदी बना लेते, या उसका वध कर देते और सुमना को भगा कर ले जाते और तीनों में कोई समझौता न हो पाता तो वह भी परस्पर युद्ध की लपेट में आकर नष्ट हो जाते तो और भी सुन्दर होता क्योंकि काम वासना के अन्तिम परिणामों तक कथा पहुंच जाती।

पर स्त्री को बुरी दृष्टि से देखने वाले को पारलौकिक भय भी दिखाया गया है। कहा है कि ऐसे कामी व्यक्ति को नरक में तो जाना पड़ता है परन्तु वहाँ पर वज्र की चोंच वाले पक्षी उनकी आँखें नोंचते हैं। यह यातना बार-बार दी जाती है और लम्बे समय तक चलती है। जितने क्षणों तक यह पाप किया जाय, उतने वर्षों तक इसका फल भुगतना पड़ता है। नेत्रों से दोष करने वाले को नेत्रों की ही यातना दी जाती है। नियम यही है जिस अङ्ग से दोष किया जाता है, उसके सुधार के लिये उस अङ्ग को ही प्रताड़ना दी जाती है ताकि उसे अपने किये पर पछतावा हो और फिर उसकी पुनरावृत्ति न करने का सङ्कल्प ले।

महर्षि ने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि भले व्यक्तियों को कभी परीक्षा की घड़ी भी आती है जब उनको काम वासना की ओर घसीटा जाता है परन्तु इस समय विवेक से काम लेना चाहिए। महर्षि दुर्वासा को पतित करने के लिये वपु नाम की अप्सरा ने सब तरह की काम चेष्टायें की तो ऋषि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु जब वह फिर भी अपने हाव भाव प्रदर्शित करने मे लगी रही तो दुर्वासा ने उसे शाप दिया कि तुम सुपर्ण गोत्र मे पक्षिणी बनो। मार्कण्डेय ने काम बाणों से सुरक्षा के लिये सजग रहने की प्रेरणा दी है *क्योंकि किसी समय भी आक्रमण होने का अवसर आ सकता है।*

क्रोध मानव का दुर्जय शत्रु है। सब जानते हैं कि इससे मस्तिष्क की नसों में उत्तेजना उत्पन्न होती हैं, वह चलती हैं जिनका कुप्रभाव सारे शरीर के स्वास्थ्य पर पड़ता है, मन व इन्द्रियां भी इस अग्नि की लपेट में आती हैं, बुद्धि भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। गांधीजी ने इसे शराब और अफीम के नशे की संज्ञा दी है क्योंकि इनके लक्षण मिलते जुलते हैं। कवियों ने भी कहा है कि पाप का मूल क्रोध है और क्रोध के मिटे बिना जीव का सन्ताप नहीं मिट सकता। गीता में क्रोध से अविवेक की उत्पत्ति कही है क्योंकि क्रोधी को उस दौरे के बाद ही वास्तविकता से परिचय होता है। इसे नरक द्वार भी बताया गया है। यह अध्यात्म साधना को तो नष्ट ही करने वाला है। इन

दुष्परिणामों के कारण ही महर्षि मार्कण्डेय ने इस महारोग के प्रति सावधान किया है। इसके लिये उन्हें अनेको कथाओ का सहारा लेना पडा।

वैवस्वत मनु के पुत्र पृषध्र एक बार मृगया के लिये वन मे गये, तो एक ब्राह्मण की गौ को गलती से मार दिया। तब ब्राह्मण ने पृषध्र को शूद्र हो जाने का शाप दिया। क्रोध से क्रोध की वृद्धि होती है। राजा को भी क्रोध आ गया। राजा भी ब्राह्मण को शाप देने लगा। इस पर ब्राह्मण राजा को नष्ट करने के लिए दूसरा शाप देने को प्रस्तुत हुआ। उसी समय उसका पिता वहाँ पहुँच गया और उसे समझाया कि ब्राह्मण का भूषण क्रोध नही क्षमा है। क्रोध से तो धर्म, अर्थ और काम तीनो का नाश होता है। यदि ब्राह्मण का पिता बीच में न आ जाता तो दोनो की उत्तेजना बढती ही जाती और दोनो एक दूसरे को शाप देते ही जाते, जब तक कि उन दोनो मे से कोई एक नष्ट न हो जाता।

विश्वामित्र और वशिष्ठ का द्वंद्व और संघर्ष पुराण प्रसिद्ध है। इस पुराण में भी उसे दिया गया है परन्तु बदले हुए रूप में। वशिष्ठ हरिश्चन्द्र के पुरोहित थे। जब विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र से राज्य लिया तो वह जल मे तपस्या कर रहे थे। जब वह बारह वर्षों के बाद तप करके आए तो उन्हे हरिश्चन्द्र के भीषण कष्टों से परिचय कराया गया। उन्हें क्रोध का आवेश आया और विश्वामित्र को बक पक्षी होने का शाप दिया। विश्वामित्र तो क्रोध के लिए प्रसिद्ध हैं ही। उन्होंने वशिष्ठ को सारस हो जाने का शाप दे डाला। मनुष्य से पक्षियों की योनि प्राप्त होने पर भी दोनो को शान्ति न मिली और युद्ध पर उतारू हो गये। इससे सारे विश्व मे हाहाकार मच गया और देवताओ को प्रेरणा से ब्रह्मा को बीच बचाव के लिए आना पडा, तब कही वह शान्त हो पाए। इसमें क्रोध की पक्षियो के अज्ञान से तुलना की गई है और बताया है कि क्रोध से मानव कितना गिर जाता है। वह इसके आवेश में आकर घोर से घोर अपराध कर सकता है।

एक अन्य कथा मे विश्वामित्र के क्रोध से विद्याओ का नाश बताया गया है। विद्या का अभिप्राय ज्ञान और विवेक है। क्रोध की उत्पत्ति ही अज्ञान और

अविवेक की नींव पर होती है । अत शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक स्वास्थ्य के इच्छुक व्यक्ति को इससे बचना चाहिए, तभी आध्यात्म साधना में कुछ प्रगति की आशा की जा सकती है ।

क्रोध का आधार अहङ्कार होता है । जब अहङ्कार को ठेस पहुँचती है तो क्रोध से उसकी शान्ति करने का प्रयत्न किया जाता है परन्तु उसका परिणाम अशान्ति ही होता है । जो व्यक्ति इन दोनों के पजे मे फँस जाता है, उससे बडे बडे अपराध हो जाते हैं । बलराम जैसे बुद्धिमान् व्यक्ति भी उससे नही बच पाए, जिनको भगवान् का अवतार भी माना जाता है । उनकी शक्ति, सामर्थ्य व अन्य कार्यों को दृष्टि में रखते हुए ही यह उच्च सम्मान दिया गया होगा परन्तु सूतजी जैसे कथावाचक उनके आगमन पर सम्मान के प्रदर्शन के लिए खडे नही होते तो उनके अहङ्कार को ठोकर लगती है । जैसे दु खी और चिन्तित व्यक्ति अपने दु ख को कुछ क्षणों के लिए भुलाने के लिए शराब पीता है, उसी तरह से अहकार की पुष्टि न होने का जो दु ख होता है, उसकी निवृत्ति के लिए क्रोध के नशे की आवश्यकता आ पडती है । क्रोध का परिणाम कुछ भी हो, उससे अहकार का रोग तो दूर हो ही जाता है । एलोपैथिक दवाओं का भी यही प्रभाव पडता है । प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले रोग को वह शीघ्र ही दवा देती हैं परन्तु निश्चित रूप से अन्य भयकर रोगों की उत्पत्ति होती है । उसका परिणाम कुछ भी हो परन्तु रोगी व अभिभावक को यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि रोगी जिस रोग से पीडित हो रहा था, वह ठीक हो गया । अहकार की औषधि क्रोध है परन्तु क्रोध तो मार-पीट, गाली गलौच, युद्ध, सघर्ष और हत्या आदि से ही शान्त होता है, उसका आहार बहुत ही भयकर राक्षसों का सा है । इसका कारण तो अहकार ही है । यदि अहङ्कार की उत्पत्ति न हो तो क्रोध का जन्म लेना भी सम्भव नही है । अत अहङ्कार रूपी जड को तो काट देना चाहिए जिससे अन्य दोषों की वृद्धि न होने पाए ।

पुराणकार ने लोभ के भीषण रूप को भी प्रस्तुत किया है । एक राजा बिना कारण दूसरे के राज्य पर अपना अधिकार जमाना चाहता है । उस पर आक्रमण करता है, घोर युद्ध और नर-सहार होते हैं और शक्तिशाली

राजा कमजोर को दबा देता है। अनेकों बार राजाओं के मन में सारी पृथ्वी का सम्राट बनने की लालसाएँ उत्पन्न की गई हैं। लोभ के भयङ्कर परिणामों को भी प्रस्तुत किया गया है।

भोग से पुण्य का क्षय बताया गया है। एक कथा में इससे शक्ति का नाश होना भी व्यक्त किया गया है। सुव्रत तपस्वी ने राजा विदूरथ को कुजृम्भ नाम के एक राक्षस के बारे में जानकारी देते हुए कहा कि जिस दिन उसे कोई स्त्री छू देती है, उसकी शक्ति कम हो जाती है, दूसरे दिन पुन. बढ जाती है। इससे स्पष्ट है कि स्त्री के सहर्ग से शक्ति का व्यय होता है। भोग मानव पर अपना चहुँमुखी प्रभाव डालते हैं। इसीलिए प्राचीन काल में वानप्रस्थ और सन्यास की व्यवस्था बनाई गई थी ताकि भोगों से निवृत्त होकर आत्मकल्याण की साधना में अपना पूरा समय लगाया जा सके। यह तभी सम्भव है जब शक्ति के व्यय को रोका जाए। राजा राज्य वर्धन का जब एक बाल पक गया तो उसने समझा कि यह यमराज का दूत है और मृत्यु का सन्देश लेकर आया है। अत. मुझे अपने राज्य का भार अपने पुत्रों को सौंपकर विषय-भोगों से निवृत्त होकर वन में जाकर तप करना चाहिए।" गृहस्थ में रहकर इस साधना को किया जा सके तो अत्यन्त उत्तम है।

इस तरह से पतन के जितने भी मार्ग हो सकते हैं, उनका ऋषि ने दिग्दर्शन कराया है और दुष्ट भावों से बचने की प्रेरणा दी है क्योंकि दुर्गुणों के रहते हुए इस लोक और परलोक दोनों में शान्ति की सम्भावना नहीं हो सकती, चाहे सैंकडों प्रकार के भौतिक साधन उपलब्ध हों। दुराचारी सदैव अशान्त रहता है। शान्ति के लिए सदाचारी बनना आवश्यक है। उस मार्ग पर चलने के लिए मार्कण्डेय प्रेरित करते हैं।

मानव दोषों का पुतला है। अपने प्रबल संस्कारों व बुरे सङ्ग के कारण वह बुरे काम करता है परन्तु जब रोग उत्पन्न होते हैं, तो उनको दूर करने के लिए दवाओं की भी खोज कर ली गई है। शारीरिक रोगों की तरह मानसिक रोगों के भी उपचार हैं। भारतीय मनीषियों ने मानसिक विकारों की निवृत्ति का अमोघ उपाय यह बताया है कि पापी अपने पाप की घोषणा सार्वजनिक

परायण होकर हव्य, कव्य और अन्नदान करते हुए पितर, देवता, अतिथि और बांधवों का पूजन करने वाला होना चाहिए। इनके अतिरिक्त भृत्य, पशु पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक या पर अपर जो कोई भी जैसे प्रार्थना करे, गृहस्थी यदि नित्य नैमित्तिकी क्रिया का उल्लंघन करे तो उसे पाप का भागी होना पड़ता है।"'गृहस्थ को सदैव सदाचार का पालन करना चाहिए, आचार हीन पुरुष को लोक में कभी भी सुख नहीं मिल सकता, जो पुरुष सदाचार को छोड़कर संसार मार्ग में प्रवृत्त होता है उसके द्वारा किये हुए यज्ञ, दान और तपस्या आदि सभी अमङ्गलजनक होते हैं।'''''दुराचार में प्रवृत्त मनुष्य दीर्घजीवी कदापि नहीं हो सकता, इसलिये सदाचार में ही प्रवृत्त होवे, सदाचार से बुरे लक्षण नष्ट हो जाते हैं।'''''गृहस्थ को उपार्जित किये हुए धन का चतुर्थ भाग धर्म के लिये संचित करना चाहिए, आधे भाग से अपना पोषण और नित्य नैमित्तिक कार्य करे, और शेष भाग को मूलधन के रूप में वृद्धि करे''''' गुरु को देख कर उठ कर खड़े होने इत्यादि से सत्कार पूर्वक आसन दे और प्रणाम करके अनुकूल वार्तालाप करे। उनके गमन समय उनके पीछे चले, प्रतिकूल वचन न कहे।'' द्विजाति की निंदा न करे।'''गुरु के दुष्कर्म को किसी प्रकार प्रकट न करे तथा उनके कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे।''''' किसी के मर्म को व्यथित न करे, किसी को न कोसे, चुगली न करे, दंभ, अभिमान और तीखे व्यवहार को छोड़ दे। मूर्ख, उन्मत्त, दुःखी आपद्ग्रस्त, विरूप, मायावी, अङ्गहीन अथवा अधिक अङ्ग को हंसी उड़ा कर न छेड़े।''''''परनारीगमन न करे क्योंकि परनारीगमन से इष्टापूर्त नष्ट होता है और दीर्घायु का ह्रास होता है। इस लोक में इस पाप के समान अन्य कोई पाप नहीं है, देव-पूजन, अग्नि कार्य और गुरुजनों को प्रणाम सदा कर्त्तव्य है। '''पूर्वाह्न में देवताओं का, मध्याह्न में मनुष्यों एवं अपराह्न में पितरों का पूजन करे।'''' 'देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्यनिष्ठ, महात्मा, गुरुजन, पतिव्रता, यज्ञ और तप परायण पुरुष इनकी हंसी न उड़ावे। यदि कोई अविनय वाला पुरुष इनकी निन्दा करे तो उधर ध्यान न दे, देवता, पितर और अतिथि का पूजन सदा करे। सावधान चित्त से वेदाध्ययन करे, अपने से श्रेष्ठ या निम्न

रूप से कर दे। यदि वह अपने मन में उसे दबाए रखता है तो उसकी ग्रन्थि बन जाती है जो जन्म-जन्मान्तरों तक कष्ट का कारण बनती है। सभी विधान बनाया गया है कि जब किसी से गो हत्या हो जाय तो ग्राम में घूमकर और उस गाय की पूँछ पकड़ कर चिल्ला २ कर कहे कि मैंने इस गाय का वध किया है। यह उस पाप का प्रायश्चित्त मान लिया जाता है। दण्ड से पाप नहीं धुलता है और न ही पापी को फिर पाप करने से बचाया जा सकता है। पाप एक मानसिक रोग है, उसी का उपचार भी इसके अनुरूप ही होना चाहिए। मार्कण्डेय ने भी यही दवा बताई है। जब बलराम जी से मद्यपान के नशे में सूतजी का वध हो गया तो नशा उतरने पर वह अपने कुकर्म पर लज्जित हुए। उन्होने निश्चय किया कि इस पाप का क्षय करने के लिए अपने कुकर्म का बखान करता हुआ बारह वर्ष का व्रत करूँगा। वही मेरे पाप का सर्वोत्तम प्रायश्चित्त होगा। आधुनिक मनोविज्ञान ने भी इस सिद्धान्त को अपनी स्वीकृति प्रदान की है।

सद्‌गुणों के विकास पर बल

अवगुणों के प्रति सावधान रहने के साथ साथ सद्‌गुणों का विकास भी आवश्यक है। सद्‌गुणो को बहुमूल्य सम्पत्ति, मानव जीवन की सबसे बडो विभूति मानी जाती है। सद्‌गुणो को सच्ची सम्पत्ति इसलिये कहा जा सकता है कि उन्ही के आधार पर समस्त प्रकार की प्रगति कर सकना सम्भव होता है। दूसरो की सहानुभूति, श्रद्धा एव सद्भावना केवल उन्हे मिल सकती है जो सद्‌गुणी हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, कौशल आदि के आधार पर आमतौर पर कुछ कमाया जाता है पर सची शिक्षा और चिरस्थायी समृद्धि केवल सद्‌गुणों के आधार पर ही सम्भव होती है। ऐसी ही समृद्धि से मनुष्य का लौकिक और पारलौकिक जीवन सुख शान्तिमय बनता है।

पुराणकार ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है। वह अपने पाठक को सत्यवादी, सदाचारी, चरित्रवान्, श्रेष्ठ, परिश्रमी और स्वावलम्बी देखना चाहते हैं। मार्कण्डेय का भिन्न-भिन्न स्थानों पर आदेश है कि—"गृहस्थ को सदाचार

परायण होकर हव्य, कव्य और अन्नदान करते हुए पितर, देवता, अतिथि और बाधवो का पूजन करने वाला होना चाहिए । इनके अतिरिक्त भृत, भृत्य, पशु पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक या पर अपर जो कोई भी जैस प्रार्थना करे, गृहस्थी यदि नित्य नैमित्तिकी क्रिया का उल्लघन करे तो उसे पाप का भागी होना पडता है।"' गृहस्थ को सदैव सदाचार का पालन करना चाहिए, आचार हीन पुरुष को लोक में कभी भी सुख नहीं मिल सकता, जो पुरुष सदाचार को छोडकर ससार मार्ग मे प्रवृत्त होता है उसके द्वारा किये हुए यज्ञ, दान और तपस्या आदि सभी अमङ्गलजनक होते हैं।"''' दुराचार मे प्रवृत्त मनुष्य दीर्घजीवी कदापि नहीं हो सकता, इसलिये सदाचार मे ही प्रवृत्त होवे, सदाचार से बुरे लक्षण नष्ट हो जाते हैं।''''''गृहस्थ को उपार्जित किये हुए धन का चतुर्थ भाग धर्म के लिये सचित करना चाहिए, आधे भाग मे अपना पोषण और नित्य नैमित्तिक कार्य करे, और शेष भाग की मूलधन के रूप में वृद्धि करे''''' गुरु को देख कर उठ कर खडे होने इत्यादि से सत्कार पूर्वक आसन दे और प्रणाम करके अनुकूल वार्त्तालाप करे। उनके गमन समय उनके पीछे चले, प्रतिकूल वचन न कहे।'' द्विजाति की निन्दा न करे।'''गुरु के दुष्कर्म को किसी प्रकार प्रकट न करे तथा उनके कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे।'''' किसी के मर्म को व्यथित न करे, किसी को न कोसे, चुगली न करे, दम, अभिमान और तीखे व्यवहार को छोड दे। मूर्ख, उन्मत्त, दुखी आपद्ग्रस्त, विरूप, मायावी, अङ्गहीन अथवा अधिक अङ्ग की हसी उडा कर न छेडे।''''''परनारीगमन न करे क्योकि परनारीगमन से इष्टापूर्त नष्ट होता है और दीर्घायु का ह्रास होता है। इस लोक में इस पाप के समान अन्य कोई पाप नही है, देव-पूजन, अग्नि कार्य और गुरुजनों को प्रणाम सदा कर्त्तव्य है। '''पूर्वाह्न मे देवताओ का, मध्याह्न मे मनुष्यो एव अपराह्न मे पितरों का पूजन करे।''''''देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्यनिष्ठ, महात्मा, गुरुजन, पतिव्रता, यज्ञ और तप परायण पुरुष इनकी हसी न उडावे। यदि कोई अविनय वाला पुरुष इनकी निन्दा करे तो उधर ध्यान न दे, देवता, पितर और अतिथि का पूजन सदा करे। सावधान चित्त वेदाध्ययन करे, अपने से श्रेष्ठ या निम्न

मनुष्य की शय्या अथवा आसन पर न बैठे। अमंगल वेश न धारे, अमंगल वचन न कहे।...गुरु या देवता के सामने पैर फैलाना भी निषिद्ध है।

दुर्वासा की तरह अपने चरित्र की सुरक्षा के लिये किस प्रकार सजग रहना चाहिए, ऋषि एक ब्राह्मण की कथा के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। लोग यह समझ सकते हैं कि दुर्वासा तो ऋषि थे, वह तो हर प्रकार की सामर्थ्य रखते हैं परन्तु एक साधारण गृहस्थ कैसे पतन के मार्ग पर चलने से बच सकता है। एक ब्राह्मण के रूप लावण्य पर मुग्ध होकर वरूथिनी नाम की अप्सरा प्रणय—प्रार्थना करती है। निर्जन पर्वतीय स्थान और युवती का प्रणय प्रस्ताव, स्वीकृति के लिये कोई बाधा नहीं, समाज का कोई बन्धन नहीं, अपमान का कोई अवसर नहीं, फिर भी जिनका विवेक जाग्रत रहता है और उच्च भावनाओं से ओत-प्रोत रहते हैं, वह कोई देखता हो या नहीं, कदापि दुष्कर्म नहीं कर सकते क्योंकि वह ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं और उसके सहस्र नेत्रों का अनुभव करते हैं। ब्राह्मण कुमार ने बाह्य रूप का मूल्यांकन न किया और प्रस्ताव को तत्काल ठुकरा दिया। ब्राह्मण के शब्द ध्यान देने योग्य हैं —

'ब्राह्मण के लिये भोग चेष्टा, प्रशस्त नहीं मानी गई है अपितु धर्मनुष्ठान और कर्तव्यपरायणता का प्रयत्न ही श्रेष्ठ है क्योंकि वह इस लोक में क्लेश देने वाली होने पर भी परलोक में उत्तम फल देती है। मेरे गुरुजनों की यह शिक्षा है कि परायी स्त्री की अभिलाषा कभी नहीं करनी चाहिए। अतः मैं तुम्हें किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं कर सकता भले ही तुम रोती चिल्लाती रहो और निराशा के शोक से सूख जाओ।"

ब्राह्मण की प्रार्थना पर ही उसके चरित्र का परिचय मिलता है। "यदि मैंने कभी भी ठीक समय पर वैदिक कर्म का त्याग न किया हो और कभी भी मेरे मन में पराये धन और परायी स्त्री की इच्छा न हुई हो तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो, चरित्रवान् व्यक्ति का मन सबल और आत्मा शक्तिशाली होती है, उसका कोई भी कठिन से कठिन कार्य रुका नहीं रहता। जीवन में हर पग पर सफलता उसका स्वागत करती है।

सद्गुणों के विकास और चरित्र के उत्थान व स्थिरता के लिए अच्छे सङ्ग की अपेक्षा रहती है। सङ्ग का प्रभाव अपरिहार्य है। अच्छा सङ्ग भाग्य वानों को ही प्राप्त होता है। ऋषि ने भी शिक्षा दी है कि "सदाचारी साधु मनुष्यों के साथ ही मित्रता करे, बुद्धिमान्, उद्योगी को मित्र बनावे। वेदज्ञान से युक्त विद्वान्, व्रत परायण और स्नातक का सङ्ग करे," बुद्धिमान् मदालसा ने भी कष्ट आने पर सत्पुरुषों का सङ्ग करने की शिक्षा दी है। मदालसा ने अपने पुत्र अलक को एक अँगूठी दी थी कि जब सङ्कट आए तो इसमें लिपटे कागज पर लिखी शिक्षा का सहारा लेना। एक बार अलक के बड़े भाई सुबाहु ने काशीश्वर की सहायता से अलक के राज्य पर आक्रमण करके उसे राज्य-च्युत कर दिया तो उसने माता की अँगूठी में लिपटी शिक्षा खोली। उसमें लिखा था "प्रत्येक को सङ्ग का त्याग करना चाहिए। ऐसा सम्भव न हो तो सज्जनों के साथ ही सङ्ग करना चाहिए। सज्जन पुरुषों का सङ्ग औषधि है।" माँ की इस शिक्षा को शिरोधार्य कर अलर्क योगीराज दत्तात्रेय के पास गए। वहाँ से उसके दुःख का समाधान हुआ।

सत्सङ्ग का प्रभाव यदि मनुष्य के व्यवहार पर अनुकूल नहीं पड़ता तो उस सङ्ग से क्या लाभ? मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में उच्च सम्मान का इच्छुक रहता है परन्तु झूठ, छल, कपट से वह मान मिट्टी में मिल जाता है, और सरल सत्य व्यवहार से सम्मान की वृद्धि होती है। लोग उस पर विश्वास करते हैं। कपटी और छली व्यक्ति पर अपने बन्धु-बान्धव भी विश्वास नहीं करते और उसके हर व्यवहार को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। इसलिए पुराणकार ने घोर से घोर सङ्कट में भी सत्य का परित्याग न करने की शिक्षा दी है। इसके लिए राजा हरिश्चन्द्र का लम्बा आख्यान देना पड़ा है। रानी के मुख से ही सत्य पालन के प्रति दृढ निष्ठा की प्रेरणा दिलाई गई है। "राजन्! चिन्ता का त्याग करो, सत्य का पालन करो। सत्य से च्युत व्यक्ति श्मशान की तरह त्याग योग्य होता है। व्यक्ति के लिए सत्य पालन से बड़ा कोई धर्म नहीं है। सत्य पालन न करने वाले के अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान और समस्त पुण्य कर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म शास्त्र कहते हैं कि सत्य से

पराजित होने पर लज्जा का अनुभव करने वाले एक राजकुमार ने पुरुषार्थमय जीवन की कामना की है। राजा करन्धम का पुत्र अवीक्षित एक स्वयम्बर में गया। राजकुमारी को बलात् अपने वश में कर लिया। यह अन्य राजकुमारों को बुरा लगा। सबने विरोध किया और विरोध संघर्ष में बदल गया। अन्त में अवीक्षित को बन्दी बना लिया गया। फिर उसके पिता ने अपनी सेनाओं की सहायता से उसे छुड़ाया। जब राजा वन जाने लगे तो राज्य का भार उसको सौंपना चाहते थे। इस पर पुत्र ने कहा कि 'मैं इस योग्य नहीं हूँ, मैं अपनी पराजय से लज्जित हूँ। मुझ बन्दी को आपने मुक्त कराया था, मैं स्वयं मुक्त न हो सका। फिर मुझमें क्या पुरुषत्व है? पौरुष से युक्त व्यक्ति पृथ्वी का शासक होने योग्य है। जो पिता की अर्जित सम्पत्ति का भोग करे, या पिता द्वारा सङ्कट से उबारा जाए, कुल में ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए, जो अपने बल, पौरुष से सम्पत्ति और ख्याति का अर्जन करते तथा अपने पौरुष से सङ्कटों को पार करते हैं, मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूँ", ऐसे विचार वाला व्यक्ति ही गौरव के साथ नेपोलियन की तरह सर ऊँचा करके कह सकता है कि असम्भव शब्द को मेरे कोष में से निकाल बाहर करो। इसे कायरों ने बनाया है, मैं इसे सुनना भी नहीं चाहता। मार्कण्डेय भी यही प्रेरणा देते हैं कि पुरुषार्थ और स्वावलम्बन की सत्प्रवृत्ति से ही मानव का उत्थान सम्भव है।

परमार्थ तत्व का निरूपण

दान के कुछ अनोखे उदाहरण पुराण में वर्णित हैं। साधारण बुद्धि उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। उन पर सहज में विश्वास भी नहीं होता। हरिश्चन्द्र का विश्वामित्र को अपना सारा राज्य दान में दे देना एक कल्पनातीत घटना है। देने वाला अनुमान लगा सकता है कि उसे जीवन म कितनी ठोकरें खानी पडे गी? निर्धन व्यक्ति पर यदि कोई कष्ट आता है तो उसका सहन करना सरल होता है क्योंकि अभावों का देखना उसका स्वभाव बन चुका है परन्तु जिसकी नस-नस मे ऐश-आराम ओत-प्रोत हैं, उन पर मुसीबतों के पहाड

उत्थान और असत्य से पतन होता है। सत्य से ही सूर्य तपता है। सत्य पर ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य सर्व श्रेष्ठ धर्म है। स्वर्ग का अधिष्ठान भी सत्य ही है। एक पलडे पर सत्य को और दूसरे पर एक हजार अश्वमेध यज्ञों का फल रख दिया जाए तो सत्य का पलडा ही भारी रहेगा।" ब्राह्मण का तो यह विशेष गुण घोषित किया गया है। कहा है, "ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व इसी मे है कि वह पक्षी के सामने भी सत्य का पालन करे। ब्राह्मण को जो पुण्य सत्य व्यवहार से होता है वह अच्छी दक्षिणा वाले यज्ञो से अथवा किसी उत्तम कार्य से नही प्राप्त हो सकता।"

सत्यवादी ही सच्चा मित्र समझा जा सकता है, उस पर कोई भी विश्वास कर सकता है। उसके सामाजिक सम्बन्ध विस्तृत हो जाते हैं। जन नतृत्व के योग्य भी वही होता है। मित्रता की कसौटी उपकार बताई गई है। ऋषि ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है 'मित्रता का स्वार्थ जिससे अपूर्ण नही रहता, वह मनुष्य धन्य है, उसका जन्म और जीवन धन्य है। मित्रो के उपकार का बदला चुकाए बिना जो अपने को जीवित समझता है, उसके जीवन को धिक्कार है।" इसकी पुष्टि के लिए एक रोचक कथा का भी सहारा लिया गया है। मदालसा ने जब अपने पति राजा ऋतध्वज की मृत्यु का समाचार सुना तो वह उसी क्षण मूर्छित होकर यमपुर पहुंच गई। यह समाचार गलत था। जब ऋतध्वज आए तो उन्हें बहुत दुःख हुआ और जीवन भर विवाह न करने का निश्चय किया। नागराज अश्वतर के पुत्र इनके मित्र थे। उन्होने यह घटना अपने पिता को सुनाई। पिता अपने पुत्रो को अपने मित्र का स्वागत सत्कार व उपकार करने की शिक्षा देते थे परन्तु पुत्रो की दलील थी कि ससार की हर वस्तु उसको उपलब्ध है, केवल पत्नी का उसे अभाव है जो सर्वथा असम्भव है। पिता ने सीख दी कि पुरुषार्थ करने पर हर असम्भव वस्तु भी सम्भव हो जाती है। पिता के प्रयत्न से यह भी सम्भव हो गया। मित्रता मानवता का एक आवश्यक लक्षण है।

पुरुषार्थ की महिमा का गान भी स्थान २ पर किया गया है। लक्ष्मी की प्राप्ति का अधिकारी भी उसे ही बताया गया है।

पराजित होने पर लज्जा का अनुभव करने वाले एक राजकुमार ने पुरुषार्थमय जीवन की कामना की है। राजा करन्धम का पुत्र अवीक्षित एक स्वयम्बर में गया। राजकुमारी को बलात् अपने वश में कर लिया। यह अन्य राजकुमारों को बुरा लगा। सबने विरोध किया और विरोध संघर्ष में बदल गया। अन्त में अवीक्षित को बन्दी बना लिया गया। फिर उसके पिता ने अपनी सेनाओं की सहायता से उसे छुड़ाया। जब राजा वन जाने लगे तो राज्य का भार उसको सौंपना चाहते थे। इस पर पुत्र ने कहा कि 'मैं इस योग्य नहीं हूँ, मैं अपनी पराजय से लज्जित हूँ। मुझ बन्दी को आपने मुक्त कराया था, मैं स्वयं मुक्त न हो सका। फिर मुझमें क्या पुरुषत्व है ? पौरुष से युक्त व्यक्ति पृथ्वी का शासक होने योग्य है। जो पिता की अर्जित सम्पत्ति का भोग करे, या पिता द्वारा सङ्कट से उबारा जाए, कुल में ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिए, जो अपने बल, पौरुष से सम्पत्ति और ख्याति का अर्जन करते तथा अपने पौरुष से सङ्कटों को पार करते हैं, मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूँ", ऐसे विचार वाला व्यक्ति ही गौरव के साथ नेपोलियन की तरह सर ऊँचा करके कह सकता है कि असम्भव शब्द को मेरे कोष में से निकाल बाहर करो। इसे कायरों ने बनाया है, मैं इसे सुनना भी नहीं चाहता। मार्कण्डेय भी यही प्रेरणा देते हैं कि पुरुषार्थ और स्वावलम्बन की सत्प्रवृत्ति से ही मानव का उत्थान सम्भव है।

परमार्थ तत्त्व का निरूपण

दान के कुछ अनोखे उदाहरण पुराण में वर्णित हैं। साधारण बुद्धि उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। उन पर सहज में विश्वास भी नहीं होता। हरिश्चन्द्र का विश्वामित्र को अपना सारा राज्य दान में दे देना एक कल्पनातीत घटना है। देने वाला अनुमान लगा सकता है कि उसे जीवन में कितनी ठोकरें खानी पड़ेगी ? निर्धन व्यक्ति पर यदि कोई कष्ट आता है तो उसका सहन करना सरल होता है क्योंकि अभावों का देखना उसका स्वभाव बन चुका है परन्तु जिसकी नस नस में ऐश-आराम ओत प्रोत हैं, उन पर मुसीबतों के पहाड़

टूट पड़े', तो उनका आत्म-हत्या जैसी निराशाजनक बातों के सोचने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं दिखाई देता। किसी करोड़पति को एक दिन में कङ्गाल कर दिया जाय तो उससे हृदय की गति बन्द हो जायगी परन्तु हरिश्चन्द्र ने सब कुछ प्रसन्नतापूर्वक झेला। कारण स्पष्ट है, उनके मन में दिव्यता छाई हुई थी, उसकी प्रवृत्ति देने की थी। यदि वह स्वार्थी स्वभाव का होता, तब तो वह अवश्य जीवन से निराश हो जाता। ऋषि प्रेरित करते हैं कि यदि समाज हित के लिये घोर कष्टों का सामना करना पड़े तो भी उनका स्वागत करना चाहिए।

दान से परमार्थ की सद्प्रवृत्ति का उदय होता है। मन स्थिति में उदारता आती है, स्वार्थपरता का नाश होता चलता है और मनुष्य अपने अतिरिक्त दूसरों के बारे मे भी सोचता है। उनके हित को अपना हित मानने लगता है। पुराणकार ने लिखा है कि जो दूसरों के अहित की योजना बनाता है उसका स्वयं ही अहित होता है। एक कथा में राजा खनित्र के मन्त्री विश्ववेदी ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचकर चार पुरोहितों से अभिचारक प्रयोग करवाये जिससे चार कृत्यायें उत्पन्न हुई परन्तु वह खनित्र का कुछ भी न बिगाड सकी। परिणाम स्वरूप उन्होने लौटकर चार पुरोहितों और विश्ववेदी पर आक्रमण किया और उन्हें मार डाला।

पुराणकार ने इस बुरी भावना से बचने और परमार्थ भावना को मन में स्थिर रखने पर बल दिया है। हरिश्चन्द्र के कष्टों के नाटक का जब अन्त हुआ तो देवता उन्हें स्वर्ग लेने के लिये आये परन्तु राजा ने अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैं अयोध्या की प्यारी प्रजा को व्यथित छोड कर अकेला नहीं जा सकता। वह अपनी पुण्य राशि का उपयोग अपनी प्रजा के साथ करना चाहते हैं। यदि वह सब के सब मेरे साथ स्वर्ग जा सकें तभी मैं वहाँ जा पाऊँगा अन्यथा उनके साथ मुझे नरक जाना ही पसन्द होगा।"

एक बार किसी कारण से विदेहराज को थोड़े समय के लिये नरक जाना पड़ा। उसके पहुँचते ही नरकवासियों को बहुत सुखद प्रतीत हुआ। राजा ने उसका कारण पूछा तो यमदूत ने कहा—"आपके पुण्य अनगिनत हैं,

आपने बहुत से अश्वमेघ यज्ञ किये हैं। समुद्र में जल की बूँदों, आकाश में तारों, मेघ में से जल की बरसती हुई जलधाराओं और गंगा में बालू के कणों की तरह आपके असंख्य पुण्य हैं। उसके कारण आपको स्पर्श करके जो वायु चल रही है, उससे नरकवासियों को अपने कष्टों में कमी अनुभव हो रही है।" यह सुनकर विदेहराज ने नरक से जाने को मना कर दिया और स्पष्ट कहा कि जब तक यह लोग नरक में पड़े हैं, मैं भी यहीं रहूँगा।" यह कहना सरल है करना कठिन है। जिसने जीवन भर सुख ही देखे हों उसके लिये दुःख की एक घड़ी भी युग के बराबर होती है परन्तु जिसके मन में ऐसी उच्च भावनायें उठती हैं, वह मानव नहीं महामानव है। मार्कण्डेय ऐसा ही महामानव अपने पाठकों को देखना चाहते हैं तभी भिन्न-भिन्न कथाओं द्वारा इस प्रकरण को दुहराया गया है।

राजा राज्यवर्धन की आयु बढ़ाने के लिये प्रजा ने सूर्यदेव की सामूहिक प्रार्थना की। इससे राजा की आयु दस हजार वर्ष बढ़ गई। राजा इससे चिन्तित हुए कि 'मैं तो दस हजार वर्ष तक जीवित रहूँगा, मेरे प्रजाजन यमराज के शिकार होते रहेंगे। मुझे यह आयु तभी ग्राह्य है जब मेरी प्रजा की भी यही आयु हो।" इस परमार्थ भावना से ओत प्रोत हो राजा ने सूर्यदेव की एक वर्ष तक आराधना की और सारी प्रजा की आयु भी दस हजार वर्ष की हो गई तभी वे सन्तुष्ट हुए।

ऋषि ने इस मत का प्रतिपादन किया है कि स्वार्थ आसुरी वृत्ति है, परमार्थ दैवी गुण है। इस गुण के विकास के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। इससे जो मानसिक शान्ति मिलती है, उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस शान्ति को हीरे-पन्नों से नहीं खरीदा जा सकता, इसे तो अपनी भावनाओं को उदार बनाकर सारे ब्रह्माण्ड में बिखेर देने से आकर्षित किया जा सकता है। इस भावना की पुष्टि व संवर्धन के लिये विश्व कल्याण की प्रार्थना को बड़े ढङ्ग से संजोया गया है "सब प्राणी सुखी हों, अन्यों में स्नेह रखें, समस्त प्राणियों का कल्याण हो और उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।

जीवों को किसी प्रकार का शारीरिक व मानसिक रोग न हो, सब लोग सबके मित्र हो…तुम्हारी बुद्धि में सब प्राणियों के कल्याण की भावना हो। जिस प्रकार अपना और अपनी सन्तान का हित चाहते हो, उसी तरह सब प्राणियो के कल्याण की बात सोचो।……जो मुझसे प्रेम करता है उसका सदैव हित साधन हो। मुझसे द्वेष करने वाले का भी सदैव कल्याण हो।"

इन पवित्र भावनाओ को अपने जीवन का अङ्ग बनाने वाले ही विश्व हितैषी महामानव बन पाते हैं, इसमे कुछ भी सन्देह नही।

इस भावना के विकास के लिये ऋषि ने एक अनुभव सिद्ध साधना का भी निर्देश किया है। वह है यज्ञ। यज्ञ का अर्थ है त्याग, बलिदान, परमार्थ, निःस्वार्थता। यज्ञ का लाभ शत्रु और मित्र सभी को एक समान पहुँचता है। यह समस्त प्राणी जगत् के हित साधन की साधना है। यज्ञ करने वाले का कोई शत्रु नही रह जाता, उसे सब ओर अपना ही रूप दिखाई देता है तभी तो वह अपने गाढ़े पसीने की कमाई को वायु मे बिखेरने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। वह जानता है कि अपने द्वेषियों को भी लाभ पहुँचने से वह रोक नहीं सकता। अतः वह शत्रु को शत्रु मानना ही छोड देता है। यज्ञ से वह सारे ब्रह्माण्ड से अपना नाता जोडता है। पहले वह केवल अपने परिवार तक ही सीमित था परन्तु यज्ञ का प्रभाव तो ईथर तत्व के माध्यम से सारे विश्व मे फैल जाता है, अतः वह अपने शरीर को ही ब्रह्माण्ड शरीर मानने लगता है।

जात-पांत, रगभेद और सम्प्रदाय के सङ्कीर्ण विचारो से ऊपर उठकर विश्व मैत्री की उच्च भावना को जागृत करने के लिये यज्ञ सरल व श्रेष्ठ साधन है। प्राचीन काल में इसी माध्यम से जनता के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया जाता था। पुराणकार का कहना है कि नरिष्यन्त ने एक बहुत बडा यज्ञ किया जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जनता ने असख्यों यज्ञ किये। पूर्व मे अठारह करोड, पश्चिम मे सात करोड, दक्षिण मे चौदह करोड और उत्तर में पन्द्रह करोड यज्ञ सम्पन्न हुए। इन महान् योजनाओं के फलस्वरूप ही जन-साधारण की सङ्कीर्ण भावनाओं का परिष्कार हो पाया और राम राज्य का साकार रूप देखने को मिला जहाँ पाप, ताप, चोरी, डकैती, छल कपट, आदि का नाम

निशान न था। लोग इस लोक की अपेक्षा परलोक का अधिक ध्यान रखते थे। आज उसके विपरीत है। वह युग पुन आ सकता है यदि हम ऋषियों की योजनाओं के अनुसार अपने जीवन को मोड दें तो।

जीवन निर्माण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन—

मार्कण्डेय पुराण मे विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तो का उल्लेख है जिनका प्रगति पथ पर आरूढ होने वाले हर मानव के लिए समझना आवश्यक है।

भौतिकवादी स्थूल नेत्रो से दिखाई देने वाले इस पञ्चभौतिक शरीर को ही सर्वस्व मानते हैं, उससे आगे की वे कल्पना भी नही कर सकते। वे उस सूक्ष्म, चेतन तत्व से अपरिचित हैं जिसके आधार पर समस्त क्रियाओं का सञ्चालन होता है। भारतीयों ने उस जीवनतत्व का नाम आत्मा रखा। जो इसे समझता नही, वह दु:खी रहता है क्योंकि शरीर अनित्य व नष्ट होने वाला है, उस पर अपने भविष्य को निर्भर करने वाला कभी शाश्वत सुख की आशा नही रख सकता। शान्ति के लिए मूल तत्व को जानना होगा। उसके लिए प्रयत्न करने होंगे। आत्मा को जान कर उस के उत्थान की योजनाओं को क्रियान्वित करना होगा। जो विघ्न बाधाएँ इसके मार्ग मे आती हैं उन्हें हटाना होगा, अपनी विचारधारा और जीवन पद्धति को परिष्कृत करना होगा।

पुराणकार ने दु ख की निवृत्ति के लिए शरीर भावना के त्याग का परामर्श दिया है। जब मदालसा पुत्र अलक के राज्य पर सुबाहु और काशि-राज ने आक्रमण करके उसके राज्य को छीन लिया तो उसे अपनी मा की उस शिक्षा का स्मरण हो आया कि सकट के समय इस अगूठी मे लिपटी शिक्षा के मार्गदर्शन मे चलना। उसमे सत्पुरुषों के सग की प्रेरणा दी गई थी। अलर्क योगी दत्तात्रेय के पास गया। दत्तात्रेय ने कहा कि तुम अपने दु ख का कारण बताओ, मैं आज ही उसे नष्ट कर दूँगा। जब अलर्क ने उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया तो लगा कि उसने भारी भूल की, दु ख तो शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से सम्बन्ध रखता है और वास्तव मे

मैं इन से भिन्न हू। दुःख तो मेरे बाह्य उपकरणों को था, मुझे नहीं, मैं तो इनसे सर्वथा भिन्न हू। मुझे तो दुःख छू भी नहीं सकता। मेरे अज्ञान के कारण उस ने मुझे दबाये रखा। अब मैं शरीर से सम्बन्धित नहीं हू। इसलिये दुःख से परे हू।

जब तक मनुष्य शरीर भावना से लिप्त रहता है, तब तक वह शारीरिक परिवर्तनों से प्रभावित होता रहता है। इस से ऊपर उठकर जब आत्म भावना मे स्थित होता है तभी उसे आनन्द का मार्ग मिलता है। इसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा ऋषि देते हैं।

इस सम्बन्ध मे साधना का भी पथ प्रदर्शन किया है। आत्मा को जीतने के लिए लिखा है "प्राणायाम से दोषो को, धारणा से पापो को, प्रत्याहार से विषयों को और ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करे। जैसे अग्नि मे पडकर सब धातु दोष-रहित होती हैं, वैसे ही प्राण वायु के निग्रह से इन्द्रियों के सब दोष नष्ट होते हैं।" यह आत्मदर्शन मे बाधक तत्व हैं, इन्हें दूर करना आवश्यक है।

जिसे आत्मदर्शन हो जाते हैं, वह सांसारिक दुःखो से अलिप्त रहता है। मृत्यु उसका कुछ भी बिगाड नहीं सकती। वे मृत्यू का प्रसन्नता पूर्वक, आलिंगन करते हैं, अपने सम्बन्धियो की मृत्यू पर शोक नही मनाते। मृत्यु को तो वे केवल वस्त्रों का बदलना मात्र मानते हैं। जीवन तो एक अखण्ड तत्व है। शरीर नाश से उसका नाश असम्भव है। एक शरीर के नाश के बाद आत्मा दूसरा शरीर धारण करेगी, उस के भी नष्ट होने पर तीसरा धारण करेगी, जब तक जीवन का उद्देश्य पूर्ण नही हो जाता, यह यात्रा चलती ही रहेगी। यह तो यात्रा के भिन्न-भिन्न पडाव हैं, इनकी वास्तविकता से आँखें मूँदकर रोना पीटना अज्ञानता है। मदालसा ने अपने पति की मृत्यु के समाचार सुन कर शरीर त्याग दिया तो राजा ने कहा कि "सब प्रकार के सम्बन्धों की अनित्यता पर विचार करने पर ऐसा लगता है कि क्या पुत्र के लिये रोऊँ और क्या पुत्र बधु के लिये रोऊँ? अर्थात् दोनों मे किसी के लिय रोने का कोई कारण नही है।"

इन विचारों की पुष्टि के लिये पुनर्जन्म के सिद्धान्त को उभारा गया है। सुमति नाम के एक ब्राह्मण कुमार की कथा दी गई है कि जब उसका उपनयन संस्कार किया गया तो उसे उपदेश दिया गया कि उसे क्रमश: ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास चार आश्रमों में प्रवेश करना होगा। इनके कर्तव्यों का दृढ़ता पूर्वक पालन करने पर ही उसे ब्रह्म प्राप्ति होगी। इस पर सुमति ने अपने अनेकों जन्मों का वृत्तान्त सुनाया। उन जन्मों में वेदाध्ययन और आश्रम धर्मों के पालन की बात कही, कैसे एक बार नरक की यातना भोगनी पड़ी, उसका भी वृत्तान्त है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त बताता है कि शरीर के नाश से हमारी प्रगति अवरुद्ध नहीं हो जाती। जितना विकास हम ने इस शरीर के माध्यम से कर लिया है, वह भी नष्ट नहीं होता, उसके संस्कार हम सूक्ष्म शरीर के साथ ले जाते हैं और आगामी जीवन में हम इस विकास का उपयोग करते हैं। कई व्यक्तियों में जन्मजात विलक्षण प्रतिभा बाल्यकाल से ही प्रस्फुटित होने लगती है, वह उनके इस जन्म के कारण नहीं वरन् पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण होता है।

इसीलिए मार्कण्डेय ने जीवन निर्माण के प्रमुख सूत्र कर्म को प्रमुखता दी है। कर्म को ही समस्त सफलताओं का श्रेय दिया है। कहा है "कर्म का बल पृथ्वी के मानव की श्रेष्ठतम शक्ति है। यही उसकी विजय का रहस्य है। यही कारण है कि स्वर्ग के देवता भी पृथ्वी पर जन्म लेने को उत्सुक रहते हैं। जिनके पास कर्म का हथियार होता है, वह उसकी सहायता से देवत्व, इन्द्रत्व और ब्रह्मत्व सभी को प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं। जिन व्यक्तियों का चित्त, इन्द्रियाँ और आत्मा अपने वश में हैं और जो कर्म करने के लिये उद्यत हैं, उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं होता। चलती हुई चींटी हजारों योजन चल जाती है, बिना चले गरुड़ भी एक पग नहीं जा पाता।"

इन सशक्त शब्दों में ऋषि आशा की जीवन ज्योति जलाते हैं और आश्वासन देते हैं कि जैसी भी परिस्थितियाँ इस जीवन में उपलब्ध हुई हैं,

उनसे निराश न होना चाहिये, उनके लिये भाग्य और भगवान को कोसना कायरता और निबलता की निशानी है, कर्म का विस्तृत क्षेत्र मानव के लिये खुला पडा है, वह स्वतन्त्रता पूर्वक अपने कर्मों का जाल बिछा सकता है उन्हें नष्ट करने का अधिकार किसी भी मानव को नही दिया गया। यह अलग बात है कि उनमे विघ्न बाधाएँ उपस्थित हो, जिन्हे दूर करने के लिये कुछ अतिरिक्त पुरुषार्थ करना पडे परन्तु उस दयालु परमात्मा ने उन्नति का मार्ग हमारे लिये खुला छोड दिया है। हम अपने कर्मों के द्वारा अच्चतम आसन पर स्थित हो सकते हैं। यदि हम आगे नही बढ रहे तो इसका कारण हम स्वय हैं न कि भाग्य और भगवान। किसी को हमारे लिये कुछ नही करना है। करने वाले हम स्वय हैं। अपने भाग्य को हमे स्वय लिखना है, बनाना है। इसी पर ऋषि ने विशेष बल दिया है।

जब राजा शत्रुजित के पुत्र अपने मित्र ऋतध्वज के दुख निवारण के लिये कुछ नही कर सकते तो पिता ने कहा "पुत्रो! तुम्हारी यह धारणा ठीक नहीं है। बुद्धिमानों के लिए कोई कार्य असाध्य नही होता, पुरुषार्थ से सब कुछ उपलब्ध किया जा सकता है—उद्योगी व्यक्ति के लिए कोई भी स्थान गम्य और कोई स्थान अगम्य नही होता। कहाँ भूतल और कहाँ ध्रुव का पद ? फिर भी इस भूतल पर निवास करने वाले ध्रुव ने उद्योग द्वारा ध्रुव का पद पा ही लिया।"

एक राजकुमार ने कामना की है कि "जो अपने बल पौरुष से सम्पत्ति और ख्याति अर्जित करते हैं और अपने पौरुष से ही संकटो को पार करते हैं मैं उन जैसे लोगों की गति चाहता हूँ।' पुरुषार्थ ऐसा अस्त्र है जिससे सांसारिक विघ्न बाधाओ, कठिनाइयों व रुकावटों को दूर करके मानव लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। उसी की ओर ऋषि ने हमे आकृष्ट किया है।

मानव को कुमार्ग से बचाने और सद्मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिये अनेकों प्रकार के उपाय अपनाये जाते हैं। उनमे एक नरकों के भय

दिखाना भी है। कर्मफल के सिद्धान्त को तो हर भारतीय स्वीकार करता ही है। वर्तमान बुरी या अच्छी परिस्थितियों का श्रेय भी पिछले जन्मों के बुरे या अच्छे कर्मों को ही होता है। नरक अथवा स्वर्ग का सम्भोग तो वह यहाँ भी कर लेता है। यदि इन्हीं तथ्यों को भीषण रूप से वर्णित करके नरक और स्वर्ग पृथ्वी से दूर किसी दूरस्थ लोक में बताये जाते हैं तो उन पर साधारणजन विश्वास कर लेते हैं और उनमें दी जाने वाली यातनाओं की भयङ्करता को सुनकर वह भयभीत हो जाते है और बुरे कर्मों से बचते हैं। इसी उद्देश्य से मार्कण्डेयपुराण में नरकों का विस्तृत वर्णन है जिसमें लाखों करोड़ों जीव अपने दुष्कर्मों के भोग भोगते दिखाये गये हैं। वहाँ की लोमहर्षक यातनाओं को सुनकर हृदय काँप उठता है। उदाहरण के लिए "जिन नराधम मनुष्यों ने पर नारी को दूषित नेत्रों से देखा है अथवा पराये धन को हड़पने की इच्छा वाले नेत्रों से देखा है, उनके दोनों नेत्रों को यह वज्रतुण्डी पक्षी हरण करते हैं तथा वही नेत्र बारम्बार उत्पन्न हो जाते हैं, इन मनुष्यों ने जितने पलक लगने तक यह पाप किये हैं, उतने ही सहस्र वर्ष यह इस नेत्र पीड़ा को प्राप्त करते रहेंगे, जिन्होंने शत्रु को भी ज्ञान दृष्टि का हरण करने के लिए अन्याय पूर्वक विपरीत शास्त्रोपदेश अथवा भ्रमात्मक परामर्श दिया है या मिथ्या भाषण किया है।"

"जिन्होंने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनों की निन्दा की है, यह वज्रतुण्डी पक्षी उनकी जीभ को काटते हैं, जितनी बार यह पाप किया है, उतने ही वर्ष उन्हें ऐसी यन्त्रणा मिलती है तथा जिन्होंने मित्रों में या पिता-पुत्र से भेद डलवाया है अथवा याज्ञिक-यजमान में, माता-पुत्र में या पति पत्नी में मनमुटाव करा दिया है, वे इस कर पत्र से आहत होते हैं अथवा जो किसी को क्रोध दिलाते या किसी की प्रसन्नता नष्ट करते हैं, जो ताड़ का पंखा या खस या चन्दन का हरण करते अथवा साधुओं को प्राणान्तक पीड़ा देते हैं, वे पापी तप्त रेत में गिर कर पाप का फल पाते हैं अथवा जो एक श्राद्ध में निमन्त्रित होकर दूसरे के यहाँ भोजन करते हैं उनको यह पक्षीगण व्यथित करते हैं।"

पुनर्जन्म का सिद्धान्त सर्वमान्य है। यह निश्चित है कि हजारों प्रकार

की पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि की नीच योनियों से होकर मानव को यह योनि प्राप्त होती है। इस योनि मे आकर भी यदि वह पतित कार्य करता है तो पुन उन योनियो मे उसे जाना पडता है। कैसे कर्म से किस योनि में जाना पडता है, इसकी विस्तृत सूची पुराणकार ने दी है। उदाहरण के लिए "पतित मनुष्य से धन लेने वाला ब्राह्मण गधे की योनि को प्राप्त होता है तथा पतित मनुष्य को यज्ञ कराने पर नरक से मुक्त होकर कृमि योनि पाता है। उपाध्याय के प्रति छल करने, उसकी स्त्री या अन्य वस्तु की इच्छा करने से श्वान-योनि मिलती है। माता पिता का अपमान करने वाला गधा और उन्हे गाली देने वाला मैना होता है। भाई की पत्नी का अपमान करने वाला कबूतर होता है उसे पीडित करने से कछुआ होता है। स्वामी का पिण्ड भोजन करके जो उसका अभिलिषित नही करता, वह मोह मे भरकर मरणान्तर बन्दर बनता है। किसी की धरोहर हडपने वाला नरक से मुक्त होने पर कृमि होता है, असूया करने वाला नरकान्त मे राक्षस होता है।"

नरको, उसमे दी जाने वाली यातनाओं और विभिन्न प्रकार की योनियो के वर्णन का उद्देश्य यह है कि मानव दुष्कर्मों से बचे और सत्कार्यों का सम्पादन करे ताकि उसे श्रेष्ठतम योनि मे आकर पुन क्षुद्र योनियो मे न जाना पडे। यह मानव की पतित अवस्था का ही परिणाम हो सकता है। पतन से बचने के लिए ही मार्कण्डेय ने यह सत्प्रयास किया है।



साधनात्मक प्रक्रियाएँ

इस सिद्धान्त से हर व्यक्ति परिचित है कि इस जीवन की सुख-सुविधाएँ पिछले उदार कार्यों के कारण प्राप्त हुई हैं और कठिन परिस्थितियों का कारण सङ्कीर्ण और क्षुद्र भावनाएं रही हैं। स्वर्गीय सुखों का भोग करना तो हर कोई चाहता है परन्तु उसके अनुरूप सद्कार्यों का करना हर किसी के वश की बात नहीं है। मनुष्य न चाहते हुए भी पाप करता है। बुरे कार्यों को बुरा समझते हुए भी उनमें फँसता है। इसका कारण उसका अपवित्र और निर्बल मन है। पवित्र और सबल मन में ही सद्विचार उठते हैं। परन्तु मन को अपनी इच्छानुसार चलाना सरल नहीं है। उसकी गति वायु से भी तीव्र है। इसकी चञ्चलता तो प्रसिद्ध है ही। इसे पवित्र, शक्तिशाली और अपने नियन्त्रण में रखने के लिए अनेकों प्रकार की आध्यात्मिक साधनाओं का आविष्कार किया गया है जिन्हें अपना कर हितसाधन किया जा सकता है। जप, तप, योग और विचार-साधना के अनेकों मार्ग हैं जिनमें से कुछ का मार्ग दर्शन किया गया है।

मार्कण्डेय ने प्रणव की साधना की ओर साधकों का ध्यान आकृष्ट किया है। यह मन्त्रों का सेतु व शिरोमणि है। योगियों ने समाधि अवस्था में देखा कि सूक्ष्म प्रकृति के अन्तराल में जो ध्वनि निरन्तर हो रही है, वह प्रणव की ध्वनि से मिलती जुलती है। अतः उस ध्वनि को अपने दिव्य कर्णों द्वारा श्रवण करके उन्होंने मानव के हितार्थ साधना का रूप दे दिया ताकि मानव उसके अनुरूप अपने को बना सके। अनुकूलता में शक्ति का विकास और प्रतिकूलता में उसका ह्रास होता है। इसलिए प्रणव को श्रेष्ठतम साधना माना गया है जिसकी महिमा का गान स्वयं पुराणकार ने किया है—"जो विश्व स्वरूप, विश्वेश्वर और विश्वपावन हैं तथा विश्व ही जिनके पाद, ग्रीवा और मस्तक हैं, उन्हीं परब्रह्म को प्रत्यक्ष करके योगी उनको पाने के लिये 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्र का जप करे। यही उनका स्वाध्याय है, इसी ओंकार का श्रवण करना चाहिये...... योगी अक्षर-पथार में ओंकार युक्त होता है, प्राण को धनुष रूप, आत्मा को बाण रूप और ब्रह्म को लक्ष्य रूप जाने। ...ओंकार ही त्रिवेद,

त्रैलोक्य और तीनों अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा ऋग् यजु साम स्वरूप है......केवल 'ॐ' का उच्चारण करते ही सदैव सत् असत् का ग्रहण हो जाता है......जो योगी ओंकार स्वरूप या ब्रह्म को जानकर उनका 'ध्यान' करते हैं वह संसार चक्र का अतिक्रमण करते हुए तीनों बन्धनों को छोड़ कर उस पर-ब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं। यदि उनके कर्म बन्धन क्षीण न हों तो वह अरिष्ट द्वारा मृत्यु जानकर उस समय स्मृति लाभ पूर्वक योगित्व को पुन प्राप्त होते हैं।" वेद शास्त्रों में वर्णित ऋषियों के अनुभवों से भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है।

योग साधना की भी विस्तृत शिक्षा पुराणकार ने दी है। अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ, अहिंसा के पाँच यमों और अक्रोध, गुरुसेवा, शौच, लघु आहार और नित्य स्वाध्याय के पाँच नियमों के पालन को आवश्यक माना गया है। इसी स्थिति पर आगामी क्रियाओं का सफल सञ्चालन सम्भव है। योग की नींव को दृढ करने के लिए इन नैतिक नियमों का पालन आवश्यक है। प्राणायाम से दोषों को, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषयों को और ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करने की प्रेरणा दी गई है। प्राण वायु के निग्रह से इन्द्रियों के समस्त दोषों का नष्ट होना बताया गया है। आत्मा पर विजय प्राप्त करने का साधन योग की इन साधनाओं को माना गया है। इन सभी क्रियाओं को खोलकर समझाया गया है। इनसे प्राप्त होने वाली सिद्धियों का भी वर्णन है। अष्ट सिद्धि की प्राप्ति का आश्वासन दिया गया है और इन्हें अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने वाली कहा गया है। ध्यान के सम्बन्ध में कहा है—"निखिल वेद और सब प्रकार की यज्ञ क्रिया उत्कृष्ट है, उस यज्ञ से जप श्रेष्ठ है, जप से ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्ग से निःसङ्ग और रागहीन 'ध्यान' श्रेष्ठ है क्योंकि इस ध्यान के द्वारा ही शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जो सावधानी से ब्रह्मपरायण, प्रमादरहित, एकान्तवासी और जितेन्द्रिय होकर योग साधन करते हैं, वे आत्मा में आत्मा के संयोग को पाकर मोक्ष लाभ करते हैं।" इन साधनाओं को क्रिया रूप देकर निश्चित रूप से आत्मा और परमात्मा के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

तप की प्रेरणा तो पग-पग पर दी गई है। जितने भी राजाओं के जीवन-चरित्रों अथवा कथाओं का पुराण में वर्णन है, लगभग सभी ने वृद्धावस्था आने पर राज्य का भार अपने पुत्रों को सौंप कर तपश्चर्या के लिए वन के लिए प्रस्थान किया। तपस्वी का वेष धारण करके वे क्रोध, हिंसा, बदले की भावना से बचते रहे हैं। कई बार जब वन में मुनियों को नागों, राक्षसों व अन्य आसुरी शक्तियों ने परेशान किया तो उन्हें शाप द्वारा स्वयं भस्म करने की शक्ति-सामर्थ्य रखते हुए भी वे राजा के पास रक्षा की प्रार्थना के लिये जाते हैं क्योंकि क्रोध से उनकी आध्यात्मिक शक्ति के क्षय होने की सम्भावना थी। तप द्वारा शक्तियों और सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन है।

आत्मोत्थान के लिये चिन्तन मनन एक उच्चकोटि की साधना है। इसमें दोनों पक्षों की ओर ध्यान रखना आवश्यक होता है। एक तो अपनी भावनाओं में सात्त्विकता लानी चाहिये। नागराज ने जब ऋतध्वज से वर माँगने के लिये कहा तो उसने उत्तर दिया—'यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मुझे यह वर दें कि मेरे हृदय से धर्म की भावना कभी दूर न हो।" वास्तविकता के धारण करने को धर्म कहते हैं। कर्तव्य पालन ही सच्चा धर्म है। धर्म भावना तो आत्म-विकास की नींव है। इसका पुष्पित-पल्लवित होना आवश्यक है।

आत्म-दर्शन के लिए शरीर-भावना से ऊपर उठकर आत्म भावना के क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है तभी मोक्ष का—स्वतन्त्रता का मार्ग प्रशस्त होता है। जब साधक आत्मभावना में दक्ष हो जाता है तो उसका कोई शत्रु मित्र नहीं रह जाता, सबको वह समान दृष्टि से देखता है, किसी से घृणा-द्वेष नहीं करता। वह जगत् के कल्याण के लिए अपनी समस्त शक्तियों के व्यय के लिए तत्पर रहता है। जब मदालसा पुत्र अलर्क को दत्तात्रेय के सम्पर्क से आत्मज्ञान हुआ तो उसकी भी यही स्थिति हो गई। वह चारों ओर अपनी आत्मा के ही दर्शन करने लगा। यह आत्म साधना की उच्च स्थिति है।

इस स्थिति तक पहुँचने के लिए आत्म संयम की साधना एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है जिसकी प्रेरणा पुराणकार ने दी है। इसे मोक्ष का साधन माना गया है। संयम से शक्तियों की सुरक्षा होती है। शक्ति ही साधना का मूल है।

उसकी सुरक्षा के लिये विरोधी सासारिक भावनाओ के प्रति सावधान रहना पडता है। इनमे अनित्यता, असग और ममता के त्याग पर ऋषि ने विशेष बल दिया है। अनित्यता की भावना से सासारिक वस्तुओं के क्षय होने पर दु ख नही होता। उनकी स्वाभाविक गतियो को वह भली प्रकार जानता है, उनमे लिप्त नही रहता, अलिप्तता की भावना से ओत-प्रोत रहता है। ममता के प्रति विशेष रूप से सजग रहने को कहा गया है क्योकि "ममता मनुष्य के हृदय मे एक महान् वृक्ष के रूप मे स्थित है। अज्ञान को इसका बीज, अहङ्कार को अकुर और ममकार को तना कहा गया है। घर-द्वार, खेती-बाडी को शाखाएँ, धन सम्पत्ति को पत्ते, स्त्री पुत्र को पल्लव, पाप पुण्य को पुष्प, सुख दु ख को फल, इच्छाओ को भ्रमर की सज्ञा दी गई है। यह आदि काल से खडा है और निरन्तर बढ रहा है। यह साधक को आत्म विस्मृत करता है। सत्सङ्ग और विद्या के अस्त्रो से इसको काटा जाना सम्भव है तभी मोक्ष मार्ग प्रशस्त होगा।"

प्रलय के विस्तृत वर्णन करने का उद्देश्य यह है कि हम नित्य के मनन चिन्तन और ध्यान मे यह अनुभव करें कि इस विश्व की जितनी वस्तुओ से हमारा सम्बन्ध है, वह धीरे धीरे नष्ट होती जा रही हैं। बन्धु बान्धव साथ छोडते जा रहे हैं, पञ्चभौतिक शरीरो का निरन्तर क्षय होता जा रहा है, ये विनाश की ओर तीव्र गति से बढ रहे हैं, बडे-बडे भवन और प्रासाद ध्वस्त होते जा रहे हैं, असख्यो जीव-जन्तु अपने प्राण छोड रहे हैं, बडे बडे राजा-महाराजा और 'धन' कुबेर भी इस प्रवाह मे बहे जा रहे हैं। किसी मे रुकने की क्षमता नही है। स्थिति यहाँ तक पहुच गई है कि सारा विश्व जल कर भस्म हो गया है और चारो ओर जल ही जल दिखाई दे रहा है।

यह भावना दृढ होने पर साधक झूठ, छल, कपट, फरेब, धोखेबाजी घूस, मिलावट आदि धन एकत्रित करने के अनुचित उपायो से विरत हो जाता है और सद्मार्ग पर चलने का प्रयत्न करता है। उसका किसी से लगाव नहीं रहता, अलिप्त भावना से वह जगत् मे विचरता है।

देवी उपासना का निर्देशन इस पुराण की एक प्रमुख विशेषता है। देवी के आविर्भाव, उद्देश्य, आसुरी शक्तियो से सङ्घर्ष आदि का विस्तृत वर्णन

है। देवता देवी की स्तुति करते हुए कहते हैं। "इस प्राणी जगत् को अपने प्रभाव से विस्तार करने वाली, समस्त देवगणों की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणित हुई हैं एवम् जो समस्त सुरगणों एवम् महामुनियों की पूज्या हैं, अनन्त भगवान्, ब्रह्मा, एवम् महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं, वह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिये और उसके अहित व भय के नाश के लिये आशान्वित हो। समस्त विश्व की घोर विपत्ति को शमन करने वाली आप ही हैं। आप ही बुद्धि स्वरूप हैं, कठिन भव सागर से निस्तार करने वाली अनुपम नौका स्वरूप हैं, कैटभ शत्रु के वध कर्त्ता भगवान् विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी और महादेव के बाँए अङ्ग पर प्रतिष्ठित गौरी आप ही हैं। आपका पराक्रम किसी अन्य के साथ तुलना नहीं किया जा सकता। आपका रूप शत्रुओं को भयदाता एवम् अत्यन्त मनुरम है।"

देवी का आविर्भाव देव शक्तियों के संग्रह में हुआ है। जब-जब राष्ट्र पर घोर सङ्कटों के बादल छाए हैं, तब-तब दिव्य पुरुष एकत्रित होकर अपने समस्त सामर्थ्यों को राष्ट्र हित के लिये समर्पित कर देते हैं। परन्तु पृथक् प्रयत्न का कोई आशा जनक फल नहीं प्रतीत होता। सङ्गठन से ही शक्ति का विकास होता है। जब महिषासुर, मधु कैटभ, शुंभ निशुंभ आदि शक्तिशाली विरोधियों ने सर उठाया तो देव शक्तियों ने उनसे अलग अलग जूझने में अपने को असमर्थ पाया। वह सब मिलकर एक हो गए तब असुरों को पराजित होना पड़ा। भगवान् कृष्ण ने भी ग्वालों को कहा था, तुम अपनी-अपनी अँगुली लगा दो, यह गोवर्धन सहज में ही उठ जायगा। यह सङ्गठन शक्ति की ओर ही संकेत था। भगवान् राम ने वानरों की निम्न स्तर की जाति का सगठन करके ही लङ्का पर आक्रमण किया और सिद्धहस्त सेना को परास्त कर दिया। आज हमारा सामाजिक, नैतिक व सांस्कृतिक ढाँचा अस्त-व्यस्त हो रहा है। चारों ओर से आसुरी शक्तियाँ इसे और ध्वस्त करने का प्रयत्न कर रही हैं। अब यह लड़खड़ाती स्थिति में है। इसे स्थिर रखने के लिये आवश्यक है देवी की उपासना की जाए, देव शक्तियों को एकत्रित किया जाए और असुरों के नाश

व गढो को नष्ट भ्रष्ट किया जाए ताकि देवता सुख की सांस ले सकें । अर्थात् राष्ट्र का नैतिक व सांस्कृतिक विकास हो । ऐसे संगठन बनाये जायें या बने हुओं का सहयोग किया जाए तो सामाजिक रोगो और कुरीतियो के विरुद्ध अभियान चलायें, उन से घोर संघर्ष करें, उन्हें नष्ट करके ही दम लें, ताकि सारे राष्ट्र में नैतिकता की अजस्र धारा प्रवाहित हो ।

देवी उपासना का एक उद्देश्य यह भी है कि जब हम देवी को जगजननी मानते हैं तो समस्त स्त्री जाति को ईश्वर रूप मानना होगा। आज दूषित दृष्टि की कमी नहीं है। कहीं भी इसका अनुभव किया जा सकता है। नारी जाति के प्रति आदर व सम्मान की भावनायें रखना और उन्हें पुत्री, भगिनी और मातृत्व की पवित्र भावना से देखना ही सच्ची देवी उपासना है। इसी की ओर पुराणकार ने इंगित किया है। अश्लीलता, युवतियों का अपहरण, बलात्कार, कामवासना के ताण्डव नृत्य चारों ओर होते दिखाई दे रहे हैं। इनका शमन इस देवी उपासना से ही सम्भव है।

समन्वयात्मक दृष्टिकोण

मार्कण्डेय पुराण के रचियता एक सांसारिक बन्धनों से मुक्त महर्षि हैं जो आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हैं। वह चाहते तो इसमें अपने पक्ष का प्रतिपादन करते और बुद्ध व नारद की तरह सब को ही गृह त्याग की शिक्षा देकर सन्यासी बना देते। गीता का प्रतिपाद्य विषय तो कर्म-योग है परन्तु हर टीकाकार आचार्य ने अपनी मान्यताओं के अनुसार उसे अपने अनुकूल मोड़ दे दिया। मार्कण्डेय चाहते तो वे भी सुविधापूर्वक कर सकते थे परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने तो जगत् के कल्याण की पवित्र भावना से इसका निर्माण किया था। जन-साधारण का हित इसी में है कि उनके बौद्धिक स्तर और पात्रता के अनुसार ही उन्हें शिक्षा व प्रेरणा दी जाय ताकि वह उसे सुविधापूर्वक अपना सकें। शिक्षायें ऐसी व्यवहारिक होनी चाहिये जिन्हें जन-साधारण के लिए असम्भव न कहा जा सके। मार्कण्डेय दूरदर्शी थे। उन्होंने जगत् के प्रवाह का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया और अपने अनुयाइयों को इस धारा के अनुरूप ही

हर व्यक्ति को उपदेश दिया। धारा के विरुद्ध चलने मे कड़ा सङ्घर्ष करना पड़ता है जो सर्वसाधारण के लिए अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। इसलिये उन्होने ऐसे मार्ग का निर्देशन किया जिसे अपनाकर हर कोई क्रमिक विकास करता हुआ उच्चतम स्थिति तक पहुँच सकता है।

मार्कण्डेय स्वय विरक्त थे परन्तु उन्हे गृहस्थ से विद्वेष नही था। उन्होने भौतिक जीवन को हर प्रकार से समुन्नत करने की प्रेरणा दी, सभी साधनो को पूर्णरूप से विकसित करने पर बल दिया परन्तु इन समस्त प्रक्रियाओ का आधार धर्म और कर्तव्य ही माना है। गृहस्थ की उन्होंने प्रशसा की है क्योंकि इसमें सघर्षमय जीवन की क्रियात्मक शिक्षा मिलती है। सङ्घर्ष से ही सब प्रकार की शक्तियों का विकास होता है जिन्हें आध्यात्मिक भाषा म सिद्धियाँ कहा जाता है। यही जीवन-निर्माण की आधार शिला बनती हैं। प्रगति पथ पर आरूढ होने के लिये अवश्यक नियमों का विवेचन किया गया है और सद्गुणों के विकास पर बल दिया गया है। साथ ही साथ अवगुणों के प्रति चेतावनी भी दी गई है ताकि उपार्जित शक्तियाँ सुरक्षित रह सकें, उनका व्यय होकर वह मानव को दीन हीन न बनादें।

ऋषि व्यक्तिगत उत्थान के समस्त सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हैं, परन्तु इस उत्थान को वे अधूरा मानते हैं जब तक कि परहित की उदार भावनायें मन क्षेत्र मे जाग्रत न हो जायें। पूर्णता की प्राप्ति के लिये वह सारे विश्व को अपना परिवार मानने पर बल देते हैं। इस स्थिति तक पहुँचने के लिये महत्वपूर्ण साधनाओं का भी मार्ग दर्शन किया गया है।

मार्कण्डेय ने भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के जीवन का उचित मूल्याङ्कन किया है। वे भौतिकवाद की उपेक्षा नहीं करते, उसे भी आवश्यक समझते हैं परन्तु केवल उन्हीं के लिये जीवन नष्ट करने को अज्ञानता मानते हैं। उनका दृष्टिकोण समन्वयात्मक है। यही जन-साधारण के अनुकूल है। इसीलिये इसे एक उच्चकोटि का पुराण माना जाता है।

देव वाद

का

वैज्ञानिक स्वरूप

भाग-१ विष्णु रहस्य

**

हिन्दुसस्कृति के जितने भी विवादस्पद विषय हैं, उनमे देव वाद प्रमुख स्थान रखता है। देव वाद ठोस मनोवैज्ञानिक विचार-धारा पर आधारित है। देव देवियो का स्वरूप निर्धारित करते समय साधक के व्यवहारिक व क्रमिक विकास पर ध्यान दिया गया है, परन्तु आज का शिक्षित वर्ग इनके वाह्य रूप को देखकर आलोचना करने लगता है। देव देवियो सम्बन्धी समस्त शकाओ का समाधान करने के लिये देव वाद का वैज्ञानिक स्वरूप चार खण्डो (१ विष्णु रहस्य, २ शिव रहस्य, ३ ब्रह्मा रहस्य, ४ देव रहस्य) मे प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रथम खण्ड विष्णु रहस्य छपकर तैयार हो चुका है। इसमे विष्णु के स्वरूप, क्षीर सागर मे निवास, शेष शय्या, समुद्र मथन, मोहिनी रूप, शालग्राम, चक्र, पद्म, गदा, शख, वैजयन्ती माला, श्री वत्स, वाण, धनुष, लक्ष्मी से सम्बन्ध, वेद, उपनिषेदो, रामायण, महाभारत, पुराणो आदि शास्त्रो मे प्रतिपादन, उनके विभिन्न अवतारो का रहस्य आदि समस्त विषयो का प्रमाणित व शास्त्रीय विवेचन दिया गया है जिससे विष्णु साधना एक उच्चकोटि की जीवन निर्माण की प्रक्रिया सिद्ध होती है।

पुस्तक अत्यन्त खोज पूर्ण है। इस विषय पर यह सर्व प्रथम पुस्तक है। मूल्य केवल छ रु० मात्र है।